SAHITYA SANDESH

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

VOL 16 1955 G.K.L.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113022

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६-९-५५

साहित्य सन्देश

वर्ष १६

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा।

अङ्क ७

[वार्षि]क मूल्य ४)] आगरा—जनवरी १९५५ [विशेष संस्करण

RT-0576

इस अङ्क के लेख

[ह]मारी विचारधारा	सम्पादक
[स]ाहित्यिक मूल्याङ्कनों के अभिनव आवर्त	श्री लक्ष्मीचन्द्र दीक्षित एम० ए०
[आ]धुनिक कला का विषय	प्रो० रामचन्द्र शुक्ल एम० ए०
[प्र]पत्ति मार्ग और कबीरदास	श्री बदरीनारायण श्रीवास्तव एम० ए०
[ल]ोक-साहित्य	श्री अमरबहादुरसिंह 'अमर' जौनपुरी बी० ए०, सा०
[अ]पभ्रंश और हिन्दी	श्री रामप्रसन्नसिंह एम० ए०
[द]ीपशिखा की भूमिका	श्री विश्वम्भर 'मानव' एम० ए०
[प]न्तजी के काव्य-रूपक	प्रो० सुरेशचन्द्र गुप्त एम० ए०, साहित्य-रत्न
[म]लयालम की चुनौती	श्री एन० अय्यप्पन नायर, वैकम
[ब]ाबू हरिश्चन्द्र व वीरेशलिंगम पंतुलु	श्री द० सूर्यप्रकाशराव
[स]ाहित्य परिचय	
[श]ङ्का-समाधान	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'साहित्य-सन्देश' के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह को १५ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य-सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है। किसी भी महीने से ग्राहक बनने पर पूरे १२ अङ्क मिलेंगे।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिये, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र-व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ॥) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता, कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापिस कर दिए जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में पकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : दिसम्बर १९५४

आलोचना

काव्यकार—डा० इन्द्रनाथ मदान ३॥)
विद्यापति की पदावली—कुमुद विद्यालंकार ६)
जायसी ग्रन्थावली सटीक—मनमोहन गौतम ८)
मीराबाई का जीवन चरित्र—मुं० देवीप्रसाद १।)
रवीन्द्र कविता कानन—निराला १)
स्वदेश और साहित्य—शरतचन्द चट्टोपाध्याय १)
भारतीय लोक साहित्य—श्याम परमार ३॥)

कविता

नीलम ज्योति और संघर्ष—क्षेम १।)
माटी की मुस्कान—रूपनरायण त्रिपाठी १॥)
धरती और स्वर्ग—डा० देवराज ३)
चन्द्र सखी और उनका काव्य—
पद्मावती शबनम २)
विनोद और व्यङ्ग—पारसनाथ सिंह ४)

कहानी

झंझा के मेघ—महेशचरण २॥)
अतीत के कंपन—आनन्द प्रकाश जैन ३)

उपन्यास

देवलोक—विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय ४)
सन्यासी और सुन्दरी—यादवेन्द्रनाथ शर्मा २॥)
कालभोज—रमणलाल वसन्तलाल देसाई ४)
पतिता—अनु० हरि कपूर ५)

राजनीति

भारत विभाजन की कहानी—एलेनकैम्प बेल ४)
भारतीय राजनीति और शासन विकास—
कन्हैयालाल वर्मा ७॥)

इतिहास

संक्षिप्त हिन्दुस्तान की कहानी—नेहरू ५)
कालिदास का भारत भाग १—
भगवत शरण उपाध्याय ४)
जीवन प्रभात—प्रभुदास गांधी ५)

जीवनी

गांधीजी की कहानी—लुई फिशर ४)

ग्रामोपयोगी

खादी द्वारा ग्राम विकास—प्रभुदास गांधी १)

प्रवचन

सागर सेतु—राजेन्द्र शर्मा ५)

स्फुट

सचित्र गृह विनोद—अरुण ८)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113022

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

113022

सेहत
और
ताकत
का
नुस्खा
विटामिनों से
पूर्ण
जे. बी.
मंघाराम
के
नरिशिंग
बिस्कुट
बच्चों की सेहत
के लिये आदर्श

सभी दूकानदारों के यहाँ मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि—

साहित्य संस्कृति का एक मुख्य अङ्ग है और वही साहित्य सबल और पुष्ट होता है जिसका आधार संस्कृति के अन्य अङ्ग धर्म, दर्शन, कला, पौराणिक गाथाओं, और रीति रिवाजों में हो। ऐसे साहित्य का सम्बन्ध हमारे जन-जीवन से होगा और जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों में उसके बद्धमूल होने के कारण उसके साथ हमारे हृदय का प्रतिस्पन्दन विदेशी साहित्य की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से हो सकता है। यद्यपि हमारी संस्कृति में दूसरे स्रोत मिलते जा रहे हैं तथापि संस्कृति का मूल स्रोत इतना प्रबल है कि वह सहज में दब नहीं सकता है।

प्राचीन साहित्य के रसास्वादन के लिए प्राचीन संस्कृति की पृष्ठ-भूमि से परिचय होना अत्यन्त आवश्यक है। हमको खेद के साथ लिखना पड़ता है कि विद्यार्थियों का सांस्कृतिक ज्ञान लज्जाजनक रूप से सीमित है। विदेशों के विज्ञानवेत्ता भी प्राचीन साहित्य और संस्कृति से इतने अछूते नहीं जितने कि यहाँ के साहित्य के विद्यार्थी।

हम चाहे पौराणिक कथाओं में अक्षरशः विश्वास करें या न करें, हमारे दार्शनिक सिद्धान्त पहले से बदल गये हों किन्तु पिछली सांस्कृतिक-निधि से अनभिज्ञ रहना अपने पूर्वजों के प्रति कृतघ्न होना है। खेद है कि हिन्दी की परीक्षाओं में सांस्कृतिक ज्ञान का बढ़ाने वाला कोई प्रश्न-पत्र नहीं होता है। पहले साहित्य-रत्न में भारतीय संस्कृति सम्बन्धी एक प्रश्न-पत्र रहता था परन्तु अब वह भी वहाँ से हट गया है। हमारा आज का विद्यार्थी भविष्य का साहित्य-स्रष्टा बनेगा। यदि वह संस्कृति के इतने क्षीण सम्बल के साथ साहित्य में प्रवेश करता है तो उसकी रचनाओं में अधिक बल और प्रभाव की आशा कम की जा सकती है। साहित्य के हित में साहित्य को उच्चकोटि का बनाने के लिए संस्कृति से सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक है। विश्व-विद्यालयों का इस ओर ध्यान आकर्षित होना अत्यन्त वांछनीय है।

कवियों का सम्मान—

अभी हाल में नैपाल के सबसे बड़े कवि श्री लेखनाथजी की ७१ वीं वर्ष गाँठ बड़े समारोह के साथ मनाई गई। इस उत्सव के समय कवि को एक रथ में बैठा कर एक जुलूस निकाला गया, जिसे वहीं के ७१ प्रसिद्ध लेखकों और कवियों ने खींचा। नैपाल के प्रधान मन्त्री श्री कोयराला ने कवि को इस अवसर पर राज्य की ओर से पाँच हजार की एक थैली भेंट की।

कलकत्ते का मारवाड़ी समाज हिन्दी के राष्ट्रकवि डॉ० मैथिलीशरण गुप्त का उनकी ७० वीं वर्ष गाँठ पर सम्मान करना चाहता है। उन्हें समर्पण करने के लिए एक अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार किया जा रहा है जो एक हजार पृष्ठ का होगा। इसकी रूपरेखा से विदित होता है कि यह ग्रन्थ कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण होगा। इसका सम्पादन कई विद्वान् मिलकर कर रहे हैं। प्रधान सम्पादक डॉ० बासुदेवशरण अग्रवाल हैं। यह उत्सव भी भव्य होगा।

हिन्दी के एक कवि तथा लेखक डॉ० सुधीन्द्र का विगत जून में अल्प आयु में ही देहान्त हो गया। डॉ० सुधीन्द्र ने इस छोटी आयु में ही हिन्दी की बड़ी सेवा की थी। उनकी सेवाओं की सराहना करते हुए राजस्थान सरकार के मुख्य मन्त्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया ने जयपुर में हिन्दी परिषद् के अधिवेशन में यह घोषणा की कि वे सरकार की ओर से डॉ० सुधीन्द्र के सम्मानार्थ उनकी पत्नी को पाँच हजार रुपये भेंट करेंगे—इस समाचार को पढ़ कर हमारे एक मित्र ने बड़े सन्तोष के साथ कहा कि यदि कवि और लेखकों को इस प्रकार का सम्मान और उनके पश्चात् उनके परिवार वालों को आश्रय मिलने लगे तो कवि और लेखक निश्चिन्त भाव से साहित्य की अर्चना करें।

डॉ० सुधीन्द्र का परिवार साधन हीन और प्रायः निराश्रित है। हमारा सुझाव है कि राजस्थान सरकार की तरह अजमेर और उत्तर प्रदेश की सरकारें भी उन्हें कुछ सहारा देने की उदारता दिखायें। केन्द्रीय सरकार का ध्यान तो हमने तभी इस ओर दिलाया था, प[illegible] वहाँ से अभी तक कुछ हुआ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बङ्गाली नेता और हिन्दी—

पण्डित अमरनाथ झा ने प्रयाग विश्वविद्यालय के गङ्गानाथ झा छात्रावास में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र का अनावरण करते हुए कहा कि—"१०० वर्ष पूर्व जब कोई हिन्दी के प्रचार की बात नहीं करते थे, तब बंगाल के बङ्गाली नेता राजा राममोहनराय, पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्री बंकिमचन्द्र, श्री केशवचन्द्रसेन और श्री शारदाचन्द्र मित्तर ने यह आन्दोलन किया था कि हिन्दी ही जनता की भाषा हो सकती है। श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भी हिन्दी का समर्थन किया था और शान्ति निकेतन में हिन्दी भवन की स्थापना भी की थी जिससे प्रमाणित होता है कि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को हिन्दी से कितना प्रेम था।" आशा है कि बङ्गाल का शिक्षित वर्ग अपने नेताओं का अनुकरण कर हिन्दी के प्रचार में योग देगा और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता को दृढ़तर बनायेगा।

रेडियो नाटक—

अखिल भारतीय रेडियो द्वारा आयोजित रेडियो नाटक प्रतियोगिता में हिन्दी पुरस्कार प्राप्त करने वालों के नाम यह हैं—५०० रुपए का प्रथम पुरस्कार डॉ० लक्ष्मी नारायणलाल के "शरणागत" पर, ३०० रु० का दूसरा पुरस्कार श्री विनोद रस्तोगी के "अँधेरा फिसलन और पाँव" पर और १०० रु० का तीसरा पुरस्कार श्री दयाकृष्ण गर्दिश की 'तोपों की छाँव में' शीर्षक नाटकों पर दिया गया है। प्रतियोगिता के लिये २२६ हिन्दी नाटक आये थे। नाटकों के निर्णायक डॉ० नगेन्द्र और श्री भगवतीचरण वर्मा थे।

विद्यार्थी स्वावलम्बी बनें—

हमें खेद के साथ लिखना पड़ता है कि आज उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी मौलिक पुस्तकों के पढ़ने की अपेक्षा नोट्स और सारनियों पर अधिक निर्भर रहते हैं। वे चाहते हैं कि उनके अध्यापक लोग उनका ज्ञान-विस्तार न करें केवल उतना ही ज्ञान दें जो परीक्षा के लिए उपयोगी हो और जिसका वे परीक्षा-भवन में वमन कर दें। वे चाहते हैं कि प्रश्नों के उत्तर स्वयं न तैयार करें वरन् उनके अध्यापक ही उन्हें पका-पकाया और पचा-पचाया मानसिक भोजन दे दें। अध्यापकों पर इस प्रकार की निर्भरता विद्यार्थियों की ग्राहिका-बुद्धि को कम ही नहीं कर देगी वरन् नष्ट कर देगी। विद्यार्थियों को चाहिए कि वे स्वयं पुस्तकों को मौलिक रूप से पढ़ें, उनसे सम्बन्धित जितना ज्ञान प्राप्त हो सके करें और फिर स्वयं अपने नोट्स बनायें और सम्भावित प्रश्नों के उत्तर तैयार करें जिससे कि उत्तर लिखने का प्रथम अभ्यास परीक्षा-भवन में ही न हो और वे हर प्रकार के प्रश्न का उत्तर दे सकें। अब जब मातृभाषा के माध्यम से लिखने की छूट हो गई है तो वे इस छूट का पूरा-पूरा लाभ उठायें तथा साथ ही यह भी दिखलादें कि हिन्दी के माध्यम से भी उतने ही सम्पन्न और प्रौढ़ उत्तर दिये जा सकते हैं जितने कि अंग्रेजी के माध्यम से। यह बात पूर्वाभ्यास के बिना सिद्ध नहीं हो सकती है। विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति को शुद्ध और याथातथ्य बनाने में अध्यापकों का सहयोग वांछनीय है।

हिन्दी के तार—

हिन्दी भाषा के माध्यम से तार अब भेजे जा सकते हैं और उन तारों का प्रचार बढ़ भी रहा है किन्तु अभी तक इतना प्रचार नहीं हुआ है जितना होना चाहिए। इसके लिए अन्य श्रद्धाओं के अतिरिक्त सब से पहली आवश्यकता यह है कि मनीआर्डर आदि के फार्मों की भाँति तार के फार्म भी हिन्दी में हों, जिससे हिन्दी में लिखने वालों को हिन्दी में लिखने की प्रेरणा हो। मालूम नहीं सरकार इस छोटी सी बात के लिए क्यों विलम्ब कर रही है।

दूसरी बात यह कि हिन्दी के तार देने का प्रबन्ध कुछ सीमित घण्टों के लिए ही न हो वरन् कम से कम १२ घन्टे के लिए अवश्य हो। तीसरी बात यह है कि कुछ आवश्यक शब्द गढ़े जायँ जिनका प्रयोग सुविधा के साथ किया जा सके, जैसे तार से खबर देने के लिए अंग्रेजी में एक शब्द 'वायर' है वहाँ हिन्दी में कोई ऐसा शब्द नहीं है। ऐसे ही और भी बहुत-से शब्द हैं जिनके लिए सांकेतिक शब्दों की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक मूल्याङ्कनों के अभिनव आवर्त

श्री लक्ष्मीचन्द्र दीक्षित, एम० ए०

साहित्यिक कृतियों के मूल्यांकन के लिए निर्धारित अनेक नये पुराने मानदण्डों को सञ्चित करके हिन्दी-आलोचना प्रणाली को एक नये मौलिक दृष्टिकोण से सम्पन्न करने वाले आचार्य शुक्ल की आलोचनात्मक कृतियों में भविष्य की आलोचना-पद्धतियों को जन्म देने वाले अनेक बीज विद्यमान थे। आलोच्य वस्तु को लोक-हित के आलोक में परखने की वृत्ति ने कला का उपादेयता वाला अंग प्रमुख एवं महत्त्व पूर्ण बना दिया। आगे चलकर मार्क्सवादी आलोचना शैली में इसे फूलने फलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस वृत्ति ने आलोचक की 'कला के लिए कला' वाली सङ्कीर्ण पर्यवेक्षण शक्ति का समाहार करके, 'जीवन के लिए कला' को अधिक मान्य बना दिया। मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का सन्निवेश, ऐतिहासिक खोज तथा राजनीति और समाजशास्त्र के नूतन अनुबन्धों ने आलोचना जगत् में महान् परिवर्त्तन कर दिये। इसके फलस्वरूप जनता की वृत्तियों तथा कलाकार के भावों और विचारों में साम्य ढूँढ़ा जाने लगा। रचनाकार के युग और उसके रचनाकाल की परिस्थितियों का अध्ययन इस प्रणाली की अपनी विशेषता है, जिसका अच्छा सम्मान हुआ। इस प्रणाली का पूर्ण तथा शुद्ध आदर्शवादी दृष्टिकोण आगे चलकर ग्राह्य न हो सका। इस विषय में परवर्ती समालोचकों को उदार होना पड़ा। आगे चलकर, इस पद्धति में कुछ नये तत्त्वों का सन्निवेश करके शास्त्रीय आलोचना को भिन्न-भिन्न नये रूप प्रदान किये गये। शुक्लजी के निकट अनुवर्ती 'शुक्ल सम्प्रदाय' के प्रमुख श्री कृष्णशङ्कर शुक्ल तथा श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र आदि की आलोचनात्मक कृतियों में ही इस परिवर्त्तन के किञ्चित दर्शन होते हैं। वे शुक्लजी की अनुकृति मात्र नहीं हैं। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी की कृतियों में इस परिवर्तन के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

शुक्लजी की आलोचनाओं की अपेक्षा गम्भीरता (साधारण विद्वानों के लिए) एवं विद्वता (शास्त्रीयता) के प्रतिक्रिया-रूप में हिन्दी में छायावादी आलोचना प्रणाली का सूत्रपात हुआ। द्विवेदीयुग में लोग इससे अपरिचित थे। उसके अन्तिम चरण में केवल छायावादी कविता का स्वरूप बहुत कुछ स्थिर हो चला था। यद्यपि अधिक समय तक इस छायावादी आलोचना शैली का मान या प्रचार न रहा किन्तु अपनी विलक्षणताओं के कारण इसका यथेष्ट ऐतिहासिक महत्त्व है। इसमें बुद्धिवादी वृत्तियों की अपेक्षा भावुकता प्रवण वृत्तियों को अधिक प्रधानता दी गयी। पढ़ने पर ऐसी आलोचनाएँ काव्यवर्ग की प्रतीत होती हैं। नगेन्द्र जैसे छायावाद के प्रबल-पक्षपाती आलोचकों ने भी 'पल्लव की भूमिका' की असंतुलित कलात्मकता को दोष की ओर ही उन्मुख माना है। इस शैली में आलोच्य विषय एवं वस्तु गौण समझे गये और आलोचक की भाव प्रकाशन शैली स्वयं एक कला कृति का रूप पा गयी। यह पद्धति शास्त्रीय विधानों की दुरूहता एवं गहन अध्ययन द्वारा अर्जित ज्ञान से तटस्थ रही। आत्मभाव प्रकाशन के धुँधले चित्र खींचना ही इसके सामान्य आलोचकों का एकान्त उद्देश्य था। इसमें न भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करने अथवा नयी दिशा दिखलाने की क्षमता थी, और न काव्य-वस्तु अथवा भावधारा को स्पष्ट करने या उसकी विशेषताओं की परीक्षा की सूक्ष्म प्रवृत्ति। इन आलोचनाओं को सम्पूर्ण पढ़ जाने पर भी पाठक आलोच्य वस्तु के प्रति अपनी निश्चित धारणा बनाने में अक्षम ही रहता था। व्यंग, हास्य जैसे अनुरञ्जनकारी गुणों से वह अछूती रही। भावुकता की प्रधानता इसे मधुर अवश्य बनाये रही किन्तु आलोचना के मुख्य उद्देश्य को पूर्ण करने में वह सफल न हो सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० नगेन्द्र, डा० रामकुमार वर्मा आदि की रचनाएँ इस कोटि में नहीं आतीं। उनमें बुद्धि और भावुकता का अच्छा सन्तुलन है। फिर भी कहीं-कहीं पर भावुकता तथा कलात्मकता एक-आध जगह पर जोर मारती दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए हम 'विचार और अनुभूति' पुस्तिका के प्रेमचन्द के एक उपन्यास और कालिदास की नारी भावना के मूल्य-निर्णय वाले प्रहसन के कलेवर में वेष्टित—प्रसङ्गों को ले सकते हैं। प्रहसन के रूप में आलोचना के प्रस्तुतीकरण की विवृत्ति छायावादी ही कहलायेगी। आलोचना की यह छायावादी दृष्टिकोण वाली प्रणाली गीतिकाव्य के अधिक निकट है। यहाँ पर आलोचक का निजी व्यक्तित्व है। वह समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

छायावादी कही जाने वाली शैली में तर्क (बुद्धिपक्ष) की नितान्त हीनता एवं साधारण जीवन से इतर निर्मित धरातल ने इसकी अनुपयोगिता सिद्ध करदी। इसके फलस्वरूप आलोचना क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, ठोस ऐतिहासिक, तथा सामाजिक भावनाओं एवं तर्क को स्थान दिया गया। यह शुद्ध वैज्ञानिक आलोचना प्रणाली थी। मनोविश्लेषण के सिद्धांतों की मान्यता एवं उपयोगिता के सम्बन्ध में बड़ा ऊहापोह हुआ। वैसे तो बाबू श्यामसुन्दरदास तथा शुक्लजी फ्रायड के मतों पर पहले से ही विचार कर चुके थे किंतु इलाचन्द्र जोशी, डा० नगेन्द्र, बाबू गुलाबराय आदि ने इस पर 'विवेचना', 'साहित्य की प्रेरणा' [विचार और अनुभूति में संग्रहीत] तथा साहित्य की मूल प्रेरणा' [सिद्धांत और अध्ययन में संग्रहीत] में नये सिरे से विचार किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे बहुत से आलोचक इस विषय की ओर उन्मुख हुए हैं। किन्तु इसे सर्व शक्ति सम्पन्न नहीं माना जा सकता। इस विषय में प्रसिद्ध विद्वान् Theodor Reik की प्रसिद्ध पुस्तक 'Thirty years with Freud' का निम्नलिखित अंश समीचीन प्रतीत होगा।

"Certain questions of artistic creation lie beyond the scope of psycho-analysis, others have as yet not been touched by the Science. ....But although both unconscious motives and the dynamics of poetic creation have to a large extent become accessible to our understanding, there still remains much that is cryptic" (प्रथम संस्करण १६४२, पृ० १७४)

वैज्ञानिक प्रतिष्ठा के आग्रह के कारण सामान्य जनता को यह नीरस मालूम होने लगी। कभी कभी तो देशी-विदेशी मनोवैज्ञानिकों के ग्रंथों के उद्धरणों की लड़ियाँ इसे बहुत बोझिल बना देती थी। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने इस प्रणाली में सांस्कृतिक चेतना का आधार, गहन चिंतन, मौलिक खोज एवं शोध तथा हास्य और व्यंग्य के सन्निवेश से एक अलग प्रणाली चलायी। इसमें नये तत्वों के आकलन के साथ ही साथ लोक प्रचलित प्राचीन भावनाओं को बड़ी विद्वत्ता एवं तार्किकता से पुष्ट किया गया। लोक-रीतियों तथा काव्य-रीतियों के सूक्ष्म अध्ययन द्वारा कुछ नये सिद्धांतों एवं धारणाओं को भी प्रचलित किया गया। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि शुक्ल सम्प्रदाय के तथाकथित पक्षपात वाले दोष को कम से कम स्थान दिया गया। किंतु शुद्ध वैज्ञानिक तटस्थता का ढोंग भी नहीं रचा गया। विश्लेषण के साथ ही साथ इसमें अनुभूति और निर्णय को भी उपयुक्त स्थान दिया गया। इसमें न तो आलोच्य कवियों व लेखकों को 'शिशालय के बालकों' की भाँति देखा गया है और न 'तू गौरव गिरि उतुंग काय' समझकर उनके सामने शीश ही झुका दिया गया है। अभिव्यक्ति की सचाई से यह अनुप्राणित है। यह साधारण जीवन की आलोचना शैली के बहुत ही निकट है और साथ ही कृत्रिमता से बहुत दूर। अतएव इसका बड़ा आदर और अनुसरण हुआ। घोर आदर्शवादी दृष्टिकोण का पल्ला छोड़ देने के कारण यह जनता में सहज ग्राह्य हुई। इसका मूल स्रोत भारतीय काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्म चित्रकला का रूप वैसा ही शक्तिशाली तथा विराट है जैसा काल्पनिक तथा सत्य रूप प्रलय का हो सकता है। प्रलय का रूप मनुष्य को भयानक लगता है पर वह सत्य है। प्रलय होता है। प्रलय के समय सारे संसार और ब्रह्माण्ड का सिद्धान्त रद्द हो जाता है जो न होना चाहिये वही होता है। वह कौन सी शक्ति है जो कि प्रकृति के नियमों में उलट फेर कर देती है। भारतीय धर्म के अनुसार यह शिव का तांडव है। शिव का तांडव कला की स्वर्गीय कृति है और कहा जाता है कि यह नृत्य या कला की कृति, संसार का संहार करने के लिए नहीं वरन् पुनः करने के निमित्त होता है। सृष्टि का आधार प्रलय या विध्वंस है। इसी प्रकार जब चित्रकला तथा अन्य कलाओं का समाज अनादर करता है तो एक कला अपना वह रूप धारण कर लेती है जिससे प्रलय तथा विध्वंस और भी पास आ जाता है। कला सभी सिद्धान्तों से विमुख होकर स्वच्छन्द तथा सूक्ष्म हो जाती है और तभी उसमें प्रलय की शक्ति आ जाती है। ऐसी कला का बहुत महत्त्व है। एक कलाकार मिट्टी की प्रतिमा बनाना चाहता है तो वह भीगी मिट्टी लेकर अपनी कल्पना का साकार रूप उस मिट्टी में देखना चाहता है परन्तु कभी-कभी लाख प्रयत्न करने पर भी तथा आवश्यक सिद्धान्त पर चलने पर भी कलाकर उस रूप की प्राप्ति नहीं कर पाता जिसकी कल्पना उसने की थी। पर कलाकार हार नहीं मानता, वह थोड़ी देर के लिये खिन्न होकर बनी हुई प्रतिमा को पटक देता है और उसको फिर मिट्टी का रूप दे देता है, विध्वंस करता है और पुनः उस मिट्टी को लेकर सावधानी के साथ अपनी काल्पनिक प्रतिमा निर्मित करता है। हर एक कलाकर इस प्रकार के विध्वंस या प्रलय का मूल्य जानता है और समय आने पर उसका उपयोग करता है।

आज चित्रकार यह जानता है कि उसकी कला का मूल्य समाज में कुछ नहीं पर उसे अपना कर्त्तव्य करना ही है। जिस प्रकार प्रकृति का कार्य नहीं रुकता उसी प्रकार कलाकार का कार्य रुकना नहीं जानता। वह रचना करता जाता है भले ही उसे उसका मूल्य न मिले और समाज उसकी कला का आदर न करे। जब तक समाज कला का आदर करता है तब तक कलाकार समाज का भी आदर करता है परन्तु जब समाज की बात पर पर्दा पड़ जाता है या पुतलियाँ ज्योतिहीन हो जाती हैं तो कला का सर्व प्रथम कार्य होता है उन बेकार पुतलियों को फोड़कर उनके स्थान पर नई पुतलियाँ बैठाना और पर्दे को काट कर पुनः उसे ज्योतिर्मय करना। आधुनिक कला ने जो सूक्ष्म रूप अपनाया है उसका कारण यही है कि वह एक बार समाज की आँखों को ज्योतिहीन करदे ताकि पुनः उसमें नई रोशनी आ सके। यह समय की पुकार है इसकी आवश्यकता है।

योरप में पिकासो इस सूक्ष्म कला का प्रवर्तक है और उसके हजारों अनुयायी हैं, और निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। योरप में सभी आधुनिक कलाकार सूक्ष्म चित्रण में भाग ले रहे हैं। भारत में भी इस कला का प्रचार हो रहा है। भारतीय चित्रकारों में श्री गगनेन्द्रनाथ टैगोर, राज्जु, श्री आर० एन० देव इत्यादि के सूक्ष्म चित्रों का काफी प्रचार है।

सूक्ष्म चित्रकला में कलाकार प्रकृति की रचना का रहस्य समझने का प्रयत्न करता है और उसी खोज की आधार पर, उसी से प्रेरणा लेकर स्वयं भी रचना करता है। प्रकृति में नाना प्रकार के रूप, आकार तथा वस्तुएँ पाई जाती हैं जो अगणित हैं। प्रकृति के जिन रूपों को तथा वस्तुओं को मनुष्य उपयोगी समझता है उसका नामकरण कर देता है किन्तु अभी करोड़ों ऐसे रूप तथा वस्तुएँ प्रकृति में बिखरी पड़ी हैं और निरन्तर नये-नये रूप बनते जा रहे हैं, जिनको न अभी मनुष्य जान सका है न कल्पना ही कर सका है। इसी प्रकार सूक्ष्म चित्रकार भी प्रकृति की भाँति सरल रचनात्मक प्रवृत्ति से प्रभावित होकर रचना करता है, नये-नये रूपों आकारों-तथा वस्तुओं का जिनको पहचाना नहीं जा सकता, उनका रूप सूक्ष्म तथा नया होता है। देखने

शेष पृष्ठ २४९ पर देखिए

1/3022

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रपत्ति मार्ग और कबीरदास

श्री बदरीनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०

प्रायः सभी उपलब्ध प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर कबीरदास का स्वामी रामानन्द का शिष्य होना सिद्ध होता है, किन्तु उन्होंने स्वामीजी के सम्पर्क में आकर क्या सीखा, वह कौन सी अपूर्णता थी जिसकी पूर्ति के लिए वे स्वामीजी की चरण-रज अभिलाषी हो गए थे ? वह कौन सी ज्ञान-रश्मि थी जिसका साक्षात्कार उन्हें स्वामीजी के सम्पर्क में आने पर ही हुआ और वह कौन सी तृप्ति थी जिसने उनकी समस्त ज्ञान-पिपासा को एक साथ ही शान्त कर दिया ? मन के अत्यन्त चञ्चल कल्पना-पङ्खों को सहसा गतिहीन कर दिया और स्वयं उनकी वाणी को भी मौन कर दिया—ये कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनका सन्तोषजनक उत्तर आज तक हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों को उपलब्ध नहीं हो सका है। जो कुछ भी उत्तर इस सम्बन्ध में उपलब्ध हुए हैं, वे प्रायः अनुमानाश्रित ही हैं। हृदय सहसा यह स्वीकार कर लेने को उद्यत नहीं हो पाता कि 'सतगुरु' ने जो राह दिखाई थी, उस पर बिना चले ही कबीर ने उसका परित्याग कर दिया। कबीर ने वैष्णव धर्म के कर्मकाण्ड की तीव्र आलोचना की है; मूर्तिपूजा और तत्सम्बन्धी समस्त क्रिया-कलाप की उन्होंने खुल कर निन्दा की है; वैष्णव धर्म के सगुण-ब्रह्म में उनकी रञ्च मात्र भी आस्था नहीं प्रतीत होती, फिर भी वे वैष्णव थे, वैष्णवों से उनका विशेष स्नेह-सम्बन्ध भी था, यह उन्हीं की रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है। अनेक पदों में उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि मेरे साथी केवल दो ही जन हैं—एक हैं वैष्णव और दूसरे हैं राम; इनमें एक तो राम का स्मरण करता है और दूसरा मुक्ति का दाता है। उनकी धारणा तो इस सम्बन्ध में उस सीमा तक पहुँच गई प्रतीत होती है कि उनके लिए वैष्णव चाण्डाल भी शाक्त ब्राह्मण की अपेक्षा कई गुणा अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। वस्तुतः कबीरदास की इन युक्तियों में ही नहीं, उनकी समस्त रचनाओं में वैष्णव-धर्म के प्रति उनकी आस्था के दृढ़तम प्रमाण मिल जाते हैं। यहाँ मैं उनकी भक्ति-पद्धति की विवेचना के आधार पर यह प्रतिपादित करने का प्रयास करूँगा कि कबीरदास वैष्णवों के प्रपत्तिमार्ग से तो बहुत ही अधिक प्रभावित थे, चाहे उनके मतवाद में शत-प्रति शत उनकी आस्था भले ही न रही हो।

प्रपत्ति का साधारण अर्थ है भगवान् की शरण में निश्छद्म प्रवेश। रामानन्द स्वामी के मत से मुमुक्षुओं का भगवान की शरण में चले जाना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि वे परम दयालु हैं, उन्हें न तो किसी प्रकार के क्रियाकलाप की ही आवश्यकता है और न ऊँच-नीच, धनी-निर्धन, कुल, बल, काल और अनावश्यक आडम्बरों की रंचमात्र अपेक्षा ही है।[1] जीव असहाय है, अतः बिना भगवान् की कृपा के वह संसार-सागर से पार नहीं हो सकता; अनन्त कर्म-प्रवाह के द्वारा इस संसार महासागर में चिरकाल से डूबते हुए अस्वतंत्र चेतन-जीव के ऊपर प्रभु की निर्हेतुक कृपा अवश्य ही उत्पन्न होती है, क्योंकि वस्तुतः कृपासिंधु, परम कीर्ति-सम्पन्न, अचिन्त्यवैभवागार भगवान् श्रीरामचन्द्र की अन्य के कष्ट के प्रति असहनशीलता को ही

१—प्राप्नुं परां सिद्धिमकिंचनो जनो,
द्विजातिरिच्छञ्छरणं हरिं व्रजेत्।
परं दयालुं स्वगुणानपेक्षित क्रिया,
कलापादिक जाति बन्धनम्॥
सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः
शक्ता अशक्ता अपि नित्यरंगिणः।
नापेक्ष्यते तत्र कुलं बलं चनो न चापि
कालो नहिं शुद्धितापि वा॥
—श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ विद्वानों ने 'दया' के नाम से अभिहित किया है'। वैष्णव भक्त इसी आत्म-विश्वास के साथ अपने आराध्य के चरणों में आत्म-समर्पण कर देता है और इस आत्म-समर्पण के उपरान्त वह निश्चिन्त होकर बैठ जाता है, उसे यह भी ज्ञात नहीं होता कि इस आत्म-समर्पण का उद्देश्य क्या है ? वह तो अपने समस्त शुभ कर्मों को उन्हें समर्पित कर देता है, उन्हीं का उच्छिष्ट भोजन पा लेता है और वीतभय होकर वह विमुक्तिवी अहर्निशि भगवान् का समाराधन करता रहता है। समाराधन का उद्देश्य समाराधन ही है, अर्चना का साध्य अर्चना ही है। पारिभाषिक शब्दावली में इसी निर्हेतुक अनन्य शरणागति को प्रपत्ति कहा गया है।

वैष्णव धर्माचार्यों ने प्रपत्ति के सामान्यतया छः भेद किए हैं—अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का परित्याग, रक्षण विषयक विश्वास, गोप्तृत्ववरण, आत्म-निक्षेप और कार्पण्य।[3] पुनः इस प्रपत्ति के कायिकी, वाचकी और मानसी आदि तीन भेद और स्वीकार किए गये हैं तथा गुणों (सत, रज, तम) के अनुसार इनमें से प्रत्येक के तीन-तीन भेद किए गये हैं।[4]

साष्टांग प्रणाम करना और शरीर पर भगवदायुधों का धारण करना कायिकी प्रपत्ति है, मन्त्रार्थ एवं तत्व को न जानते हुये भी गुरु के अधीन रह कर मन्त्रादि का उच्चारण करना वाचकी प्रपत्ति है और शारीरिक तथा वाचकी प्रपत्ति से युक्त होकर की जाने वाली प्रपत्ति मानसी प्रपत्ति कही जाती है। रामानन्द जी ने प्रपत्ति के सम्बन्ध में कोई शास्त्रीय विवेचन नहीं उपस्थित किया है और न उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया है कि भक्त आवश्यक रीति से उसके समस्त अङ्गों को सक्रिय व्यवहार का अङ्ग बनालें। उन्होंने भगवान से बड़े ही स्पष्ट शब्दों में याचना की है कि वे उन्हें प्रत्येक जन्म में अपने चरणों में अचल अनुराग और अपने जनों का सङ्ग प्रदान करें; उपायान्तर में स्वामी जी का एकमात्र भी विश्वास नहीं है, केवल लोक-संग्रह की ही दृष्टि से वे श्रुति-विहित कर्मों के आचरण में विश्वास रखते हैं; यदि संभव हो तो सम्पूर्ण स्वरूप के त्याग को भी वे विधेय मानते हैं, उनका यह दृढ़ विश्वास है कि अनन्त कर्मप्रवाह में पड़े हुये जीव के ऊपर प्रभु की निर्हेतुक कृपा दृष्टि अवश्य ही होगी और इसी विश्वास के साथ वे संसार सागर से पार उतर जाने के लिए भगवान् से प्रार्थना भी करते हैं। स्वामीजी ने आत्मनिक्षेप और कार्पण्य पर भी पर्याप्त बल दिया है।[5] किन्तु वे भक्ति को सीमित घेरे में बांध रखने के पक्षपाती नहीं थे, अतः उन्होंने यह स्पष्ट ही घोषित कर दिया था कि इस प्रपत्ति के आनुकूल्यादि अङ्गों में से किसी एक अङ्ग की यदि हानि भी हो जाय तो महात्माजन प्रपत्ति की न्यूनता नहीं मानते। और

२—कर्मप्रवाहेण तु चेतनस्य मग्नस्य संसारमहार्णवेचिरम्।
उपर्यहो संस्मृतोऽवशस्य सा कृपोद्भवत्येव होरहेतुका॥
दयान्यदुःखस्य निगद्यते बुधैरप्राकृतैस्तैरसहिष्णुतास्तुता
कृपामहाब्धेः समुदारकीर्तेः विष्णोरचिन्त्याखिलवैभवस्य॥
श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर, पृ० १५–१६

३—आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षयिष्यतीतिविश्वासो गोप्तृत्ववरणम् तथा॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधाशरणागतिः॥
पांचरात्र, लक्ष्मीतंत्रसंहिता॥

४—एषा च त्रिविधा ज्ञेया कारणत्रयभेदतः ?
गुणत्रय त्रिभेदादप्यैकैका त्रिविधा पुनः॥
भारद्वाजसंहिता।

५—त्वच्चरणाचलां भक्तिं त्वज्जनानां च संगमः।
देहि राम कृपासिन्धो मह्यम् जन्मनिजन्मति।
श्री वै० म० भा०, पृ० २५

अथोपायान्तराण्येव प्रवदन्ति मनीषिणः।
विरोधीनिप्रपत्तेः संबन्ध ज्ञानरूपिणः॥
लोक संग्रहणार्थं तु श्रुतिचोदितकर्मणां।
शेषभूतैरनुष्ठानं तत्कैंकर्यपरायणैः॥
धर्म त्यागोऽपि परमैकान्तिकैरुच्यते करैः।
इत्थं हि कर्मणां त्यागः स्वरूपस्याखिलस्य च॥
वही पृ० १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे बड़ी बात जो स्वामीजी ने इस सम्बन्ध में कही थी, वह यह कि ब्राह्मणादि उत्कृष्ट वर्णों को भी भगवज्जनों की सेवा करनी चाहिये और की गई प्रपत्ति का स्मरण करना चाहिये, क्योंकि मुमुक्षुजन उसी को प्रायश्चित्त कहते हैं ।[६] आगे चलकर स्वामी जी ने प्रपन्नों को भी दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया है । एक हैं दृप्त प्रपन्न जो स्वकर्मानुसार प्राप्त दुःख को शरीर-स्थिति पर्यन्त यहाँ ही भोगते हुए शरीर के अन्त में मोक्ष सिद्धि का निश्चय करके महाज्ञानवान् और अत्यन्त विश्वासयुक्त होकर रहते हैं, तथा दूसरे हैं आर्त्त प्रपन्न, जो संसाररूप बड़वानल को तत्क्षण ही न सहन करते हुए भगवत्प्राप्ति में अत्यन्त शीघ्रता चाहते हैं । स्वामी जी के मत से इस प्रपत्ति की पुरुषकारभूता हैं सीताजी । यह प्रपत्ति सर्व साध्य है और षोडशोपचार से भगद्विग्रह की पूजा करना ही प्रपत्ति में विषयनियुक्ति है । भक्त भगवान् के अर्चा, विभव, व्यूह, पर और अन्तर्यामी स्वरूप को क्रमशः प्राप्त करता है ।

संक्षेप में प्रपत्ति की यही शास्त्रीय विवेचना है । अब देखना यह है कि कबीरदास ने रामानन्दजी द्वारा प्रतिष्ठित प्रपत्ति को किस सीमा तक अपनी साधना का प्राण बना लिया था । यहाँ कुछ चुने हुए उदाहरण मात्र देकर मैं अपने मत की पुष्टि करूँगा, विषय का विशेष विस्तार से विवेचन करना प्रस्तुत निबन्ध की सीमा के बाहर की बात प्रतीत होती है ।

प्रपत्ति के छः प्रधान भेदों में सर्वप्रथम है अनुकूलता का सङ्कल्प । कबीर ने कहा है—"मन्दिर ढह जाता है, ईंटें गिर जाती हैं, उस तत्त्व से प्रीति क्यों नहीं करते जिससे दूसरी बार ढहने का अवसर ही नहीं आए । मेरा तो अहंभाव मिट गया है, ब्रह्म में मेरा पूरा विश्वास है, अब मेरे दूसरा और कोई नहीं है । हे राम, केवल तुम्हारी ही आशा मुझे है ?" मन को समझाते हुए कवि कहता है—"हे मन, अब तू डगमगाना छोड़ दे, सती और सूर कभी मरने से नहीं डरते हैं । यदि इस प्रेम-पथ पर आधा चल कर तू लौट आएगा तो संसार में तेरी बहुत हँसी होगी । केवल राम-नाम का उच्चारण करने वाले ही सच्चे हैं, अन्य सभी मैले । मैंने तो निश्चय कर लिया है कि ऊँचे-नीचे, गिरते-पड़ते भी राम का नाम कभी नहीं छोड़ूँगा"—

कबीर देवलि ढहि पड़्या ईंट भई सैंवार ।
करि चिजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यौं ढहै न दूजी बार ॥
क० ग्र० पृ० १२

मेर मिटी मुक्ता भया पाया ब्रह्मविसास ।
अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस ॥
वही पृ० ५६

डगमग छाँड़ि दे मन बौरा ।
अब तौ जरें बो बनि आवै लीन्हौं हाथ सिंधौरा ॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाँड़ौ ।
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न संचै भाँड़ौ ॥
वही पृ० १३०

प्रपत्ति का दूसरा अङ्ग है प्रतिकूलता का परित्याग । कबीर ने इस सम्बन्ध में ऐन्द्रजालिक विश्व को छोड़ देने का परामर्श दिया है । कनक-कामिनी और अहंकारयुक्त मन पर भी विजय प्राप्त करने की सलाह उन्होंने दी है । वे कहते हैं—

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल ।
दिन दस के व्यौहार कौ झूठे रंगि न भूल ॥
क० ग्र० पृ० ४०

पंखि विनंणा कापड़ा कदे सुरांग न होइ ।
कबीर त्यागा ग्यान करि कनक-कमिनी दोइ ॥
वही पृ० ६०

प्रपत्ति का तीसरा अङ्ग है रक्षण विषयक विश्वास । कबीरदास ने स्पष्ट कहा है—

६—तन्न्यासाङ्गानुकूल्यादिष्वन्यतमस्य महात्मभिः ।
शेषवृत्तिपरैर्दानौ प्रपत्तिन्यूनता नहि ॥
उत्कृष्टवर्णैरपिवैष्णवैर्जनैः निकृष्णवर्णः स तदीय सेवने ।
तथानुसर्तव्य इतीष्यते बुधैः शास्त्रैर्विधेयेविधिगोचरैःपरैः ।
कृतप्रपत्ति स्मरणं प्रायश्चित्तमथोच्यते ॥
श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च्यन्ता न कर अच्यन्त रहु साँईं है सम्रथ।
पसु पंखेरू जीव जंत तिनकी गाडि किसा ग्रंथ॥
क० ग्र० पृ० ५८

राम नाम सूं दिल मिलीं, जन हम पड़ी विराइ।
मोहिं भरोसा इष्ट का बन्दा नरकि न जाइ॥
वही पृ० ५८

कबीर तूं काहे डरै सिर पर हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहिं डोलियै कूकर भुसैं जु लाख॥
वही पृ० ५८

इसी प्रकार के अनेक पदों से यह स्पष्ट है कि कबीरदास को यह दृढ़ विश्वास था कि भगवान् उनकी रक्षा अवश्य करेंगे। इसी विश्वास-वश काशी छोड़ कर उन्होंने मगहर जाकर प्राणत्याग किया।

गोप्तृत्ववरण अर्थात् संसार-सागर से भगवान् से तारने की प्रार्थना करना, प्रपत्ति का चौथा अङ्ग है। अन्य सभी वैष्णव भक्तों की भाँति कबीर भी कहते हैं—

निगम जाकी साखि बोलैं, कहैं सन्त सुजान।
जन कबीर तेरी सरन आयौ, राखि लेहु भगवान्॥
क० ग्र० पृ० १९०

अन्यत्र भी उन्होंने इस प्रकार की अनेक उक्तियाँ कही हैं।

आत्म-निक्षेप अर्थात् अपने शरीर एवं उसके समस्त सम्बन्धों को भगवद्-अर्पण कर देना प्रपत्ति का पाँचवाँ अङ्ग है। कबीर ने कितनी कातरता भरी वाणी में कहा है—

है हरिजन थैं चूक परी,
जे कछु आहि तुम्हारो हरी।
मोर-तोर जब लगि मैं कीन्हा,
तब लग आस बहुत दुख दीन्हा॥
सिध-साधिक कहैं हम सिधि पाई,
राम नांम बिन सबै गंवाई॥
जे वैरागी आस पियासी,
तिनकी माया कहे न नासी॥

कहै कबीर मैं दास तुम्हारा।
माया खण्डन करहु हमारा॥
वही पृ० १३५

निगम जाकी साखि बोलैं कहैं सन्त सुजान।
जन कबीर तेरी सरन आयौ, राखि लेउ भगवान॥
वही पृ० १९०

मेर मिटी मुकता भया पाया ब्रह्म गियान।
अब मेरे दूजा को नहीं एक तुम्हारी आन॥
वही पृ० ५९

प्रपत्ति का अन्तिम अङ्ग है कार्पण्य—अपने को दीन-हीन एवं मलीन समझ कर भगवान् को आत्म-समर्पण कर उनसे अपने को अपना लेने की प्रार्थना करना। कबीर की वाणी में यह कातरता सर्वत्र ही भरी-पड़ी है—

कहा करौं कैसे तरौं, भौजल अति भारी।
तुम्ह शरणागति के सवा, राखि-राखि मुरारी॥
वही पृ० १४८

माधौ मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहिं साधी॥
पर-निन्दा, पर-धन, पर-दारा, पर-अपवादैं सूरा।
तार्थैं आवागमन होइ फुनि-फुनि तापर सङ्ग न चूरा॥
काम क्रोध माया मद मंछर ए सन्तति हम माहीं।
दया धरम ग्यान गुर सेवा ए प्रभू सुपिनैं नाहीं॥
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करहु हमारी॥
क० ग्र० पृ० १५३

कबीरदास मानसी प्रपत्ति के विश्वासी साधक थे। उन्हें कायिकी प्रपत्ति में रंचमात्र भी विश्वास नहीं था। माला-तिलक, कंठी के वे पक्के विरोधी थे; वाचकी प्रपत्ति में उनकी आस्था नहीं थी, क्योंकि वे राम-मन्त्र के अर्थ को भली भाँति जानते थे। इसी प्रकार उन्हें सात्विकी प्रपत्ति की ही साधना प्राप्त थी, तामसी और राजसी प्रपत्ति की तो उन्होंने खुलकर निन्दा की है।

कबीर दृप्त प्रपन्न नहीं थे। उन्हें यह विश्वास तो था ही कि मरें चाहे वे काशी या मगहर में, मोक्ष—राम की प्राप्ति या आत्म-साक्षात्कार—उन्हें मिलकर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा। और इसी विश्वासयुक्त वाणी से वे कहा करते थे 'जौ काशी तन तजै कबीर, तो रामहि कौन निहोर।' फिर भी उनकी वाणी में बड़ी कातरता है—

कहा करौं कैसे तरौं भौजलि अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा राखिराखि मुरारी॥

कबीरदास ने सीताजी को पुरुषकार स्वरूपा स्वीकार नहीं किया है। अर्चावतार की उपासना में उनका विश्वास नहीं है। वे तो उस आरती में विश्वास रखते हैं, जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै,
तेज पुञ्ज तहाँ प्रान उतारै।
पाती पञ्च पुहुप करि पूजा,
देव निरञ्जन और न दूजा।
तन-मन सीस समरपन कीन्हा,
प्रगट जोति तहाँ आतम लीन्हा।
दीपक ग्यान सबद धुनि घण्टा,
परम पुरिख तहाँ देव अनन्ता।
परम प्रकास सकल उजियारा,
कहैं कबीर मैं दास तुम्हारा।
क० ग्र० पृ० २२२

फिर भी रामानन्दजी की ही भाँति कबीरदास ने भक्ति के क्षेत्र में किसी भी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं किया था। ब्राह्मण जगत् का गुरु हो कर भी वैष्णवों का गुरु नहीं है :—

नहीं को ऊँचा, नहीं को नीचा,
जग ताही का सींचा।
कहै कबीर मधिम नहीं कोई,
सो मधिम जा मुखि राम न होई।

ब्राह्मण गुरु है जगत का, भगतन का गुरु नाहिं।
अरुझि उरझि कै पच मुवा, चारहु वेदहु माहिं॥

इस प्रकार ऊपर की अत्यन्त ही संक्षिप्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीरदास ने रामानन्दजी की प्रपत्ति-सम्बन्धी विचारधारा से अपनी चेतना को रस-प्लावित सा कर लिया था। उनके ये वैष्णवी उद्गार निश्चय ही उनके अन्तस्तल के पवित्र उत्स हैं, जो देश-काल की चट्टान को तोड़ कर निर्झर की भाँति फूट पड़े हैं। गुरु ने यही रस देकर इस जुलाहे को नीरस 'जोगिय' होने से बचा लिया था।

(पृष्ठ २५९ का शेषांश)

आदर्श इनमें इतने जागरूक हैं कि प्रत्येक पति राम प्रत्येक पिता दशरथ, प्रत्येक श्वसुराल जनकपुरी बन जाती है। इतना होते देर नहीं लगती।

राष्ट्रीयता—इतना ही नहीं लोक-साहित्य में हमारी राजनैतिक प्रगति का भी उल्लेख रहा है। जीवन के इतना निकट रहने वाला साहित्य भला राजनैतिक उथल-पुथल से दूर रहे यह कभी किसी रूप में सम्भव हो सकता है। प्रस्तुत गीत खण्ड में एक भाई स्वराज्य के लिए जेल गया है, उसकी बहन भाभी से कहती है—

दुखवा क मारल ननदिया
भउजिया से बातं करै हो
बीरन भैया गइलेन जेल की
कोठरिया सुरजवा के कारण हो
आगे आगे गइलेन पण्डित
जवाहिरलाल पीछे पीछे भइअउ हो
ओनके गरओ में बान्दल रसरिया
सुरजवा के कारण हो
धीर धरा धीर धरा ए भउजी,
भैया अइहैं हो
'बइदौ' क सुनिहैं लचरिऔ
सुरजवा के कारण हो।

इस प्रकार हमने देखा कि सर्व प्रकारेण जनता के साथ चलने वाला यह साहित्य है जो आज तक उपेक्षित है। कुछ कथाओं का सम्पादन अवश्य किया गया है परन्तु वह इसकी महानता के सामने कुछ नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-साहित्य

श्री अमर बहादुरसिंह 'अमर' जौनपुरी, बी० ए०, साहित्य-रत्न

वह सृष्टि का आदिकाल था। धीरे-धीरे जल-प्लावन समाप्त हो रहा था। जल-राशि के बीच पृथ्वी रेती-खण्ड की भाँति दृष्टिगत होने लगी थी। आदि मानव मनु ने नील पारावार का अत्यन्त उर्मिल हृदय देखा। उनका अतीत उन्हें कष्ट देने लगा। नव पृथ्वी पर श्यामल बनस्पतियाँ अंकुरित हो आईं जिन्हें देख कर मनु के हृदय में जिज्ञासा और उत्सुकता पैदा हुई। हृदय की भावना को वाणी देकर वे किसी को श्रवण कराना चाहते थे। नील जल राशि से उर्मिल हृदय में, नवल धरिणी से हरित एवं अंकुरित सृष्टि खण्ड में एक विचार आन्दोलित हुआ। परिणाम स्वरूप उन्हें एक सहधर्मिणी, एक जीवन सङ्गी और एक साथी मिला। उस समय भी मनु जब श्रद्धा को एकान्त में छोड़ मृगया को चले जाते थे तो श्रद्धा तकली चलाती थी और तकली पर गाती थी गीत। यहीं से, सृष्टि के इसी आदिकाल में ही आदि-मानव ने अपनी हृदय-गत भावनाओं को गुनगुनाया और यहीं से साहित्य और लोक साहित्य दोनों का जन्म हुआ। परन्तु सभ्यता की कसौटी पर खरा उतर कर एक लिखित हो गया तथा दूसरा मौखिक। आज हम उसी को साहित्य कहते हैं जो लिखित है मौखिक को नहीं।

जब मनुष्य को सभ्यता का यह प्रकाश-पुञ्ज नहीं दिखाई पड़ा था, तब प्रस्तर से वह अग्नि का आविर्भाव करता था, जब वृक्षों के पत्ते और खाल ही उसके समस्त परिधान थे, उस समय भी उसने किसी शैल खण्ड पर टकराते निर्झर को देखा होगा, गिरि-गुहाओं में उसने हरित वृक्षावलियों को निरखा होगा। पावस की प्रथम मनुहार में उमड़ती हुई घटाओं ने बरबस उसके हृदय में एक आह्लाद भर दिया होगा और वह आनन्द विभोर होकर गा उठा होगा। उसका स्वर और सङ्गीत वातावरण के किसी कोने में विलीन होगया होगा परन्तु उसकी चालित परम्परा आज सभ्यता इस महान युग में भी किसी न किसी रूप में विद्यम हैं। वह जन मन का सहारा है। उसका विकास तब त अवश्यम्भावी है जब तक सृष्टि है, सृष्टि में ग्राम और ग्रामों में ग्रामीण।

सांस्कृतिक महत्त्व—किसी भी देश की संस्कृ वहाँ के लोक-साहित्य में अक्षुण्ण रूप में सुरक्षित र है। समय की द्रुतिगामिता के साथ सभ्यता के च भी आगे बढ़ते ही जाते हैं परन्तु संस्कार इतनी शी से नहीं बदलते, उनके परिवर्तन के लिए सभ्यत प्रौढ़ एवं स्वस्थ प रवर्तन की आवश्यकता होती इस लोक साहित्य का कोई लिखित रूप नहीं है सर्वथा मौखिक रहा है। यह परम्परागत साहित जिसे हमने अपने पूर्वजों से अपनाया है। यह पर जीवित रहने वाला साहित्य है, इस पर परम का अधिकतम प्रभाव है। यह शताब्दियों से जन- रण के मनोभावों का आकर्षण करता रहा है। प्रसार ग्राम-ग्राम, गृह-गृह और व्यक्ति-व्यक्ति त वह जनता का साहित्य है जिसमें ग्राम के जीव इतना सच्चा, इतना महान और इतना पवित्र खींचा गया है। यह आदर्शों में उज्ज्वल चन्द्र भाँति है जिसमें शीतलता है, हृदय को आह्लादि की क्षमता है और जीवन को स्पष्ट करने की साम इस लोक साहित्य पर युग का प्रभाव उतना जितना परम्परा का है क्योंकि वह पावन गं की तरल तरङ्गों की भाँति युग-युग से तरङ्गि और रहेगा। सांस्कृतिक महत्त्व इसकी स विशेषता है। हमारे जीवन के प्राचीनतम एवं आदर्श इसमें अपनी प्राञ्जलता, उज्ज्वलता ए के साथ वर्तमान है। इस लोक साहित्य नायक राम है, प्रत्येक नायिका सीता, कित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श है, कितनी विराट् कल्पना और कितना सात्विक विचार। यही हमारी संस्कृति है जिससे हम पाश्चात्य प्रस्तरों का चश्मा लगा कर दूर होने की चेष्टा कर रहे हैं। दुख है कि अपनी सफेद-पोशी में हम इतना बढ़ गए हैं कि अपने ग्रामीण भाइयों के साथ बैठने में भी सङ्कोच करते हैं उनकी वाणी सुनने में घृणा करते हैं और तभी तो जब सुनते हैं—

कबहुँ बिरिछ तर भीजत होइ हैं
राम लखन दोउ भाई
आजु मोरे राम की सुधि आई।

तो हमारा हृदय आनन्दित नहीं होता। इस लोक-साहित्य का सांस्कृतिक महत्त्व बड़ा ही ऊँचा है। इस [में] हमारी परम्पराएँ और उनका प्रभाव तथा हमारी [आ]दि युग से लेकर आज तक की मनोवृत्तियाँ अक्षुण्ण [रू]प में सञ्चित हैं। प्रस्तुत सांस्कृतिक महत्त्व के भीतर [ह]म देखते हैं कि धर्म, समाज, देश-काल और व्यक्ति [स]बका वर्णन है। हमारे धार्मिक सामाजिक सभी [प्र]कार के अवसरों एवं कार्यों पर लोक-साहित्य है। [इ]समें समय की झङ्कार है, व्यक्ति की पुकार है, समाज [का] सुधार है और धर्म की मनुहार है। इसमें हमारा [जी]वन-दर्शन है जो वास्तव में जीवन-दर्शन है। इसमें [हमा]रे आदर्श हैं जो परम्परा से हमारे हैं।

प्रस्तुत लोक-साहित्य तरल साहित्य है। इसका [सम]स्त भाग और सम्पूर्ण रूप जन जन की वाणी पर [ठह]रा हुआ है, इसको लिखने की चिन्ता ही नहीं की [गई]। इसमें समय पर विभिन्न व्यक्तियों का प्रभाव [पड़]ता गया है। लोक साहित्य की अपनी यह विशिष्टता [है कि] मौखिक होते हुए भी आज तक यह अपना रूप [बनाए] है। लोगों ने अपनी सुविधानुसार इसमें [परिव]र्तन, परिवर्द्धन एवं परिशोधन कर लिया है। [जन]न की रुचि के अनुसार उनकी भाषा बदलती [क्]योंकि भाषा का रूप तो कभी स्थिर नहीं रहता, [स]दैव प्रगति-पंथ का पथिक है, वह सदैव विकासो-[न्मुख] है। आप देखें कि हमारे देश का कतिपय सन्त [साहित्]य इसी मौखिक परम्परा से सम्बद्ध है जिसकी भाषा में समयानुसार परिमार्जन होता गया है। कबीर की कविता प्रारम्भ में इस रूप में न रही होगी। उन्होंने तो केवल उपदेश के रूप में मौन के विशिष्ट क्षणों में अपनी बानियों को कहा था जो समय की धारा के साथ प्रवहमान रहीं और कालान्तर में उनके शिष्यों ने उसे लिपिबद्ध किया। इस प्रकार उसका बहुत-कुछ रूप परिमार्जित होगया, इसकी भाषा परिष्कृत होगई। यह मौखिकता यही दोष बन जाती है जिससे इन गीतों की या इस साहित्य की भाषा का रूप स्थिर नहीं किया जा सकता। इसका एक उदाहरण आप देखें कि कबीर साहित्य के प्राप्त सभी संस्करणों में भाषा का रूप एकसा नहीं है।

रचना-काल तथा रचना-कवि—कभी हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि अमुक रचना अमुक कवि ने अमुक समय में की। कारण स्पष्ट है, न तो कवियों ने अपने नाम दिये हैं और न लिपिबद्ध रूप ही। इससे असुविधा यह होती है कि इनका एक क्रमिक इतिहास नहीं प्रस्तुत किया जा सकता और न उन गीतकारों, गाथाकारों तथा साहित्यकारों की महत्ता का अनुमान किया जा सकता है। उन लेखकों को न तो इतना मोह था कि वे अपना नाम अमर बनाएँ और न इतना भय था कि कोई उनकी कविता को अपना लेगा। उन्हें तो जन-मन में एक बात पैठानी थी, उन्हें तो साहित्य का संवर्द्धन करना था, उन्हें तो अपने लोक-साहित्य को समुन्नत बनाना था, उन्होंने इसीलिए अपने नाम की कुछ चिन्ता ही नहीं कि। कुछ तो इतने उदार थे कि कबीर और मीरा के समक्ष आत्म-समर्पण कर गए और 'कहें कबीर सुनों भाई साधो' और 'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर' कह कर अपनी जान बचा ली। पर जो भी हो इन रचनाकारों ने हमारे जीवन को निकट से देखा उसे परखा और तब उससे प्राप्त प्रभावों को आने वाली (पीढ़ी) सन्तति के हाथों में सौंपा। कितना महान् है उनका आदर्श, कितने महान् थे वे रचनाकार, उनके कतिपय गीतों को सुन कर तो कलम चूमने की इच्छा हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथावस्तु—इन गीतों की कथावस्तु विभिन्न प्रकार की है। कुछ तो देवी-देवताओं की स्तुति में हैं, कुछ उत्सवों पर गाये जाने वाले हैं, कुछ में प्रकृति का वर्णन है जिसमें विशेष कर बारहमासे का वर्णन है और कुछ में आत्म-निवेदन है। देवी-देवता हमारे ग्राम्य जीवन में बहुत ही महत्व रखते हैं। प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा लगाना, उसके नीचे दिया जलाना हमारे ग्राम्य-जीवन की एक विशेष क्रिया है। उसी प्रकार गंगा मैया, गौरी पूजन, ग्राम्य देवता पूजन आदि का महत्व भी कम नहीं है। नीचे एक गीत-खण्ड उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा है। गीत भोज-पुरी में है, जिसमें एक ग्राम-युवती गङ्गा मैया की स्तुति कर रही है। उसके पति ने ब्याह के बाद झाँका तक नहीं है, वह गौने जाने का उपक्रम कर रही है, उसकी चुँदरी मैली हो गई है, आभूषण नहीं हैं वह पूर्ण यौवना है :—

सासुर कयुनरी मोर नैहर घुमिल गई
का लेइके जैबै गवनवाँ।
नाहीं बाँटै रुपया पैसा नाहीं बा गहनवाँ
सैयाँ के देवै खातिर बाँटै मोर जोवनवाँ।
× × ×
हे गंगा माई तो हैं दियरी चढ़इबै।
जो सैयाँ लेइ जैहैं गवनवाँ।

इसी प्रकार तुलसी पूजा के गीत तथा अन्य देवी देवताओं की पूजा के गीत भी हमारे लोक-साहित्य में प्रचलित हैं। कुछ उत्सवों अथवा पर्वों पर गाए जाने वाले गीत होते हैं। इस प्रकार के गीत त्योंहारों और जातियों के अनुसार भी होते हैं। कजली-औरतों का एक सुन्दर त्यौहार है। नीचे कजली की कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं :—

अरे रामा सावन चढ़ा ललकार,
पिया घर नाहीं आए री।
नित उठि चितवैं बारी धनियाँ,
दिया घर नाहीं रेहरी॥

ऐसे ही होली दिवाली आदि अवसरों पर भी गीत गाए जाते हैं जो अत्यन्त रोचक आकर्षक और आनन्ददायी होते हैं जिनसे आह्लादित होकर कभी कभी गायक स्वयं नृत्य भी करने लग जाया करते हैं। हमारे ग्राम्य-जीवन में बारह मासे का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है परन्तु दुःख है कि हम उनसे कोसों दूर हैं। राम बन गए हैं। अयोध्या वीरान हो गई है। राम चौदह वर्षों तक बन में रहेंगे। माता कौशल्या ने एक बारह मासे में अपना दुख-वर्णन करके उनकी स्थिति की कल्पना की है। ग्रीष्म की तप्त धरित्री में जब आकुल मन-प्राण छाया की खोज करते हैं, पावस की रिमझिम बरसात में जब तटिनी अपना यौवन-प्रसार करती है, शरद की हिम धवलित चन्द्रिका जब अग-जग में छा जाती है, हेमन्त का तुषार कण जब पङ्कज को जला देता है, शिशिर का शीत जब अपने भय से दिनमान भी संकुचित कर देता है, पतझड़ में जब वृक्ष पत्र-विहीन हो कंकाल मात्र रह जाते हैं और बसन्त में जब सूखी नसें भी रस मग्न हो जाती हैं, आम्र मञ्जरियों की भीनी भीनी सुगन्ध चतुर्दिक व्याप्त हो जाती है—इन समयों में तब राम लक्ष्मण और सीता कहाँ किस रूप में होंगे यही इस बारह मासे में कहने का सफल प्रयास कवि ने कौशल्याजी के माध्यम से किया है। कुछ गीतों में आत्म-निवेदन है, कुछ स्वतः कथन है।

आदर्श—इन लोक गीतों में विश्व बन्धुत्व की कितनी महान् भावना है। इनमें समस्त प्राणी अपने हैं, इनकी समस्त भावना अपनी है। इन गीतों के नायक तथा नायिका वृक्षों से, लताओं से तथा पक्षियों से सबसे सन्देश कहते हैं। वही परम्परा प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रचलित रही जहाँ नागमती भँवरे और कौवे से भी सन्देशा कहलवाती है—

पिय से कह्यो सँदेशड़ा, हे भँवरा हे काग।
सो धन विरहै जरि मुई, तेहिक धुआँ मोहिंलाग॥

इन ग्रामीणों के देवी-देवता भी इन्हीं के समान सरल और भोले हैं, जहाँ पग-पग पर गौरा मैया, कालीदेवी आदि सहायता के लिए आ जाती हैं।

(शेष पृष्ठ २५६ पर देखिये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश और हिन्दी

श्री रामप्रसन्नसिंह, एम० ए०

हिन्दी भाषा के क्रमिक विकास को ढूँढ़ने के लिये हमें अपभ्रंश के नाम से अभिहित साहित्य की ओर जाना पड़ता है। यद्यपि आज भी यह विवाद का विषय है कि अपभ्रंश शब्द का तात्पर्य क्या है फिर भी अपभ्रंश के नाम पर हेमचन्द्र आदि सिद्ध तथा जैन कवियों की कृतियों को निस्सन्देह अपनाया जा रहा है।

विद्वानों ने अपनी अन्वेषक प्रवृत्ति के सतत् प्रयास के फलस्वरूप अपभ्रंश का प्राचीनतम उल्लेख पातञ्जल महाभाष्य में प्राप्त किया है। महामुनि ने शब्द और अपशब्द का विचार करते हुये अपभ्रंश का प्रयोग किया है—"भूयांसोऽपशब्दाः, अल्पीयासः शब्द इति। एकैकस्यहि शब्दस्य वहवोपभ्रंशाः……"

(अपशब्द बहुत से हैं और शब्द थोड़े हैं। एक-एक शब्द के बहुत से अपभ्रंश हैं।)

इससे स्पष्ट है कि पतञ्जलि ने अपभ्रंश शब्द से किसी भाषा की ओर उल्लेख नहीं किया है। एक वैयाकरण की दृष्टि से उन्होंने शब्दों के असाधु प्रयोग को ही अपभ्रंश के नाम से अभिहित किया। महाभाष्य के इस अपभ्रंश शब्द का अर्थ अपाणिनीय प्रयोग ही होता है। दण्डी ने इसे अपने काव्यादर्श में अत्यन्त स्पष्ट करते हुए लिखा है कि शास्त्र में संस्कृतेतर शब्द को अपभ्रंश कहते हैं। "ई० पू० द्वितीय शताब्दी के मध्य में अपने व्याकरण महाभाष्य को लिखते समय पतञ्जलि ने जिसे अपभ्रंश कहा है, उससे उनका अभिप्राय पाणिनीय संस्कृत से भिन्न तत्कालीन बोलचाल की भाषा से था जो प्राकृत की पूर्वजा पाली ही हो सकती थी। लेकिन आज जिस भाषा को अपभ्रंश नाम दिया गया है वह उसकी पुत्री नहीं, पौत्री है जिसमें सिद्धों ने अपनी कविताएँ कीं।+

भाषा वैज्ञानिकों ने भरत के "नाट्यसूत्र" के इस अंश पर विचार करते हुए अपभ्रंश का सम्बन्ध आभीरों की भाषा से बतलाया है :—

हिमवत्सिन्धु सौवीरान्ये च देशाः समाश्रिताः
उकार बहुलां तज्ज्ञस्तेषु भाषां प्रयोजयेत।

आभीरों की भाषा को उकार बहुला पाकर ही उसे अपभ्रंश मान लिया गया है। लेकिन उस समय की अन्य भाषाओं में भी उकारान्त की यह विशेषता लक्षित होती है। ऐसी अवस्था में यह कहना मुश्किल हो जाता है कि अपभ्रंश का सम्बन्ध आभीरों की भाषा तक ही कैसे सीमित किया जाय। अतः 'उकारन्त' की विशेषता के आधार पर ही अपभ्रंश का निर्णय करना व्यापक दृष्टिकोण नहीं समझा जा सकता। आभीरों की भाषा में अपभ्रंश की कुछ विशेषताएँ मिलती हों, यह एकदम दूसरी बात है।×

पीछे चलकर ११ वीं शती में यह शिष्ट समुदाय की भाषा के रूप में गृहीत हुई। संस्कृत के रुद्रत आदि आलंकारिकों तथा प्राकृत के वैयाकरणों ने इसे परिनिष्ठित अपभ्रंश के रुप में ग्रहण किया। पीछे चलकर अपभ्रंश के कई रूप हो गये जिनमें से नागर, उपनागर, व्राचड आदि मुख्य हैं। मार्कण्डेय ने २७

+ सिद्ध कवियों की भाषा : श्री राहुल सांकृत्यायन

× अशोक के पश्चिमोत्तर प्रान्तीय शिलालेखों की भाषा जो अपभ्रंश से प्राचीन तथा पालि के निकट की है उकारान्त पदों से युक्त है, इसके सिवा महायान सम्प्रदाय के ललित विस्तर आदि गाथा संस्कृत्त के ग्रंथों की भाषा में यह प्रवृत्ति मिलती है। अतः उकार की विशेषता को अपभ्रंश तक ही सीमित रखना तथा उसके आधार पर भारत के उद्धरण को अपभ्रंश परक कहना संगत नहीं प्रतीत होता। —हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : श्री नामवरसिंह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंशों का उल्लेख किया है। ब्राचड का सम्बन्ध सिंधी आदि बोलियों से है और नागर का सम्बन्ध गुजराती से। अर्द्धमागधी और शौरसेनी का सम्बन्ध क्रमशः पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी से है। इन्हीं पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी से हिन्दी क्षेत्र की सभी बोलियों का सम्बन्ध है।

राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्य धारा' के नाम से अपभ्रंश के प्रमुख कवियों की कृतियों का एक संकलन प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि "अपभ्रंश के अनेक महाकाव्य मौजूद हैं। उसके सारे साहित्य को इकट्ठा करने पर वह कई महाभारतों के बराबर होगा। अपभ्रंश की इस अमूल्य निधि की ओर हिन्दी के विद्वानों का ध्यान धीरे धीरे जा रहा है जिससे निश्चय ही हिन्दी साहित्य की समृद्धि होगी।

अपभ्रंश के काव्य में अत्यन्त ही कोमल तथा मधुर भावनायें भरी पड़ी हैं जैसे—

वायसु उड्डावंतिए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति,
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड़त्ति।

(कौए को उड़ाती हुई नायिका ने सहसा प्रिय को—जो विदेश से आ रहे थे—देखा! प्रिय के वियोग से उसके हाथ के कंगन नीचे गिर रहे थे। उतने में ही प्रिय को आते देख वह हर्षातिरेक से इतनी प्रफुल्लित होगई कि उसका आधा वलय धरती पर गिर गया और आधा तड़ातड़ फूट गया।) वियोग-कथा पीड़ित किसी नायिका का यह चित्र भी कितना मार्मिक है—

जइ ससनेही तो मुइअ अह जिवइ निन्नेह।
बिहिं वि पयारेहिं गइअ धण किं गज्जहि खल मेह॥

(अगर वह स्नेहवती है तो मर गई, यदि जीवित है तो स्नेहविहीन है। वह धन्या दोनों ही प्रकार से गई। खल मेघ! अब क्यों गरजते हो?)

यह दोहा सौन्दर्य-चित्र का कितना उत्कृष्ट उदाहरण है—

जिवँ तिवँ तिक्खा लेवि कर जइ ससि छोल्लिज्जन्तु।
तो जइ गोरिहि मुह कमलि सरिसिम का वि लहंतु॥

(गोरी के मुख कमल की समता चन्द्रमा कर सकता है यदि किसी तरह तीखी किरणों से शशि को छीला जाय।)

इसमें सन्देह नहीं कि अपभ्रंश का काव्य अत्यन्त ही उत्कृष्ट था। अपभ्रंश के महाकवियों ने अपनी प्रतिभा से यह दिखला दिया है कि उनका साहित्य उपेक्षा की वस्तु नहीं है। भारत की आधुनिक भाषाएँ अपने मूलोद्गम को प्राप्त करने के लिए यहाँ तक आती हैं। निस्सन्देह हिन्दी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अर्द्धमागधी और अपभ्रंश से है। लेकिन इस स्थल पर विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि बिहारी बोलियों को हिन्दी कहा जाय या नहीं। डा० ग्रियर्सन ने बँगला, आसामी, बिहारी आदि को बहिरङ्ग भाषा के अन्तर्गत रक्खा है। पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी का सम्बन्ध 'अन्तरङ्ग भाषा' से है। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का यह मत विचारणीय है—"सर जार्ज ग्रियर्सन ने बिहारी और मैथिली को मागधी से निकली होने के कारण हिन्दी से अलग माना है। पर केवल भाषा-शास्त्र की दृष्टि से कुछ प्रत्ययों के आधार पर ही साहित्य सामग्री का विभाग नहीं किया जा सकता। कोई भाषा कितनी दूर तक समझी जाती है, इसका विचार भी तो आवश्यक होता है। किसी भाषा का समझा जाना अधिकतर उसकी शब्दावली पर अवलम्बित होता है। यदि ऐसा नहीं होता तो उर्दू हिन्दी का एक ही साहित्य माना जाता।"* भाषा-शास्त्र की दृष्टि से बिहारी, बँगला आदि की बहिन अवश्य है लेकिन आज बिहार की साहित्यिक भाषा हिन्दी है और हिन्दी क्षेत्रों से ही यह अधिक सम्बन्ध रखती है। विकास के इस क्रमिक स्वरूप को अब पलटा नहीं जा सकता। भाषा किसी के गढ़ने की वस्तु नहीं है। उसका प्रवाह अपनी स्वाभाविक गति से चलता रहता है। पाणिनी जैसे समर्थ वैयाकरण भी भाषा की गति को रोक नहीं सके। साहित्यिक संस्कृत से अलग लोक भाषा की वह धारा प्रवाहित होती हुई

* हिन्दी साहित्य का इतिहास: आ० रामचन्द्र शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक भारतीय बोलियों की सीमा तक आ चुकी है। भाषा के प्राकृतिक नियम को किसी आन्दोलन से रोका नहीं जा सकता। अतः यह स्पष्ट है कि बिहार की भाषा को भी हिन्दी कहना ही न्याय सङ्गत है चाहे उसका मूल स्रोत अहिन्दी-क्षेत्र ही हो। हिन्दी-क्षेत्र से प्रभावित हो कर बिहार की भाषा में भी शौरसेनी की विशेषताएँ आ गई हैं। मागधी प्राकृत की सर्व प्रमुख विशेषताओं का भी बिहार की बोलियों में अभाव होता जा रहा है। 'स' का 'श' और अकारान्त का ओकारान्त सर्वत्र नहीं पाया जाता। पटना, मुँगेर और भागलपुर के लोग 'सकल' को 'शकल' और जल का 'जॉल' के रूप में उच्चरित नहीं करते जैसा सामान्यतः बङ्गाली लोग किया करते हैं।

अपभ्रंश और हिन्दी का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है चाहे बिहारी बोलियों की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई हो और हिन्दी की अन्य बोलियों की अर्द्ध-मागधी तथा शौरसेनी से। लेकिन इन सब बोलियों का सम्बन्ध अपभ्रंश से अवश्य है। अपभ्रंश की एक प्रवृत्ति यह पायी जाती है कि उसमें तत्सम शब्दों का सर्वथा अभाव है। लेकिन आज की हिन्दी में हम तत्सम शब्दों की बहुलता पाते हैं। जहाँ तक बोलियों का प्रश्न है उनमें तद्भव शब्दों की अधिकता आज भी है। उनके विकास को समझने के लिए हमें संस्कृत से उतनी सहायता नहीं मिलती जितनी इन अपभ्रंशों से। अगर विद्वानों ने इन बोलियों को साहित्यिक रूप देने के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों को आश्रय नहीं दिया होता तो आज की साहित्यिक हिन्दी का कुछ दूसरा ही रूप होता। महाकवि तुलसी और सूर ने भी अवधी तथा व्रज आदि बोलियों के माध्यम से ही अपने काव्य का निर्माण किया। लेकिन संस्कृत के आचार्य होने के कारण इनकी कृतियों में स्वभावतः ही संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग होता गया। धीरे-धीरे साहित्यिक हिन्दी के वे अपने शब्द हो गये। जब से खड़ी बोली का प्रयोग होने लगा, द्विवेदीयुग के शुद्धतावादियों ने तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से आरम्भ कर दिया। छायावाद-काल तो तत्सम-शब्दों से ही परिपूर्ण हो उठा। आज प्रगतिवादियों तथा प्रयोगवादियों के उद्योग से लोक-भाषा की ओर फिर हाथ फैलाया जा रहा है और ऐसे शब्दों के भी प्रयोग होने लगे हैं जो पूर्णतः बोलचाल की भाषा के ही हैं।

(पृष्ठ २६६ का शेषांश)

ये गीत अपने आप में संख्या की दृष्टि से अधिक होने के साथ-साथ विषय की दृष्टि से भी विविध हैं। यही कारण है कि इन्होंने स्थान-स्थान पर विश्राम करने का अवसर प्रदान किया है। 'शिल्पी' से एक इसी प्रकार का मधुर गीत लीजिए :—

आ जाता बसन्त पतझर में
प्राणों का स्पन्दन प्रस्तर में,
जाती दिव्य ज्योति अन्तर में,
तम के मूल हिला।
होता जीवन सङ्घर्षण लय
मिटता जरा मरण दुख का भय,
हँस उठता नव युग अरुणोदय
भव संग्राम मिला।

पन्तजी के काव्य-रूपकों का मूल महत्त्व उनमें व्याप्त इसी मधुर गति-भावना के कारण है। ये सभी रचनाएँ काव्य और नाटक के मध्य सन्धि-स्थल का वातावरण उपस्थित करती हैं! वर्तमान युग के पाठक ने काव्य और नाटक, दोनों की ही उपेक्षा कर दी है। ऐसी स्थिति में काव्य-रूपक में प्राप्त होने वाली इन दोनों की सम्मिश्रित चेतना सम्भवतः उसका मनोरञ्जन करने में समर्थ हो सके। इस दृष्टि से काव्य-रूपकों का वर्तमान हिन्दी-साहित्य में विशेष महत्त्व है। इन्होंने उसमें आ जाने वाले गतिरोध का निराकरण करने का प्रत्येक सम्भव प्रयास किया है और सन्तोष का विषय है कि साहित्य के इस नये प्रकार को अब पर्याप्त प्रोत्साहन और प्रगति की प्राप्ति होने लगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपशिखा की भूमिका

श्री विश्वम्भर 'मानव' एम० ए०

प्राचीन काल में काव्य ग्रन्थों की भूमिकाएँ लिखने का हिन्दी में कोई विधान नहीं था। कारण यह प्रतीत होता है कि उस समय साहित्यिक गद्य का विकास ही नहीं हुआ था। ऐसा तो नहीं है कि कवि अपने काव्य के विषय में कुछ न कहना चाहता हो। जायसी, तुलसी एवं केशव आदि ने अपने काव्य-ग्रन्थों के प्रारम्भ में थोड़ा बहुत अपना और अपने विचारों का परिचय दिया ही है। रामचरित मानस में तो यह भूमिका एक प्रकार से बहुत लम्बी है जिसमें तुलसी दास ने थोड़ी-सी आत्मकथात्मक बातों के बीच काव्य की परिभाषा, उसका लक्ष्य, उसका विषय और विस्तार एवं सत् तथा दुष्ट पाठकों के स्वभाव की चर्चा भी की है। क्योंकि ये भूमिकाएँ काव्य का अंग होकर आई हैं, अतः उन्हें भूमिका के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया गया। पर जब से भाषा को साहित्यिक गद्य के माध्यमों के लिए स्वीकार किया जाने लगा, तब से भूमिकाएँ भी पृथक रूप से गद्य में ही लिखी जाने लगीं। प्रारम्भ में ये भूमिकाएँ सामान्य बातों के परिचय के लिए ही होती थीं, पर छायावाद-युग में जब खड़ी बोली का गद्य अपनी प्रौढ़ता प्राप्त कर रहा था, तब उसका कुछ परिचय काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं में भी मिलने लगा। ये भूमिकाएँ न केवल विचारों की दृष्टि से, वरन् शैली की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी ही महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं में श्रीमती महादेवी वर्मा कृत 'दीपशिखा' की भूमिका भी है।

आधुनिक काल में सृजन की दृष्टि से छायावाद युग का अपना महत्त्व है। इस युग में रहस्यवाद के क्षेत्र में कुछ अन्य कवियों का दान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, पर इनमें महादेवी वर्मा ही ऐसी कवि हैं जिनका मुख्य विषय प्रारम्भ से अन्त तक रहस्यवाद ही रहा है। जिस समय 'दीपशिखा' का प्रकाशन हुआ, उस समय तक हिन्दी में एक नया युग आ गया था, फिर भी रहस्यवाद के सम्बन्ध में बहुत-सी भ्रान्तियाँ बनी हुई थीं। महादेवी जी ने अपनी भूमिका में एक स्थान पर शिकायत भी की है कि "छायावाद को तो शैशव में कोई सहृदय आलोचक ही नहीं मिल सका और जब ये कवि अपने विकास के मध्याह्न में पहुँच गए, तब उन्हें भक्त मिलना ही स्वाभाविक होगया।" ऐसी दशा में यह जानना बहुत आवश्यक है कि छायावाद और रहस्यवाद के सम्बन्ध में स्वयं कवियों के विशेष रूप से महादेवीजी के अपने विचार क्या हैं।

दूसरे, जिस युग में कवि रहता है उससे वह प्रभावित भी होता है और उसे प्रभावित भी करता है। जैसे युग के लिए कवि को समझना आवश्यक है वैसे ही यह भी आवश्यक है कि कवि भी अपने युग को समझे। सभ्यता का जैसे-जैसे विकास होता जा रहा है, वैसे ही वैसे आगे आने वाले युग जटिल होते जा रहे हैं। युग की इस जटिलता के भीतर से काव्य के उपादानों को ग्रहण कर काव्य को मर्मस्पर्शी बनाने का काम भी वैसे ही कठिन होता जायगा। अतः भविष्य में कवि कर्म उतना सरल नहीं रह जायगा, जितना प्रायः समझा जाता है। महान और साधारण कवि में यही अन्तर होता है कि एक में अपने युग को पहचानने की क्षमता होती है, दूसरे में नहीं, और यदि होती भी है तो बहुत कम। इस भूमिका में महादेवीजी ने अपने युग को पहचानने का प्रयत्न किया है। आज की राजनीति, समाज-शासन, धर्म, दर्शन और विज्ञान में से ऐसा कुछ नहीं है जिस पर उन्होंने व्यापक दृष्टिकोण से विचार न किया हो। यह और बात है कि इस युग को वे ध्वंस-युग कहती हैं।

तीसरी बात है काव्य-शास्त्र के सम्बन्ध में उनका व्यापक ज्ञान। जैसे उनके गीतों से उनकी संस्कृत रुचि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संयत भावुकता का परिचय मिलता है, वैसे ही उनके इस निबन्ध से उनकी प्रखर बुद्धि का। इसमें उन्होंने कला और कला के प्रकार, काव्य और काव्य के अङ्ग, बोध और रागात्मिकावृत्ति, यथार्थ और आदर्श, मूर्त और अमूर्त, सौंदर्य और कुरूपता आदि इतने विवादास्पद विषयों को उठाकर इस सुन्दर ढङ्ग से कुछ मौलिक बातें कही हैं कि चकित रह जाना पड़ता है। यह सारा ज्ञान केवल सूचनात्मक नहीं है। महादेवीजी ने उसे इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह हमारे हृदय को छूकर हमारी चेतना का एक मूल्यवान अङ्ग बन जाता है।

इसके अतिरिक्त अपने जीवन और संस्कारों की एक हलकी सी झलक भी इसमें उन्होंने दी है। यह झलक इसलिए आवश्यक हो उठी है कि सामान्य पाठक उनके व्यक्तित्व के आलोक में उनके काव्य को, साथ ही उनके काव्य के आलोक में उनके व्यक्तित्व के विशिष्ट अङ्ग को समझ सके। विशिष्ट अङ्ग इसलिए कहना पड़ा कि उन्होंने भूमिका में स्वयं इस बात पर जोर दिया है कि एकान्त काव्य-साधना उनके जीवन का लक्ष्य नहीं। इस व्यक्तिगत परिचय में एक बात जो पाठक से छिपी नहीं रह सकती, वह है महादेवीजी का आत्मविश्वास। यह आत्मविश्वास उनका बहुत बड़ा सम्बल है। यही कारण है कि जब युग का युग बदल गया, तब भी महादेवीजी अपने उसी पथ पर अडिग चरणों से चलती रहीं। इस भूमिका के अन्त में उन्होंने कहा भी है : दीपशिखा में अविश्वास का कोई कम्पन नहीं है। नवीन प्रभात के वैतालिकों के स्वर के साथ इसका स्थान रहे ऐसी कामना नहीं, पर रात की सघनता को इसकी लौ झेल सके, यह इच्छा तो स्वाभाविक ही रहेगी।

और इन सबके ऊपर है इसकी भाषा और शैली। जिसने इस भूमिका को कभी नहीं पढ़ा है, वह इसकी विचार शक्ति और अभिव्यञ्जना के सौन्दर्य को कभी पहचान ही नहीं सकता। इसमें सूत्रों की सी गूढ़ता, दर्शन की सी गम्भीरता और काव्य की रमणीयता है। इस गूढ़ता, गम्भीरता और रमणीयता ने महादेवीजी के गद्य को एक अद्भुत गरिमा के साथ विलक्षण माधुर्य प्रदान किया है। यह मानते हुए भी कि उनका गद्य दुर्बोध नहीं है, इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि उसे समझने के लिए प्रबुद्ध पाठक चाहिए—ऐसा पाठक जिसे साहित्य, दर्शन, धर्म और राजनीति की बहुत सी बातों का ज्ञान पहले से हो; विशेष रूपसे इन क्षेत्रों में प्रचलित शब्दावली और पारिभाषिक शब्दों के ठीक अर्थों की जानकारी यदि उसे नहीं है तो वह महादेवीजी के गद्य को पढ़ने का अधिकारी नहीं है। कोई कह सकता है कि अपने काव्य का रस और विचारों का सौन्दर्य प्रदान करने के लिए लेखिका ने कुछ कड़ी कसौटी पाठकों के सामने रखी है। पर इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक लेखक की अपनी एक शैली होती है जिससे नीचे उतरना उसके लिए सम्भव नहीं होता। अतः पाठक यदि योग्य है और अपनी चेतना को केन्द्रित करके इसे पढ़ रहा है, तो उसे और कोई कठिनाई नहीं होगी। वहाँ लेखिका में पाठक को अपने साथ बहा ले जाने की अपूर्व शक्ति है। इस बहने में वह उनके विचारों और भावों के आन्तरिक सौन्दर्य से परिचित हो सकेगा। भाषा अत्यधिक साहित्यिक और प्रौढ़ होने पर भी काव्यमय, स्निग्ध और मधुर है। पारिभाषिक शब्दावली में बात प्रारम्भ करके और उसे तर्कसङ्गत रूपमें आगे बढ़ाने पर भी लेखिका का एक काम शेष रह जाता है और वह है उसे हृदयङ्गम कराना। यह कार्य महादेवीजी भावपूर्ण उदाहरणों द्वारा पूरा करती हैं और कवि होने के नाते इसमें उन्हें कोई आयास भी नहीं करना पड़ता। कला में उपयोगी और ललित का एक स्थूल विभेद हमारे साहित्य में चलता है। उससे सहमत न होते हुए महादेवीजी वस्तु के सूक्ष्म उपयोग की चर्चा करती हुई कहती हैं—

रोगी की व्याधिविशेष के लिए शस्त्रविशेष उपयोगी हो सकता है, परन्तु उसके सिरहाने किसी सहृदय द्वारा रखा हुआ अधखिला गुलाब का फूल भी कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोगी नहीं। अपनी वेदना में छटपटाता हुआ वह उस फूल की धीरे-धीरे खिलने और हौले-हौले झड़ने वाली पङ्खड़ियों को देखकर, कै बार विश्राम की साँस लेता है, किस प्रकार अपने अकेलेपन को भर देता है, कितने भावों की सम-विषम भूमियों के पार आता जाता है और कैसे चिन्तन के क्षणों में अपने आपको खोता पाता है, यह चाहे हमारे लिए प्रत्यक्ष न हो, परन्तु रोगी के जीवन में तो सत्य रहेगा ही। चतुर चिकित्सक, रोग का निदान, उपयुक्त औषधि और पथ्य आदि का उपयोग स्पष्ट है, परन्तु रोगी की स्वस्थ इच्छा शक्ति, वातावरण का अनिर्वचनीय सामञ्जस्य, सेवा करने वाले का हृदयगत स्नेह, सद्भाव आदि उपयोग में अप्रत्यक्ष होने के कारण कम महत्त्वपूर्ण हैं, यह कहना अपनी भ्रान्ति का परिचय देना होगा।

इसी प्रकार कला के सम्बन्ध में जो यह बात फैल गई है कि प्रभाव उत्पन्न करने के लिए उसके विषय का महान् या सुन्दर होना आवश्यक है उसकी काट भी महादेवीजी ने अत्यन्त परिचित उदाहरणों द्वारा सहज भाव से की है—

जीवन का जो स्पर्श विकास के लिए अपेक्षित है उसे पाने के उपरान्त छोटा, बड़ा, लघु, गुरु, सुन्दर, विरूप, आकर्षक, भयानक कुछ भी कला जगत से बहिष्कृत नहीं किया जाता। उजले कमलों की चादर जैसी चाँदनी में मुस्कराती हुई विभावरी अभिराम है, पर अँधेरे के स्तर पर स्तर ओढ़कर विराट बनी हुई काली रजनी भी कम सुन्दर नहीं। फूलों के भार से झुक-झुक पड़ने वाली लता कोमल है, पर शून्य नीलिमा की ओर विस्मित बालक सा ताकने वाला ठूँठ भी कम सुकुमार नहीं। अविरत जल-दान से पृथ्वी को कँपा देने वाला बादल ऊँचा है, पर एक-एक आँसू के भार से नत और कम्पित तृण भी कम उन्नत नहीं। गुलाब के रङ्ग और नवनीत की कोमलता में कङ्काल छिपाये हुये रूपसी कमनीय है, पर झुर्रियों में जीवन का विज्ञान लिखे हुये वृद्ध भी कम आकर्षक नहीं। बाह्य जीवन की कठोरता, संघर्ष, जय-पराजय सब मूल्यवान हैं, पर अन्तर्जगत की कल्पना, स्वप्न, भावना आदि भी कम अनमोल नहीं।

भूमिका के प्रारम्भ में ही महादेवीजी ने कहा है—"सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है। और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त। इसी से साधन के परिचय स्निग्ध खण्ड रूप से साध्य की विस्मयभरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सौन्दर्य के पथ से सत्य तक पहुँचने के लिए कवि पग-पग पर आनन्द की सृष्टि करता चलता है।" सच पूछिए तो यह प्रारम्भिक वाक्य ही समस्त भूमिका का प्राण है और इसी की व्याख्या और स्थापना में उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगादी है। यहाँ सत्य से महादेवीजी का तात्पर्य आध्यात्मिक सत्य, सौन्दर्य से आत्मा के सौन्दर्य और आनन्द से सूक्ष्म आनन्द का है। उनकी इस स्थापना से एक बात अवश्य स्पष्ट हो जाती है और वह यह कि कला के क्षेत्र में जीवन के उच्चतम एवं श्रेष्ठतम सिद्धांत ही उन्हें प्रिय हैं। कला के सम्बन्ध में जो यह प्रचलित है कि उसका विषय महत्त्वपूर्ण होना चाहिए और उसकी शैली सौन्दर्यमयी, वह लगता है उन्हें पूर्ण रूप से मान्य है। दूसरों के सत्य से वे परिचित नहीं हैं। ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसी भूमिका में उन्होंने काव्य के विषयों में महान् के साथ लघु को भी वैसा ही सम्मान देने की बात उठायी है, पर जहाँ तक सिद्धान्त को छोड़कर व्यवहार का सम्बन्ध है वहाँ महादेवीजी के काव्य में विषय सभी कहीं महान् ही है। किसी लघु विषय को उन्होंने महत्ता प्रदान की हो, ऐसा कहीं दिखाई नहीं देता।

इस आध्यात्मिक सत्य, सौन्दर्य और आनन्द के साथ एक और भावना का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह है लोक-मङ्गल की भावना। इस मङ्गल-भावना को भी हम चाहें तो आध्यात्मिक या आत्म-कल्याण कह सकते हैं। इस प्रकार महादेवी का काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य, शिव, सुन्दर की प्रतिष्ठा करता है और उनकी भूमिका इस त्रयी का समर्थन।

लेकिन आध्यात्मिक काव्य ही सब कुछ है और लौकिक काव्य कुछ नहीं, रहस्य का क्षेत्र ही महत्त्व-पूर्ण है नित्य जीवन के सुख-दुःख की मर्मस्पर्शी घटनाएँ कुछ नहीं, यह समझाना या समझ बैठना भूल ही होगी। आधुनिक काल के कई विशिष्ट ग्रन्थों की इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं में एक बात प्रबुद्ध पाठक को बराबर खटकती रहती है और वह यह कि अपने दृष्टिकोण के लिए कवि का आग्रह उसमें इस सीमा तक बढ़ जाता है कि सत्य का दूसरा पहलू वहाँ या तो तिरस्कृत है या दबा कर प्रस्तुत किया गया है।

एक युग था जब कवि केवल कविता लिखता था। अपने सम्बन्ध में वह बहुत नम्र था और यदि उसकी या उसके काव्य की उपेक्षा भी होती थी तो वह बहुत चिन्ता नहीं करता था। कवि कर्म ही उसका सबसे बड़ा पुरस्कार था और सृजन क्रिया में ही वह इतने भारी आनन्द की उपलब्धि करता था जिसका कोई ठिकाना नहीं। असन्तोष का स्वर कहीं नहीं पाया जाता, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता; पर उसका समाधान काव्य के माध्यम से ही हो जाता था। आज का कवि समीक्षक का काम भी करता है और अपने कर्म के प्रभाव और परिणाम के प्रति इतना उदासीन नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि छायावादी कवियों और काव्य पर कुछ व्यर्थ के आक्षेप भी हुए। पर वैसे आक्षेप तो आज की कविता पर भी हो रहे हैं, सदा होते रहे हैं और सदैव होते रहेंगे। इन आक्षेपों का उत्तर देना, सच पूछिए तो, आलोचकों और प्रबुद्ध पाठकों का काम है। पर हम देखते हैं कि इस काम में स्वयं कवियों ने भी अपने समीक्षकों और पाठकों का हाथ बँटाया है। हिन्दी में इस दृष्टि से जो भूमिकाएँ लिखी गई, वे कई प्रकार की मनोवृत्तियों का परिचय देती हैं। कहीं कवि उत्तर देते समय एकदम आवेश में आगया है, कहीं उसने अपने विरोधी को निरस्त्र करने के लिए हास्य और व्यंग्य से काम लिया है और कहीं-कही वह व्यक्तिगत बातों पर भी उतर आया है। 'दीपशिखा' में आक्षेपों का उत्तर नहीं दिया गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। लेकिन उसकी पृष्ठभूमि बहुत व्यापक है और उत्तर देने का ढङ्ग एकदम शालीन और संयत। यह बात यथार्थवाद के विवेचन में देखी जा सकती है। महादेवीजी के तर्कों से ऐसा कहीं नहीं झलकता कि वे किसी विवाद में भाग ले रही हैं। जहाँ किसी व्यक्तिगत आक्षेप का उत्तर उन्होंने दिया है, वहाँ बात प्रायः निभ नहीं पाई उदाहरण के लिए इस बात का उत्तर देने का प्रयत्न करना कि उनके काव्य-ग्रन्थों का मूल्य इतना अधिक क्यों होता है? इस सम्बन्ध में उन्होंने जो स्थिति सामने रखी है, उससे किसी भी पाठक को सन्तोष नहीं हो सकता।

फिर भी दीपशिखा की यह भूमिका कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें कई व्यापक विषयों पर अत्यंत व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। शैली तो ऐसी है कि महादेवीजी अपने पाठक को एकदम अभिभूत कर देती हैं। कोई आपत्ति कर सकता है कि गीतों की इस भूमिका में ऐसे विवादास्पद विषयों की चर्चा क्या बहुत आवश्यक थी। ऐसी धारणा पहली बार पाठक को भी होती है। पर गम्भीरता से विचार करने पर यह सन्देह ठहरता नहीं। ध्यान से देखें तो जीवन, जीवन में कला का स्थान, कलाओं में काव्य और काव्य-जगत में अपने विशिष्ट संस्कारों पर महादेवीजी ने इसमें प्रकाश डाला है। अतः सारी बातें एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। द्रष्टा हम उसे ही कहेंगे जो अपने को शेष जगत से विच्छिन्न न समझे। इस भूमिका में तो महादेवीजी ने विशेष रूप से सिद्ध किया है कि किस प्रकार वे व्यापक जीवन और अपने युग से सम्बन्धित हैं। इस दृष्टि से देखने पर इस भूमिका का महत्त्व कई गुना बढ़ जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्तजी के काव्य-रूपक

प्रो० सुरेशचन्द्र गुप्त एम० ए०, साहित्य-रत्न

काव्य-रूपक से हमारा तात्पर्य नाट्य-रचना की उस प्रणाली से है, जिसमें गद्य की अपेक्षा पद्य का प्रमुख स्थान रहता है और गद्य का गौण रूप में संग्रहण होता है। इस प्रकार के काव्य-रूपकों की रचना हिन्दी के लिये सर्वथा नवीन वस्तु है और पन्तजी इसके अग्रगण्य कलाकार हैं। साहित्य की इस विधा के सृजन की ओर उनकी प्रारम्भ से ही विशेष अभिरुचि रही है और इसके उपयुक्त विकास में वे समय-समय पर क्रमिकयोग-दान देते रहे हैं। उनसे इतर अन्य काव्य-रूपककारों में श्रीयुत उदयशंकर भट्ट, गिरिजाकुमार माथुर तथा आरसीप्रसादसिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अब से पर्याप्त समय पूर्व श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने भी इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया था, किन्तु क्रमिक प्रगति के अभाव में वे इस श्रेणी के कलाकारों में नैरन्तर्य-युक्त स्थान न बना सके।

पन्तजी के काव्य-रूपक स्वभावतः सौन्दर्य चेतना की ओर विशेष रूप से उन्मुख हैं। सौन्दर्य को उन्होंने प्राकृतिक और मानवीय, दोनों रूपों में ग्रहण किया है और दोनों ही अवस्थाओं में बाह्य स्थिति की अपेक्षा अन्तः सौन्दर्य को मूल श्रेय प्रदान किया है। प्रकृति और मानव के स्थूल सौन्दर्य ने भी उन्हें आकर्षित अवश्य किया है, किन्तु वर्ण्य के रूप में उन्हें इनकी सूक्ष्म चेतना ही ग्राह्य रही है। इस दृष्टि से उन्होंने इन दोनों के मध्य स्वाभाविक सामञ्जस्य-सम्बन्ध की भी स्थापना की है और स्वतंत्र-रीति से भी दोनों का आस्थान किया है। प्रकृति के प्रति प्रारम्भ से ही अधिक अनुरक्त होने के कारण उन्होंने अपने काव्य-रूपकों में भी उसे प्रमुख स्थान प्रदान किया है और मानवीय व्यक्तित्व के मूल गुणों का उसके स्वरूप में अन्वेषण करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रकार उनकी प्रकृति केवल अपने स्वरूप की आख्याता ही नहीं रही है, अपितु उसने मानवीय सौन्दर्य का भी अत्यन्त यथार्थ और श्रेष्ठ विश्लेषण उपस्थित किया है।

सौन्दर्य-चेतना के अनन्तर पन्त जी ने अपनी सुकुमार प्रवृत्ति के अनुकूल ही कवि और काव्य-भावना के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित किया है। कलाकार के जीवन की यथार्थवादी व्याख्या उपस्थित करना उन्हें सदैव प्रिय रहा है और उनके काव्य-रूपकों में भी 'शिल्पी' उनकी इसी रुचि की ओर संकेत करता है। इस कृति के अन्तर्गत उन्होंने सौन्दर्य के निर्माता कलाकार के अन्तस् में उद्भूत और विकसित संघर्ष का अत्यन्त भावपूर्ण कथन किया है। युग की बदली हुई परिस्थितियों के कारण यह संघर्ष और भी तीव्र हो उठा है और वर्तमान भौतिकवादी जगत् में उचित मार्ग की शोध कलाकार के लिए और भी कठिन हो गई है। निरन्तर प्रयास करने पर भी आज का कवि अथवा कलाकार अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं पाता। इसका मूल कारण यही है कि उसका बौद्धिक धरातल इतर व्यक्तियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है और स्थूल व्यावहारिक क्रियाएँ उसके मनस्-लोक को सहज ही परितृप्ति प्रदान करने में असमर्थ रहती हैं! इस प्रकार वह अपनी समस्या में स्वयं ही उलझा रहता है और उसकी बौद्धिक प्रगति किसी दिन उसे स्वयं ही आनन्द का मूल रहस्य प्रदान कर जाती है।

सौन्दर्य-चेतना और कलाकार के संघर्ष की भाँति ही पन्तजी ने मानव-जीवन की स्वर्णिम परिणति को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। विज्ञान पीड़ित मानवी सृष्टि को शान्ति की खोज में प्राचीन संस्कृति की ओर उन्मुख देखना ही उन्हें विशेष इष्ट रहा है और इस प्रकार के काव्य-रूपकों में उन्होंने मानव को क्रमशः तमस् से ज्योति की ओर उन्मुख देखने का ही प्रयास किया है। वर्तमान की अर्थ और राजनीति-विषयक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुरभिसन्धियों को हेय मान कर उन्होंने मानवता को उनका परित्याग कर देने का पावन सन्देश प्रदान किया है। इस प्रकार मनोविकृति और बौद्धिक आग्रह, सभी उनके समक्ष अवमूल्यित होने लगे है और वे अन्तः साधना में लीन पवित्र मानवतात्मा को चिरन्तन ज्योति से समन्वित देखने लगे हैं। इस प्रकार के काव्य-रूपकों में कवि का एक विशेष क्रान्तिकारी व्यक्तित्व सन्निहित रहा है और वही कारण है कि ये अपनी निरन्तर विकास मग्न चेतना से अध्येता की मनस-भावना को एक बार ही झकझोर जाते हैं। उनका 'ध्वंशेष' नामक काव्य-रूपक इस प्रकार की रचनाओं का प्रमुख प्रतिनिधि है।

पंतजी के व्यक्तित्व की दो विशेषताएँ मुख्य रूप से विचारणीय हैं। एक ओर वे कल्पना के माध्यम से अपने काव्य-वैभव का संयोजन करते हैं और दूसरी ओर चिन्तन के माध्यम से मानवता को स्थायी संदेश प्रदान करते हैं। उनकी यह चिन्तन की परम्परा 'पल्लव' के बाद की रचनाओं में विशेष रूप से प्रतिविम्बित रही है और उनके काव्य-रूपकों के लिए तो यह चिन्तन का भाव ही जैसे आत्मतत्व के समान है। इनकी रचना करते समय कवि ने अपनी चेतना का विशिष्ट केन्द्रीकरण किया है और प्रत्येक प्रकार से यह प्रयास किया है कि प्राचीन भारतीय चिंतन-प्रणाली तथा वर्तमान पाश्चात्य चिंतन-धारा, दोनों ही अपने संतुलित रूप में उनके काव्य-रूपकों में समाविष्ट रहे। चिंतन के इस वैभव से संयुक्त होने के कारण उनकी तद्विषयक सभी कृतियाँ गाम्भीर्य के एक व्यापक वातावरण से परिवेष्ठित रही हैं और प्रौढ़ता की इसी भावना के कारण उन्होंने अध्येता के चित्त को सदैव अधिकतम मात्रा में प्रभावित किया है। स्थूल का परित्याग कर सूक्ष्म का ग्रहण ही उनके काव्य-रूपकों का मुख्य विषय है और इसी कारण उनका स्वरुप इतना भावमय तथा प्रभावशाली रहा है।

नाटक के अनुरूप ही पंतजी ने अपने काव्य-रूपकों में सर्वप्रथम पात्र-विभाजन किया है और उसके अनन्तर रंगमंच के संकेत आदि उपस्थित करते हुए वास्तु-शिल्प का संस्कार किया है। गद्य का प्रयोग उन्होंने अन्य रूपककारों की तुलना में अपेक्षाकृत कम किया है, तथापि रंगमंच के संकेतों, पात्रों की मनोभावनाओं और पात्र-प्रवेश आदि की चर्चा करते समय उन्होंने गद्य का आश्रय ग्रहण किया है। इसी प्रकार वातावरण की विशिष्ट स्थितियों का उल्लेख करते समय भी उन्होंने प्रायः गद्य का अत्यन्त संक्षिप्त रीति से प्रयोग किया है। इस दृष्टि से उनके रंगमंच के इंगित काव्य की भाँति ही विशेष भावपूर्ण बन पड़े हैं। उदाहरणार्थ 'शिल्पी' के प्रथम दृश्य के निम्नलिखित रंग संकेत देखिए :—

"शिल्पी का कला-कक्ष, जिसमें विविध आकार-की मूर्तियाँ रखी हैं। शिल्पी की शिष्या मूर्तियों को झाड़ पोंछ कर अलमारियों में सजा रही है। वृद्ध शिल्पी पर्दे की आड़ में एक नवीन प्रतिमा के निर्माण में संलग्न है। वह दत्तचित होकर छेनी पर हथौड़ी चला रहा है और बीच में गुनगुनाता जाता है।"

पन्तजी ने अपने काव्य-रूपकों में रस और आनन्द के तत्वों को अक्षुण्ण रखने का सर्वत्र प्रयास किया है। दृश्य-विभाजन करते समय भी उन्होंने इस तथ्य का विशेष ध्यान रखा है और अनावश्यक दृश्य-विस्तार की प्रवृत्ति से पूर्णतः बचने की चेष्टा की है। प्रायः उनके काव्य-रूपक तीन अथवा चार दृश्यों में ही विभाजित रहे हैं। दृश्यों की भाँति ही काव्य रूपक को बोझिलता से सुरक्षित रखने के लिए सलाप-योजना के व्यवस्थित रूप की आवश्यकता होती है। इन संवादों के लिये यह आवश्यक है कि उनका विस्तार विशिष्ट सीमाओं में बन्दी हों और वे कथित न होकर अधिकतर ध्वनित हों। केवल गद्य-रचना में सलाप-कथन ही इष्ट रहता है, किन्तु काव्य-रूपक की स्थिति इससे भिन्न है। वहाँ सलाप के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी रागात्मक चेतना द्वारा अध्येता के अन्तस् को पूर्णतः ध्वनित कर देने की क्षमता से सर्वथा युक्त हो। पन्तजी के काव्य-रूपक संलाप-विस्तार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से कहीं-कहीं निश्चित रूप से बोझिल हो उठे हैं। यद्यपि उनकी भाषा का माधुर्य इस दोष के निवारण में सर्वत्र प्रयत्नशील रहा है, तथापि कतिपय स्थलों पर संवादों का अतिशय विस्तृत व्याख्यान काफ़ी खटकता है। फिर भी संलाप-कथन के दोष से वे मुक्त हैं और ध्वनन के फलस्वरूप उनके विस्तार-सम्बन्धी प्रथम दोष का भी कुछ मार्जन हो गया है। यथा 'अप्सरा' नामक काव्य-रूपक में कलाकार द्वारा अभिव्यक्त निम्नलिखित काव्य-पंक्तियाँ देखिए :—

यह कैसी संङ्गीत वृष्टि हो रही गगन से
या मेरा ही ध्यान मौन मन गा उठता है ?
कैसा आकर्षण है यह, कैसा सम्मोहन,
यह सौन्दर्य मधुरिमा,........कोई मेरे मन को
जैसे बरबस खींच रहा हो ! क्या है यह सब ?
प्राणों की व्याकुलता, जीवन की व्याकुलता।
अह, अब तो मैं यौवन का रोमांच द्वार भी,
पार कर चुका, जब मञ्जरित दिगन्त धरा का,
पागल कर देता था मन को।

पन्तजी के काव्य-रूपक प्रायः समस्यामूलक रहे हैं। इसका कारण यही है कि इनकी रचना उनके साहित्यिक जीवन के उत्तर-काल में हुई है और उस समय वे अपनी प्रारम्भिक रम्यं-मधुर कल्पना तथा चञ्चलता का परित्याग कर चुके थे। उत्तर-कालीन रचना होने के कारण इन काव्य-रूपकों में चिन्तन प्रधान तत्त्व रहा और उसका सम्बन्ध स्वभावतः किसी न किसी मौलिक समस्या से होता ही है। पन्तजी ने इस सङ्घर्ष का दो रूपों में विभाजन किया है :—

(१) व्यष्टि का सङ्घर्ष।
(२) समष्टि का सङ्घर्ष।

व्यष्टि का सङ्घर्ष प्रायः अन्तर्समस्याओं को जन्म देता है और समष्टिक सङ्घर्ष बाह्य समस्याओं को। इसका कारण यही है कि इनमें से जहाँ प्रथम का स्वरूप एकान्तिक है, वहाँ द्वितीय का सामूहिक। कवि ने इन दोनों से ही उद्भूत समस्याओं का यथार्थ विश्लेषण किया है और अन्त में जीवन की नवीन रागपूर्ण और स्वस्थ दिशा की ओर संकेत किया है। इस प्रकार उन्होंने पश्चिम की सङ्घर्षमयी और विज्ञानवादी संस्कृति का प्रशमन कर पूर्व की आनन्दवादी संस्कृति का समर्थन किया है। कटुता और द्वेष का निराकरण कर शान्ति की स्थापना करने की ओर प्रवृत्त उनका यह प्रयत्न निश्चित रूप से प्रशंसनीय है।

चिन्तन की प्रवृत्ति पन्तजी के काव्य-रूपकों में प्रमुख रही है इस चिन्तन की पृष्ठिभूमि में व्यक्ति की प्रवृत्ति में लिप्त वासनात्मक अवस्था है और इसका ध्येय मानव की अन्तर्ज्योति को निवृत्ति की ओर उन्मुख करना है। चिन्तन के सहयोगी तत्त्व के रूप में इन कृतियों में अनुभूति को स्वर प्रदान किया गया है। अनुभव का सत्य इनके मूल में अत्यन्त तिक्त रूप में व्याप्त है और मानव की सम्पूर्ण चेतना को एक बार ही हिला देने में समर्थ है। इस सत्य का दर्शन निरन्तर सूक्ष्म अध्ययन का परिणाम है और इससे समन्वित होने के कारण उनके साहित्य में स्थायित्व का गुण कुछ अधिक मात्रा में समाविष्ट हुआ है। 'ध्वंस-शेष' शीर्षक काव्य-रूपक की निम्नलिखित पंक्तियाँ सत्य के इसी चरम स्वरूप को अभिव्यक्त करती हैं :—

मानव ही है सर्वाधिक मानव का भक्षक,
भौतिक मद से बुद्धि भ्रांत युगजीवी मानव
दानव बन कर आत्मघात कर रहा अन्ध हो।
शोषक शोषित में विभक्त अब युग मानवता,
जाति पाँति में, वर्ग श्रेणि में शतशः खंडित,
धनिकों का श्रमिकों का धनबल का जन बल का
यह अन्तिम दुर्धर्ष समर है विश्व विनाशक,
सामूहिक संहार तिक्त विषफल है जिसका।

चिन्तन के आधिक्य से भावनाओं पर बुद्धि की जिन पर्तों का निरन्तर प्रसरण होने लगता है उनसे पृथक् रहने की ओर भी पन्तजी पूर्णतः प्रयत्नशील हैं। दुर्बोध चिन्तन में सुबोध रागात्मकता का सम्मिश्रण करने के लिए ही उन्होंने अपने काव्य-रूपकों में स्थान-स्थान पर गीतों की मधुर गति का आयोजन किया है।

(शेष पृष्ठ २६२।पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयालम की चुनौती

श्री एन० अय्यप्पन नायर, वैकम

कौन अपनी 'कन्या कुमारी' को नहीं जानता? भारतमाता की अकेली बेटी है कन्या-कुमारी। वह कुमारी चल 'गोकर्ण' तक गई, तब है उसका नाम केरल। वह भारतमाता के पैरों तले पड़ी कई तरह से अपनी माता की सेवा कर रही है। उसके साथ शादी करने के लिए विदेश से भी कौन-कौन धनी नहीं आये? लेकिन उसको मरते समय तक अपनी माता की सेवा ही सब कुछ है।

भारत माता के बेटे—इस केरल के लोग—सबके लिए मशहूर हैं। साहित्य-सन्देश में मैं दूसरी बातें क्यों कहूँ? यहाँ सिर्फ साहित्य के तीन उदाहरण उपस्थित करता हूँ। एक-एक श्लोक (पद्य) का सारांश।

१—एक पुराने महान् कवि हैं 'कृष्णवारियर' उनका वर्षा-वर्णनः—

हमारे केरल की देवियाँ जब 'रजस्वला' होती हैं, मैला कपड़ा—सचमुच चिथड़े—पहनती रहती हैं। कहने की जरूरत नहीं कि जब ये 'ऋतुमती' होती हैं तब उनके स्तन ऊँचे उठे रहते हैं। इसे याद करके 'वारियर' कहते हैं:—

संसार रूपी नारी के पहाड़ के समान ऊँचे उठे 'पयोधर' और मैला 'अम्बर' वर्षा रूपी 'आर्तव' का लक्षण है।

पयोधर=बादल, थन; अम्बर=आकाश, कपड़ा; आर्तव=पानी बरसना, बुरे रक्त का योनि से बहना।

२—अपने घर के नाम से विराजित एक महान कवि हैं—'वेणमणि'। उनका ऊषा वर्णन—

यह कोई नहीं जानता कि 'प्राची' कैसे गाभिन होगयी? अपने स्वभाव के अनुसार चिड़ियों के 'कल-कल' शब्द के मिस 'प्राची' कराह रही है। तो भी क्या! एक सुन्दर बालक!! 'बालार्क' को प्राची ने जन्म दिया। जैसे प्रसूति-गृह में खून के दल-दल में डूबी अपने बच्चे के साथ माँ लेटती है उसी प्रकार लालिमा में डूबी प्राची अपने बच्चे 'अरुण' के साथ लेटती है। (प्राची 'ईकारान्त' शब्द है, वह नारी की सूचना देता है।)

३—मलयालम के महान् साहित्य के इतिहासकार, कवि-सम्राट् स्वर्गीय उल्लूर एस० परमेश्वरय्यर का रात्रि का वर्णन—

घनी अँधेरी—समग्र रात। आकाश में तारे चमकते हैं। चन्द्रमा लसता है। कैरव खिले रहते हैं। देखकर—

तारे जिसका हार हैं, अँधेरा रूपी कच (केश) जिसके हैं, चन्द्रमा जिसका मुख है वह रात्रि रूपी नारी है। तो भी क्या? अब अम्बर शून्य होगया। कोई उसकी ओर देख सकता है? कैरव भी अपनी आँखें मूँदते हैं। कैरव का नायक है चन्द्रमा, अम्बर=आकाश, कपड़ा।

कलापक्ष और भावपक्ष का ऐसा मेल देखते ही बनता है। यह मलयालम की सम्पत्ति है। हमारा साहित्य भण्डार ऐसे अनमोल रत्नों से भरा पड़ा है। मैं आपसे पूछता हूँ कि ऐसे उदाहरणों के सामने कौन भाषा टक्कर ले सकती है?

(पृष्ठ २७२ का शेषांश)

वाड़ी, हिन्दी, बङ्गला, उर्दू, फारसी आदि के मर्मज्ञ विद्वान हो गए। बचपन से वे विद्याप्रेमी थे। उन्होंने चौखम्भा स्कूल की नींव डाली सो आज हरिश्चन्द्र इण्टर कालेज हो गया। वे सत्यशील और दानशील थे। स्त्री समाज की उन्नति के लिए उन्होंने बड़ी सेवा की। वे बाल विवाह के विरोधी थे, वितन्तु विवाह के अनुकूल थे, मूढ़ाचारों के विरुद्ध थे। वे देश प्रेमी, धर्म प्रेमी, समाज-सुधारक और भाषा सेवी थे।

ऊपर की जीवनियों में हम देखते हैं कि दोनों महान पुरुषों ने सत्य और धर्म से प्रेरित हो कर, कार्य रङ्ग में पहाड़ों की तरह डटे रह कर, आँधियों से अविचलित हो कर, देश, समाज और भाषा की जो सेवा की वह आचन्द्रार्क चिरस्थायी रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू हरिश्चन्द्र व वीरेशलिंगम पंतुलु

श्री द० सूर्यप्रकाशराव

संक्रांति काल में क्रांति पुरुष उत्पन्न होते हैं। वे दैवीशक्ति से प्रेरित हो कर, इस लोक में आते हैं। अतः उनका तेज प्रखर होता है। वे अपनी बहुमुखी प्रज्ञा से, अपने समय की कङ्काल दशा का निवारण करके, एक नयी जागृति का सञ्चार करते हैं। अतः वे युग-निर्माता, युग-प्रवर्तक और युग-परिवर्तक कहलाते हैं। काफी लम्बे अर्से पर ही, ऐसे कारण-जन्मों का सृजन होता है। यह भगवान की लीला है।

ये महान पुरुष, राजनीति आदि कई क्षेत्रों में उत्पन्न होते हैं। वास्तव में उन सब में दैवी प्रेरणा होती है। वे सत्यवादी व दृढ़व्रती होते हैं, बहु विषयों में, उनके समान लक्षण होते हैं। ई० उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में, ऐसे पुण्य पुरुषों का जन्म साहित्य-क्षेत्र में भी हुआ।

हिन्दी साहित्य संसार में, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द और आन्ध्र साहित्य लोक में, राव बहादुर कन्दुकूरु वीरेशलिंगम पन्तुलु युग पुरुष थे। उनमें दैवी शक्ति थी। दोनों ने अपने-अपने साहित्यों में युग-परिवर्तन पैदा किया। उनके अद्‌भुत कर्म देख कर प्रकाण्ड पण्डित और साहित्य महारथी परमाश्चर्यमग्न होते हैं।

बाबू हरिश्चन्द्र के बारे में आचार्य श्री रामचन्द्रजी शुक्ल का कथन देखिये—वे सिद्ध वाणी के अत्यन्त सरस हृदय कवि थे। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिमा के बल से, एक ओर तो वे पद्माकर और द्विज देव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बङ्ग देश के मधुसूदनदत्त और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का यह सुन्दर सामञ्जस्य, भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

आन्ध्र साहित्य महारथी, श्री चिलकमर्ति लक्ष्मी-नरसिंहम पंतुलु, श्री वीरेशलिंगमजी के विषय में, यह लिखते हैं—महान वीर, कर्मशूर, आस्तिक मतावलम्बी समाज सुधारक, वचन-रचना-पितामह, शताधिक ग्रन्थ कर्ता, महान दाता और महान कवि, वीरेशलिङ्गम महामह का चरित्र मङ्गलदायक हैं।

जनन व बाल्य—दोनों महान पुरुषों का जन्म करीब एक ही समय में हुआ। ई० सन् १८५० में बाबू हरिश्चन्द्र, गङ्गा नदी के किनारे काशी क्षेत्र में विश्वनाथजी की चरण-सेवा में उत्पन्न हुए तो ई० १८-४८ में श्री वीरेशलिङ्गम पन्तुलु, गोदावरी नदी के किनारे, राजमहेन्द्रि में, श्री मार्कण्डेयस्वामी (वहाँ के शिवजी का नाम) के सन्निधान में उदित हुए। बाबू हरिश्चन्द्रजी के पिता, श्री गोपालचन्द्र अच्छे पण्डित और कवि थे। वैसे ही श्री वीरेशलिङ्गम के पिता, सुब्बाराय, पद्य काव्यों के निष्णाता थे। दोनों के पिता अपने यशस्वी बालकों के बाल्य-काल में ही दिवङ्गत हुए। इस प्रकार दोनों साहित्य महारथी बाबू हरिश्चन्द्र तथा वीरेशलिङ्गम, गङ्गा-गोदावरी के वायु सेवन से परार्थजीवी और प्रतिभाशाली हो गये।

समय—जिस समय ये पुण्य पुरुष अवतरित हुए उस समय की राजनैतिक सामाजिक आर्थिक व धार्मिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी। सब जगह उथल-पुथल मची थी। १८५७ में बल्वा हुआ। उसके उपरान्त, १८५८ में हिन्दुस्तान के राज्य की बागडोर रानी विक्टोरिया के हस्तङ्गत हुई। इस मुल्क में अँग्रेजी शासन सुस्थिर हो गया। अँग्रेजी भाषा का बोलबाला होने लगा। उसकी धाक जमने लगी। सभी देशी भाषाएँ निस्तेज सी हो गयीं। देशी साहित्य नहीं के बराबर था साहित्य शैली का एक निर्दिष्ट रूप नहीं था। नाटक, उपन्यास, निबन्ध, इतिहास पत्र-पत्रिकायें आदि साहित्यिक अङ्गों की विविधता प्रामाणिक रूप में नहीं थी। साहित्य में शिथिलता आ गई। रीतिकालीन अश्लील श्रृङ्गार किसी को नहीं भाता था। जनता नयी चेतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व जागृति की प्रतीक्षा करती थी। उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध अँग्रेजी साहित्य का स्वर्ण काल था। कीट्स, शैली, बायरन, वर्डसवर्थ आदि मधुर व तेजस्वी कवि, कार्लाइल, रस्किन आदि गहरे विचारक उत्पन्न हुए और अपने साहित्य को उर्वर बनाया। उसका असर देशी साहित्यों पर भी पड़ा है।

धर्म-सम्बन्ध में भी आतङ्क छाने लगा। ईसाई पादरियों के प्रचार से और मुसलमान मुल्लाओं के जोर से हिन्दू धर्म पर प्रहार पर प्रहार होने लगा। उस बला से जाति को बचाने के लिए, महादेव गोविन्द रानाडे और भण्डारकर ने बम्बई में, दयानन्द सरस्वती ने पञ्जाब में, राममोहनराय और केशवचन्द्रसेन ने बङ्गाल में तथा वीरेशलिङ्गम ने आन्ध्र प्रान्त में, प्रार्थना-समाज, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि की स्थापना करके, एकेश्वरोपासना का मार्ग सँवारा।

समाज-दुर्दशा और भी खटकती थी। अतिबाल्य-विवाह, वृद्धविवाह, विधवाविवाह का निषेध, वेश्या-गमन, अफसरों की रिश्वतखोरी, मूढ़ पण्डितों के दुराचार, पीठाधिकारियों के अनुयायियों के व्यभिचार सर्वत्र व्याप्त थे। अँग्रेजी राज सत्ता के सामने हमारी जनता हतवीर्य-सी दिखाई पड़ी। उसमें नयी जान फूँकने का श्रेय श्री हरिश्चन्द्र और वीरेशलिङ्गम को मिला है।

स्वभाव—महान् पुरुषों का स्वभाव एकसा होता है। वे अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि होते हैं। उनका हृदय नवनीत समान होता है, वैसे ही हरिश्चन्द्र और वीरेशलिङ्गम थे। उनकी बुद्धि का तेज निरुपमान था। छुटपन से ही उनको विद्या का शौक था। वीरेशलिङ्गम पन्तुलु ने किशोर दशा में संस्कृत की बाल-रामायण, अमरकोश, और रघुवंश काव्य का अध्ययन किया। अनन्तर आन्ध्र के आन्ध्रनाम संग्रह, रुक्मिणी कल्याण, वसु-चरित्र की पढ़ाई पूरी की। वे विद्या प्रेमी थे। क्लास में वे सबसे अव्वल रहते थे, १८६० में वे एक अँग्रेजी पाठशाला में भर्ती हुए और १८७० में मेट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। १८७१ वे एक न एक स्कूल में अध्यापन करते थे। आखिर राजमहेन्द्रि के गवर्नमेन्ट आर्ट्स कालेज के प्रधान तेलुगु पण्डित बन गए और कुछ समय बाद, मदरास प्रेसिडेन्सी कालेज के भी पण्डित हो चुके। हर जगह उनका बड़ा मान था। १८८७ से १९११ तक, वे मदरास यूनिवर्सिटी के परीक्षक थे। उस ओहदे में रहते उन्होंने उन दिनों बीस हजार रुपये कमाये और सारा धन दान-धर्म में दे दिया।

वे बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने चालीस हजार रुपये की अपनी सारी जायदाद हितकारिणी समाज को दान में दे दी। उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं रखा। वे कई धर्म-संस्थाओं के स्थापन-कर्ता थे। १८७४ में धवलेश्वरम् में एक कन्या विद्यालय, १८७८ में राज-महेन्द्रि में समाज-सुधार-सङ्घ, प्रार्थना समाज, आदि को कायम किया। राजमहेंद्रि का उनका वीरेशलिंगम हाईस्कूल आज एक यूनिवर्सिटी जैसा है। उसमें हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उन सभी संस्थाओं की जान वे ही थे।

श्री वीरेशलिंगम पंतुलु तीर्थराज प्रयाग के समान थे। उनमें गङ्गा, यमुना और सरस्वती की धारायें एकत्र हुईं। लोक पावनी गङ्गा की भाँति उनके धर्म प्रचार ने, पाप नाशिनी यमुना की तरह उनके स्त्री-उद्धरण आन्दोलन ने और सरस्वती की नाईं उनकी कविता झरी ने आन्ध्र प्रान्त में प्लावित हो कर जनता में अखण्ड चेतना पैदा कर दी। उसके अमृत फल आज भी पाये जाते हैं। उनके लिखे सैकड़ों ग्रंथ आज भी नई जागृति का सञ्चार करते हैं। ऐसे महान पुरुष १९१९ में, सत्तर वर्ष की उम्र में स्वर्गवासी हुए।

बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी भी निराली घटनाओं से भरी है। ३५ वर्ष के वय में उनका देहान्त हुआ। इतने अल्प काल में ही उन्होंने करामात दिखाई। १७० ग्रन्थ लिखे। स्वभाव से वे नरम दिल और परले सिरे के दानी थे। बचपन की स्कूली पढ़ाई में उनका जी नहीं लगता था। लेकिन घर पर ही कई भाषाओं का घनिष्ठ परिचय प्राप्त कर चुके। मराठी, गुजराती, मार-

(शेष पृष्ठ २७० पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

सूर और उनका साहित्य—लेखक—डा० हरवंशलाल शर्मा, अध्यक्ष संस्कृत-हिन्दी विभाग, मुस्लिम विश्व विद्यालय, अलीगढ़, प्रकाशक—भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़। पृष्ठ ६००, मूल्य ७)

व्रजभाषा के आदि कवि तथा हिन्दी साहित्य के सूर्य भक्त-कवि सूरदास पर यद्यपि दर्जनों पुस्तकें निकल चुकी हैं, फिर भी प्रामाणिक आलोचनाओं की संख्या अधिक नहीं है। सूर सम्बन्धी भिन्न-भिन्न समस्याओं पर अधिकारी विद्वानों ने गम्भीरता से विचार भी किया है परन्तु एक ही पुस्तक में उन सब का समावेश किसी तद्विषयक विद्वान् द्वारा नहीं किया गया। यह हर्ष की बात है कि डा० शर्मा की प्रस्तुत पुस्तक उस अभाव की पूर्ति करती है। डा० शर्मा सूर-साहित्य के विशेषज्ञ हैं और वर्षों से यूनिवर्सिटी की उच्च कक्षाओं को पढ़ा रहे हैं, अतः इस पुस्तक में उनके दोनों ही गुण प्रत्येक पृष्ठ पर दृष्टिगोचर होंगे।

इस पुस्तक में ११ अध्याय हैं। १६ पृष्ठ की भूमिका के उपरान्त प्रथम अध्याय में सूर का 'जीवन-चरित'; द्वितीय अध्याय में 'सूर का साहित्य'—विषयों पर गम्भीरता से विचार किया गया है। तीसरे और चौथे अध्याय में सूर-साहित्य की पृष्ठ-भूमि तथा भक्ति-आन्दोलन का विवेचन है। इस प्रसङ्ग में पूर्ववर्ती एवं समसामयिक सभी मतों तथा सम्प्रदायों का सूक्ष्म अध्ययन मिलता है। पञ्चम और षष्ठ अध्याय पुर साहित्य के मन्थन का परिणाम है। कृष्ण के विक के लिए इतना अध्यवसाय हिन्दी में प्रथम बार दृष्टिगोचर होता है। अन्तिम पाँच अध्याय दार्श तथा साहित्यिक आलोचना में लगे हैं। इस प्र इस पुस्तक में भक्त-कवि सूर का विशद अध्ययन है

डा० शर्मा ने इस ग्रन्थ में कई मौलिक उ वनायें प्रस्तुत की हैं। भक्ति-आन्दोलन में दक्षिण इतना अधिक हाथ रहा है कि भक्ति का जन्म विकास वहीं माना जाता है। हिन्दी में आने से संस्कृत तथा तमिल, दोनों ही भाषाओं में इ प्रसार हो चुका था। इस आन्दोलन ने दक्षिण उत्तर को एक बार फिर मिला दिया, सूर और तु इसी संयोग की सन्तान हैं। विद्वान् लेखक ने व्यापक अध्ययन से जो निष्कर्ष निकाले हैं उनका र्थन सबल युक्तियों से किया है। यहाँ विवरण सिद्धान्त विस्तार से प्रकाश में आते हैं।

—डॉ० ओमप्र

कविता

रागविराग—सम्पा०—श्री रघुपतिसहाय 'फि प्रकाशक—इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद २१०, मूल्य २॥)

इस संग्रह में उर्दू के कुछ कवियों के श्र बद्ध प्रबन्ध-काव्यों से कुछ चुने हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...त्र किये गये हैं। कवियों में हाली, नाजिर, अख्तर, ...श, शौक, इबरत तथा अल्लामा तबातबाई हैं। ...श्चय ही इन प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त अनेक ...ज्ञात प्रबन्ध काव्यों को देवनारी लिपि में प्रकाशित ...ने की आवश्यकता है। आशा है 'फिराक' साहब ...कम ज्ञात तथा अज्ञात कवियों के मुक्तक व प्रबन्ध ...व्यों के प्रकाशन का भी अवश्य प्रयत्न करेंगे।

प्रस्तुत 'रागविराग' संग्रह सुन्दर है परन्तु उसका ...म संग्रह के विषय पर प्रकाश नहीं डालता।

—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

वर्षान्त के बादल—लेखक–श्री 'अंचल', प्रका०- ...हित्य भवन लिमि०, इलाहाबाद। पृष्ठ ९२, मू० ३)

प्रस्तुत संग्रह में कवि की ५४ कविताएँ हैं। ...चल' हिन्दी कविता में प्रेम, सौन्दर्य सम्बन्धी रच- ...एँ करने में प्रसिद्ध हैं। बादल, वर्षा, शरद निशा ...विषय वस्तु के अलावा वैयक्तिक अनुभूति सम्बन्धी ...वताएँ मर्मस्पर्शी हुई हैं। 'मेरी जलन' 'बँटवारा', ...से मेरा प्यार न छीनो' इस दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। ...रिचय का प्रथम चरण', 'बौरी यौवन की अमराई' ...वताएँ नरेन्द्र शर्मा के गीतों का स्मरण कराती हैं। ...अतुकान्त हैं—'शारदी संध्या' आदि। एक कविता ...लिदास' को संबोधित है। कवि इन प्रयोगों में ...सफल मालूम होता है जहाँ वैयक्तिक उद्‌गार गीतों ...लय में उतार देने की चेष्टा की है। भाषा सरल है। ...उदाहरण देखिए—

...ले-काले मेघ तुम्हारे बिजली की ज्वाला मेरी,
...मादक बरसात तुम्हारी, लपटों की माला मेरी.....।"

—बँटवारा

"दीपों की माला जलती है,
अँधियारी जगमग होती है,
तारों की पाँत मचलती है।" —गीत

"जा रहे किस प्रिया की सुध से घिरे,
नयी आकाँक्षा भरे वर्षान्त के बादल,
जा रहे वर्षान्त के बादल....... "

—'वर्षान्त के बादल'

"तुम कहीं पीछे बँधा है सूत्र रक्षा का तुम्हारा,
है मुझे लगता यही प्रतिक्षण मुझे तुमने पुकारा...."

—मौन ममता

—त्रिलोचन पाँडे

उपन्यास

आग और पानी—लेखक–श्री रघुवीरशरण, मित्र। प्रकाशक–भारतीय साहित्य-प्रकाशन, मेरठ। पृष्ठ ५००, मूल्य ७)

इस वृहत् उपन्यास में लेखक ने चाणक्य का इतिवृत्त लिया है, अतः ऐतिहासिक है। चाणक्य का व्यक्तिगत जीवन इतिहासानुमोदित है। चन्द्रगुप्त मौर्य को माना तो मुरा दासी से उत्पन्न, लेकिन पालन-पोषण मौर्य सरदार के यहाँ कराया है। पात्रों में सुवासिनी 'प्रसाद' ने भी रखी थी। यहाँ उनका प्रवेश एकाएक नहीं होता, वंश-परम्परा दी है। चाणक्य का काला रङ्ग, विरूपता क्यों प्रसिद्ध है इसकी उद्‌भावना भी लेखक ने की है। पहले वह सुन्दर था, पिता की मृत्यु का बदला लेने को छिपाने का एक ढङ्ग था। उपन्यास में कथा-प्रवाह तो ठीक है लेकिन भाषा आपत्तिजनक है। अँग्रेजी वाक्य-विन्यास, मुहावरों का अविकल अनुवाद, शब्द और उलझी हुई कल्पना बाधक होती हैं।

अमर बेल—लेखक–श्री वृन्दावनलाल वर्मा। प्रकाशक–मयूर प्रकाशन, झाँसी। पृष्ठ ४७७, मू० ५)

हिन्दी में नवीन दिशा-सूचक उपन्यास है। सामाजिक पृष्ठभूमि में ग्रामीण जनता के विचारों, परस्पर व्यवहार, सुधार, जमीदारों का दृष्टिकोण व समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। सरकारी योजनाएँ, नवीन दृष्टि की स्त्रियाँ, विभिन्न रीति नीतियाँ एक साथ व्यञ्जित हुई हैं। एक-एक पात्र—राघवन, डा० सनेही, देशराज, टहल, घाटी वाली आदि—वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। महत्वपूर्ण है सामाजिक वैषम्य का हल जो डा० सनेही ने उपस्थित किया है, अध्यात्म और विज्ञान का सामञ्जस्य जो टण्डन जैसे साम्यवादी व्यक्ति का दृष्टिकोण बदल देता है। प्रकृति चित्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानीय वर्णन, भाषा कौशल तो वर्मा जी का उच्च है ही। इसमें घटनाएँ, पात्र भी सच्चे हैं, यथार्थ की भूमि पर खड़ा है, केवल नाम बदले हैं। हिन्दी उपन्यास में यह रचना विस्तृत आलोचना अपेक्षित है। निस्संदेह एक परम्परा की सूचक मानना पड़ेगी।

काल-भोज—लेखक–र० ब० देसाई, स० सा० पुस्तक माला बनारस। पृष्ठ २९४, मूल्य ४॥)

प्रस्तुत ऐतिहासिक उपन्यास बापा रावल जी की जीवन गाथा से संबद्ध है जिनमें मेवाड़ का इतिहास शुरू होता है। इतिहासकारों के दृष्टिकोण, अन्यान्य जनकथाओं तथा अन्य पुस्तकों के अध्ययन से लेखक ने इतिवृत्त तैयार किया है। हारीत मुनि, खाखी जोगियों का सम्प्रदाय, इस्लामी प्रगति का चित्रण तत्कालीन भारत का चित्र सामने रखता है। इस प्रवाह को आठवीं सदी के पूर्व में कालभोज ने ही रोका। ऐसा लेखक का विश्वास है। भाषा परिमार्जित हिन्दी है। कथोपकथन सरल व व्यवहारिक है। कुछ शब्दों का गुजराती प्रयोग भी मिलता है जो हिन्दी में जरा बदल कर प्रयुक्त होते हैं।

चम्पा—लेखक–भैयालाल शर्मा। प्र०–रसिकलाल शर्मा, विंध्य प्रदेश। पृष्ठ १०७, मूल्य १)

एक लघु ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें कुछ पात्र काल्पनिक हैं। नायिका चम्पो की प्रेरणा मुगलकालीन स्त्रियों से मिली है। जिन्हें विवश होकर शाही महलों में रहना पड़ा है। वह भी जहाँगीर की प्रेमिका बनकर रहती है। बीरसिंह जू देवका (ओरछा के अधिपति) इसमें वृत्त आया है जिनकी सहायता से सलीम अबुल फजल के मरवाने में सफल हुआ था। आरम्भ में वृत्तांत कुछ उखड़ा हुआ प्रतीत होता है जैसे लेखक एक दम अध्याय पर अध्याय पूरे कर रहा हो।

—त्रिलोचन पाण्डेय

राजनीति

भारत विभाजन की कहानी—लेखक–ऐलन कैम्पबेल जान्सन, अनुवादक–श्री रनवीर सक्सेना, प्रका०–सस्ता सहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ ३३०, मूल्य ४

स्वराज्य प्राप्ति से दो-ढाई महीने पहिले ला माउण्टबेटन हिन्दुस्तान को सत्ता सौंपने और भारत को दो टुकड़ों में बाँटने आए थे। उनके साथ प्रेस एटैच के रूप में इस पुस्तक के लेखक भी थे। आपने दिन प्रति दिन की घटनाओं को बिना किसी पक्षपात के लिपिबद्ध करके "मिशन विथ माउण्ट बेटन" नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। प्रस्तुत हिन्दी पुस्तक इसी अँग्रेजी पुस्तक का संक्षिप्त रूपान्तर है। इस पुस्तक के पढ़ने से अनेक गुप्त बातों का प्रगटी करण हो जाता है और विभाजन सम्बन्धी सारी जानकारी भ प्राप्त हो जाती है।" भारत के हाथ में सत्ता सौंप की पृष्ठभूमि क्या थी, ब्रिटिश सरकार को किन-कि परिस्थितियों का मुकाबला करना पड़ा, भारतीयों क किस लाचारी की अवस्था में विभाजन स्वीकार कर के लिए बाध्य होना पड़ा, मुस्लिम लीग ने अपन स्वार्थ सिद्धि के लिए रास्ते में क्या-क्या अड़चनें पैद कीं, पाकिस्तान स्वीकार होने पर किस प्रकार भार का अङ्ग-भङ्ग हुआ, विभाजन से क्या-क्या समस्या उत्पन्न हुईं, किस तरह से पृथक् राष्ट्र का निर्माण हुआ और किस प्रकार भारत से अपनी सत्ता हटा लेने प भी भारत और ब्रिटेन के सम्बन्ध मधुर बने रहे—य सब बातें इस पुस्तकके पढ़ने से विदित होंगी। पुस्त की अनेक घटनाएँ बड़ी मनोरञ्जक हैं। राजनीति और ऐतिहासिक दृष्टि से तो पुस्तक अत्यन्त महत्वपू है ही, मनोरञ्जन और साधारण जानकारी के लि भी यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। ऐसी सुन्दर पुस्त का हिन्दी संसार में भारी स्वागत होना स्वाभाविक है

आधुनिक राजनीति के मूल-तत्व—लेखक प्रो० विश्वनाथ राय एम० ए०, प्रकाशक–स्टूडेण्ट फ्रेन्ड्स, इलाहाबाद। पृष्ठ २५५, मूल्य ३॥)

यह प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी जाने के कारण अब हिन्दी में सभी विषयों की उत्तम त्तम पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। प्रस्तुत पुस्तक रा नीति पर एक अच्छी रचना है। इसमें राजनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी जितने वाद और मान्यतायें हैं तथा आधुनिक-काल में जितने वाद चले हैं सभी का विस्तृत विवेचनात्मक परिचय इसमें दिया गया है। आदर्शवाद, पूँजीवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, अराजकतावाद, फासिस्टवाद आदि सभी की चर्चा इसमें है। सब मिलाकर २० अध्यायों में एक-एक का वर्णन किया गया है। अन्त में सर्वोदय की भी चर्चा है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस विषय की सहायक पुस्तकों का नाम देकर लेखक ने बड़ा उपयोगी काम किया है। उससे पाठक उस विषय की अन्य सामग्री पढ़ कर अपना अध्ययन बढ़ा सकते हैं। लेखक ने किस या किन अँग्रेजी पुस्तकों के आधार पर यह ग्रन्थ तैयार किया है उनका भी उल्लेख कर देते तो ठीक रहता।

खादी द्वारा ग्राम विकास—लेखक–श्री प्रभूदास गांधी, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ ६०, मूल्य १)

खादी और ग्रामोद्योग द्वारा गाँवों का विकास किस प्रकार हो सकता है—इसका सप्रमाण वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है। आँकड़े देने से पुस्तक राजनीति और अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए बड़ी उपयोगी हो गई है।

स्वाधीनता और उसके बाद—ले०–पण्डित जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशक–पब्लिकेशन डिवीजन भारत सरकार, नई दिल्ली। पृष्ठ ४४५, मूल्य ५)

बड़े आकार की इस सजिल्द सुन्दर पुस्तक में नेहरू जी के व्याख्यानों का संकलन है जो उन्होंने स्वाधीनता मिलने के बाद भिन्न-भिन्न अवसरों पर दिए हैं। एक स्थान पर इन भाषणों को संग्रह करके प्रकाशन विभाग ने बड़ा उपकार किया है। नेहरू जी के विचार एक स्थान पर संग्रह करना राजनीति के विद्यार्थियों के लिए बड़ा लाभदायक हुआ है। विद्यार्थी ही नहीं सर्वसाधारण भी नेहरू जी के विचार जानने के उत्सुक होंगे। अतः हम इस पुस्तक का हृदय से स्वागत करते हैं। व्याख्यान सभी विषयों पर हैं और सभी के लिए उपयोगी हैं।

भारत सरकार के प्रकाशन—

सरल पंचवर्षीय योजना—पृष्ठ ७२, मूल्य ||)

पंचवर्षीय योजना में क्या है इसे इस पुस्तक में बड़ी सरलता से समझाया गया है। पुस्तक में १२ अध्याय हैं और उनमें विभिन्न विभागों का वर्णन है।

अन्तरिम क्षतिपूर्ति योजना—पृष्ठ ५०, मू० =)

पुनर्वास मन्त्री श्री अजितप्रसाद जैन ने इस पुस्तक में विस्तार से भारत सरकार की क्षतिपूर्ति योजना को समझाया है और आँकड़े देकर यह बताया है कि सरकार इस मद में क्या कर रही है।

औद्योगिक नीति और पंचवर्षीय योजना—पृष्ठ ४०, मूल्य ।)

उद्योगों के सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति का इसमें वर्णन है। यह भी बताया गया है कि कुटीर-उद्योगों के लिए सरकार क्या करना चाहती है।

भारत की कहानी—पृष्ठ ८१, मूल्य |||)

श्री विश्वम्भर नाथ पाण्डे, श्री इलाचन्द्र जोशी और श्री रामचन्द्र टण्डन द्वारा प्रयाग रेडियो से प्रसारित वार्ताओं का इस पुस्तक में संकलन है। इन वार्ताओं के पढ़ने से प्राचीन भारत का एक सुन्दर चित्र सामने आ जाता है।

देश विदेश की लोक कथाएँ—पृष्ठ ७२, मूल्य १)

इस पुस्तक में १६ लोक-कथाओं का संकलन है जो विभिन्न लेखकों की लिखी हुई हैं और भिन्न-भिन्न देशों से सम्बन्ध रखती हैं। सभी कहानियाँ सचित्र हैं जिससे उन देशों की वेष-भूषा का भी ज्ञान होता है।

प्राणदण्ड—लेखक–श्री परिपूर्णानन्द वर्मा, प्रका०-मयूर प्रकाशन, झाँसी। पृष्ठ ३०५, मूल्य ५)

पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में प्राणदण्ड की प्रथा पर विचार हुआ है। लेखक ने इसका मूल और विभिन्न देशों में प्रचलित तरीके बतलाए हैं। चीन, अमेरिका, चिली, भारत आदि देशों की प्रथाओं, पद्धतियों का उल्लेख किया है। विभिन्न चित्र इसकी प्रणालियाँ प्रस्तुत करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अनेक जेलों के निरीक्षण का लेखक को व्यक्तिगत अनुभव है। उनका कहना है प्राणदण्ड और इसका विधान दोनों ही निरर्थक हैं। अपराध रोकने में दण्डों से कोई सहायता नहीं मिलती। इसे हटा देना ही कल्याणप्रद है। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है और अपने विषय की पूर्ण जानकारी प्रदान करती है।

भूगोल

भूगोल के भौतिक आधार—लेखक—श्रीराम-स्वरूप वशिष्ठ, प्रकाशक—आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ ३२१, मूल्य ६)

प्राकृतिक भूगोल सम्बन्धी इस पुस्तक में उन बातों का वर्णन किया गया है जो व्यक्ति के भौतिक वातावरण को बनाती हैं। पृथ्वी की उत्पत्ति कैसे हुई, सारे जगत से उसका क्या सम्बन्ध है, पृथ्वी के भीतर क्या है, आदि बातें पहले खण्ड में वर्णित हैं। दूसरे खण्ड में पृथ्वी के ऊपर की भौतिक शक्तियाँ जैसे नदी, पहाड़, लहरें, बरफ, झील, आदि क्या और कैसे अपना प्रभाव डालती हैं—इसका उल्लेख है। तीसरे खण्ड में वायु-मण्डल की चर्चा है और चौथे खण्ड में समुद्र और उसके अंगों की। स्थान-स्थान पर चित्र और आंकड़े देकर विषय को बहुत रोचक और आसान बना दिया है। कुल चित्र लगभग १२५ हैं। पुस्तक कालेज के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है किन्तु साधारण पाठक के लिए भी पठनीय है। हम हृदय से ऐसी पुस्तकों का स्वागत करते हैं।

फुटकर

लोमड़ी का मांस—ले०—श्री केशवचन्द्र वर्मा, प्रका०—प्राची प्रकाशन, कलकत्ता। पृष्ठ १२६, मू० २)

पुस्तक में २२ व्यंग्य लेख हैं। इलाचन्द्र जोशीजी ने भूमिका लिखी है। व्यंग्य तीखे तो हैं पर साहित्यिकता साथ है। लगता है श्री जी० पी० श्रीवास्तव से लेकर अब तक हिन्दी में हास्य पुष्ट हो गया है, वह विरोधात्मक व आक्षेप पूर्ण नहीं है। व्यंग्य से सुधार में परोक्ष सहायता मिलती है, उपदेश का प्रच्छन्न कार्य होता है। 'मीरा—एक प्रगतिशील कवयित्री', 'पर-निन्दा में अनन्य रस' लेखक का मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। 'तीन प्रश्न पत्र', 'सोभित कर नवनीत लिए' का परिहास बड़ा मार्मिक है। 'भाषा शास्त्रियों से ज्वलन्त प्रश्न' में कुछ हिन्दी मुहावरों का संकेत है जिन्हें उनकी दृष्टि से बदल देना चाहिए।

—त्रिलोचन पाण्डेय

साम्प्रदायिकता निवारण—लेखक—श्री जगत-नारायण, प्रकाशक—नारायण प्रकाशन मन्दिर, बनारस।

यह पुस्तक पाँच भागों में अलग अलग प्रकाशित हुई है। इन भागों में भारत में प्रचलित भिन्न भिन्न धर्मों के प्रचारकों ने जो उपदेश दिए हैं उनका सङ्कलन बड़ी सरल भाषा में किया गया है। टायप मोटा लगाया गया है और साथ में अनेक रेखा-चित्र देकर विषय को और सरल बनाने की चेष्टा की गई है।

पहले भाग में महर्षि वेदव्यास द्वारा वर्णित हिन्दू धर्म और महात्मा जरथूश्त्र जी के पारसी धर्म का वर्णन है। पृष्ठ ७६, मूल्य ॥≈)

दूसरे भाग में भगवान महावीर के जैन धर्म और गौतम बुद्ध के बौद्ध धर्म की चर्चा है। पृ. ७६, मू. ॥≈)

तीसरे भाग में ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म और सिक्ख धर्म का वर्णन है। पृष्ठ ११२, मूल्य १।)

चौथे भाग में भगवान कृष्ण के कर्म मार्ग, स्वामी रामानुजाचार्य के भक्ति मार्ग और जगद्‌गुरु शंकराचार्य के ज्ञान मार्ग का वर्णन है। पृष्ठ ११२, मूल्य १।)

पाँचवें भाग में सर्व धर्मों का समन्वय दिखाया गया है। इसमें भी पृष्ठ ११२ और मूल्य १।) है।

इन पुस्तकों के लिखने का उद्देश्य साम्प्रदायिकता की भावना को मिटाना है और इस उद्देश्य की पूर्ति में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

कब्ज—लेखक—श्री महावीर प्रसाद जी पोद्दार, प्रका०—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ १६०, मूल्य १॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोद्दार जी प्राकृतिक चिकित्सा के बड़े हामी और विशेषज्ञ हैं। आपने कब्ज होने के कारणों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए इस पुस्तक में उसकी प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन किया है। आज जनता में कब्ज का बड़ा जोर है। शायद ८०-९० प्रतिशत स्त्री-पुरुष उसके शिकार हों। शहरों में इस रोग का अधिक प्रकोप है, विशेषकर पढ़े लिखे लोगों में। इस पुस्तक को पढ़कर उसमें वर्णित कुछ बातों पर भी आचरण किया जाय तो स्वास्थ्य निश्चित रूप से सुधर सकता है।

बाल साहित्य

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली के प्रकाशन—

बूढ़े-बच्चे—लेखक—श्री रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ ८७ मूल्य १।।)—बालकों के अभिनय योग्य मनोरञ्जक ५ नाटकों का संग्रह।

बङ्गाल की लोक कथाएँ—लेखक—श्री मन्मथनाथ गुप्त, पृष्ठ ६५, मूल्य १।।)—सात लोक कथाएँ।

ब्रज की लोक कथाएँ—लेखक—श्री आदर्शकुमारी पृष्ठ ६०, मूल्य १।)—इसमें सात लोक कथाएँ हैं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की भूमिका भी है।

पञ्जाब की लोक कथाएँ—लेखक—श्री प्रतीम पंछी, पृष्ठ ५१, मू० १)—इसमें पञ्जाब की लोककथाएँ हैं।

कथा-मञ्जरी—लेखक—श्री नागार्जुन, पृष्ठ ६०, मूल्य १)—इसमें छोटी-छोटी २० सचित्र कथाएँ हैं।

पाँचों पुस्तकें बड़े आकार में अच्छे मोटे कागज पर मोटे टाइप में सुन्दरता के साथ छपी हैं। बच्चे खूब पसन्द करेंगे और रुचि से पढ़ेंगे।

राजकमल प्रकाशन-दिल्ली के प्रकाशन—

आओ दोस्त बनाएँ—८ पृष्ठ की रङ्गीन चित्रों से सज्जित आर्ट पेपर पर छपी एक कहानी है जिसमें मिल कर रहने का उपदेश है। ऐसी ही एक पुस्तक अँग्रेजी में भी छपी है। मूल्य दोनों का आठ आठ आना है।

भारत निर्माता और नगर व्यवस्था—यह दोनों पुस्तकें भी बालकों को मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से इन विषयों का ज्ञान कराने के लिए लिखी गई हैं। सचित्र हैं। लेखक हैं श्री जगन्नाथ। दोनों के पृष्ठ ३५—३५ और मूल्य आठ आठ आना है।

प्राप्ति-स्वीकार

आत्म दर्शनोपनिषद् एवं ईशवास्योपनिषद्—दोनों के लेखक श्री औधर्णिक लक्ष्मण, विक्रेता आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

आठ-आठ पृष्ठ की दोनों दार्शनिक पुस्तकों की भूमिकाएँ भी आठ-आठ पृष्ठों में हैं।

स्तालिन—लेखक—श्री कृष्णकुमार एम० ए०, प्रकाशक—करैंट पब्लिशर्स, कानपुर। पृष्ठ ८०, मू० ।।)

व्यावहारिक शिक्षा—लेखक—श्री हरिप्रसाद उपाध्याय 'प्रेमी', प्रकाशक—प्रेमी प्रकाशन, ११ राजेन्द्र मल्लिक स्ट्रीट—कलकत्ता। पृष्ठ ३२, मूल्य ।—)

२० व्यावहारिक विषयों पर यह नैतिक शिक्षा देने वाली अच्छी पुस्तक है।

निग्रही परिचय—लेखक—डा० पी० एल० चोपरा, प्रकाशक—निर्माण प्रकाशन, ५१ राइट टाउन—जबलपुर। पृष्ठ ३२, मूल्य ।≶)

साहित्य सर्जक और अद्भुत कवि—लेखक—ऋषभचन्द्र डागा, प्रकाशक—आत्मानन्द जैन सभा—बम्बई। पृष्ठ ४०, मूल्य सदुपयोग।

जैन आचार्य श्री आत्मारामजी के ग्रन्थों और कविताओं का परिचय देने वाली पुस्तक।

ज्ञान-कण—लेखक व प्रकाशक—आचार्य वि० श्री० चौधरी, सांगवी पू० ख०। पृष्ठ ४०, मूल्य ।।।) आदर्श वाक्यों का संग्रह है।

एवरेस्ट विजय (नाटक)—लेखक—श्री ओंकारनाथ सक्सेना, प्रकाशक—खेमनारायण सक्सेना, न्यूज पेपर एजेन्ट, भिण्ड। पृष्ठ ३०, मूल्य ।।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का-समाधान

१—अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

स्त्री का यह चित्रण आपकी दृष्टि में क्या न्यायपूर्ण है ?

—राधेश्याम, लखीमपुर खीरी

—यह सर्वथा उचित है और न्यायपूर्ण है क्योंकि बुद्ध के लिए यशोधरा की आँखों में आँसू थे और राहुल के लिए आँचल में दूध। इन्हीं दोनों द्रवों द्वारा स्त्री पत्नी रूप से और माता रूप से पुरुष को अपना जीवन रस देती है। इसमें स्त्री के त्याग की प्रशंसा है। विशेष ज्ञान के लिए 'साकेत एक अध्ययन' पढ़िये।

* * *

२—कबीर के निम्न पद के रूपक को स्पष्ट करने की कृपा कीजिए—

"कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन काठे के बनल खटोलना, तापर दुलहिन सूतलहो,
उठौ री सखी मेरी माँग सँवारौ, दुलहा मोसे रूसल हो।
आय यमराज पलंग चढ़ि बैठे, नैनन आँसू टूटल हो,
चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुँदिसि धू-धू ऊठल हो।
कहत 'कबीर' सुनौ भई साधो, जग से नातौ छूटल हो॥"

—गिरिजाशङ्कर चतुर्वेदी, बादिलपुर (बलिया)

—इस पद में चन्दन काठ का शरीर का अर्थ है और दुलहिन आत्मा है। वह अपने पति देव परमात्मा से बेसुध पड़ी है, इसीलिए परमात्मा उससे रुष्ट है। किन्तु उसे पति-गृह जाना ही पड़ेगा और फिर शव के उठने और धू-धू जलने का दृश्य सामने आ जाता है। माँग सँभालने से अर्थ अन्त समय पर मनुष्य का परमात्मा के पास जाने से है।

* * *

३—गुप्तजी की उर्मिला और यशोधरा के विरह में क्या अन्तर है ? तथा किसका विरह श्रेष्ठतर कहा जा सकता है ? —बनवारीलाल गुप्त, सहसवान (बदायूँ)

—इस शङ्का का उत्तर सविस्तार दिये जाने योग्य है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि यद्यपि उर्मिला का विरह अधिक तीव्र है और कहीं-कहीं करुणात्मक की कोटि में आता है तथापि जो सात्विकता और त्यागमय स्वाभिमान यशोधरा के विरह में है वह उर्मिला के विरह में नहीं। यह अवश्य मानना पड़ेगा कि उर्मिला लक्ष्मण को कर्त्तव्य-च्युत नहीं देखना चाहती किन्तु उसमें कर्तव्य-पालन में सहायक होने का इतना उत्साह नहीं जितना कि यशोधरा में। उर्मिला का विरह इस कारण और भी तीव्रतर हो गया है कि जहाँ यशोधरा के साथ जी बहलाने को राहुल था, वहाँ उर्मिला के साथ कोई नहीं। जहाँ यशोधरा राहुल के लिए जी रही थी वहाँ उर्मिला लक्ष्मण के लौटने की प्रतीक्षा में जी रही थी। लक्ष्मण के लौटने की अवधि निश्चित थी, वहाँ बुद्ध की अनिश्चित। सात्विकता की दृष्टि से यशोधरा का विरह सराहनीय है और तीव्रता और वेदना की दृष्टि से उर्मिला का।

* * *

४—साकेत के पञ्चम सर्ग में गुप्तजी ने जो यह वाक्य लिखा है कि "बैठी नाव निहार लक्षणा व्यञ्जना, गङ्गा में गृह वाक्य सहज वाचक बना।" यहाँ कवि ने शब्द-शक्ति के तीनों नामों का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसका मतलब क्या है ? किस उद्देश्य से कवि ने इसका प्रयोग किया है ?

—आर० के० मंजुला बाई, माण्डया (मैसूर)

—लक्षणा का अर्थ तभी लगता है जब वाचक अर्थ में बाधा पड़ती है। साहित्य-शास्त्र में जो उदाहरण दिया जाता है वह 'गङ्गायां घोषः' अर्थात् 'गङ्गा में गाँव'। वाचक अर्थ में गङ्गा के भीतर गाँव का होना सम्भव नहीं, इससे लक्षणा द्वारा अर्थ लगाया जाता है गङ्गा-किनारे का गाँव। इस पर व्यञ्जनायें चलती हैं कि यह शीतल है और पवित्र है और व्यञ्जना पर भी एक व्यञ्जना और चलती है कि यहाँ चलकर रहना चाहिए। रामचन्द्रजी के नाव में चढ़ने से गङ्गा में घर वाक्य शब्दशः सार्थक हो गया। वहाँ चूँकि राम का पूरा परिवार था इसलिए घर शब्द भी वाचक और लाक्षणिक दोनों में ही सार्थक हो गया। चूँकि रामचन्द्रजी वहाँ विराजमान थे इसलिए वह पवित्र था। अतः व्यञ्जना की भी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ी। वाचक शब्द से ही सब काम चल गया। लक्षणा और व्यञ्जना बैठी ही रह गयीं। उनके कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता नहीं पड़ी। तीनों शक्तियों का काम एक ही शक्ति से चल गया।

* * *

५—"नूतन काव्य-कलाधर" में सूरदास के निम्न पद का स्पष्टार्थ कर सकें तो कृपा होगी—

"अपनी भक्ति दे भगवान।
कोटि लालच जो दिखावहु नाहि नै रुचि आन।
जरत ज्वाला, गिरत गिरिते, स्वकर काटत सीस।
देखि साहस सकुच मानत राखि सकत न ईस॥
कामना करि कोपि कबहूँ करन कर पशु घात।
सिंह सावक जात गृह तजि इन्द्र अधिक डरात॥"

—सुधाकर तिवारी, विश्वम्भरपुर (गाजीपुर)

—इस पद में योग की शक्तियों की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्ता दी गयी है। मनुष्य तप और योग के द्वारा बड़ी-बड़ी शक्तियों और सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। रावण की भाँति वह अपने सिर काटकर महादेवजी को चढ़ा सकता है किन्तु फिर भी महादेवजी उसकी रक्षा न कर सके। सूरदासजी तुलसी की भाँति पूरे समन्वयवादी नहीं थे। इसमें शैव योगियों पर व्यंग्य है। ऐसी सिद्धियों का लोभ दिखाने पर भी मैं भक्ति को छोड़ नहीं सकता। योग की सिद्धियों से जो भक्ति प्राप्त होती है और साहस आता है उसे देख कर देवता भी लज्जित हो जाते हैं, पर वह निरर्थक है। सकाम यज्ञों में जो पशुघात होता है उससे भी सिद्धि प्राप्त होती है। सिंह सामने नहीं ठहरता। इन्द्र भी हार मानता है। परन्तु भक्ति के विना ये सारी बातें व्यर्थ हैं।

* * *

श्री के० श्रीरङ्ग, लश्कर—सामाजिक नाटकों के सम्बन्ध में आपको पूरा ज्ञान डा० नगेन्द्र लिखित 'आधुनिक हिन्दी नाटक' से हो जायगा।

श्री क्षितीश्वरसिंह 'कन्हैया', अगरौली (बलिया)—महाकवि तुलसी के वैराग्य उत्पन्न करने की घटना रत्नावली से सम्बन्धित है, विद्यावती से नहीं।

श्री हिंगलाजसिंह बारेठ, मौलासर—श्री सियारामशरण गुप्त की सम्पूर्ण पुस्तकें साहित्य-सदन—चिरगाँव से छपी हैं। वे तथा महादेवीजी की समस्त पुस्तकें साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से भी मिल सकती हैं।

श्री कृष्णदत्त शर्मा, मोहाना—द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत तथा मीरा सगुणोपासिका थीं या निर्गुणोपासिका—इन विषयों का विस्तृत विवेचन 'हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि' में देखिए।

श्री प्रभूदयालजी गुप्त, नेवलगञ्ज (इटावा)—सूरदासजी जन्मान्ध थे या नहीं इस विषय पर कई लेख साहित्य-सन्देश में निकल चुके हैं—उन्हें देखिए। श्री प्रभूदयाल मीतल का 'सूर-निर्णय' भी देखिए।

श्री कृष्णानन्द पन्त, अध्यापक, विन्ता (अल्मोड़ा)—देव बड़े हैं या बिहारी—यह विवाद बहुत पुराना पड़ गया, इसे उठाना अब ठीक नहीं। देव उत्कृष्ट कवि हैं—इसे कौन नहीं मानेगा। इस सम्बन्ध में 'देव और बिहारी' तथा 'बिहारी और देव' नाम की पुस्तकें पढ़िए।

श्री वैदेहीशरणसिंहजी, मीरमैंती (भागलपुर)—गुप्तजी ने 'साकेत' का नाम 'साकेत' क्यों रखा इसका उत्तर स्वयं भूमिका में दे दिया है। डा० नगेन्द्र ने भी अपनी पुस्तक 'साकेत एक अध्ययन' में इस पर प्रकाश डाला है। संक्षेप में इतना ही कहना है कि लक्ष्मण को महत्ता देते हुए भी साकेत की कथा राम से पृथक् नहीं हो सकती थी। इसलिए उन्होंने ऐसा नाम रक्खा जिसमें राम-लक्ष्मण दोनों को स्थान मिल जाता। इसकी घटनाएँ सब साकेत ही में घटी हैं। युद्ध-स्थल की सारी घटनाएँ हनुमानजी ने कह दी थीं। विवाह से पूर्व की घटनाएँ उर्मिला के विरह-निवेदन में आ गयीं और चित्रकूट की घटनाएँ भी भरत और राजमाताओं के पहुँच जाने से साकेत की ही हो जाती हैं। पूरा साकेत वहीं उपस्थित हो जाता है। इसलिए साकेत नाम सार्थक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा आलोचनात्मक प्रकाशन

सुमित्रानन्दन पन्त—शचीरानी गुर्टू [पन्तजी के काव्य और जीवन पर समालोचनात्मक लेखों का संग्रह] ६)

महादेवी वर्मा—शचीरानी गुर्टू [महादेवी वर्मा के काव्य पर प्रतिनिधि लेखों का सङ्कलन] ६)

महाकवि सूरदास—नन्ददुलारे वाजपेयी [सूर के काव्य-जीवन और भक्ति का गम्भीर विवेचन] ४)

आलोचक रामचन्द्र शुक्ल—गुलाबराय, विजयेन्द्र स्नातक [शुक्लजी के जीवन और कृतित्व का विश्लेषण] ६)

काव्य के रूप—गुलाबराय [काव्य के रूपों का शास्त्रीय विवेचन] ४।।)

सिद्धान्त और अध्ययन—गुलाबराय [भारतीय तथा पाश्चात्य समीक्षा शैली का मार्मिक विवेचन] ६)

हिन्दी काव्य-विमर्श—गुलाबराय [हिन्दी के प्राचीन और नवीन कवियों का आलोचनात्मक परिचय] ३।।)

हिन्दी कविता में युगान्तर—डा० सुधीन्द्र [आधुनिक हिन्दी कविता का अध्ययन] ८)

रोमांटिक साहित्य-शास्त्र—देवराज उपाध्याय [रोमांटिक साहित्य का शास्त्रीय एवं आलोचनात्मक अध्ययन] ३।।)

कामायनी-दर्शन—कन्हैयालाल सहल, विजयेन्द्र स्नातक [कामायनी के छः सर्गों की आलोचना] ४)

साहित्य-विवेचन—क्षेमचंद्र सुमन, योगेन्द्र मल्लिक [हिंदी साहित्य का सैद्धान्तिक तथा ऐतिहासिक विश्लेषण] ७)

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति—डा० राजेन्द्रप्रसाद [साहित्य, शिक्षा और संस्कृति पर गम्भीर भाषणों का सङ्कलन] ५)

हिन्दी नाटककार—जयनाथ 'नलिन' [हिन्दी-नाट कला तथा कृतियों का विश्लेषण]

कहानी और कहानीकार—मोहनलाल जिज्ञासु [हि कहानी और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का मार्मिक विवेचन]

हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति—स्नातक त मगन [हिन्दी की विविध धाराओं का अध्ययन]

वाद-समीक्षा—कन्हैयालाल सहल [हिन्दी साहित्य पाँच प्रमुख वादों का मार्मिक विवेचन]

तुलनात्मक अध्ययन—कृष्णचन्द्र शर्मा, देवी रस्तोगी [हिन्दी के प्राचीन कवियों का अध्ययन]

मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—डा० सा सिन्हा [मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियों की आत्मानु की भावपूर्ण व्यञ्जना]

हिन्दी निबन्धकार—जयनाथ 'नलिन' [हिन्दी नि कला और शैली की विवेचना]

कबीर—साहित्य और सिद्धान्त—यज्ञदत्त [कबीर—जीवन और कृतियों की आलोचना]

हिन्दी काव्यालङ्कार सूत्र—आचार्य वि [आचार्य वामन के 'काव्यालङ्कार' सूत्र की पाण्डित हिन्दी भाष्य]

अनुसन्धान का स्वरूप—सम्पादिका डॉ० सा सिन्हा [अनुसन्धान के सिद्धान्तों पर हिन्दी के प्र विद्वानों के प्रामाणिक लेखों का सङ्कलन]

सन्तुलन—प्रभाकर माचवे [हिन्दी काव्य और ग विभिन्न धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर विवेचनात्मक ले

आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहत् हिन्दी कोश

(शब्दसंख्या १२५५१८)

हिन्दीका सर्वोपयोगी नवीनतम कोश

आठ वर्षोंमें तैयार हुआ है

जिसमें

सर्वाधिक शब्द, अर्थ, मुहावरे आदि दिये गये हैं

ज्ञानमण्डल लिमिटेड

कबीरचौरा, बनारस—१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोर्ड मीटिंग...

मुद्रकों की पसन्द का अर्थ ही है रोहतास बोर्ड तथा कागज

डुप्लेक्स, बाक्स और ट्रिप्लेक्स बोर्ड, आर्ट और क्रोमो बोर्ड तथा प्लेयिंग कार्ड बोर्ड.

इन सभी प्रकार के बोर्डों पर होने वाली छपाई में सुन्दर प्रतिफल निश्चित है, चाहे वह लीथो, आफसेट अथवा लेटर प्रेस, इत्यादि किसी भी पद्धति से की जाय।

रोहतास के कुछ और कागज :

पोस्टर पेपर, नीला मैच पेपर, टी येलो पेपर, एम. जी. प्रेसिंग, तथा एम. जी. एवम् एम. एफ. कागज की विभिन्न उत्तम किस्में.

उत्पादक :
रोहतास इंडस्ट्रीज़, लि०,
डालमियानगर, बिहार.

मैनेजिंग एजेंट्स :
साहू जैन लिमिटेड,
११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

SJ. 134 H

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्वालियर पाटरीज, ग्वालियर

मध्य भारत की प्रमुख शासकीय संस्था

क्राकरी
टाइल्स
स्टोनवेअर नल, कुण्डी एवं अमृतवान
फूलदान
अस्पताली सामान
स्टेशनरी की वस्तुएँ

आपके गृह, स्नानागार, दफ्तरों एवं कारखानों को स्वच्छ व सुन्दर बनाने के लिए विशेष रूप से उपयोगी वस्तुएँ

हिन्दी के प्रमुख कवियों के सन्देश एवं हस्ताक्षरों का चीनी की प्लेटों पर पुनर्लेखन लागत मात्र पर

विशेष जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश की

परीक्षोपयोगी फाइलें

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी हमने परीक्षार्थियों के लाभ की दृष्टि से साहित्य-सन्देश की कुछ परीक्षोपयोगी फाइल बनाई हैं जिससे गत वर्ष हमारे हजारों ग्राहकों ने लाभ उठाया है। फाइल के समाप्त हो जाने पर हमने अपने सैकड़ों ग्राहकों से न भेजने के लिए क्षमा माँगी थी। पिछली बार हमने एक फाइल का मूल्य ३) रक्खा था लेकिन सब विद्यार्थी लाभ उठा सकें इसलिए हमने १॥) की प्रत्येक फाइल बनाई है। प्रत्येक फाइल में चार अङ्क हैं। इस वर्ष हमने निम्न परीक्षाओं के लिए फाइलें तैयार की हैं :—

एम० ए० (प्रथम वर्ष)	एम० ए० (द्वितीय वर्ष)	बी० ए०
साहित्य-रत्न ,,	साहित्य-रत्न ,,	इण्टर

उक्त फाइलों का मूल्य उनकी लागत मात्र ही रक्खा है, अतः फाइल साधारण डाक से मंगाने के लिये १॥।) और रजि० मंगाने के लिये २) भेजें।

विषय-सूची मुफ्त मँगायें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, ४, गांधी मार्ग, आगरा।

परीक्षार्थी प्रबोध भाग ४

इस भाग में हमने इस बात का विशेष ध्यान रक्खा है कि एम० ए०, साहित्य-रत्न, प्रभाकर, साहित्यालङ्कार आदि उच्च श्रेणी के परीक्षार्थी इससे विशेष लाभ उठा सकें। अतः इसमें इन परीक्षाओं के सम्बन्ध के कुछ आवश्यकीय लेख जो अभी तक साहित्य-सन्देश अथवा अन्य किसी भी पुस्तक में नहीं छपे हैं, विद्वानों से लिखवा कर इसमें सम्मिलित किये गये हैं जिससे इस भाग में ठोस एवं पठनीय सामग्री हो गई है। यही कारण है कि इस खण्ड की सम्भावित सूची के निकालने पर पुस्तक छपने से पहले ही सैकड़ों आर्डर आ चुके थे और छप जाने पर तो इसकी बराबर माँग आ रही है। इस भाग में भी लगभग ३०० पृष्ठ हैं। कागज इसमें बढ़िया लगाया गया है जिससे पिछले तीनों भागों की अपेक्षा यह भाग दूना मोटा है और मोटे कागज पर छपाई भी अच्छी हुई है—मूल्य २) पोस्टेज पृथक्।

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य के साथ-साथ पोस्टेज भी फ्री

चारों भाग एक साथ लेने पर पोस्टेज की रियायत उन ग्राहकों को दी जायगी जो ग्राहक ६) का मनीआर्डर पहले भेज देंगे उन्हें पोस्टेज खर्चा न देना पड़ेगा और चारों भाग रजिस्ट्री से भेज दिये जायँगे।

चारों भागों की विषय सूची मुफ्त मँगायें

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Regd. No. A. 263. JANUARY 1955. LICENSE No. 16.
Sahitya Sandesh, Agra. Licensed to post without Prepayment.

आधे मूल्य में

गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष में ३१ मार्च ५५ तक

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

गोस्वामी तुलसीदासजी पर महाकाव्य

देवार्चन

सजिल्द
मू० ६)

सुन्दर छन्दों में अत्यन्त परिमार्जित भाषा और हृदय-स्पर्शी भावनाओं का भण्डार, यह सत्रह सर्गों का महाकाव्य आपके सम्मुख गोस्वामी तुलसीदासजी का सांस्कृतिक नेतृत्व समूर्त कर देगा। इस महाकाव्य को पढ़ कर आपका हृदय राष्ट्रीयता की उच्च भावनाओं और विश्व संस्कृति के अनिर्वचनीय प्रभाव से स्पन्दित हो उठेगा। तुलसीदासजी की महाप्राण सहधर्मिणी रत्ना का जीवनवृत तथा उसके पुत्र तारक का अवांछनीय निधन आपको करुणार्द्र कर देगा और वीर, शान्त, अद्भुत, तथा करुण रसों का एक साथ आनन्द लेने के लिए आज ही ३।।।=) [३) मू० ।।।=) पोस्टेज] भेजें। पुस्तक की पृष्ठ सं० ४०० और मूल्य सजिल्द ६) है।

साहित्य-रत्न-भण्डार, ५ गांधी मार्ग, आगरा।

साहित्य सन्देश की नई फाइल

जुलाई १६५३ से जून १६५४ तक की तैयार है।

इस फाइल में साहित्य सन्देश के जुलाई ५३ से जून ५४ तक के अङ्क हैं। जिनमें सुपाठ्य १२५ लेख और पुस्तकाकार लगभग ११०० पृष्ठ का मैटर है। साधारण प्रकाशक इसे पुस्तक रूप में छापता तो कम-से-कम १०,-१२) मूल्य रखता, परन्तु हमरी इस सजिल्द फाइल का मूल्य केवल ४) है। अतः जो सज्जन हमसे—

यह फाइल मँगाना चाहें

वे मय रजिस्ट्री पोस्टेज के ६।=) मनीआर्डर से हमारे यहाँ भेज दें। हम यह मोटी जिल्ददार फाइल भेज देंगे। अथवा वी० पी० से भेजने की आज्ञा दें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश

वर्ष १६

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा।

अङ्क ९

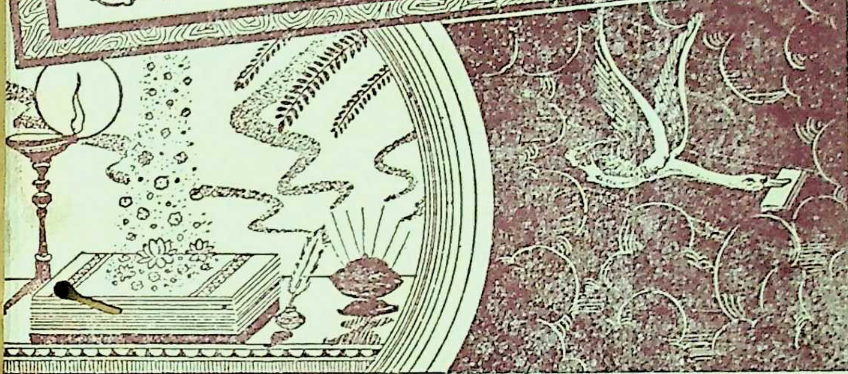

[वार्षिक मूल्य ४)] आगरा—मार्च १९५५ [विशेष संस्करण

इस अङ्क के लेख

—हमारी विचारधारा	सम्पादक
—वाक्चातुर्य एवं हास्य	श्री श्याम भटनागर
—राष्ट्रीयता के उद्घोषक—डिंगल के कवि, पृथ्वीराज और दुरसाजी	श्री रामपाल बजाज
—साकेत और कामायनी	श्री कुमार विमल एम० ए०
—द्वितीय महायुद्धोत्तर काल में हिन्दी कहानी	श्री सतीश मिश्र एम० ए०
—हिन्दी साहित्य के इतिहास में नामकरण की समस्या	श्री सियारामशरण प्रसाद एम० ए०, साहित्य-रत्न
—'वैशाली की नगरवधू' और 'कादम्बरी' के कुछ प्रसंग	श्री जयशङ्कर त्रिपाठी शास्त्री
—मृगनयनी की पात्रायें	श्री वीरेन्द्रकुमार श्रीवास्तव
—'रथ के पहिए'—उपन्यास की एक नई दिशा	स्व० डा० सुधीन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
—साहित्य परिचय	
—एम० ए० हिन्दी छात्रों के ये दर्शनीय उत्तर !	प्रो० गोपीनाथ तिवारी एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'साहित्य-सन्देश' के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह की १५ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य-सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है। किसी भी महीने से ग्राहक बनने पर पूरे १२ अङ्क मिलेंगे।
३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिये, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र-व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ॥) होगा।
६. साहित्य-सन्देश में कविता, कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापिस कर दिए जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : फरवरी १९५५

आलोचना

रेती के फूल—दिनकर २)
साहित्यानुशीलन—शिवदानसिंह चौहान ६)

कविता

मुक्तिका—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द २॥)
रेणुका—दिनकर २॥)
नील कुसुम—,, ३)
दिल्ली— ,, ॥)
नीम के पत्ते—,, ॥)

कहानी

बिल्लो का नकछेदन—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द २॥)
फूलों की माला—कमल जोशी २।)
पत्थर की आँख— ,, ३)
समय के स्वर—मोहन चोपड़ा २॥)

उपन्यास

कठपुतली—देवेन्द्र सत्यार्थी ६)
विलोम गति—गुरुदत्त ५)
अँधेरे के दीप—ओमप्रकाश ३॥)
जूही की कली—श्री शरण २।)
पगली—मोपासाँ २)
पंखहीन—श्री शरण ३।)
पत्थर पानी—यादवचन्द जैन ८)

नाटक

नए गुलाम—कृष्णचन्द २॥)
शतरञ्ज के खिलाड़ी—हरिकृष्ण प्रेमी १॥)

निबन्ध

सांस्कृतिक प्रश्न—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द २॥)

सङ्गीत

ध्वनि और सङ्गीत—प्रो० ललिताकिशोरसिंह ४)

प्रहसन

गधे—हबीब तनवीर १)

बालोपयोगी

बालनीति कथा—विष्णुदत्त १)
नटखट के गीत—चिरञ्जीत १)
एक था राजा एक थी रानी— १)
चरित्र-निर्माण की कहानी—राजबहादुरसिंह १।)
आदमी का जन्म—मन्मथनाथ गुप्त १।)

स्फुट

हिन्दी कोश रचना—रामचन्द्र वर्मा १)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—**साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेहत
और
ताकत
का
नुस्खा
विटामिनों से
पूर्ण
जे. बी.
मंघाराम
के
नरिशिंग
बिस्कुट
बच्चों की सेहत
के लिये आदर्श

जे. बी. मंघाराम के
नरिशिंग
बिस्कुट
विटामिनों से पूर्ण

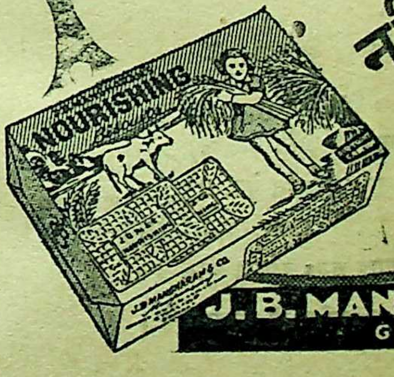

J. B. MANGHARAM & CO.
GWALIOR

सभी दूकानदारों के यहाँ मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टुकड़े-टुकड़े दास्तां—लेखक—विश्वनाथ भटेले

प्रस्तुत पुस्तक नवयुवक लेखक की कहानियों का दूसरा सङ्कलन है। पुस्तक की भूमिका-स्वरूप डा० रांगेय राघव ने लेखक को बधाई देते हुये कहा है कि इन कहानियों के भीतर एक चुभन है "जिनकी विशेषता उनकी भाषा की चुटीली खानगी है, जो मन को बार-बार झकझोरती है। वे किसी कोश से शब्दों को नहीं ढूँढती, जनजीवन के समुद्र की लहरों में बहती हुई वे आकर अपने आप पुस्तक के पृष्ठों जैसे कछार पर फैल जाती हैं।" विद्वान डाक्टर रांगेय राघव का भटेलेजी की भाषा के सम्बन्ध में यह कथन अक्षरशः सत्य है। भटेलेजी हिन्दी के उभरते हुए हिन्दी के नवयुवक लेखकों में से हैं और, जैसा उन्होंने कहा है, उनकी कहानियाँ वर्तमान सामाजिक विशृङ्खलता की दास्तां को नङ्गी करती हैं।

लेखक ने अपने दो शब्दों में कहा है, "आज जीवन की कोई मान्यता, कोई मूल्य और मानदण्ड स्थिर नहीं है। अस्थिरता ने जिन्दगी का हर झरोखा ढाँप रखा है। आदमी की वृत्ति और प्रवृत्ति के बारे में आज कोई सुनिश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती। जीवन की यह अस्थिरता सभी क्षेत्रों में स्पष्ट हो उठी है। रीति-नीति, आहार, उपचार, उत्पादन-उपयोग, कला-संस्कृति, मतवाद और दर्शन आदि कहीं भी पाएबन्द नहीं हैं।" लेकिन लेखक का विश्वास है। यह कहानियाँ, या जैसा लेखक ने नाम दिया है "यह टुकड़े टुकड़े दास्तां" वास्तव में हमारे जन-जीवन के विभिन्न पहलुओं को, उनमें निहित सुख और दुख के ऊपर भी भारतीय मानव की आत्मा, संवेदना, सहृदयता को अपने आँचल में अपनाए है, उसकी झलक देती हैं। रचनाएँ निश्चय ही सुन्दर हैं, रोचक हैं। उनका पठन निश्चय ही मनुष्य को उठाने वाला है। फिर भी हम चाहेंगे कि यह पुस्तक अधिक से अधिक पढ़ी जाए। पृष्ठ८२ मू० ।||) (समालोचना आर्थिक समीक्षा)

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में यह पुस्तक दी जायगी इसका आर्डर पौने मूल्य के कार्ड पर लिख भेजें।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

अपने विद्यालय की पत्रिका हम से

छपवाएँ !

❀ कागज, छपाई, बँधाई के साथ ❀

पेज का नाप १०" × ७"

दर ५०० प्रतियों के लिए........प्रति पेज ४)

दर १००० प्रतियों के लिए........प्रति पेज ५)

समय—३२ पेज के लिए केवल ४ दिन, आर्डर भेजकर समय निश्चित करा लें।

सस्ते में शुद्ध और आकर्षक छपाई देना हमारा ध्येय है।

प्रश्न -पत्र १।।) प्रति पेज (गोपनीय की गारण्टी है।)

हम समय के पूरे पाबन्द हैं।

विशेष जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें

साहित्य-प्रेस, ५ गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें खरीद कर पढ़नी चाहिएँ

[विद्वानों की इस अपील के सिलसिले में हमने यह नई योजना बनाई है कि हम इस पोस्ट कार्ड में प्रकाशित नई से नई पुस्तक आपको १२॥ प्रतिशत अर्थात् दो आना रुपया कमीशन पर देंगे।]

इस योजना से आप अवश्य लाभ उठायें

दो आने रुपया कमीशन की पुस्तकें

नाम..

पता...

ग्रा० सं०.................................

१—साकेत समीक्षा—आलोचना		प्रेमनरायण टण्डन	२॥)
२—संस्कृत व्याकरण की उपक्रमणिका—			।॥=)
३—गुप्तजी की यशोधरा—कृष्णकुमार सिन्हा			३)
४—प्रबंध पद्म—		निराला	३)
५—छब्बीस कवियों की समालोचना—दीपनारायण द्विवेदी			१॥)
६—मीरा एक अध्ययन—	,,	पद्मावती शबनम	३॥)
७—घनानन्द कवित्त शतक—	,,	शुरेशचन्द्र	२॥।)
८—साहित्य सुधा—	,,	सत्यपाल चुघ	३)
९—पत्नी के पत्र—	,,	ज्योतिर्मयी ठाकुर	३)
१०—चन्द्र सखी और उनका काव्य—	काव्य	पद्मावती शबनम	२)
११—गरम चाय—	कहानी	बेढब बनारसी	१॥)
१२—जलती चट्टान—	उपन्यास	गुलशन नन्दा	३)
१३—पाप का प्रतिकार—	,,	मेरी करेली	४॥)
१४—प्रत्यागत—	,,	वृन्दावनलाल वर्मा	३॥।)
१५—पराया—	,,	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२॥)
१६—नष्ट नीड़—	,,	ऊषादेवी मित्रा	४)
१७—जुही की कली—	,,	श्री शरण	२।)
१८—समय के स्वर—	कहानी	,,	२॥)
१९—मा—		मैकिस्म गोर्की	१॥)
२०—ठकुरानी बहू का बाजार—		रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२)

नोट—जो पुस्तक आप न लेना चाहें उसे काट दें।

१—दो आने रुपया कमीशन पर चिह्नित पुस्तकें भेजदें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वी० पी० अवश्य छुड़ा लूँगा।

नोट—कृपया १) मनीआर्डर से पेशगी भेज दें, जिससे पुस्तक जल्दी भेजने में हमें सुविधा हो।

यहाँ पर चिपका दीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड यहीं है

नोट—पुस्तकें जल्दी मँगानी हों तो कृपया आर्डर के साथ १) मनीआर्डर से पेशगी भेजें।
१—चिह्नित पुस्तकें वी० पी० से भेजदें, मैं वी० पी० अवश्य छुड़ा लूँगा।

इसको यहाँ से काटिये

पहले यहाँ से मोड़िये

पौने मूल्य में पुस्तकें प्राप्त करने का कार्ड नं० ३२

नाम ....

पता ....

ग्रा० सं० ....

१—निबंध-रत्नाकर—	निबंध	मनमोहन गौतम	५)
२—निबंध प्रबंध	,,	शिलीमुखी	४)
३—आचार्य शुक्ल और उनकी चिन्तामणि-			।।।=)
४—सूरदास उनका साहित्य—शान्तिस्वरूप गौड़			३)
५—विद्यापति पदावली सटीक—		गौतम	६)
६—प्राचीन पद्य प्रभाकर की टीका—			१।)
७—गाँव में सहकारिता—ग्रामोपयोगी		कृष्णप्यारे दुबे	१।)
८—ग्रामीण ज्ञानोदय—	,,	ओंकारनाथ मिश्र	१।।।)
९—झंझा के मेघ—	कहानी	ललित	२।।)
१०—टुकड़े-टुकड़े दास्तां—	,,	भटेले	।।।)
११—तारिका	कविता	देव	।।।)
१२—श्रेणिक बिम्बसार—	उपन्यास	चन्द्रशेखर शास्त्री	५)
१३—राजर्षि	,,	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२।।)
१४—अवध की नवाबी—	,,	गणेश पाण्डेय	२।।)
१५—लेफ्टीनेन्ट—	,,	चगताई	१।।।)
१६—फुलबूट	,,	,,	१।)
१७—परिणीता—	,,	शरतचन्द्र	१।)
१८—विराज बहू—	,,	,,	२)
१९—सिलाई कटाई शिक्षा—	स्त्रियोपयोगी	सुभासिनीदेवी	२)
२०—स्वास्थ्य और व्यायाम—	स्वास्थ्य	केशवकुमार ठाकुर	२)

नोट—१—जो पुस्तक आप न लेना चाहें उसे काट दें।
२—कुछ नई पुस्तकें जो पीछे के पृष्ठ पर छपी हैं १२½ प्रतिशत कमीशन पर इसी वी० पी० से भेजदें।

यहाँ से काटिये

दूसरा मोड़

Postage will be paid by Addressee

BUSINESS REPLY CARD

No Postage Stamp necessary if Posted in India

AGRA G P. O.
Permit No. 1136

To

श्री सञ्चालक,

साहित्य सन्देश,

साहित्य-रत्न-भण्डार,

४, गांधी मार्ग,

आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्रकाशन

आलोचनात्मक

ऋतम्भरा—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या— २॥)
विचारधारा—डा० धीरेन्द्र वर्मा— ३॥)
निबंधादर्श—श्री गोकुलचन्द्र शर्मा— १।)
प्रबंध पारिजात—श्री पदुमलाल पुन्ना० बख्शी—१॥)
पञ्च-पात्र—श्री पदुमलाल पुन्ना० बख्शी— २।)
मध्यकालीन प्रेम-साधना—श्री परशुराम चतुर्वेदी ३)
साहित्यावलोकन—प्रो० विनयमोहन शर्मा— ३)
गद्य-पथ—श्री सुमित्रानन्दन पन्त— ३)
मध्यकालीन धर्म-साधना—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ३)
विचार और वितर्क—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी— २)
निबन्ध संग्रह—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी— ५)
दिल की बात—श्री गुरुदयाल मल्लिक— ३)
कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा— ३॥)
हिन्दी कहा० की शिल्प० का विकास—
डा० लक्ष्मीनारायण लाल १०)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय— २॥)
भूषण—श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित— २॥)
प्रकृति और काव्य [हिन्दी]—डा० रघुवंश— ६॥)
प्रकृति और काव्य [संस्कृत]—डा० रघुवंश— ६॥)
हिन्दी में निबंध साहित्य—श्री जनार्दन स्वरूप १।)
प्रगतिवाद, एक समीक्षा—डा० धर्मवीर भारती— ३॥)
हमारे कवि—श्री राजेन्द्रसिंह गौड़— ३)
नाटक की परख—डा० एस० पी० खत्री— ४)
प्रसाद के तीन ऐति० नाटक—
श्री राजेश्वरप्रसाद अर्गल २॥)
हिन्दी लोक-गीत—श्रीमती रामकिशोरी— १।॥)
तुलसी-रसायन—डा० भगीरथ प्र० मिश्र— २॥)
हमारे लेखक—श्री राजेन्द्रसिंह गौड़— ४)

काव्य

नीहार—श्रीमती महादेवी वर्मा— ३)
रश्मि—श्रीमती महादेवी वर्मा— ३)
प्रभाती—श्री सोहनलाल द्विवेदी— २॥)
वीर सतसई—श्री वियोगी हरि १।)
झाँकी—श्री आनन्दिप्रसाद १)
स्याम सँदेशौ—श्री अमृतलाल चतुर्वेदी— ३)
अञ्जलि—डा० रामकुमार वर्मा— १।)
ठण्डा लोहा—डा० धर्मवीर भारती — ३)
वर्षान्त के बादल—श्री अञ्चल— ३)
संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ३॥)
वृहद संत कबीर—डा० रामकुमार वर्मा— ८)
संक्षिप्त सन्त कबीर—डा० रामकुमार वर्मा— २)
घन-आनन्द—श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना— ४।)
विदेशों के महाकाव्य—श्री गोपेश अनु० ६॥)
सूर-सागर-सार—डा० धीरेन्द्र वर्मा— ४॥)
हिमहास—डा० रामकुमार वर्मा— १॥)
शबनम—श्रीमती दिनेशनन्दिनी— १॥)
उबमन—श्रीमती दिनेशनन्दिनी— ३)
निर्झर और पाषाण—श्री तेजनारायण काक १॥)

कला-संस्कृति

संस्कृति-संगम—आचार्य क्षितिमोहन सेन— २॥)
भारतवर्ष में जाति-भेद-नवीन सं०—
आचार्य क्षितिमोहन सेन— २॥)
शिल्प-कथा—आचार्य नन्दलाल बसु— १।)
कला और संस्कृति—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ४॥)
प्राचीन लोकोत्सव—श्री मन्मथराय— २॥)
सौंदर्य-शास्त्र—डा० हरद्वारीलाल शर्मा— ३)

नाटक

मुक्ति का रहस्य—श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र— २)
महत्त्व किसे ?—सेठ गोविन्ददास— १।)
प्रेम की पराकाष्ठा—श्री सत्यजीवन वर्मा २॥)
शिवाजी—डा० रामकुमार वर्मा १)
कौमुदी महोत्सव—डा० रामकुमार वर्मा १॥)
चार ऐतिहासिक नाटक—डा० रामकुमार वर्मा १॥)
सात एकांकी—डा० एस० पी० खत्री २॥)

साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

ले०—श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), सा० रत्न

प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

साहित्य-रत्न-भण्डार, इस वर्ष कतिपय उच्चकोटि की आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए दृढ़ सङ्कल्प है, उक्त पुस्तक इस योजना के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाली प्रथम रचना है। हिन्दी के पाठक व विद्यार्थी को मध्यकालीन हिन्दी कविता पढ़ते समय उसमें प्रतिबिम्बित दार्शनिक धारणाओं के समझने में बड़ी कठिनाई पड़ती है, प्रस्तुत पुस्तक इसी कठिनाई को दूर करने के लिए लिखी गई है। इसमें सिद्धदर्शन, हठयोग, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, सन्त-दर्शन तथा तसव्वुफ आदि सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का स्पष्ट एवम् गम्भीर विवेचन किया गया है, साथ ही काव्य में प्रयुक्त उनके रूपों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तुलसी, कबीर, सूर तथा जायसी की विचार-धाराओं का भी अनुशीलन किया गया है। पुस्तक प्रकाशित हो गई है। मूल्य ६) कृपया शीघ्र आर्डर भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी आर्थिक वर्ष का लगभग एक महीना ही शेष है

सभी कालेज, पुस्तकालय तथा अन्य शिक्षा संस्थाएँ अपने बजट के अनुसार

पुस्तकें खरीदेंगी

हमारे भण्डार में हिन्दी पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह है। कमीशन भी अधिक दिया जाता है।

इस मास में सरकारी शिक्षा संस्थाओं की बिक्री अधिक होती है। अतः आप अपना आर्डर देते समय हमें अपने बजट का रुपया भी लिख भेजें जिससे हम बजट के अनुसार पुस्तकें पूरी भेज दें। पसन्द न आने पर यह पुस्तकें निःसंकोच आप हमसे बदल सकते हैं।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

पंचायतों के लिए पुस्तकें

हमारे यहाँ पञ्चायत राज उत्तर प्रदेश से स्वीकृत सभी पुस्तकें जो ग्राम पञ्चायत पुस्तकालयों व वाचनालयों के उपयोगार्थ छाँटी हैं, वे सभी मिलती हैं। सूचीपत्र मुफ्त मँगायें

प्लानिंग आफिस

के वाचनालयों में काम आने वाली सभी पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं।

हम आर्डर की सभी पुस्तकें इसी आर्थिक वर्ष के अन्दर सप्लाई कर देंगे जिससे उनका रुपया न मारा जाय।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १६] आगरा—मार्च, १९५५ [अङ्क ९

हमारी विचार-धारा

आलोचना में भाव विश्लेषण—

हमारी आजकल की आलोचना पाश्चात्य प्रणाली से अधिक प्रभावित है उसमें ऐतिंहासिक और मनोवैज्ञानिक आलोचना को अधिक मान मिल रहा है। ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक आलोचनाएँ भी अपना महत्त्व रखती हैं किन्तु उनका महत्त्व कृति की अपेक्षा कवि से अधिक है। कवि या लेखक की कृति का आजकल भावगत विश्लेषण जो हमारे यहाँ की आलोचना की विशेषता है, बहुत गौण स्थान पाता है। यूरोप की आलोचना में व्यापक मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया गया है। भारतीय आलोचना में भाव-विश्लेषण को अधिक महत्त्व मिला है। आलोचना में व्यापक नैतिक और आर्थिक मूल्यों के साथ भावगत मूल्यों को भी उचित स्थान मिलना चाहिए जिससे कि भारतीय आलोचना का व्यक्तित्व बना रहे। हमें अपना व्यक्तित्व न खोना चाहिए न सृजनात्मक साहित्य में और न आलोचनात्मक साहित्य में।

साहित्य-शास्त्र का पुनर्निर्माण—इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हमको प्राचीन की सीमाओं में ही बँधा रहना चाहिए। हमारे पूर्वज पर्याप्त प्रगतिशील थे। नई परिकल्पनाएँ करते थे परम्पराओं को आगे बढ़ाते थे। उनको आगे बढ़ाना हमारा काम है किन्तु यह आवश्यक है हम आगे बढ़ने के लिए पिछले को पूरी तरह समझलें। नये साहित्य के अनुकूल प्राचीन परिभाषा में अन्तर होना चाहिए। सैद्धान्तिक आलोचना की पुस्तकों में दिये हुए मानों को लचीला और प्रगतिशील बना कर साहित्य-शास्त्र का पुनर्निमाण करना आवश्यक है। साहित्य की विशेष कर गद्य साहित्य की नई विधाओं को भी ऐसे रूप में नियमबद्ध करना है जिसमें कि उनमें विकास की गुञ्जाइश बनी रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्टर के प्रश्न-पत्र हिन्दी में—

यह बड़े हर्ष का विषय है कि इन्टर के प्रश्न-पत्र हिन्दी में भी छपेंगे। इससे परीक्षार्थियों को शब्दावली के प्रयोग में विशेष सहायता मिलेगी। विश्व विद्यालयों को भी यह चाहिए कि जहाँ उन्होंने हिन्दी में उत्तर देने की छूट दे रक्खी है वहाँ वे प्रश्न-पत्र भी हिन्दी में दें जिससे उत्तर भी उनके अनुरूप बन सकें। परीक्षकों की रीझ-खीज-में बहुत कुछ शब्दावली का भी स्थान होगा। यह शब्दावली अनियमित न रहेगी। हम विश्व-विद्यलयों से यह निवेदन कर चुके हैं कि वे अपना पाठ्यक्रम हिन्दी में भी छापा करें जिससे कि पुस्तक बनाने वालों की शब्दावली में एकरूपता आजाय।

पारिभाषिक शब्दावली—

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने पारिभाषिक शब्दों के कोश बनाने के लिए जो कमेटी बनाई थी उसने पाँच विषयों के अंग्रेजी शब्दों का सङ्कलन कर उनका हिन्दी रूपान्तर देकर एक-एक पुस्तिका तैयार करके विचारार्थ छपाली है और उसकी एक-एक प्रति हमारे पास भी भेजने की कृपा की है। इन पुस्तिकाओं के विषय हैं—रेलवे, ट्रान्सपोर्ट, प्रतिरक्षा, डाक और तार एवं कृषि। पारिभाषिक शब्दावली कमेटी में सात वैज्ञानिक विशेषज्ञ और पाँच भाषा विशेषज्ञ हैं। और प्रत्येक विषय के लिए उस विभाग के ३-४ व्यक्तियों की अलग कमेटी बनाई गईं हैं। इस प्रकार यह सङ्कलन तैयार किए गये हैं और जन साधारण तथा विशेषज्ञों की राय जानने के लिए प्रकाशित किए गये हैं। शब्दों के सङ्कलन का काम उन-उन विषय के व्यक्तियों की सहायता से किया गया है, अतः पूर्ण न होने पर भी वह प्रारम्भिक प्रयत्न के रूप में पर्याप्त है। परन्तु उनके पर्यायवाची जो हिन्दी शब्द दिए गए हैं उनमें अभी बहुत सुधार की गुञ्जायश है। कमेटी ने इनके पर्यायवाची शब्द देने के कुछ मूल सिद्धान्त बना दिये हैं और वे सिद्धान्त इन पुस्तकों में छाप भी दिए हैं। उसके अनुसार यह शब्द प्रचलित शब्दों में से लेने की पहले कोशिश की गई है। जहाँ वे नहीं मिले हैं वहाँ दूसरे शब्द गढ़ने की चेष्टा की गई है। इस काम में कमेटी को सफलता अवश्य मिली है, परन्तु इसमें पर्याप्त सफलता तब मिल सकती है जब इस काम पर नियुक्त कुछ युवकों को विभिन्न उत्तर भारतीय प्रान्तों के शहरों और गाँवों में घुमाकर वहाँ इनके शब्दों के लिए व्यवहार में आने वाले प्रचलित शब्दों की ओर खोज कराई जाय। हमें इन शब्दावलियों से अभी सन्तोष नहीं है। फिर भी जो काम हुआ है उसकी सराहना करते हुए हम यही निवेदन करेंगे कि इन शब्दावलियों में अभी सुधार की बहुत आवश्यकता है, अतः उन्हें स्थायी रूप से प्रकाशित करने में शीघ्रता न की जाय। जब शब्द सङ्कलन हो जाय तब उन शब्दों पर भाषा विशेषज्ञों की कमेटी बैठा कर उनकी स्वीकृति ली जाय। इस काम में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे विद्वानों से और मदद ली जाय जिन्होंने शब्दों के सम्बन्ध में बहुत खोज की है और जो इसके माने हुए विशेषज्ञ हैं।

एक बात और, यह पुस्तकें तैयार हो गई हैं—और सरकार इन पर जनता के विचार जानना चाहती है—इसकी अधिकाधिक विज्ञप्ति की जानी चाहिए जिससे जो लोग उन पर राय देना चाहें या दे सकते हों, वे राय दे सकें। पारिभाषिक शब्दों के सङ्कलन का काम बड़ा कठिन है और बड़ा परिश्रम चाहता है—यह समझ कर ही हमने यह पंक्तियाँ लिखीं हैं। आशा है शिक्षा मन्त्रालय इन पर ध्यान देने की कृपा करेगा।

महाकवि कालिदास का स्मारक—

विन्ध्य प्रदेश की सरकार महाकवि देव के नाम पर देव पुरस्कार स्थापित कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही है। उत्तर प्रदेश की सरकार सूर और तुलसी के स्मारक बनाने की योजना में लगी है। दूसरे प्रदेशों की सरकारें भी अपने-अपने प्रान्तों के महाकवियों के स्मारक बनाने की चेष्टा कर रही हैं। ऐसी दशा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यह जानकर हर्ष हुआ कि केन्द्रीय सरकार ने संस्कृत के श्रेष्ठतम कवि, महाकवि कालिदास के स्मारक बनाने में मदद देने का वचन दिया है। इसकी चर्चा राज्य सभा में श्री विजयवर्गीय के प्रस्ताव पर प्रारम्भ हुई थी जिन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि इस महाकवि का बड़ा स्मारक केन्द्रीय सरकार बनावे। राज्य-सभा के अनेक सदस्यों ने इस प्रस्ताव का हृदय से समर्थन किया और सरकार की ओर से भी उस प्रस्ताव के साथ सहानुभूति प्रकट की गई। देश के सांस्कृतिक उत्थान के यह शुभ लक्षण हैं।

भारत १९५४—

उपर्युक्त शीर्षक से एक वार्षिकी का प्रकाशन केन्द्रीय सरकार के प्रकाशन विभाग ने किया है। इस प्रकार की वार्षिकी या डायरेक्टरों के ढङ्ग की सूचना-पुस्तक प्रति वर्ष सरकार की ओर से निकलती थी पर वह अँग्रेजी में होती थी। अँग्रेजी में तो यह पुस्तक निकलती ही है। इस वर्ष हिन्दी में भी उसका प्रकाशन किया गया है। इस सत्कार्य के लिए हम प्रकाशन विभाग को बधाई देते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं।

इस पुस्तक में सारे देश और उसके विभिन्न प्रदेशों की प्रत्येक विभाग की प्रगति का वर्णन है। जो सूचनाएँ केन्द्र और प्रदेश की सरकारों और विधान परिषद के सदस्यों के नामादि के सम्बन्ध में हैं वे तो उपयोगी हैं ही, इसमें जो आँकड़े दिए गए हैं वे व्यापारी, विद्यार्थी और जन साधारण सभी के बड़े काम के हैं। कितने ही चित्र और मान चित्रों ने पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। इस एक पुस्तक से राज्य की सभी प्रगतियों का और देश के सभी कामों थोड़ा का ज्ञान हो जाता है। संविधान, न्याय, प्रतिरक्षा, कृषि, वैज्ञानिक शोध, उद्योग धंधे, वाणिज्य, परिवहन, डाक तार, शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम, पत्र-पत्रिकाएँ, फिल्म, रेडियो, पुनर्वास, खेल, वर्ष के कानून, वर्ष की घटनाएँ, सामान्य जानकारी आदि ३१ विषयों की चर्चा इस पुस्तक में की गई है। सामूहिक विकास कार्य में कहाँ क्या हो रहा है, पञ्च वर्षीय योजना में क्या प्रगति हो रही है, किन-किन वस्तुओं का आयात-निर्यात हुआ और कितना-कितना हुआ, देश में कौन-कौन बैंक और बीमा कम्पनियाँ काम करती हैं, उनमें विदेशी कितनी हैं—यह सब जानकारी इस पुस्तक से हो सकती है। किस प्रदेश में क्या हो रहा है, कौन शासन कर रहा है, किस का क्या बजट है, आदि सभी बातें इस पुस्तक में हैं। ऐसी उपयोगी पुस्तक सभी पुस्तकालयों में होनी चाहिए और सभी विद्यार्थियों, राष्ट्र सेवकों और कार्यकर्त्ताओं को पढ़नी चाहिए। इसके देखने से पाठक को यह स्पष्ट विदित हो सकेगा कि हमारा देश किस तीव्र गति से विकास की ओर बढ़ रहा है। ५७८ पृष्ठ की इस सजिल्द पुस्तक का मूल्य जिसमें पचासों मान चित्र भी भी हैं ७II) ठीक ही है। हम सरकार के इस प्रकाशन का हृदय से स्वागत करते हैं।

साहित्य के प्रचार पर प्रहार—

केन्द्रीय सरकार ने दो वर्ष पहले डाक की दरें बढ़ाकर शिक्षा और साहित्य के प्रचार में जो ठोकर लगाई है, वह उपेक्षणीय नहीं है। सभी उन्नतिशील सरकारें शिक्षा और साहित्य के प्रचार का दम भरती हैं और हमारी सरकार भी इन दोनों कामो के करने में दृढ़ संकल्प है। परन्तु १९५३ में पैकेट, वी० पी० आदि के लिए डाक की दरें बढ़ाकर उन्होंने साहित्य प्रचार में बड़ी बाधा पहुँचाई है। अभी हाल पुस्तक-प्रकाशकों का एक शिष्ट मण्डल प्रधान मन्त्री और शिक्षा मन्त्री से मिला था और उसने यह बताया था कि डाक के रेट बढ़ाने पर पुस्तकों की बिक्री पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा है। अनेक प्रकाशकों ने अपने आँकड़ों से यह प्रमाणित किया है कि डाक रेट बढ़ने से पुस्तकों की बिक्री बहुत घटी है। हमारा अपना अनुभव यह है कि डाक रेट बढ़ने से इन दो वर्षों में बिक्री लगभग ४० प्रतिशत घटी है। और सरकार को इससे लाभ हुआ हो सो बात भी नहीं है। गीता प्रेस गोरखपुर ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताया है। डाक रेट बढ़ने से उनका डाक का व्यय बढ़ने के बजाय घट गया है। अर्थात् बिक्री इतनी कम हो गई है कि पोस्टेज के मद में जितनी आय सरकार को पहले होती थी, अब उससे बहुत कम होती है। इस विषय पर बहुत कुछ लिखा पढ़ी और कहा सुनी हुई है पर सरकार ने इस वर्ष भी डाक की दरों में कमी नहीं की है—यह खेद की बात है।

दूसरी चोट—

यही नहीं, सरकार ने कागज पर टैक्स बढ़ा कर शिक्षा और साहित्य के प्रचार पर एक दूसरी चोट और की है। पढ़ने पढ़ाने वाले बालकों को पुस्तकें और कापियाँ ही पढ़ने लिखने के लिए चाहिए और उसमें लगने वाले कागज पर ही टैक्स बढ़ा कर सरकार ने शिक्षा के प्रचार की जगह उस पर टैक्स लगा दिया है। शिक्षा ही नहीं साहित्य पर भी कागज के टैक्स का भारी असर पड़ेगा क्योंकि कागज सस्ता होने के बजाय अब निश्चय ही कम से कम १० प्रति शत बढ़ जायगा। वित्त मन्त्री, शिक्षा मन्त्री और प्रधान मन्त्री के विवेक पर विश्वास करते हुए हम उनसे निवेदन करते हैं कि वे इन दोनों टैक्सों को हटाने की कृपा करें।

दिल्ली राज्य में हिन्दी—

विगत मास में दिल्ली की प्रदेशीय सरकार का मन्त्रिमण्डल थोड़ा बदल गया। श्री गुरुमुख निहालसिंह की मुख्यता में नया मन्त्रिमण्डल बन गया और उसने बनते ही यह घोषणा कर दी कि दिल्ली राज्य का सारा काम अगले वर्ष से हिन्दी में होगा। दिल्ली की विधान सभा का उद्घाटन करते हुए वहाँ के चीफ कमिश्नर श्री पंडित ने जो भाषण दिया उसका भी वहाँ के सदन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यह भाषण प्रतिवर्ष अंग्रेजी में होता था। इस वर्ष यह भाषण हिन्दी में हुआ और श्री पण्डित ने जैसी सुन्दर भाषा में यह भाषण दिया उसे सुन कर लोग चकित रह गए। हम इसके लिए श्री पण्डित और वहाँ के मन्त्रिमण्डल को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि आगामी वर्ष से हिन्दी में काम हो सके इसकी पूरी तैयारी अभी से प्रारम्भ हो जायगी।

५०००) के पुरस्कार—

केन्द्रीय सरकार की साहित्य एकादमी ने इस वर्ष से पाँच-पाँच हजार के कुछ पुरस्कार हिन्दी और दूसरी कुछ भाषाओं के लेखकों को उस भाषा की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पर देने का निर्णय किया है। मराठी में यह पुरस्कार श्री लक्ष्मण शास्त्री तर्कतीर्थ की पुस्तक 'वैदिक संस्कृति का विकास' पर और गुजराती भाषा में महादेव देसाई की 'डायरी' पुस्तक पर मिला है। हिन्दी में इस पुरस्कार को प्राप्त करने का सौभाग्य पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिम किरीटिनी' पर मिला है। हमें यह नहीं मालूम कि इन पुरस्कारों के निर्णायक कौन महानुभाव थे और उन्होंने किस आधार पर इन पुस्तकों को सर्वश्रेष्ठ माना है, परन्तु हम इन पुस्तकों के लेखकों को इन पुरस्कारों के मिलने पर हार्दिक बधाई देते हैं।

अन्तः प्रान्तीय हिन्दी विद्यालय—

अ० भा० हिन्दी परिषद की ओर से विगत ३–४ वर्ष से अ० भा० हिन्दी महा विद्यालय नाम से एक बड़ी उपयोगी संस्था आगरा में काम कर रही है। इस विद्यालय में प्रायः सभी अहिन्दी प्रान्तों से अध्यापक-विद्यार्थी हिन्दी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने आते हैं। विभिन्न प्रान्तों के ३२ व्यक्ति आज भी यहाँ 'पारङ्गत' परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं। इस विद्यालय का उद्देश्य इन लोगों को ऐसी शिक्षा देना है जिससे वे अपने-अपने प्रान्तों में पहुँच कर हिन्दी के उस रूप से परिचय प्राप्त करलें, जिसका प्रचार करना परिषद ने वांछनीय समझा है। हम आशा करते हैं कि केन्द्रीय सरकार ऐसी उपयोगी संस्था को सुचारु रूप से संचालन करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्चातुर्य एवं हास्य

श्री श्याम भटनागर

जिस प्रकार वाक्चातुर्य मानव प्रकृति की सर्वोत्तम तथा लाभप्रद देन है उसी प्रकार हास्य भी है। अतः जिस रचना में इनका सन्तुलित एवं संयमित प्रयोग होता है वह रचना शीघ्र ही जन-प्रिय बन जाती है। वाक्चातुर्य से मानव के अहम् को जितनी तुष्टि मिलती है। उतना ही हास्य से उसे उल्लास प्राप्त होता है। दोनों का लक्ष्य आनन्द ही है।

भारतीय चिन्तकों ने तथा पाश्चात्य विद्वानों ने वाक्चातुर्य एवं हास्य की हास्यरस के अन्तर्गत ही गणना की है। परन्तु हास्य का विवेचन भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने ढङ्ग पर किया है।

भरत ने 'शृङ्गाराद् भवेद्धास्य' कह कर हास्य की उत्पत्ति शृङ्गार से ही मानी है। किन्तु हास्य के विस्तीर्ण क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए उसे केवल शृङ्गार में ही सीमित नहीं किया जा सकता। हास्य के विभावों के मूल में अनौचित्य ही एक कारण है और यह कारण प्रायः सभी रसों के विभावादि में हो सकता है। इस अनौचित्य के विषय में अभिनव गुप्त का निम्नलिखित कथन है:—

"अनौचित्य-प्रवृत्तिकृतयेव हि हास्य-विभावत्वम्।
तच्चानौचित्यम् सर्वरसानां विभावानुभावादौ संभाव्यते॥"

अनौचित्यमूलक रस परिपोषण से सर्वत्र हास्यरस उत्पन्न हो सकता है। साहित्य दर्पणकार का हास्यरस के उद्रेक के विषय में यह कथन है:—

"विकृताकार वाग्वेष चेष्टादेः कुहकाद्भवेत्।
हास्योहास स्थायीभावः श्वेतः प्रमथ देवता॥"

उक्त लक्षण के अनुसार वाणी, चेष्टा तथा आकार आदि की विकृति से हास्यरस की सृष्टि होती है। इसका स्थायी भाव हास, वर्ण शुक्ल एवं देवता प्रमथ है। दश रूपककार के अनुसार हास्य का लक्षण है:—

"विकृताकृति वाग्विशेषैः आत्मनोऽथपरस्य वा।
हासः स्यात् परिपोषोस्य, हास्यींस्य प्रकृतिः स्मृतः॥"

एवं काव्य प्रकाश के अनुसार :—

"रतिर्मनोनुकूले मनसः प्रवणायितम्।
वागादिवै कृताच्चेतो विकसो हास उच्यते॥"

अतः भारतीय विवेचन के अनुसार हास्य के उद्रेक के मूल कारण तीन ज्ञात होते हैं। यथा :—(१) विकृत शब्दावली, (२) चेष्टा, (३) वेषभूषा।

पाश्चात्य विद्वानों ने हास्य के उद्रेक के कारण को स्थिर करने के हेतु मनोविज्ञान का आधार लेकर चिन्तन किया है। अतः कुछ सिद्धान्त भी सामने आए। 'अनायास उत्कर्ष' का सिद्धान्त सम्मुख आया जिसके अनुसार हास्य का कारण उस आनन्द को बताया गया है जो अपने वर्तमान उत्कर्ष को पूर्व की दुर्बलताओं से मिलाने पर होता है।[1] परन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध तर्क किया जा सकता है कि उत्कर्ष व्यञ्जक आनन्द या उल्लास हास्य की अपेक्षा गर्व को जन्म देता है। गर्व एवं हास्य परस्पर विरोधी भाव हैं। दूसरा सिद्धान्त असङ्गति के होने का है। स्पेंसर के अनुसार हमारी चेतना का उत्कर्ष से अपकर्ष की ओर जाने की गति तथा मान्य परम्पराओं के विपरीत जाने की गति ही हास्य का कारण है।[2] बर्गसन के मतानुसार हास्य के

१—"The passion of laughter is nothing else but sudden glory arising from sudden conception of some eminency in ourselves by comparing with the infirmity of other or with our own formerly."

२—"Laughter naturally results only when consciousness is unawardly transferred from great things to

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण हैं आलम्बन का समाज में अप्रिय होना, उसकी जड़ता एवं उसमें यांत्रिक क्रिया का होना।[3] अन्त में विपर्यय का सिद्धान्त है। इसके अनुसार परस्पर विरोधी तथा विपरीत परिस्थितियाँ हास्य का कारण बन जाती हैं।

अतः हास वह सहज प्रवृत्ति है जो असङ्गति से पुष्ट होती रहती है तथा आनन्द, आवेग, मात्सर्य, चापल्य आदि भावनाओं से भरी रहती है। यह एक शरीर-मानस प्रक्रिया है।

हास्य का मूल उद्देश्य आनन्द ही है। हास्य का एक प्रमुख उद्देश्य समाज का परिष्कार भी है। "हास्य प्रिय लेखक आपके असत्य, दम्भ एवं कृत्रिमता के प्रति अश्रद्धा तथा दरिद्रों, दलितों और दुखियों के प्रति कल्याण-कामना, करुणा, प्रेम और दयालुता के भावों को जाग्रत कर उनकी उचित दिशा का निर्देश करता है। हास्यप्रिय साहित्यिक उदार, सहसा सुख-दुःख से प्रभावित तथा अपने पार्श्ववर्ती पुरुषों के स्वभाव की विविधिताओं के ज्ञाता होने के कारण उनकी हँसी, प्रीति, विनोद और रुदन में समवेदना प्रकट करता है। उत्तमोत्तम परिहास नहीं होता है जिसमें कोमलता एवं कृपालुता की मात्रा अधिक रहती है।[4]

यह उद्देश्य तभी सफल होता है जब लेखक समाज के विकास में अच्छाइयों एवं बुराइयों का महत्त्व जान ले तथा उसकी चेतना जागरूक हो। किन्तु जब यह हास्य व्यक्तिपरक होता है तब वह पर-पीड़न को अपना लक्ष्य बनाता है। मानव की यह सहज प्रवृत्ति है कि वह किसी भी प्रकार से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करे। साथ ही उसकी यह भी अभिलाषा रहती है कि उसकी यह भावना किसी पर प्रकट भी न हो। अतः वह अपने इस अहं की तुष्टि के हेतु वाक्चातुर्य एवं हास्य-विनोद का आश्रय लेता है। (कभी-कभी वह अह ईर्ष्या भी सम्मिलित कर लेता है।) वाणी को इसका प्रधान साधन बनाता है तथा चेष्टाओं का भी आश्रय लेता है। वाणी को प्रधानतया वाक्चातुर्य के निमित्त एवं चेष्टाएँ प्रायः हास्य के हेतु अपनाता है।

वाणी प्रधान साधन इसलिए है कि वाग्विदग्धता भावों की समानता पर एवं शब्दों की द्वियार्थक शक्ति पर ही पूर्णतया अवलम्बित है। परन्तु प्रत्येक समानता में हमें वह नहीं मिल सकता। समानता ऐसी होनी चाहिए जो पाठक या श्रोता को चकित भी करे तथा आनन्द भी प्रदान करे। जहाँ भावों की साधारण समानता होगी वहाँ न आश्चर्य को ही जन्म मिलेगा और न आनन्द को उद्रेक ही। अतः लेखक या वक्ता यहाँ कल्पना का आश्रय लेता है।

---

small only when there is what we call a decending incongruity.''
—Spencer

३—"Insociability on the part of the object laughter, insensibility on the part of laughter and the certain automatism in the situation in the words or in character that appears ludicrous."
—Burgson

४—"The humorous writer professes to awaken and direct your love, your pity, your kindness, your scorn for untruth, pretension, imposture for tenderness, for the weak, the poor, the oppressed, the unhappy. A literary man of the humorous turn is pretty sure to be of a philonthropic nature to have a great sensibility to be easily moved to pain or pleasure Keenly to appreciate the varieties of temper of people round about him and sympathise in their laughter, love, amusement and tears. The best humour is that which is flavoured throughout with tenderness and kindness.
—Theobissy

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना का आश्रय इसलिए अनिवार्य है क्योंकि भावों की समानता का लक्ष्य है श्रोता या पाठक को चकित करना तत्पश्चात् आनन्द प्रदान करना। अतः चकित करने के हेतु उचित तथा सार्थक अभिव्यक्ति को अतीव आवश्यकता है। यह अभिव्यक्ति जितनी सबल होगी उतनी ही अधिक चकित करेगी तथा तीव्र उल्लास को जन्म देगी। अभिव्यक्ति को सबल तथा गूढ़ बनाने के हेतु व्यंग्य कर्ता में शीघ्र ग्रहण शक्ति तथा तत्काल उत्तर देने की क्षमता होनी चाहिए।

अभिव्यक्ति को सबल बनाने के हेतु उसका स्वरूप अत्यन्त गठा हुआ तथा संक्षिप्त होना आवश्यक है। वाक्चातुर्य मूल रूप में बुद्धि-विलास ही है अतः उसके हेतु उच्च शिक्षा तथा योग्यता भी उतनी ही अनिवार्य है। चूँकि इसमें प्रायः प्रतिशोध की भावना मूल में रहती है अतः उसमें आनन्द के साथ-साथ एक तीव्र दंशन भी रहता है जो बुद्धि तथा हृदय पर एक साथ प्रहार करता है। इस दंशन की तीव्रता पर ही वाक्चातुर्य के आनन्द की तीव्रता निर्भर है। वाक्चातुर्य काले घनों में विद्युत के सदृश है जो चमकने पर नेत्रों को चौंधिया देती है और हृदय में उछाह का बीज भी बो देती है जिससे उसे बार-बार देखने की अभिलाषा होती है।

हास्य वाक्चातुर्यमय व्यंग्य की भाँति क्षणिक एवं तीखा नहीं होता। प्रायः वह विस्तार एवं वर्णन का आश्रय लेता है क्योंकि उसे परिस्थिति का निर्माण करना होता है। इसी कारण वह स्थायी होता है। अतः हास्य का उद्रेक चेहरे के भावों से, शरीर की चेष्टाओं से तथा परिस्थिति की असङ्गति से होता है। एक व्यंग्य भरी हल्की सी मुस्कराहट से भी हास्य की सृष्टि हो सकती है।

प्रायः हास्य परिस्थितियों की असङ्गति पर ही जन्म लेता है। कभी-कभी उसमें गहरी वेदना का भी सम्मिश्रण हो जाता है, परन्तु उस वेदना में भी हँसी आए बिना नहीं रहती। अतः हास्य विनम्र एवं स्वस्थ होता है। उसके मूल में कोई प्रतिशोध की भावना या दंशन नहीं रहता। यही कारण है कि हास्य शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों को समान आनन्द प्रदान करता है।

कुछ विद्वान हास्य को दो प्रकारों में विभक्त करते हैं; यथा—निरपेक्ष एवं सापेक्ष। दोनों में ही हास्यास्पद असङ्गति से उद्भूत उल्लास मिलता है। परन्तु दोनों में थोड़ा अन्तर स्पष्ट है। सापेक्ष हास्य में जो उल्लास हमें प्राप्त होता है उसके निमित्त हैं समाज द्वारा मान्य एवं स्वीकृत नियम अथवा धारणाओं के विपरीत परिस्थिति एवं कार्य। समाज के अपने नियम तथा अपनी धारणाएँ हैं। वे सब मानव निर्मित हैं। उन मान्यताओं के विपरीत कार्य करने के लिए अत्यंत साहस का होना आवश्यक है। वही साहस हास्य का आलम्बन बन जाता है। उदाहरणार्थ एक बैलगाड़ी में एक महादेव का तथा दूसरा शनि का वाहन बँधा देख कर हम अनायास ही हँस पड़ते हैं। या किसी-किसी काले-कलूटे को अत्यन्त ही सुन्दर वधू की कामना करते देख हम अपनी हँसी रोकने में असमर्थ हो जाते हैं।

निरपेक्ष हास्य सामाजिक नियमों के उल्लंघन से उद्भूत नहीं होता वरन् प्राकृतिक नियम में जब असंगति दृष्टिगोचर होती है तब कभी-कभी हँसी आजाती है तथा उसे तङ्ग करने को मन ललचा उठता है।

प्रत्येक हास्य में उपहास या मजाक एवं उल्लास निहित होता है। परन्तु प्रत्येक मजाक हास्य नहीं। जब मजाक तीव्र ईर्ष्या तथा तीखा होता है तो वह घृणा को जन्म देता है। सच्चा हास्य अत्यन्त ही मानवीय होता है, स्वस्थ व प्रेरक होता है। जिस रचना में यह हास्य नहीं होता, तो वहाँ लेखक कला कुछ पंगु सी दीखती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीयता के उद्घोषक-डिंगल के कवि, पृथ्वीराज और दुरसाजी

श्री रामपाल बजाज

प्राचीन कवियों में केवल भूषण ही ऐसे हैं जिन्हें हम राष्ट्रीय कवि कहा करते हैं। भूषण राष्ट्रीय कवि थे या जातीय यह प्रश्न यहाँ विवेच्य नहीं। पर हाँ यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि राष्ट्रीयता कोई युग-विशेष से परे की वस्तु नहीं है। युग की सीमा उसके लिए भी है। अतः भूषण राष्ट्रीय कवि हैं—और 'रैयत की कसक' (मिट गई रैयत के उर की कसक, सब मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की) को अभिव्यक्त करने वाले जनता के प्रतिनिधि कवि।

'भूषण' पिंगल के कवि हैं। उनकी भाषा पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि बाना अवश्य ब्रज-भाषा का है किन्तु अन्दर ६० प्रतिशत से भी अधिक फ़ारसी, अरबी तथा बुन्देलखण्डी के शब्द भरे पड़े हैं। कुछ शब्द पिंगल के भी हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रजभाषा राष्ट्रीय भावों को अभिव्यक्त नहीं कर सकी। इन भावनाओं की अभिव्यञ्जना की शक्ति उसमें थी या नहीं; इस विषय में इतना ही कहना अलम् होगा कि शृङ्गार के सीमित (नायिका भेद) क्षेत्र में घिसते-घिसते उसकी अभिव्यञ्जना शक्ति इतनी सीमित हो गई थी कि प्रत्येक भाव की सम्यक अभि-व्यञ्जना-शक्ति उसमें नहीं रह गई थी।

भारतेन्दु ने भारत की करुण दशा देख कर भारत की इसी दुर्दशा के चित्र उपस्थित करने तथा इसी के माध्यम द्वारा राष्ट्रीयता का साहित्य में सन्निवेश किया। करुणा से पूर्ण हृदय की इन भावनाओं को प्रकट करने का जो प्रयास भारतेन्दुजी ने ब्रजभाषा में किया उससे इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा में उन भावों की समुचित अभिव्यञ्जना न हो सकी। उन मार्मिक भावों को वहन करने की शक्ति ब्रजभाषा में नहीं थी। ब्रजभाषा सदैव से सौन्दर्य वर्णन की भाषा रही है—उसका अधिकांश साहित्य सौन्दर्य का ही साहित्य है। जीवन की अन्य विभूतियाँ—शील तथा शक्ति की अभिव्यञ्जना ब्रजभाषा में न हो सकी। भारतेन्दु के ये भाव—

हा ! चित्तौर हाय ! पानीपत
अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत

आदि की व्यञ्जना फिर से एक बार दिनकर की कविता में होती है तो हम इसे भारतेन्दु की कविता से अधिक प्रभावशाली पाते हैं। यद्यपि भावों के क्षेत्र में कोई परिवर्त्तन लक्षित नहीं होता है। इसका कारण वही है—ब्रजभाषा की अभिव्यञ्जन शक्ति का अभाव। जो भाषा एक विषय (सीमित) की ही अभिव्यञ्जना समीचीन रूप से कर सके तथा जीवन की अनेकरूपता की व्याख्या करने की शक्ति जिसमें न हो वह भाषा सचमुच ही दीन-हीन है। भारतेन्दु ने भावों के क्षेत्र में क्रान्ति की थी—भाषा या काव्य के बाह्य रूप के विषय में उनके अधिकतर विचार परम्परानुरागी ही रहे।

राष्ट्रीयता का सम्बन्ध मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति के साथ है। यह एक ऐसी निसर्ग सिद्ध भावना है जो जन्म के साथ ही पैदा होती है। साहचर्यगत प्रेम के कारण उस बीज का विशेष विकास होता है। असभ्य से असभ्य जङ्गली मानव को अपने निकट के लता, पेड़, पशु, पक्षी, झरने आदि अपने कुटुम्ब के सदृश प्यारे होते हैं। यह वैसे तो प्रच्छन्न रहता है किन्तु बिछोह की अवस्था में इसका किञ्चित निदर्शन ही इन भावों की व्यञ्जना के लिए पर्याप्त है।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता का इतिहास अधिक नहीं। हमें यहाँ एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि राष्ट्रीयता का विकास भी प्रायः ऐसी अवस्था में होता है जब वह प्रायः सङ्कटापन्न अवस्था में हो। दुःख की अवस्था में ही कविता उत्पन्न होती है।

वीरगाथा-काल में तो राष्ट्रीयता का पूर्ण अभाव ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है; क्योंकि उस समय के चारण कवि पराधीनता के दुःख अनुभव से शून्य थे—इसलिए आपस में लड़ने झगड़ने के बुरे परिणाम से वे अवगत न थे। यद्यपि इतिहास इन दोषों के परिहार के लिए पूर्व की हुई भूलों को बारबार दुहरा रहा था। पर इतिहास की बात और थी—स्वानुभव और ही होता है। जब तक पराधीनता के दुःख का अनुभव न हो तब तक राष्ट्रीयता का महत्व समझ में नहीं आता। अस्तु पराधीनता के बाद ही राष्ट्रीयता का उदय होता है; इसमें अनुभूति का दाह रहता है, भावों की तीखी चोट होती है। हिन्दी में राष्ट्रीयता का उदय ठीक उस समय होता है जब यहाँ का भारतीय समाज पराधीनता का आस्वादन करके समझ चुका था कि—

"पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं"

हिन्दी में राष्ट्रीयता का प्रवर्त्तन मध्यकाल में होता है। मध्यकाल में जहाँ एक ओर कबीरदास अपनी अटपटी बानी में हिन्दू मुसलमान के एक होने का, ऊँच-नीच के भेद-भाव को मिटाने का उपदेश दे रहे थे, दूसरी ओर जायसी, कुतबन आदि सूफी प्रेम-गाथा के कवियों ने दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में विकसित हृदयों को एक करने का प्रयत्न किया। एक ओर सूर आदि कवियों ने भगवान के मनोमुग्धकारी स्वरूप का दर्शन कराकर जनता की चित्तवृत्ति को बहलाने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर तुलसी आदि ने भगवान का लोक संग्रह की भावना से पूर्ण लोक मङ्गलकारी लोकरञ्जक स्वरूप दिखलाकर उसमें शील, शक्ति और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा का एक आदर्श उपस्थित कर उस आदर्श को जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में होकर गुजरना दिखाया। इस प्रकार जीवन की अनेक-रूपता का चित्रण कर गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक आदर्श की प्रतिष्ठा की।

इन सभी भक्ति-रस से पूर्ण कवि सम्प्रदायों के होते हुए भी एक कवि सम्प्रदाय ऐसा भी था जो राष्ट्रीयता के भावों को काव्य में पुष्ट कर रहा था। ऐसे कवियों की रचनाएँ ब्रजभाषा में न होकर डिङ्गल में हैं और स्यात् इसी कारण विद्वान उन्हें अभी तक उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे।

ऐसे राष्ट्रीय कवियों में दुरसाजी और पृथ्वीराज अग्रगण्य हैं हमें यहाँ इन्हीं दो कवियों की कविताओं की राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में विचार करना है।

राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने के कई आलम्बन हो सकते हैं। जैसे उस समय की हीन दशा, जाति या राष्ट्र या ऐसे वीर पुरुष जो जाति या राष्ट्र के प्रतिनिधि स्वरूप हों, आदर के पात्र हों, जिन पर हमें गर्व हो, जिनमें राष्ट्र संरक्षण की शक्ति हो—ऐसे ही आन के पक्के, धीर, वीर, उदार तेजस्वी वीरों के प्रति अपनी भावनाओं का व्यक्तीकरण व्यक्ति के प्रति न होकर समूची जाति या राष्ट्र के प्रति होता है क्योंकि वे उनका प्रतिनिधित्व जो करते हैं—उनके एक-एक कार्य में राष्ट्र की आत्मा का स्वर रहता है—सचमुच में वही राष्ट्र है। राणा प्रताप ऐसे ही महापुरुष थे। उस संक्रमण कालीन अवस्था में महाराणा प्रताप ने महान पीड़ा सहकर दुःखों का अनुभव कर जो त्याग किया है—उन्होंने न केवल सीसोदिया वंश या क्षत्रिय जाति के सम्मान की ही रक्षा की वरन् समूची भारतीयता के सम्मान की रक्षा की है। उसमें समूचे समाज की आन है—उसमें भारतीयता का गौरव है। पृथ्वीराज और दुरसाजी दोनों ने इन्हीं तपोनिष्ठ महापुरुष की प्रशंसा में अपनी लेखनी को धन्य किया।

दुरसाजी और पृथ्वीराज दोनों ही अकबर के दरबारी थे। दोनों ने महाराणा के लिए लम्बी-लम्बी प्रशस्तियाँ लिखीं किन्तु अकबर के लिए एक शब्द भी प्रशंसा सूचक नहीं लिखा वरन् स्थान-स्थान पर उसके नीच कर्मों को अनावरित किया है। उन्होंने स्थान-स्थान पर उसकी भर्त्सना भी की है तथा खरी-खोटी भी सुनाई हैं। वे कहते हैं—

"अकबर गरब न आँण,
हिन्दू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दीवाण,
लटका करतो कटहड़े।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हे अकबर ! तू गर्व न कर कि सारे हिन्दू तेरे आधीन हो गये हैं। किन्तु क्या कभी एकलिङ्गजी के दीवान महाराणा प्रताप को शाही कटहरे में सलाम करते देखा है)

अकबर को इस प्रकार की फटकार दुरसाजी ने कई बार सुनाई है। वे अकबर के आश्रित थे किन्तु चाटुकार होकर नहीं। वे चारण थे किन्तु झूठी प्रशंसा के लिए नहीं, वरन् राष्ट्र के प्रतिनिधि कहलाने वाले व्यक्ति की प्रशंसा के लिए चारण थे। महाराणा प्रताप की ओर से दुरसाजी को चाहे करोड़ पसाव अथवा जागीर लभ्य नहीं हुई हो किन्तु इससे क्या ? राष्ट्रीय कवि की वाणी ऐसे ही राष्ट्र नायकों की प्रशंसा में दत्तचित्त होती है चाहे कुछ मिले या नहीं। यहाँ प्रश्न कवि के उत्तरदायित्व का है, रुपये पैसे का नहीं। राष्ट्र के स्वर में स्वर मिला कर उमड़ती हुई राष्ट्रीयता का अगुआ गीतकार बन अपनी वाणी को मुखरित करना ही वास्तविक राष्ट्रीय कवि का धर्म है। दुरसाजी सच्चे राष्ट्रीय कवि थे। हम यों भी कहें तो अनुचित न होगा कि दुरसाजी हिन्दी कविता की राष्ट्रीय धारा के आदि कवि थे। उनके समकालीन ही पृथ्वीराज भी आते हैं, जिन्होंने पुण्य श्लोक महाराणा प्रताप का यश गाकर भारती को धन्य किया। पृथ्वीराज के विषय में ज्ञात ही है कि वे महाराणा प्रताप के बड़े हितचिन्तक थे। महाराणा प्रताप द्वारा प्रेषित पत्र का जिक्र जब अकबर ने पृथ्वीराज से किया तो उन्होंने उसे स्पष्ट जाली ठहराया था। तदुपरान्त महाराणा को पत्र भी लिखा था। राजस्थान में दुर्गादास के विषय में दोहे का यह एक पद प्रचलित है—

"माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा दुर्गादास"

यह पंक्ति पृथ्वीराज की ही इस पंक्ति का परिवर्तित रूप है:—

"माई एहड़ा पूत जण जेहड़ा राण प्रताप"

इन दोनों महाकवियों ने अपनी पुण्यवाणी द्वारा राणा के यश का वर्णन किया है। सारे राजा लोगों ने अकबर की आधीनता स्वीकार करली किंतु राणा ही एक ऐसे स्वाभिमानी व्यक्ति थे जो उसे (अकबर) अपना स्वामी मानने को तत्पर न थे। अकबर केवल एक बार उनके द्वारा स्वामी शब्द के सम्बोधन का भूखा था। वह तो यहाँ तक चाहता था कि राणा एक वार दरबार में आ जावें चाहे वह मेरी दासता स्वीकार न करें, मुझे स्वामी न कहें। पर राणा प्रताप अकबर से दरबार में भेंट करने को तैयार नहीं। राष्ट्र के हृदय पर अकबर की पराजय इस बात से स्पष्ट है। धन और केवल नीति से हृदय पर अधिकार नहीं किया जा सकता। अकबर ने चाहे सारे भारत को अपने आधीन कर लिया हो, राणा प्रताप का राज्य भी उसने छीन लिया हो किंतु राणा प्रताप को वह न जीत सका। उनके हृदय पर वह विजय न पा सका, क्योंकि राणा प्रताप का हृदय समूचे भारतीय राष्ट्र का हृदय था, इसीलिए अकबर प्रताप को दरबार में न बुला सका। पर रण क्षेत्र में भेंट करने को वह वीर सदैव प्रस्तुत है—

"आयां दल सबल सामहो आवै,
रंगिये खग खत्रवाट रतो।
ओ नर नाह नमो नह आवै,
पतसाहण दरगाह पतो ॥" (दुरसाजी)

अकबर के बाहुबल के अथाह सागर में सारे राजा गण डूब गये किंतु एक राणा ही ऐसा है जिसने उसका लोहा नहीं माना है। कमल की तरह इस अथाह सागर में तैर रहा है—

"अकबर समद अथाह,
सूरापण भरियो सजल।
मेवाड़ो तिण मांह,
पोयण फूल प्रतापसी ॥" (पृथ्वीराज)

अकबर सारे हिन्दू राजाओं से कर वसूल करता था किन्तु एक राणा प्रताप ही अपवाद स्वरूप थे। इसी प्रकार अकबर ने लगभग सभी हिन्दू राजाओं की कन्याओं तथा बहनों से विवाह कर लिया था किंतु सिर्फ एक राणा प्रताप ही ऐसे थे जिन्होंने अपनी कन्याओं और भगिनियों का अककर के साथ विवाह करना तो दूर अकबर के हृदय में ऐसी बात सोचने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहस भी न छोड़ा था। यह बात ठीक भ्रमर और चम्पे के फूल की भाँति है। चम्पे का रस लेना तो दूर, उसकी तीक्ष्ण गंध के कारण भ्रमर चम्पे के पास भी नहीं जाता। अन्य फूलों से वह मनमाना रस ले लेता है। इसी भावना की अभिव्यक्ति यहाँ देखिए—

"चम्पो चीतोड़ाह,
पोरस तणों प्रतापसी
सोरभ अकबर साह
अलियल आ भड़ियो नहीं।" (पृथ्वीराज)

इसी भावना की अभिव्यक्ति बाद में भूषण ने शिवाजी और औरङ्गजेब के प्रसंग में की है—

"नव अलि औरङ्गजेब, चम्पा शिवराज है।"

राणा प्रताप का शौर्य वर्णन, उनकी अटलता की प्रशंसा, धैर्य का स्तवन, अकबर के हृदय की जलन तथा राणा की उच्चता का वर्णन ही इनकी कविता का प्रधान विषय है। इनमें राणा प्रताप आलम्बन होंगे तथा उनकी प्रतिज्ञा की अटलता, विविध दुःखों के झेलते हुए प्रण-रक्षा, स्वदेशाभिमान आदि इस कविता के उद्दीपन पक्ष के अन्तर्गत आवेंगे।

यह वर्णन दोहों में ही हुआ है, कुछ डिंगल गीत भी हैं।

राणा प्रताप अकबर को 'बादशाह' कह दें तो कश्यप के पुत्र सूर्य पश्चिम से उग आएँ जो नितान्त असम्भव है। सूर्य को कश्यप का पुत्र कह कर विशेष भाव की व्यञ्जना की गई है। कारण कश्यप का आश्रम सुमेरु पर्वत पर है जो पूर्व में स्थित है—साथ ही सूर्य का पश्चिम से उदित होना अपनी मर्यादा को भङ्ग करना है। राणा प्रताप यदि मर्यादा को भङ्ग कर दें तो उनके आदि पुरखे, पूर्वज सूर्य भी मर्यादा से विचलित हो जावें।

"पातल जो पतसाह
बोलें मुख हूँता बयण
मिहर पछम दिस माँह
उगै कासप राव उत।" (पृथ्वीराज)

अकबर ने घोड़े दागने की प्रथा शेरशाह से प्राप्त की थी, तदनुसार उन सब राजाओं के घोड़े दागे जाते थे जो अकबर की आधीनता स्वीकार कर चुके थे। इस प्रकार वह मोहर बादशाह की दासता की परिचायक थी। सभी राजा लोग दासता के परिचायक दागे हुये घोड़ों पर बैठते थे—

"अकबरिये इक बार,
दागल की सारी दुनी
अणदागल असवार
रहियो राण प्रताप सी।" (दुरसाजी)

राणा प्रताप तो क्या राणा प्रताप के घोड़े पर भी दाग नहीं, कलङ्क का एक छींटा नहीं। कितनी मार्मिक व्यञ्जना है। पराधीनता के इस घोर अन्धकार में लगभग सभी हिन्दू राजा दब चुके थे—केवल राणा प्रताप ही एक सजग प्रहरी थे—

अकबर घोर अँधार,
ऊँघाणा हिन्दू अबर।
जागै जगताधार,
पौहरै राण प्रताप सी॥" (दुरसाजी)

यहाँ सभी राजा ऊँघ रहे हैं। किन्तु राणा प्रताप जाग रहे हैं—केवल इतना कह देने मात्र से व्यञ्जना चरम पर नहीं पहुँचती। निद्रा और ऊँघने में भी अन्तर है। निद्रा में मन की गति अचेतन रहती है। किन्तु ऊँघने में मन की गति अचेतन बनाई जाती है। अन्य नृप यदि सोते होते तो बात ही दूसरी थी—किन्तु वे तो ऊँघ रहे थे। सोने का उपक्रम कर रहे थे, स्वयं को भूलने का उपाय कर रहे थे। इस शब्द में उदासीनता का भाव प्रकट होता है। अन्य राजा लोग भारतीयता के कुल गौरव की ओर से उदासीन हो रहे थे—ऊँघ रहे थे, निष्क्रिय हो रहे थे (किन्तु जान बूझ कर) चाहे कोई भी भारतीयता के कुल-गौरव का नामोनिशान मिटा देता—वे इसके लिए तैयार ही थे। किन्तु यहाँ पर राणा प्रताप सचेत ही नहीं पहरे पर तैनात हैं, देखें कौन आता है—क्षात्र धर्म की लज्जा का अपहरण करने? केवल सचेत में कर्मठता की इतनी तीव्र व्यञ्जना नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः भावों की व्यञ्जना के लिए अलङ्कारों का सहारा लिया गया है। अलङ्कारों में रूपक, व्यतिरेक तथा अप्रस्तुत प्रशंसा का सहारा लिया गया है। शब्दों से खिलवाड़ का अभाव ही मिलता है। और न यमक, श्लेष परिसंख्यादि शब्दालङ्कारों के फेर में ही वे पड़े हैं। इन कवियों के अलङ्कार सर्वत्र भावों की व्यञ्जना को अधिक तीव्र करने में सहायक हुए हैं। अकबर ने राणा प्रताप को वश में करने के लिए कितने उपाय किए—कितना जादू चलाया पर राणा उसके वश में नहीं हुए। इसे रूपक अलङ्कार की सहायता से व्यक्त किया है—

"कलपै अकबर,
गुण पूँगीधर गोड़िया।
मिणधर छाबड़ माँय,
पड़ै न राण प्रताप सी॥" (दुरसाजी)

इसी प्रकार अकबर ने सब राजाओं को इकट्ठा किया किन्तु राणा प्रताप को वह न बुला सका, इसे रूपक तथा व्यतिरेक के समन्वय के सहारे व्यक्त किया है—

"पहु गोधलिया पास,
आलूधा अकबरतणी।
राणो षिमै न रास,
प्रघलो सांड प्रतापसी॥" —पृथ्वीराज

रूपक मिश्रित व्यतिरेक का एक उदाहरण और देखिए—

"अकबर पथर अनेक
कै भूपत भेला किया।
हाथ न लागो एक
पारस राण प्रताप सी।"—दुरसाजी

राष्ट्रीयता की दिव्य ज्योति की छटा हम इन दोनों कवियों की कविता में देख चुके। दोनों ने ही कहा है कि एक दिन ऐसा आवेगा जब न अकबर रहेगा न उसका साम्राज्य ही स्थिर रहेगा। किन्तु राणा प्रताप की कीर्ति तब भी रहेगी, उनके सद्गुणों की प्रशंसा तब भी होगी—

"अकबर जासी आप
दिल्ली पासी दूसरा।
पुनरासी परताप
सुजस न जासी सूरमा।"—दुरसाजी

"जासी हाट बात रहसी जग
अकबर ठग जासी एकार।
है राख्यो खत्री ध्रम राणै
सारा लै बरतो संसार।"—पृथ्वीराज

इन दोनों प्रताप के प्रशंसकों में जहाँ कई बातें मिलती हैं वहाँ उनमें कुछ विभिन्नता भी है। दोनों ने ही अकबर को खरी-खोटी सुनाई हैं। अन्य राजाओं की अपेक्षा राणा प्रताप की उच्चता का वर्णन किया है। राणा को कोई नहीं जीत सका या राणा ने अकबर की आधीनता स्वीकार नहीं की इसका भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। राणा प्रताप पराधीनता के लाभ को लभ्य नहीं करना चाहते वरन् स्वतन्त्रता में ही दिव्य जीवन का अनुभव करते हैं। अस्तु इन दोनों कवियों में कई स्थानों पर भाव-साम्य मिलता है। कुछ स्थानों पर तो शब्दों की भी समानता है। यथा—

"अकबर समंद अथाह
सूरापण भरियो सजल,
मेवाड़ो तिन्ह मांह
पोयण फूल प्रताप सी" —पृथ्वीराज

"अकबर समंद अथाह,
तिहँ डूबा हिन्दू तुरक,
मेवाड़ो तिन्ह माँह,
पोयण फूल प्रताप सी॥" —दुरसाजी

इतना होते हुए भी दोनों के वर्णन में कुछ अंतर है। पृथ्वीराज की कविता में जो राष्ट्रीय भावना प्रस्तुत हुई है उसमें राजा का "रजपूत बट" रक्षक रूप ही अधिक निखरा है। उनकी राष्ट्रीयता में राणा के क्षात्र-धर्म के रक्षक रूप की व्यञ्जना अधिक हुई है। राणा ने राजपूती बाने की रक्षा की है। यही पृथ्वीराज की अधिकांश राजा संबन्धी कविता में व्याप्त है—उन्होंने राणा को अधिक विशाल रूप में देखने का प्रयत्न नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। राणा पर ही क्षात्र धर्म की रक्षा का भार समझ वे 'एक भरोसो, एक बल, एक आत्म विश्वास' करके बैठ गये थे। राणा की कष्ट सहिष्णुता आदि का वर्णन उन्होंने बहुत कम किया है। दुरसाजी ने राणा की प्रशंसा इसलिए की है कि वह एक अचल अडिग उद्देश्य लिए केवल अपनी राह पर सदैव एक-सा चलता रहा। धैर्य उसका सहचर है, दृढ़ता उसकी अनुगामिनी।

पृथ्वीराज स्वयं भी राजपूत थे और राणा ने राजपूत जाति की मान रक्षा की थी एवं अपने सच्चे राजपूत होने का परिचय दिया था। पृथ्वीराज को इसका गौरव था। उन्हें राणा पर अभिमान था और यही भावना उनके काव्य में सतत् एक सी चलती रही है। दुरसाजी ने राणा के सभी रूपों को ग्रहण किया है। उनके एक-एक गुण पर वे मुग्ध हैं। राजा ने अकबर की दासता स्वीकार नहीं की इसमें राजपूतों की अथवा सीसोदिया कुल की मान रक्षा का प्रश्न था या नहीं इससे उन्हें कुछ मतलब नहीं—पर वे जो कारण देते हैं वह देखिए कितना भव्य है—

थिर नृप हिन्दुस्तान
लातरगा मग लोभ लग।
माता भूमि मान,
पूजै राण प्रतापसी ॥"—दुरसाजी

पृथ्वीराज की राष्ट्रीयता का मूल देखिए—

"पेखे आप तणा पुरुषोतम,
रह अणियाल तणैं बल राण।
खत्र बेचिया अनेक खत्रियाँ,
खत्रवट थिर राखी खुम्माण ॥

दूसरी विभिन्नता है कि पृथ्वीराज ने राणा के युद्धवीर रूप का अधिक वर्णन किया है। इसमें वे बरछी और भाले द्वारा शत्रु सेना का संहार किस प्रकार करते हैं—का वर्णन है। दुरसाजी ने भी इसका वर्णन किया है। किन्तु इसकी अपेक्षा उन्होंने राणा के कष्ट-सहिष्णु रूप को अधिक दर्शाया है। विविध प्रकार के दुःखों को देखते हुये राणा वन-वन मारे-मारे फिरे—वास्तव में उनका यह रूप अभिनन्दनीय है। दुरसाजी की लेखनी इस प्रकार के चित्र उतारने में अधिक रमी है।

(पृष्ठ ३४० का शेषांश)

की नैतिक ह्रासोन्मुखी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में हेय और अवांछनीय है। वे फ्राइड की मान्यताओं को एकांगी मानते हैं।

'फ्राइड ने रोगी मन का विश्लेषण कर मनोविज्ञान के तथ्य प्रस्तुत किये, उनसे आत्म प्रेरणा, आत्मानुभव तथा आत्म साक्षात्कार की गुत्थियाँ हल नहीं होतीं। यदि फ्राइड के तत्वों को मान लिया जाय, तो हमारा सारा 'संत-साहित्य' केवल 'बुद्धि का विलास' मात्र रह जाता है।' —विनयमोहन शर्मा 'दृष्टिकोण' पृष्ठ ४०

श्री गुलाबरायजी भी उपरोक्त मत का समर्थन करते हैं—'कामवासना हमारी वासनाओं में प्रमुख स्थान रखती है, किन्तु वह एक मात्र वासना नहीं है। ऐसा मालूम पड़ता है कि नग्नवादी अब चेतन की बात को स्पष्ट करने के लिए उसको चेतना की ऊपरी सतह पर ले आते हैं। इन लोगों की शायद यही व्याख्या होगी कि अवचेतना को दिखाने का हमारे पास और कोई साधन नहीं है,'''' ''ये लोग साहित्य को नीति से परे रखना चाहते हैं। मैं इस मत का नहीं हूँ। भारतीय परम्परा भी इसके विरुद्ध है। साहित्य में वस्तुवाद और आदर्शवाद दोनों होने चाहिये।'

युद्धोत्तर काल अनेक समस्याओं का युग रहा है। कहानी के माध्यम से संघर्षशील स्थितियों को मूर्त करने में अनेक सिद्धहस्त कहानीकार इस बीच सक्रिय रहे, और अनेक नये लेखकों की प्रतिभा भी चमकी। आज कहानी का वस्तु और रूपगत विस्तार इतना बढ़ गया है, कि इस लेख के सीमित स्थान में समस्त उपलब्धियों को समेटना असम्भव है। संक्षेप में यह काल प्रेमचन्द की परम्परा पर ही पला है, और उन्हीं सूत्रों पर इसकी प्रगति तथा प्रसार का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत और कामायनी

श्री कुमार विमल एम० ए०

साकेत से कामायनी तक हिन्दी कविता दो ध्रुवान्तों के बीच की एक लम्बी यात्रा तय करती है। ये दो विकास-स्तम्भ साहित्यिक गौरव के अतिरिक्त विकास की परम्परा में ऐतिहासिक महत्त्व भी रखते हैं। यहाँ हमें प्रसङ्गान्तर की बातें छोड़ कर इनके महाकाव्यत्व पर विचार करना है।

बन्ध की दृष्टि से भारतीय समीक्षा-पद्धति में श्रव्य-काव्य के दो भेद किए गये हैं—एक प्रबन्ध और दूसरा मुक्तक। प्रबन्ध में पूर्वापर का तारतम्य रहता है। पुनः प्रबन्ध-काव्य के दो भेद हैं—महाकाव्य और खण्ड काव्य। महाकाव्य का विस्तार बड़ा ही व्यापक होता है। उसमें मानव-जीवन की समग्रता और जाति-विशेष की सांस्कृतिक चेतना का विराट् पृष्ठाधार रहता है। महाकाव्य कल्पना के प्रजापति की दिव्य सृष्टि है। इसके शास्त्रीय लक्षणों को हम संक्षेप में इस प्रकार बता सकते हैं—

१—यह सर्गबद्ध होता है।

२—इसका नायक उच्चकुल-सम्भूत, धीर एवं उदात्त गुणों से समन्वित रहता है।

३—शृङ्गार, वीर और शान्त रसों में कोई एक रस अङ्गी रहता है। साथ ही नाटक की सन्धियों का यथा सम्भव नियोजन रहता है।

४—इसका वृतान्त इतिहास-प्रसिद्ध रहता है।

५—इसमें मङ्गलाचरण और वस्तु-निर्देश रहता है।

६—कहीं-कहीं खल-निन्दा और सज्जन-स्तुति का समावेश रहता है।

७—एक सर्ग में एक ही छन्द और अन्त में छन्द-परिवर्त्तन रहता है।

८—इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष आदि का वर्णन रहता है।

मोटे रूप में महाकाव्य के ये ही शास्त्रीय लक्षण हैं। जहाँ तक पश्चिमी साहित्य-शास्त्र का इससे सम्बन्ध है, इनके निरूपण में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। उसमें एक ही नवीनता है कि वहाँ महाकाव्यों की दो कोटियाँ हैं—एक Epic of Growth और दूसरा Epic of Art. इस दृष्टि से हम कामायनी को Epic of Art और साकेत को, मोटे तौर पर, Epic of Growth कह सकते हैं।

समीक्षा-शास्त्र के उपर्युक्त निष्कर्ष पर साकेत अधिक खरा उतरता है। सर्गबद्धता, सर्गान्त में छन्द-परिवर्त्तन, ऐतिहासिकता, मङ्गलाचरण और रस की अङ्गिता के निर्वाह में साकेत कामायनी को पीछे छोड़ देता है। तथापि उसमें शास्त्रीय लक्षणों का सर्वथा निर्वाह नहीं हो पाया है, क्योंकि साकेत जाने या अनजाने परम्परा से भिन्न एक दिशान्तर प्रयाण है। साकेत में पहले पहल महाकाव्य की वीर रस-प्रधान पद्धति की उपेक्षा की गई है। यह साहित्यिक प्रवर्तन कामायनी में भी प्रतिफलित हुआ है, जिसके फलस्वरूप उसमें वीर रस की विरलता मिलती है। इसी प्रकार साकेत की चरित्र-सृष्टि में धीरोदात्त नायक की गरिमा और उत्कर्ष के स्थल पर सरल और मनोरम मानवीय भावों की योजना की गई है। साकेत में महाकाव्य-सम्बन्धी नया आदर्श और प्रतिमान स्थापित करने का प्रयत्न भले ही जान-बूझ कर न किया गया हो, परन्तु महाकाव्य विषयक क्रमागत व्यवस्था और परिपाटी से इसने युगानुकूल एक नई मोड़ ली है जिससे आधुनिक युग का नया साहित्यिक प्रवर्तन इसे स्वभावतः अपने विकास की प्रारम्भिक कड़ी मानकर चलता है। इस दृष्टि से साकेत का ऐतिहासिक मूल्य कामायनी को आक्रान्त कर लेता है। इसके सिवा ये दोनों महाकाव्य नारी-जागरण और कला की नयी स्त्रैणता के कारण परम्परा के असदृश नायिका-प्रधान महाकाव्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इन दोनों महाकाव्यकारों की दृष्टि परम्परा से अधिक प्रगति की ओर रही है। अतः इन्हें नवयुग के परिवर्त्तित प्रतिमानों पर मूल्यों के ग्रहण के कारण शास्त्रीय लक्षण के कई अंश अब कल की चीज हो गये हैं। अस्तु, नवीन चेतना और नये मूल्यों को दृष्टिगत रख कर प्राचीन लक्षण का संशोधित प्रतिमान हम निम्नांकित शीर्षकों में रख सकते हैं—कथा का अनुबन्ध, विषय की व्यापकता और महत्त्व, तथा शैली का गाम्भीर्य एवं उसके प्रसाधन।

कथा की सानुबंधता अथवा प्रबन्ध काव्य की शरीर-यष्टि की दृष्टि से साकेत अधिक सबल है। उसकी कथावस्तु में एक अव्याहत पूर्वा पर क्रम, सातत्य और संग्रथन है। केवल नवम् सर्ग में कथा की गति एक अनुचित विराम पर ठहरती है, किन्तु इसकी क्षति-पूर्ति कवि गीतात्मकता की सायास साधना से कर लेता है और इस सर्ग के द्वारा प्रबन्धात्मकता की धारा में बहने वाले पाठकों का यथाकिंचित् श्रम-परिहार भी हो जाता है। लेकिन कामायनी के प्रत्येक सर्ग में एक प्रगीतात्मक खंड-प्रवाह है। कामायनी की मूल-चेतना महाकाव्य के अनुकूल कथात्मक न होकर गीतात्मक है। इसकी महाकाव्यात्मक गरिमा (Epic grandner) बहुत्त्वांश में गीति-तत्त्व से दब-सी गई है। कामायनी दीवालों की जोड़ से बनी इमारत है, जबकि साकेत का सौध ईंटों की जोड़ से निर्मित है। हाँ, यह अलग की बात है कि इस सानुबंधता का श्रेय गुप्तजी की प्रतिभा से अधिक उसकी प्राप्त परम्परा को है, क्योंकि साकेत का कथानक इतना सुलझा हुआ था कि अल्प आयास और परिवर्त्तनों के द्वारा उसकी मनोनुकूल नियोजना हो गई।

कथावस्तु के साथ ही चरित्रों के निरूपण का प्रश्न उठता है। साकेत में चरित्रों की संख्या पर्याप्त है। उसे हम चरित्र-प्रधान महाकाव्य भी कह सकते हैं। किन्तु कामायनी में पात्रों की संख्या इतनी कम है कि उनके दुर्बल कन्धे महाकाव्य के दुर्वह भार के परिवहन के लिए असमर्थ दीख पड़ते हैं। दूसरी ध्यातव्य बात यह है कि कामायनी के चरित्र प्रतीक-चरित्र हैं। ये जीवन की दार्शनिक इकाइयों के प्रतिनिधि मात्र हैं। इसलिये प्रतीक पात्रों की भूमिका में रहने के कारण कामायनी में मानवीय गुणों और व्यक्तित्व का पूरा उन्मेष नहीं हो पाया है। पात्रों के अभाव का दूसरा फल यह हुआ है कि आलम्बन का चित्रण बहुत कम हो पाया है। इसकी क्षति-पूर्त्ति के लिए कवि को वस्तु-चित्रण पर्याप्त मात्रा में करना पड़ा है। विशेषकर सूक्ष्म मानसिक वस्तुओं को साकार रूप देने में कवि की कल्पना का अधिक व्यय हुआ है, और उसे प्रशंसनीय सफलता मिली है। अतः साकेत में जहाँ हमें जाने-पहचाने पात्रों का साहचर्य-सुख मिलता है, वहाँ कामायनी में पात्रों के मानसिक उद्गार अनुभावों और संचारियों के रूप में विशदता से चित्रित मिलते हैं। साकेत में स्थूल वस्तु-व्यापार का आधिक्य है। उसके आश्रय के साथ हमारा तादात्म्य बड़ी शीघ्रता के साथ होता है और उसके आलम्बन भी जल्द हो जाते हैं। किन्तु कामायनी में मनोभावों को साकार रूप देकर चित्रित करने के फलस्वरूप वे सूक्ष्म भाव ही आलम्बन विभाव के अन्तर्गत पड़ते हैं, जो साधारण पाठक की मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों की न्यूनता के कारण सायास ही अपनाये जा सकते हैं।

विषय की दृष्टि से दोनों की उपलब्धियाँ और सीमाएँ नितान्त भिन्न हैं। साकेत की भूमि कठोर प्रत्यक्षवाद है, जबकि कामायनी की भूमि पूर्णतः मनोमय है। साकेत एक जीवन-काव्य है, जिसमें इतिहास प्रसिद्ध धार्मिक कथा का आश्रय ग्रहण कर मानव की ईश्वरता प्रकट की गई है। किन्तु, कामायनी का विषय पौराणिक न होकर तात्त्विक (elemental) है। उसमें सृष्टि तत्व का विवेचन है। अतः उसकी पृष्ठभूमि साकेत की अपेक्षा व्यापक और विराट् है। उसमें महाकाव्य के परिधि विस्तार (epic dimension) का अद्भुत समावेश है और है मनस्तत्त्व की अपूर्व व्याख्या। इस दृष्टि से साकेत इसके समक्ष हलका ठहरता है। परन्तु साकेत जहाँ मानव के पारस्परिक और सामाजिक सम्बन्धों का व्याख्यान कर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शात्मक विभूति बन सका है, वहाँ कामायनी मनोविज्ञान का ट्रीटाइज बनकर ही रह गई है।

तदुपरान्त महाकाव्य की गरिमा शिल्प-विधि या स्थापत्य पर निर्भर करती है। इस दृष्टि से शैली के प्रसाधन महाकाव्य के निर्णायक गुणों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। शैली की दृष्टि से कामायनी अधिक सफल है। इसका चित्राङ्कन सूक्ष्म, संयत और तटस्थ रेखाओं से हुआ है। साकेत में उर्मिला के रूप-लावण्य को प्रस्तुत करते हुए गुप्तजी लिखते हैं—

देखती है जब जिधर यह सुन्दरी,
दमकती है दामिनी-सी द्युतिभरी।
हैं करों में भूरि-भूरि भलाइयाँ,
लचक जातीं अन्यथा न कलाइयाँ।

इन पंक्तियों में सौन्दर्य के मनोवैज्ञानिक प्रभाव की अपेक्षा उसके शारीरिक पक्ष की प्रमुखता उसके चित्रण की विशेषता है। किन्तु, कामायनी की सौन्दर्य रेखाओं का चित्र-फलक कुछ इस प्रकार है—

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखिला रङ्ग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ-बन बीच गुलाबी रङ्ग।

यहाँ लम्बी और मन्थर गति से चलनेवाली पंक्तियों में चित्रित रूप हमारी मानसिक प्रक्रिया को उपयुक्त विस्तार देता है। इस प्रकार कामायनी की मूल प्रवृत्ति सांकेतिक और मनोमय है। जब कि साकेत की विधाएँ शरीर-पक्ष-प्रधान हैं।

शैली का दूसरा उपकरण शब्द-विन्यास या पद शय्या है। भाषा की शक्ति शब्दों के सुष्ठु विन्यास पर ही निर्भर करती है। प्रसाद का विन्यास अधिक कलापूर्ण है, जिससे मार्मिक अर्थ छवियों का सफल उद्घाटन हो सका है। साकेतकार की प्रवृत्ति इति-वृत्तात्मक अधिक है, इसलिए उसकी पद-शय्या मसृणता में फीकी पड़ जाती है। इसी कारण प्रसादजी नाद-सौन्दर्य की प्रेषणीयता और सङ्गीतात्मकता में भी बाजी मार लेते हैं। यद्यपि साकेत में कुछ स्थल ऐसे हैं, विशेषकर नवम् सर्ग में, जहाँ पर गीतियों की नई लयात्मक चेतना को ग्रहण कर गुप्तजी ने अपनी आ- धुनिकता का परिचय दिया है। जैसे—

काली काली कोइल बोली,
होली! होली! होली।

इसी प्रकार अलङ्करण की नई प्रवृत्तियों का दोनों में समावेश है, यथा—मानवीकरण, ध्वन्य- चित्रण, विशेषण विपर्यय आदि। किन्तु इनकी परिष्कृति कामायनी में अधिक है। जहाँ गुप्तजी इ- साधनों का प्रयोग ही कर सके हैं, वहाँ प्रसाद ने इन्हें स्वायत्त-सा कर लिया है। प्रसादजी की शैलीग- विशिष्टताओं का अधिकांश श्रेय साकेत और कामायनी के बीच पड़ने वाले ऐतिहासिक अन्तराय को है। साकेत के रचना काल से कामायनी तक आते-आते हिन्- कविता विकास की दो-तीन कड़ियाँ पार कर चुकी थी।

महाकाव्य की शैली का गाम्भीर्य बहुत अंशों उसके छन्द-विधान और कथोपकथन पर निर्भर कर- है। छन्द की शिविका पर ही भावों की गति नि- रहती है। कामायनी के छन्द अधिक सधे हुए हैं। साकेत के प्रारम्भिक सर्गों में छन्द का चुनाव ठी- नहीं हो सका है। छोटे छोटे छन्दों की द्रुतता में क- का गाम्भीर्य खो गया है। हाँ, साकेत में छन्दों वैविध्य अवश्य है और दोहा आदि जैसे कठिन छ- का परिष्कृत खड़ी बोली में सफल प्रयोग अपना मह- रखता है। किन्तु छन्दों का अकारण क्षिप्र परिव- सर्वथा महत्त्व नहीं रखता, विशेष कर प्रबन्ध का- में। इसकी पुष्टि के लिए रामचन्द्रिका का स्मरण लेना पर्याप्त होगा। महाकाव्योपयुक्त कथोपकथन बाँकपन और नाटकीयता की दृष्टि से साकेत- अकृपण प्रशंसा के अधिकारी हैं। साकेत का कोई सर्ग या प्रसङ्ग इसे प्रमाणित कर सकता है।

इस तुलना के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पहुँचते हैं कि अपनी खामियों और खूबियों के ये दोनों महाकाव्य धुरि-कीर्त्तनीय रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय महायुद्धोत्तर काल में हिन्दी कहानी

श्री सतीश मिश्र एम० ए०

लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व प्रेमचन्द ने 'पञ्च परमेश्वर' लिखकर हिन्दी कहानी को नया मोड़ दिया था। कहानी के इस नये रूप में तिलस्मी और जासूसी कथाओं के समान कौतूहलाक्रान्त रोचकता के साथ मनुष्यत्व के निखार और परिष्कार के तत्त्व भी समन्वित थे।

उत्तर प्रेमचन्द काल में हिन्दी के कहानीकार प्रेमचन्द के बनाये मार्ग पर ही चले और द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक यथार्थोन्मुख आदर्शवाद ध्वंसोन्मुख ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था, पूँजीवादी शोषण की चोट से टूटते सामन्ती आदर्श और मान्यतायें नवीन और प्राचीन के बीच झूलते शहरी मध्य-वर्ग की बौद्धिकता व्यंग और विवशता, विभिन्न राजनीतिक मतवाद और स्वतन्त्रता संघर्ष, सूक्ष्म मनोविश्लेषण, कामोद्दीपन, कुण्ठा और अस्वस्थ यौन-सम्बन्ध कम और अधिक अन्तर से कहानियों के विषय बने। युद्धोत्तर काल में इन परम्पराओं को ही प्रगति और प्रसार हुआ है अतः वर्तमान कहानी-साहित्य प्रधानतः तीन धाराओं में प्रवाहित हो रहा है—

१—यथार्थोन्मुख आदर्शवाद,

२—यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद,

३—सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक नग्नवाद।

यथार्थोन्मुख आदर्शवाद—इस क्षेत्र में सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्रकुमार, चतुरसेन शास्त्री, होमवती देवी आदि मान्य लेखक क्रियाशील रहे, इनसे कुछ नीचे हटकर अपेक्षाकृत नवीन और कम प्रसिद्ध रामप्रसाद विद्यार्थी 'रावी', कमला त्रिवेणीशंकर, उषादेवी मित्रा, विमला लूथरा, यज्ञदत्त शर्मा, यशोविमलानन्द आदि का स्थान है।

इन कहानीकारों में से कुछ ने इतिहास की पृष्ठभूमि पर सामाजिक आदर्शों, मनोवैज्ञानिक चित्रणों और वैयक्तिक समस्याओं को स्थित करके वर्तमान विषमताओं से उद्धार के मार्ग दिखाये हैं, अतीत के दीपक से वर्तमान के अन्धकार को दूर करने की कोशिश की है और साथ ही पूर्व पुरुषों की महानता के गौरवमय गीत गाये हैं। सुदर्शन, वृन्दावनलालाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री आदि इनमें प्रमुख हैं। रावी ने पौराणिक कथानकों और लोक-गाथाओं को वर्तमान परिपार्श्व में देखा है। सामान्यतः सब में यथार्थ और आदर्श का समन्वय मिलता है। मनोविज्ञान के द्वारा व्यक्ति के सद्-असद् प्रवृत्तियों के उद्‌घाटन के प्रयास किये हैं और विभिन्न आन्तरिक तथा बाह्य द्वन्द्वों से निकल कर कहानी का पर्यवसान मनुष्यता की विजय में हुआ है।

सुदर्शन में वर्णनगत सौन्दर्य, कौतूहल और रहस्योद्‌घाटन का सफल निर्वाह, कथोपकथन की नाटकीयता मार्मिक और प्रवाहपूर्ण भाषा-प्रयोग प्रचुर मात्रा में है। चतुरसेन शास्त्री के पात्र 'टाइप' अधिक हैं, व्यक्तित्व प्रधान कम। आकर्षक वातावरण-चित्रण और घटनाक्रम का नाटकीय लाघव उनकी प्रधान विशेषतायें हैं। 'लम्बग्रीव' और 'शाही हलालखोर' उनकी नई कहानियों में सर्वाधिक सफल हैं। देश-विभाजन के बाद साम्प्रदायिक दङ्गों की विभीषिका पर 'लम्बग्रीव' जैसी सफल कहानी कम ही लिखी गई हैं।

जैनेन्द्र में इधर विचार प्राधान्य और सांस्कृतिक भावना का सूक्ष्म परिपाक अधिक आया है। मनोविज्ञान के आदर्शवादी प्रयोग करने में वह बेजोड़ हैं। भगवतीचरण वर्मा और वाजपेयीजी ने इस काल में प्रायः उपन्यास ही लिखे हैं। वृन्दावनलाल वर्मा की 'कलाकार का दण्ड' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। रावी में प्रयोगात्मक नवीनता के साथ आदर्श की अच्छी पकड़ है।

यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद—१९३६ ई० में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद कहानी में समाज और व्यक्ति के अन्तर-बाह्य के यथातथ्य प्रक्षेपण की प्रवृत्ति स्पष्टतः उभर कर आई, कहानी नवीन सौन्दर्य-बोध और कर्म-चेतना के साथ मानवीय संवेदन और मानवतावाद के मार्मिक रूपायन प्रस्तुत करने लगी, और उसके कलेवर में एक विशेष राजनीतिक और दार्शनिक विचार-धारा के आधार पर समाज के नये रूप की रेखाएँ स्पष्ट होने लगीं।

यथार्थवाद में समाज और व्यक्ति के यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति प्रमुख थी, उसमें समाज के भविष्यत् रूप और इस नव-निर्माण की अग्रगामी शक्तियों की आशा-आकांक्षाओं के चित्र नहीं मिलते; सामाजिक विकास की प्रक्रिया स्पष्ट नहीं होती और निराशा तथा घृणा कहानी का मूल उत्स बन जाती है। कहानी की यह कमी समाजवादी यथार्थ के समावेश द्वारा पूरी हुई।

आज के सामाजिक सङ्घर्ष में श्रमजीवी वर्ग की निस्सन्देह महान और विधायक भूमिका है, यह वर्ग ही आज समाज की उदीयमान शक्ति है, और इसके प्रयत्न ही समाज की आर्थिक सम्पन्नता और सांस्कृतिक अभ्युदय की ओर ले जा सकते हैं। अतः यह कहानी केवल कहानी नहीं है, अपितु कला के क्षेत्र में एक सक्रिय मतवाद विशेष की पोषक है, जो विकासमान व्यक्ति को सतत् परिवर्तनशील देश-काल की सीमाओं में पलने वाला सामाजिक मानव प्राणी मानता है, और सामाजिक परिस्थितियों और मनःस्थितियों के बीच परस्पर अन्योन्याश्रित योग का प्रतिपादन करता है।

इस क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन, भगवतशरण उपाध्याय, महावीर अधिकारी, मोहनसिंह सेंगर, महेन्द्रनाथ, यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', नरेश मेहता, ब्रिजेन्द्र गौड़, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, पहाड़ी, अमृतराय, किशनचन्द्र, मुल्कराज आनन्द, ख्वाजा अहमद अब्बास आदि ने स्तुत्य कार्य किया है। राहुल और भगवतशरण उपाध्याय ऐतिहासिक घटना क्रम को वर्तमान दैन्य और वैषम्य से सम्बद्ध करने में संलग्न रहे, राहुल का 'मधुर स्वप्न' उपन्यास और उपाध्यायजी के 'सबेरा', 'सङ्घर्ष' आदि कहानी संग्रह सामाजिक यथार्थ के एक स्तर को स्पष्ट करते हैं।

यशपाल, अश्क और पहाड़ी ने वातावरण की समीचीन योजना की है। साथ ही पात्र की स्थिति का ध्यान रखते हुए उसका अन्तर-बाह्य गठन प्रस्तुत किया है। शैली-शिल्प की दृष्टि से भी उनमें नवीन प्रयोग मिलते हैं। यशपाल की 'भस्मावृत्त चिनगारी' और 'फूलों का कुरता' संग्रह 'पिंजड़े की उड़ान' और 'ज्ञानदान' से भिन्न शैली में प्रणीत हुए हैं। अश्क और पहाड़ी के नर-नारी प्रेम, अवस्था के साथ उसमें परिवर्तन और विस्तार, भागवत रूमानियत और मीमांसा भी प्रचुर मात्रा में मिलती है। पहाड़ी की 'नया मोरचा', 'जीवन रहस्य' और 'सड़क पर' सुन्दर कहानियाँ हैं।

मोहनसिंह सेंगर, महावीर अधिकारी, महेन्द्रनाथ, चन्द्रकिरण, सौनरिक्शा आदि शहरी मध्य वर्ग की स्थिति और सङ्घर्ष का सफल चित्रण करते हैं। मजदूर वर्ग के प्रति एक उदात्त सहानुभुति और संवेदना भी इनकी कहानियों में व्याप्त है। समाजवादी यथार्थ की सुन्दर अभिव्यक्ति सेंगर और अधिकारी की कृतियों में हुई है।

अमृतराय, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, नरेश मेहता और ब्रजेन्द्र गौड़, की सामाजिक घटनाओं के सूक्ष्म विश्लेषण और व्यक्ति मन की सामाजिक परिणति में संलग्न रही।

रांगेय राघव की कहानियों में सामाजिक तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं, उन्होंने प्रत्येक विषय और समस्या पर बड़ी शक्ति और सजीवता के साथ लिखा है—'समुद्र के फेन' में संग्रहीत 'घिसटता कम्बल' मध्य वर्गीय व्यक्ति का मार्मिक चित्रण करती है, बङ्गाल के अकाल, विभाजन, मजदूर हड़ताल, शान्ति-आन्दोलन, बाढ़, भूकम्प, जन्म, विकास, मृत्यु—प्रत्येक विषय पर उन्होंने ढेरों सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। अमृतलाल नागर का 'महाकाल' उपन्यास अति-यथार्थ का अच्छा नमूना है। 'विशेष' और 'तुलाराम शास्त्री' में संग्रहीत उनकी कहानियों में समाजिक यथार्थ के सुन्दर प्रयोग हुए हैं।

इस युग की कहानी को सबसे बड़ी देन किशन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्र और मुल्कराज आनन्द की है। समाजवादी यथार्थ की अपेक्षाकृत अच्छी पकड़ उनकी कहानियों में है। प्रेमचन्द की तरह किशनचन्द्र भी उर्दू से हिन्दी में आये और मुल्कराज आनन्द ने अँग्रेजी में लिखना शुरू किया। युद्धोत्तर काल में उनकी कहानियाँ और उपन्यास हिन्दी में निकले, किशनचन्द्र की रूमानियत, व्यंगात्मकता और सजीव वर्णन शैली उनकी कहानी में एक अजीब मस्ती, एक तीव्र चुटीलापन भर देती है। इन कहानियों में शहर के प्रत्येक व्यक्ति-मन की अभिव्यक्ति के साथ पञ्जाब और काश्मीर की प्रकृति, वहाँ की मिट्टी में पले ग्रामीण समाज का प्रेम, आशा और सङ्घर्ष-मूर्त हो गया है। प्रेम-भावना के व्यापक रूप काश्मीरी नारी का अल्हड़ सौन्दर्य और भावुक हृदय के स्पन्दन उनके हर शब्द में दीखते और बोलते हैं।

किशनचन्द्र के कई कहानी-संग्रह इस बीच निकले हैं। शैली-शिल्प की विभिन्नता के साथ व्यापक वस्तु-विधान उनकी कहानी का प्राण है। बङ्गाल के अकाल पर उनकी 'अन्नदाता' इस विषय की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। 'पेशावर एक्सप्रेस' में विभाजन के परवर्ती-काल की हैवानियत का नग्न नृत्य मूर्त हो उठा है।

इस धारा के लेखकों का एमवेत पर्यवेक्षण करें तो इन निष्कर्षों पर पहुँचेंगे—

१—युग-सङ्घर्ष का यथार्थवादी चित्रण, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, बौद्धिक विश्लेषण कम और अधिक अन्तर से व्यक्त हुआ है।

२—मनोवैज्ञानिकता के साथ सभी तत्त्वों का समाहार लेखक की रुचि और संस्कार के अनुसार हुआ है।

३—चित्रण वर्गीय स्तर पर हुए हैं।

४—पात्र व्यष्टि की सीमायें तोड़कर समष्टि का अनुसरण करते हैं, प्रत्येक तथ्य और समस्या को सामाजिक परिपार्श्व में देखा गया है।

५—भाषा सरल और व्यंग प्रधान है। शैली-शिल्प और रूप तत्त्व, विभिन्न और प्रचलित पाश्चात्य प्रणालियों के अनुरूप हैं।

सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक नग्नवाद—उन्नीसवीं शताब्दी में मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, वर्ग-सङ्घर्ष और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त ने स्थूल जगत की सूक्ष्म और क्रान्तिकारी व्याख्या की। एक ऐसा दर्शन जो परम्परागत शोषण पूर्ण सामाजिक व्यवस्था और वैयक्तिक अन्ध-विश्वासों तथा भ्रांतियों पर गहरी चोट करता है—उदीयमान और सङ्घर्ष शील श्रमजीवी जनता के हाथ की मशाल बन गया और साथ ही बाह्य ढाँचे में क्रान्ति उत्पन्न करने लगा, लेकिन व्यक्ति के आन्तरिक जगत के सूक्ष्म विश्लेषण, मानसिक प्रवृत्तियों, मनोवेगों और उत्तेजनाओं की आधारभूत व्यापक व्याख्या की आवश्यकता बनी थी, जो फ्राइड द्वारा पूरी हुई।

फ्राइड का मनोविश्लेषण का सिद्धान्त-अवचेतन मन की प्रक्रिया—समस्त कुण्ठाओं एवं विकृतियों का आधार दमित यौन-वासना और आत्मा का वैयक्तिक आत्मा (Ego), परात्मा (Super Ego) और तादात्मा (Id) में विभाजन पर आधारित है। आलोच्य धारा की कहानियाँ इन्हीं सूत्रों को पकड़कर चलती हैं और उनमें व्यक्ति-मन, शारीरिक आकर्षण और काम-वासना का सूक्ष्म वर्णन किया जाता है श्री इलाचन्द जोशी, मन्मथनाथ गुप्त, यशपाल, अश्क, महेन्द्रनाथ, भैरवप्रसाद गुप्त, अज्ञेय, धर्मवीर भारती आदि में यह प्रवृत्ति कम और अधिक अन्तर से मिलती है।

इलाचन्द जोशी ने कहानियाँ कम उपन्यास अधिक लिखे हैं, अज्ञेय और धर्मवीर भारती व्यङ्ग-चित्रण और सूक्ष्म मनोविश्लेषण को लेकर चले हैं। कुछ कहानियाँ तो कथातत्त्व की रोचकता के साथ काम शास्त्रीय सिद्धान्तों की उद्भ्रान्त व्याख्या करती हैं। अश्क, यशपाल और मन्मथनाथ गुप्त सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के साथ व्यक्ति-मन की वासनाओं, वर्जना और कुण्ठाओं का फ्राइडियन स्वर पर उद्घाटन करते हैं, अश्क का 'बैंगन का पौधा' कहानी, 'गिरती दीवारें' और 'गर्मराव' उपन्यास, यशपाल की अनेक कहानियाँ और मन्मथनाथ गुप्त की 'रक्त के बीज' में संग्रहीत कहानियाँ नग्न चित्रण युक्त यौनि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादी-साहित्य का उदाहरण हैं।

प्रश्न उठता है—क्या इस प्रकार का साहित्य-सृजन शिव और सुन्दर है ? श्री शिवदानसिंह चौहान ने इस विषय में एक बार लिखा था—

"नग्न चित्रण साहित्य में अनादि काल से होता आया है; साहित्य में ही नहीं मूर्तिकला और चित्र-कला में तो नग्न चित्रों और मूर्तियों की प्रचुर संख्या है। कालिदास और दूसरे संस्कृत कवियों ने और भक्ति काल के कवियों ने भी विश्व-साहित्य के लेखकों की भाँति स्त्री-पुरुष के प्रणय और आलिङ्गन-चुम्बन का जिक्र किया है, और किसी ने तो उनकी रतिक्रिया का भी एक मानव व्यापार (और मानवीय) के रूप में। दर्शन और समाज-शास्त्र में 'कामशास्त्र' का भी महत्त्व है।" ...."इसलिए नग्नवाद के नाम पर जो हो-हल्ला मचाया जाता है। उसमें आंशिक सत्य ही है, नग्न-चित्रण अपने आप में न अनैतिक है, और न असामाजिक। वह अनैतिकत भी बनता है, जब लेखक चटखारे ले-ले कर इस चित्रण के द्वारा जीवन के व्यापक यथार्थों से पाठक का मुँह मोड़ना चाहता है, अन्यथा एक अत्यन्त मानवीय व्यापार के रूप में चित्रित किया जा सकता है। समाज का हित-अहित इसी कसौटी पर कस कर देखना चाहिये। नग्न-चित्रण से बौखलाने वाले व्यक्ति को स्वयं देखना चाहिए कि कहीं आत्म-दमन को ही जीवन का चरम लक्ष्य बताने वाले दर्शनों से आक्रान्त आत्मा का यह चीत्कार तो नहीं है, अन्यथा साधारण जीवन में जिस प्रकार अपनी पुत्री का विवाह करते समय कोई कलुषित भावना हमारे मन में नहीं उठती कि उसे किसी अपरिचित की शैया पर रति-क्रीड़ा के लिए सौंप रहे हैं, उसी तरह नग्न-चित्रण से हमें आतङ्कित नहीं होना चाहिये। नग्न-चित्रण से आतङ्कित तो तभी होना चाहिए जब जीवन की यथार्थताओं से विमुख करने के लिए 'नग्नता' को आश्रय बनाया गया हो। तब वह जीवन-शक्ति का प्रतीक नहीं जीवन-द्रोह का प्रतीक बन जाती है। विलासिता भी ऐसी ही असामाजिक होती है, लेकिन स्त्री-पुरुष के साधारण स्वस्थ-प्रेम और रति को हम बुरा नहीं मानते।"

श्री देवराज उपाध्याय भी इसी स्वर में बोलते हैं :—

"जो लोग साहित्य में अश्लीलता का प्रश्न उठाते हैं; उनके मन में शायद यह रहता है कि अमुक विषय का वर्णन अश्लील है, पर मेरे जानते इस प्रश्न को वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से न देखकर पाठक की ओर उस पर पड़े प्रभाव की दृष्टि से देखना चाहिए, लेखक बड़े-बड़े आदर्शों की बातें कर सकता है, पर फिर भी उसके वर्णन की रीति ऐसी मजेदार हो सकती है, कि पाठक पर अवांछनीय प्रभाव न पड़े,......दूसरी तरफ अपने देव-मंदिरों को देखिये जहाँ शिवजी की मूर्ति 'अङ्ग-विशेष' के रूप में स्थापित रहती है, पर वहाँ का वातावरण ऐसा रहता है कि दर्शकों की उदात्त वृत्तियों के ही जागने का अवसर रहता है......अतः मेरा स्पष्ट मत है कि साहित्य के लिए कोई भी चीज वर्जित नहीं, तो नग्नता क्यों होने लगी। देखना यही है, कि कलाकार कहाँ तक उसके विष को निकालकर पाठकों के सामने रख सका है। वैद्य वही है जो विष को अमृत बनाकर रोगी को देता है। साहित्य या कला किसी प्रकार का प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं करती, प्रतिबंध है तो कलाकार के Vision पर और पाठक हृदय पर। कहा गया है—

रम्यं जुगुप्सित मुदारयथापि नीच—
उग्रं प्रसादि गहन विकृत च वस्तु।
यद्वाप्यवस्तु कवि भावक भाव्यमान,
तन्नास्ति यन्नरस भावमुपेति लोके॥

अर्थात्—संसार में कोई भी विषय हो, रूप हो, जुगुप्सित हो, उदार हो, नीच हो, उग्र हो, प्रसादपूर्ण हो, गहन हो, विकृत हो, अथवा अवस्तु ही क्यों न हो, पर ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो कवि और भावुक की प्रतिभा का स्पर्श पाकर उसकी दीप्ति से उद्भासित न हो जाय।"

किन्तु कुछ विद्वानों की दृष्टि में नग्न-चित्रण आज

(शेष पृष्ठ ३३३ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य के इतिहास में नामकरण की समस्या

श्री सियारामशरण प्रसाद, एम० ए०, साहित्य-रत्न

साहित्य पर सामयिक परिस्थितियों के साथ ही सर्वकालीन विचारों की भी अक्षुण्ण छाप रहती है। सत् साहित्य निस्सन्देह आवेष्ठन के प्रभाव को ग्रहण करता और उसमें परिवर्त्तन करता चलता है। साहित्य में सृष्टि और स्रष्टा दोनों रूप निहित रहते हैं। साहित्य की गङ्गा में राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक सभी छोटी-बड़ी धाराएँ मिल कर एक रूप ग्रहण करती चलती हैं। साहित्य के इतिहास में उनका भी महत्त्व निश्चित रूप से हमें स्वीकार करना पड़ेगा। डा० रामकुमार वर्मा ने 'साहित्य के इतिहास की समस्या' निबन्ध में ठीक ही कहा है—"यह स्पष्ट है कि सामयिक मनोविकार तो किसी धूमकेतु की भाँति प्रवाहित होकर समस्त अकाश को आतङ्कित कर देते हैं, किन्तु सर्वकालीन विचार ध्रुव नक्षत्र की भाँति अटल रह कर सदैव उत्तरोन्मुखी बने रहते हैं। साहित्य के इतिहास का निर्माण करने में सामयिक और सर्वकालीन विचार अपने विभिन्न अनुपातों से सदैव सहायक रहते हैं।" युग के अनुरूप ही साहित्य भी अपना कलेवर बदलता रहता है। परिवर्त्तन का यह क्रम सदा चलता रहता है परन्तु बहुत शनैः शनैः। शुक्लजी ने उचित ही कहा है कि "साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का सञ्चित प्रतिबिम्ब होता है।" यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्त्तन के अनुसार साहित्य-क्षेत्र में परिवर्त्तन होता रहता है। "आदि से अन्त तक इन्हीं चित्त-वृत्तियों की परम्परा को ध्यान में रखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामञ्जस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। हिन्दी साहित्य का इतिहास हिन्दी भाषी जनता की चित्त-वृत्तियों का प्रतिनिधि है।"

सर्व प्रथम व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पूर्ण इतिहास रामचन्द्र शुक्ल लिखित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (१९८६) है। इस क्षेत्र में श्यामसुन्दर-दास, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा डा० रामकुमार, इन चार विद्वानों की पुस्तकें अधिक उपादेय हैं। परन्तु उनमें भी त्रुटियाँ हैं—इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। इन्हीं विद्वानों की पुस्तकों को मूलाधार मान कर हम काल-विभाजन पर विचार करेंगे। इनमें नामकरण की दृष्टि से पं० रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास अधिक श्रेष्ठ है जिस पर हम आगे प्रकाश डालेंगे। उसे हम अन्य सभी इतिहासों से अधिक वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित और Standard देखते हैं। नन्ददुलारेजी ने ठीक ही कहा है कि उसमें वैज्ञानिक शैली अपनायी गई है। अब हम सर्वप्रथम उक्त चारों विद्वानों का काल-विभाजन देखें :—

पं० रामचन्द्र शुक्ल—वीरगाथा काल—संवत् १०५०—१३७५।

डा० श्यामसुन्दरदास—आदि युग (वीरगाथा का युग)—संवत् १०५०—१४००।

डा० रामकुमार वर्मा—सन्धिकाल—संवत् ७५०—१००० चारण काल—संवत् १०००–१३७५।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—आदिकाल—संवत् १०००–१३७५।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने सिद्धों, जैनों आदि को अप-भ्रंश काल में रखा है, और उनके काव्य को साम्प्र-दायिक कह कर साहित्य में स्थान नहीं दिया है। शुक्लजी ने काल विभाजन इस प्रकार किया है—"जिस काल खण्ड के भीतर किसी विशेष ढङ्ग की रचना की प्रचुरता दिखायी पड़ी, वह एक अलग काल माना गया है। और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया गया है।" शुक्लजी ने नाम-करण प्रवृत्तियों के आधार पर किया है। उन्होंने 'वीर-गाथा काल' नामकरण इसलिए किया है क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके विचार से उस युग की अधिकांश रचनाएँ (साहित्यिक कोटि में आने वाली) वीर-विषयक हैं। उनमें राजाओं की स्तुतियाँ या उनका अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन है जिसे, चारणादि किया करते थे। उस युग में राजनैतिक परिस्थिति भी उसी ढङ्ग की थी। विदेशियों के आक्रमण होते रहते थे, स्वयं राजपुत्र (राजा) आपस में छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा किया करते थे। ऐसे वातावरण में पला हुआ साहित्य यदि वीर-विषयक है, तो वह उचित ही है। यही कारण है कि इस युग में वीर-भाव की पूजा होती थी। शुक्लजी ने इस काल के अपभ्रंश और देश-भाषा काव्य की बारह पुस्तकें इतिहास में विवेचना योग्य समझी थीं। उनके नाम हैं—(१) विजयपाल रासो, (२) कीर्तिलता, (३) हम्मीर रासो, (४) कीर्तिपताका, (५) पृथ्वीराज रासो, (६) परमाल रासो (आल्हा का मूल रूप), (७) जयमयङ्क जस चन्द्रिका (८) खुसरो की पहेलियाँ, (६) विद्यापति पदावली, (१०) जयचन्द्र प्रकाश, (११) वीसलदेव रासो, (१२) खुमान रासो। "इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से आदिकाल का लक्षण, निरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से तीन विद्यापति पदावली, खुसरो की पहेलियाँ तथा वीसलदेव रासो को छोड़ कर शेष सब ग्रन्थ वीर गाथात्मक हैं। अतः आदिकाल का नाम वीरगाथा काल ही रखा जा सकता है।" परन्तु इस पर द्विवेदीजी का मत है कि "इधर हाल की खोजों से पता चलता है कि जिन बारह पुस्तकों के आधार पर शुक्लजी ने इस काल की प्रवृत्तियों का विवेचन किया है उनमें से कई पीछे की रचनाएँ हैं और कई नोटिस मात्र हैं। और कई के सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उनका मू । रूप क्या था।" डा० श्यामसुन्दरदास ने काल-विभाग प्रत्येक की मुख्य विशेषताओं को ही ध्यान में रख कर किया है। उन्होंने भी हिन्दी के आदिकाल (१०५०–१४००, किसी ने १००० से १३७५, किसी ने १००० से १४०० तक) को वीरगाथा काल ही कहा है। डा० रामकुमार वर्मा ने ७५० से १००० तक, बौद्ध, जैन, सिद्धों आदि की कविताओं को सन्धिकाल में रखा है और १००० से १३७५ तक को हिन्दी का चारण-काल कहा है। वर्मा जी कहते हैं—"अतः अपने विकास में साहित्य ऐसे स्थल पर आता है जहाँ दो भाषाओं या दो शैलियों में सन्धि होती है और साहित्य के इस काल को सन्धि-काल कहना ही अधिक समीचीन है।" परन्तु मेरे मत से सन्धि-काल नामकरण पूर्णतया भ्रामक है। साहित्य के साथ शैली सर्वदा गतिशील रहती है। भक्तिकाल के बाद रीति-युग आया तो शैली में अवश्य परिवर्तन हुये। रीतियुग के पश्चात् द्विवेदी युग में शैली परिवर्तन के साथ ब्रज-भाषा के स्थान पर खड़ी बोली प्रतिष्ठित हुई; फिर उस युग को भी सन्धिकाल कहा जा सकता है। इसलिए यह नामकरण उचित नहीं है। चारण काल, वीरगाथा काल के बदले कहना भी कोई नवीन बात नहीं है। १००० से १३७५ को वर्माजी ने चारणकाल कहा है क्योंकि चारणों द्वारा इस युग की अधिक रचनाएँ—वीर विषयक-रचित हैं। परन्तु चारणकाल से वीरगाथा काल नामकरण अधिक व्यापक तथा युग की प्रवृत्तियों का परिचायक है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने १००० से १३७५ तक को आदिकाल ही कहा है। उनका विचार है कि वास्तविक हिन्दी साहित्य का आरम्भ भक्ति काल से है। "क्योंकि आदिकाल तक लोक-भाषा का जो साहित्य प्राप्त है वह परिनिष्ठित (Standard) अपभ्रंश का ही साहित्य है। उसमें हिन्दी भाषा का रूप स्पष्ट नहीं है। परन्तु दशवीं से चौदहवीं शताब्दी तक लिखित साहित्य में परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई भाषा है। वस्तुतः हिन्दी की आधुनिक बोलियों में से किसी-किसी के पूर्व रूप में ही उपलब्ध होता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक दशवीं शताब्दी से इस इतिहास का आरम्भ स्वीकार करते हैं। इसी समय से हिन्दी साहित्य का आदिकाल माना जा सकता है।" "हिन्दी के इस काल के साहित्य को दीर्घ काल से चली आती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्परा का बढ़ाव समझना ही सङ्गत जान पड़ता है। वस्तुतः हिन्दी का आदिकाल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोताओं के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावापन्न परम्परा विनिर्मुक्त, काव्य रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है; यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी, रूढ़िग्रस्त तथा सजग और सचेत कवियों का काल है..........साहित्य की दृष्टि से यह काल अपभ्रंश काल का बढ़ाव ही है। पर भाषा की दृष्टि से यह परिनिष्ठित अपभ्रंश से आगे बढ़ी हुई भाषा की सूचना लेकर आता है। इसमें भावी हिन्दी भाषा और उसके काव्य का रूप अंकुरित है।" फिर भी हम इस काल की कदापि उपेक्षा नहीं कर सकते और तब हम भाषा के अनुसार नहीं, प्रवृति के अनुसार वीरगाथा काल कहें तो अनुपयुक्त भी नहीं होता है। द्विवेदी जी ने भी स्वीकार किया है कि "कुछ आलोचकों को यह नाम (आदिकाल) अच्छा लगता है परन्तु इससे एक भ्रामक धारणा की सृष्टि होती है। उससे सावधान रहें तो यह नाम बुरा नहीं। वीर-रस की सचमुच इसमें प्रमुखता है।"

राहुलजी ने 'काव्य-धारा' में इस युग (वीर गाथा काल) को सिद्ध-सामन्तीय युग कहा है। क्योंकि एक ओर सिद्धादि जनता की भाषा में उपदेश पूर्ण-आध्यात्मिक कविता कर रहे थे। जैनादि सरस काव्य लिख रहे थे तो दूसरी ओर सामन्तीय कविता लिखी जाती थी, राजाओं, सामन्तों के परितोष तथा इनमें वीरता जाग्रत करने के लिए। द्विवेदीजी ने भी बहुत कुछ इस नाम से सहमत होते हुए इसकी त्रुटियों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "इस नाम से महत्त्वपूर्ण लौकिक रस की रचनाओं का कुछ भी अभाव नहीं मिलता जो परवर्ती काव्य में बहुत व्यापक रूप में प्रकट हुई है।" सचमुच, यह नामकरण भी पूर्ण दोष रहित कदापि नहीं है। और रीतियुग भी सामन्तीय युग ही था.जब कविता कामिनी, कामवश, आतुर नृपों के संकेत पर थिरक-थिरक नाचा करती थी। उनका और कोई व्यापक और मुख्य उद्देश्य नहीं था।

मिश्रबन्धुओं ने ७०० से १३४२ विक्रम को पूर्ण आरम्भिक काल कहा है, मिश्र बन्धुओं ने इस काल के अन्तर्गत कुछ जैन ग्रन्थों को रखा है। परन्तु शुक्लजी ने इसे विवेचनीय नहीं समझा। वे (शुक्लजी) कहते हैं कि इन पुस्तकों में बहुत सी पुस्तकें—(क) नोटिस मात्र हैं। (ख) कुछ पीछे की रचनाएँ हैं। (ग) और कुछ जैन धर्म के उपदेश विषय हैं। स्मरण रहे, द्विवेदी जी ने भी इन्हीं दोषों का आरोप शुक्लजी के काल-निर्णायक पुस्तकों पर किया है। इतना तो सत्य है कि मिश्रबन्धुओं का काल-विभाजन वैज्ञानिक नहीं है और उनकी पुस्तक कविवृत्त-संग्रह है, अधिक नहीं। उनका काव्य निर्णय व्यवस्थित और वैज्ञानिक नहीं है।

सचमुच हिन्दी-साहित्य के इतिहास में यह काल बड़ा विवादग्रस्त है। और ऐसी परिस्थितियों में यह एक जटिल समस्या उठ खड़ी हुई है कि इस काल का नामकरण क्या हो? इस विवाद में एक निश्चित धारणा स्थापित करना कठिन हो जाता है। हमारे मतानुसार जब तक इस काल की पूर्ण-सामग्रियाँ, जिन्हें साहित्यिक संज्ञा से अभिहित किया जाना चाहिए, नहीं मिल जातीं, प्राप्त सामग्री पर ही काल निर्धारण करना उचित होगा। इस दृष्टि से 'वीर गाथा' नामकरण बहुत सीमा तक इस समस्या की पूर्ति कर सकेगा। परन्तु, उस काल के सिद्धों तथा जैनों के काव्य की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अब एक प्रश्न उठता है कि उस काल में सिद्धों आदि द्वारा लिखित नीतिपरक, काव्य गुण से पूर्ण कविताएँ प्रचुर मात्रा में हमारे सम्मुख हैं। शुक्लजी ने उन्हें साम्प्रदायिक कह कर अलग कर दिया है, परन्तु यह उचित नहीं है। जहाँ धर्म प्रेरणा देता है उस काव्य की उपेक्षा नितान्त गलत है, नहीं तो सूर, तुलसी के काव्य से भी हाथ धोना पड़ेगा। और न अप्रामाणिक और नोटिसमात्र पर विश्वास पूर्वक काल विभाजन कर सकते हैं। साथ ही प्रचारात्मक वस्तुओं को साहित्य की सीमा में भी नहीं

(शेष पृष्ठ × पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वैशाली की नगरबधू' और 'कादम्बरी' के कुछ प्रसङ्ग

श्री जयशङ्कर त्रिपाठी शास्त्री

आज हमारा हिन्दी साहित्य नूतन प्रवृत्तियों की खोज में राजनीतिक संस्कारों के राजमार्ग से अपनी उतावली की यात्रा कर रहा है, जिसके फलस्वरूप वह पश्चिम के साहित्य-उद्यानों की गुलदस्तों से नित्य सजायी जाने वाली नन्हीं-नन्हीं क्यारियों के निर्माण का कौतूहल लेकर लौटता है। क्या काव्य, क्या नाटक, क्या कथा-साहित्य ? प्रत्येक क्षेत्र की यही दशा है। किसी भी क्षेत्र में हम अपनी साहित्यिक-गरिमा के अनुकूल स्थायी साहित्य के निर्माण में सफल नहीं हो रहे हैं। बहुत कम ऐसे लेखक हैं जिनकी कृतियाँ आगे की शताब्दियों में अपनी साहित्यिक-निष्ठा शेष रखेंगी।

उपन्यास का क्षेत्र साहित्य के अन्यान्य क्षेत्रों की अपेक्षा विशेष कौतुक, प्रतिक्रिया और परिवर्तन का विषय रहा है तथा इस क्षेत्र में इधर के युग में सर्वाधिक मात्रा में साहित्य-निर्माण हुआ है। बात केवल इतनी रही कि पूर्णतः मौलिक एवं स्थायी कथा-साहित्य के निर्माता दो ही चार लेखक रहे। किसी का क्षेत्र ऐतिहासिक रहा, बहुतों का सामाजिक तथा कुछ का राजनीतिक। कोई ऐसा लेखक कथा-साहित्य के क्षेत्र में अवतरित न हुआ जो भारतीय साहित्य के गौरव के अनुरूप संस्कृत साहित्य की कला और सौन्दर्य के जोड़ का, कथा-सरित्सागर एवं कादम्बरी जैसे कथा-ग्रन्थों की परम्परा में कोई नया कथा-साहित्य हिन्दी को प्रदान करता। जिसका पठन-पाठन, अध्ययन-अनुशीलन हम आगे की शताब्दियों में वैसे ही करते जैसे आज संस्कृत के उन कथा-ग्रन्थों का होता है। जो जैसे आज हमारी समस्याओं का निर्णायक बनता वैसे ही भविष्य में भी अपनी शक्ति कायम रखता। जिसके अन्दर हम अपनी भारतीय संस्कृति और भारतीय समाज के उथल-पुथल, स्थापन-निवर्तन परिवर्तन सृजन और शान्ति-अशान्ति का एक व्यापक दर्शन करते; साथ ही यह समझने की कोशिश करते कि आज हम जिस रूप में हैं उसकी परम्परा कहाँ से प्रारम्भ हुई होगी। यह भी अभी तक खटकने वाली बात है कि भारतीय राजसत्ता के अनुरूप शब्दार्थ-पूर्ण कोई वाङ्मय हमारे हिन्दी साहित्य में दिखाई नहीं पड़ता।

उपन्यास और काव्य में एक अन्यतम रस—इतिहास-रस—की घोषणा करते हुए आचार्य चतुरसेन ने 'वैशाली की नगर वधू' जैसा कथा-साहित्य हिन्दी को प्रदान कर हमारे साहित्य के उपर्युक्त अभावों को बहुत कुछ दूर किया है। इसे पढ़कर हम भारतीय संस्कृति और समाज का रूपदर्शन प्राप्त करते हैं तथा प्राचीन भारत की राजनीति का व्याप्त दिग्दर्शन करते हैं, जो संस्कृत भाषा के उन प्रसिद्ध-कथा-साहित्यों में ही उपलब्ध हो सकता है। प्रस्तुत उपन्यास हिन्दी के कथा-साहित्य की प्रौढ़ता का प्रतीक है।

लेखक ने पुस्तक के प्रारम्भ में साधन के रूप में ५५ ग्रन्थों एवं विविध निबन्धों तथा लेखों का उल्लेख किया है। उनमें बौद्ध-दर्शन-ग्रन्थों के साथ-साथ पाणिनि की अष्टाध्यायी का भी उल्लेख है। साथ ही कथा-सरित्सागर एवं कादम्बरी जैसे संस्कृत के दो मूर्धन्य कथा-ग्रन्थों का भी। कहा नहीं जा सकता कि लेखक ने अपने तईं ग्रन्थ-निर्माण में कादम्बरी को कहाँ तक साधन रूप में रखा है किन्तु दोनों ग्रन्थों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि लेखक की शैली और विषय-चयन पर कादम्बरी का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। 'वैशाली की नगर-वधू' में वीर, शृङ्गार और शान्त तीन रस प्रधान रूप से लेखक के इतिहास-रस का संवर्धन करते हैं, पुनः वह इतिहास-रस भी शान्त-रस का संवर्धन करता है। इन रसों में शृङ्गार-रस की वर्णन-शैली पर कादम्बरी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृङ्गार-रस के अतिरिक्त प्रकृति-वर्णन (विशेष रूप से अटवी-वर्णन), उस युग की वैभव-विलासिता, सुकुमारता, वस्त्र आभूषणों की सम्पन्नता जैसे वर्णनों की तुलना भी कादम्बरी के उन प्रसंगों से की जा सकती है, जो कादम्बरी की तुलना में कालक्रम से १००० वर्ष पहले के हैं ! जैसा कि लेखक ने स्वयं लिखा है कि वह ईसा की पाँचवीं-छठी शताब्दी पूर्व की सम्पूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराना चाहता है। यद्यपि वह अन्य क्षेत्रों की तुलना में धार्मिक-परिस्थितियों के पर्यवेक्षण में अपने को उतना सावधान नहीं रख पाया है ! साथ ही जहाँ कादम्बरी के वर्णन कुञ्ज-वेलिलताओं एवं पुष्पों के झुरमुटों से खचित कोसों तक चले गये अटवी-खंड हैं तो 'वैशाली की नगरवधू' के वर्णन सुसम्पन्न उपवनों में विभाजित हैं, जिनके बीच में राजनीति और समाज की चर्चायें शैल खण्डों जैसी खड़ी हैं।

हम यहाँ 'वैशाली की नगर वधू' और कादम्बरी के इस सादृश्य का कुछ दिग्दर्शन दोनों की इयत्ता की अनुभूति के लिए कराना चाहते हैं, जो न केवल विषय और शैली तक ही सीमित है वरञ्च पात्रों में भी दिखाई पड़ता है।

शृङ्गार-रस के वर्णन में जैसी विशालता और उदात्त-शैली कादम्बरी में प्राप्त होती है यद्यपि उतनी उदात्तता 'वैशाली की नगर वधू' में नहीं है तथापि कादम्बरी के शृङ्गार और सौन्दर्य के मूर्धन्य वर्णन पहली बार हिन्दी में अवतरित हुए हैं। कादम्बरी की महाश्वेता और कादम्बरी दोनों का संश्लिष्ट-रूप आम्रपाली में देखा जा सकता है, साथ ही 'वैशाली की नगरवधू' में कुण्डिनी, कलिंग सेना, राजनन्दिनी जैसी सुन्दरियों के वर्णन कादम्बरी के नारी-शील और कार्य-वर्णन को अतिक्रमण करके और आगे निकल गए हैं; हाँ, कादम्बरी के नारी-सौन्दर्य-वर्णन की बात दूसरी है; कादम्बरी की तरलिका और मदलेखा भी उस अतिक्रमण की प्रचुरता को नहीं पा सकतीं। वस्तुतः दोनों ग्रन्थों में रूप, सौन्दर्य, संयोग, वियोग, अलौकिकता आदि के जो वर्णन पाये जाते हैं वे बहुत ही समता रखते हैं।

साथ ही एक विशेषता यह देखने में आती है कि बाणभट्ट की कादम्बरी में स्त्री के रूप-सौन्दर्य को जैसी महती-पूजा समाज के द्वारा अर्पण होती है, वैशाली की नगरवधू में वह उससे भी उदात्त है, जहाँ समस्त गणतंत्र अपने आपको एक अप्रतिम सौन्दर्य के अधिकार में सौंप देता है, तब वह सौन्दर्य-सत्ता स्वयं एक राष्ट्रपति से कम नहीं है, उसके गति-चक्र पर राष्ट्र का परिवर्तन, उत्थान और पतन निर्भर हो जाता है।

सौन्दर्य वर्णन में बाणभट्टजी बहुत आगे हैं तथापि चतुरसेनजी उस शैली में शृङ्गार वर्णन करने वाले हिन्दी के पहले कथाकार हैं और उन्होंने अपने उपन्यास में बहुत-से स्थलों में कादम्बरी के वर्णन से समानता प्राप्त की है, कहीं कहीं तो ज्यों की त्यों वर्णन-विदग्धता भी दिखाई पड़ती है। नारी सौन्दर्य के वर्णन में बाणभट्टजी की कुछ उक्तियों की तुलना हम 'वैशाली की नगर बधू' से करते हैं—

चन्द्रिकेव चन्द्रमसः,
पुष्पोद्गतिरिव सुरभि मासस्य।

(विलासवती वर्णन)

(चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान, बसन्त महीने के फूलों के उद्गम के समान।)

अतिविस्तारिणा सर्वदिङ्मुख भ्रान्तिकेन अतिदीर्घकाल सञ्चितेन तपोराशिनेव सर्वतो विसर्पता पादपान्तरैः त्रिस्रोतो जलनिभेन पिण्डीभूयवहतेव देहप्रभावितानेन सगिरिकाननं दन्तमयमिवतं प्रदेशं' कुर्वतीम् अन्यथैव-धवलयन्तीं कैलाश गिरिम्।

आयतन तरुकुसुम समृद्धिमिव शङ्कराभ्यर्चनाय स्वयमुद्यताम्।

रजतद्रवेणेव निमृष्टां, चन्द्रमण्डलादिवोत्कीर्णाम्, कुटजकुन्दसिन्दुवार कुसुमच्छविभिरिवोल्लासिताम्, इयत्तामिवधवलिम्नः,—(महाश्वेता-वर्णन)

[अत्यन्त विस्तार प्राप्त करने वाले, सभी दिशाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर प्रवाहित, बहुत समय से एकत्रित तपोराशि के समान, चारों ओर से वृक्षों के अन्तर से फैलने वाले, गङ्गा के जल के समान सिमट कर बहते हुए अपने शरीर की प्रभा के वितान से जङ्गल के बीच एकान्त मन्दिर में बैठ कर पहाड़ और जङ्गल-प्रदेश को दन्तों के समान उज्ज्वलता में रँगती हुई, कैलाश पहाड़ को और भी उज्ज्वल बनाती हुई महाश्वेता को चंद्रापीड़ ने देखा। भगवान् शङ्कर की पूजा के लिए मन्दिर के वृक्षों के फूल की समृद्धि के समान स्वरूप वाली होकर स्वयं ही तैयार। मानों वह चाँदी के द्रव से निचोड़ कर बनाई गई हो, मानों चन्द्र मण्डल से गढ़ कर निकाल गई हो, कुटज, कुन्द और सिन्दुवार फूलों की शोभा से उसका शरीर जैसे स्वतः सजा हुआ हो, मानों वह उज्ज्वलता की पूर्ण माप है।]

कुसुमशरमयमिव,

तस्य कन्यकाजनस्य समन्तादाननद्युतिभिरिन्दु-बिम्बवृष्टिमिव पतन्तीम्।

कपोलमण्डलालोकैर्माणिक्य दर्पण सहस्राणीव स्फुरितानि।

जघनस्थलान्येव विलासमणि शिलातलानि।

—(कुमारीपुराभ्यन्तर वर्णन)

[फूलों के वाणों से भरी हुई अथवा कामदेव से व्याप्त, कादम्बरी के चारों ओर बैठी हुई सुन्दरी—कन्यकाओं की मुख की आभा से मानो चन्द्रबिम्बों की वर्षा हो रही है। कपोल-मण्डल के प्रकाश से मानो माणिक्यों के हजारों दर्पण चमक रहे हैं। कुमारी जनों के सुन्दर जघनस्थल ही मानो विश्राम-विलास के लिए सुन्दर मणि के शिला-खण्ड हैं।]

प्रजापति दृढ़ निष्पीड़ित मध्यभाग गलितं जघन शिलातल प्रतिघातास्लावण्य स्रोत इव द्विधा गत मूरु-द्वयं दधानाम्।

उन्नतकुचान्तरित मुखदर्शन दुःखेनेव क्षीणयमाण-मध्यभाग।

अभिनवयौवन पवन क्षोभितस्य रागसागरस्य तरङ्गाभ्यामिवोद्गताभ्यां विद्रुमलता लोहिताभ्याम-धराभ्यां विराजमानाम्। —(कादम्बरी वर्णन)

[कादम्बरी को निर्माण करते हुए ब्रह्मा ने जब उसके मध्यभाग को हाथ से दबा कर जोर से निचोड़ा तो उससे प्रवाहित सौन्दर्य का स्रोत जघन की चट्टान पर गिर कर दो भागों में प्रवाहित हो चला, निर्मल गौर वर्ण वही दो जङ्घाएँ कादम्बरी धारण कर रही है। कुचों के अत्यन्त ऊँचा होने के कारण कटि-भाग को मुख का दर्शन नहीं होता, उसी दुःख से वह बहुत कृश हो गया है। नूतन जवानी-अवस्था के पवन से उद्वेलित राग-समुद्र की मूँगे की लता से लाल हुई उठती हुई दो तरङ्गों जैसे दो अधरों से सुशोभित हो रही। —(कादम्बरी)

'कादम्बरी' के इस नारी-सौन्दर्य की तुलना में 'वैशाली की नगर बधू' के इन उद्धरणों को देखा जाय :—

"अम्बपाली की वह अलौकिक रूप-माधुरी शरचन्द्र की पूर्ण विकसित कौमुदी की भाँति संथागार के कौने-कौने में फैल गई। ××× अम्बपाली ने शुभ्र कौशेय धारण किया था। ऊपरी वस्त्र खुला हुआ था। देहयष्टि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखण्ड टुकड़े से यत्न-पूर्वक खोद कर गढ़ी थी। उससे तेज, आभा, प्रकाश, माधुर्य, कोमलता और सौरभ का अटूट झरना झर रहा था।" —(पृ० २०)

"अम्बपाली के होठ हिले। जैसे गुलाब की पङ्खड़ियों को प्रातः समीर ने आन्दोलित किया हो।" —(पृ० २१)

"वह फूलों के ढेर में एक सजीव पुष्प-माधुरी प्रतीत हो रही थी, लज्जा और सङ्कोच से जैसे उसकी आँखें झुकी जा रही थीं। ××× उसकी सुडौल शुभ्रग्रीवा, उज्ज्व उन्नत वक्ष ×× इनकी शोभा अपार थी।" —(पृ० ३८-३९)

"उसके सङ्गमरमर से सुडौल चरण-युगल खालिस नीलम की पैजनियों से आवेष्टित दर्शकों की गतिमति को हरण कर रहे थे।" —(पृ० ४८४)

"कुन्दकली-सा धवलगात, चन्द्रकिरण-सी उज्ज्वल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छवि और मुक्त नक्षत्र-सा दीप्तिमान् मुखमण्डल सब कुछ अलौकिक था।" —(पृ० ५१०)

विशालता की दृष्टि से तो 'कादम्बरी' के सौन्दर्य-वर्णन के सामने 'वैशाली की नगर बधू' के वर्णन बहुत ही अल्प हैं। हाँ, भावना में समकक्षता रखने वाले वर्णनों में कहीं वे बहुत पीछे हैं तो कहीं कादम्बरी से आगे भी बढ़ गए हैं—

'वैशाली की नगर बधू' का—

"पर इन सब से अपूर्व सुषमा की खान उसकी व्रीड़ा थी। वह ओस से भरे हुए एक ताजे गुलाब के फूल की भाँति थी जो अपने ही भार से नीचे झुक गया हो।" —(पृ० १२७)

यह वर्णन कादम्बरी के—

'यत्र चालक्तरसोऽपि चरणातिभारः,
बकुलकलिकामेखला।
कलनमपि गमनविघ्नकरम्, अंशुकभारोऽपि
ग्लानिकारणम्।'

इस वर्णन की तुलना में व्रीड़ा और सुकुमारता की प्रतियोगिता में व्रीड़ा की दौड़ पीछे रह जाती है।

बाणभट्ट ने चन्द्रापीड के दर्शन के साथ कादम्बरी के हृदय एवं शरीर पर प्रिय दर्शन और काम-दशाओं का बड़ा विद्युत्-वेगवान प्रभाव दिखाया है—

'दृष्ट्वाच प्रथमो रोमोद्गमः, ततोभूषणरवः,
तदनुकादम्बरी समुत्तस्थौ।
अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्,
ससंभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्।
उरुकम्प एव गतिं रुरोध, नूपुररवाकृष्ट
हंसमंडलमयशो लेभे।
निःश्वास प्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार,
चामरानिलो निमित्ततां ययौ।
अन्तः प्रविष्ट चन्द्रापीडस्पर्शलोभेनैव निपपात
हृदये हस्तः, स एव करः स्तनावरण व्याजो बभूव॥

चन्द्रापीड को देखकर ही पहले रोमाञ्च हो आया इसके बाद उठने के प्रयत्न में आभूषणों में शब्द हुआ और उसके पीछे कादम्बरी उठ खड़ी हुई। इसके अनन्तर काम-पीड़ा से ही उसे पसीना हो चला, जिसे छिपाने के लिए घबड़ाकर उठने का श्रम बहाना रहा। जङ्घायें काँप उठीं जिससे चलने में बाधा हुई, नूपुर रव से आकर्षित हंस मण्डल को उसका अपयश दिया गया। निःश्वास चलने के कारण परिधान-वस्त्र काँपने लगा, चामर डुलाने का पवन उसके लिए निमित्त था। कादम्बरी के हृदय में चन्द्रापीड ने इस तरह प्रवेश कर लिया है कि वह चन्द्रापीड के स्पर्श-लोभ से झट अपना हाथ अपने हृदय पर रख देती है, प्रत्यक्षतः वह हाथ स्तनों के आवरण का बहाना था।

इस वर्णन से 'वैशाली की नगरवधू' के अधः उल्लिखित साहसी चित्रकार के प्रेम में अम्बपाली के विरह-उद्वेग-पूर्ण वर्णन में स्वाभाविकता और व्यापक प्रभाव-शालिता दोनों अधिक हैं, यद्यपि कवि-कौशल कम है—

- कैसा प्रफुल्ल और कैसा प्रिय, अम्बपाली ने कुछ ऐसी अनुभूति की, जो अब तक उन्हें नहीं हुई थी, अपने हृदय की धड़कन को वह स्वयं सुनने लगी, × × × × उसके नेत्रों के सम्मुख शत-सहस्र-लक्ष कोटि रूपों में वही मुख पृथ्वी, आकाश और वायुमण्डल में व्याप्त हो गया × × × × और अम्बपाली को अनुभव हुआ कि कोई दुर्धर्ष विद्युतधारा उसके कोमल गात में प्रविष्ट हो गई है। वह असंयत होकर उठी। × × × अम्बपाली एक ही क्षण में उस कुटी में उस युवक के अभाव को इतना अधिक अनुभव करने लगी जैसे समस्त विश्व में ही कुछ अभाव रह गया हो। उसकी इच्छा हुई कि पुकारे—कहाँ हो, कहाँ हो तुम, अरे ओ, अरे ओ कुसुम-कोमल। वज्र कठिन तुमने कैसे मुझे आक्रान्त कर लिया? —पृ० ५०६, ५१२

इसी प्रकार पुरुष सौन्दर्य के वर्णन में भी दोनों ग्रन्थों में शैली भाव की बहुत कुछ साम्यता प्राप्त है। हाँ, वैशाली की नगरवधू में पुरुष-सौन्दर्य की विविधता अधिक प्राप्त होगी; क्योंकि उसमें राजा, राजन्य, राजकुमार, ब्राह्मण, तपस्वी, असुर, सैनिक, दूत, साधु, श्रमण अनेक प्रकार के पुरुष-पात्रों का प्रसंगतः प्रचुर वर्णन आया है। अर्द्धरात्रि के समय अम्बपाली के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन में आए हुए वत्सराज सम्राट् उदयन का सौन्दर्य-वर्णन करते हुए, उपन्यासकार लिख रहा है—

"उसका गौरवर्ण, तेजस्वी मुख सूर्य के समान देदीप्यमान है। उसके सघन काले बाल काकपत्ती के रूप में पीछे सँवारे हुए हैं। प्रशस्त वक्ष और प्रलम्ब पुष्ट बाहु बहुमूल्य दुकूल से आवृत्त हैं, अधो अङ्ग में एक कोमल पीत कौशेय सुशोभित है। कानों में हीरक कुण्डल और कण्ठ में गुलाबी आभा के असाधारण दुर्लभ मुक्ता सुशोभायमान हैं।" (पृ० ११४)

ऐसा ही कुछ वर्णन बाणभट्ट ने केयूरक का किया है—

"विपुलवक्षसा, दीर्घानुवृत्त पीन बाहुना, पर्युषित-चन्दनाङ्गरागधूसरोरुदण्डद्वयेन, कुंकुमराग पिंजरारुणेन कक्षाबन्धातिरिक्त प्रेङ्खलत्पतलवमधरवास एव केवलं वसानेन, कर्णाभरणमणेर्विप्रकीर्यमाणमधोमुख किरणेन्द्रायुधजाल वर्णांशुकोत्तरीयमिवैस्कन्धक्षिप्त मुद्वहता, अलिकुल नील सरल शिरसिजेन, गन्धर्वदारकेण, केयूरकनाम्नाऽनुगम्यमाना......."

[चौड़ी छाती वाले, लम्बी और मोटी मांसल भुजाओं वाले, लगाये गए चन्दन के अङ्गराग से धूसरित जङ्घाओं वाले कुंकुमराग की अरुणिमा से लाल-वर्ण वाले, कमरबन्ध के अतिरिक्त लहरता हुआ एक अधोवस्त्र ही पहने हुए, जिसके कर्णकुण्डल का अधोमुख फैलता हुआ चित्रित प्रकाश इन्द्रधनुष के समान बहुरङ्गी किरणों के जाल से उत्तरीय वस्त्र बुनकर कन्धे पर डाल रहा है, आकृष्ट भौरों के कारण जिसके सिर के बाल और नील हो गए हैं, गन्धर्व कुमार के पूरक को साथ लेकर आती हुई.......... ।]

सौन्दर्य वर्णन की भाव-शैली के अतिरिक्त दोनों ग्रन्थों में पात्रों के चुनाव और घटनाओं की विचित्रता का भी साम्य है।

'कादम्बरी' में विरह-वेदना से पुण्डरीक के मर जाने के बाद चन्द्रमा के द्वारा उसके शव की दो जन्म तक रक्षा करना, कपिञ्जल का आकाश मार्ग से पुण्डरीक के पिता के पास सन्देश लेकर जाते हुए देवयान को लाँघ जाना और शाप प्राप्तकर समुद्र में गिरना जैसी घटनाएँ "वैशाली की नगर बधू" में भी हैं। सेट्ठिपुत्र भद्रगुप्त का प्राण छायापुरुष के द्वारा अपहरण होना और उसके शरीर में छायापुरुष का प्रवेश करना तथा सम्राट उदयन का गन्धर्व-विद्या से आकाश मार्ग के द्वारा रात्रि में अम्बपाली के प्रासाद में आना अलौकिक ही घटनायें हैं। कीमियागर गौडपाद का प्रसङ्ग उस अलौकिकता का एक रोचक परिशिष्ट है।

'कादम्बरी' के दोनों पात्रों (शबर सेनापति तथा चण्डिका मन्दिर के जरद् द्रविड धार्मिक) की 'वैशाली की नगरबधू' के शम्बर असुर और चाण्डाल मुनि (नापित गुरु) से तुलना रूप, स्वभाव और कर्म में अच्छी तरह की जा सकती है। वृद्ध द्रविड़ धार्मिक तथा चाण्डाल मुनि दोनों के वर्ण की श्यामता तथा एकाक्षता के अतिरिक्त द्रविड़ धार्मिक का अनेक सिद्धजनों का लगाना, पुरानी तान्त्रिक पुस्तकों का इकट्ठा करना बालकों द्वारा चिढ़ाया जाना, दूर से पत्थर के टुकड़ों से मारा जाना, साधन और सिद्धियों की लोभ पूर्ण अभिलाषा आदि कर्म चाण्डाल मुनि के श्मसान-भूमि से मुर्दों के उतारे वस्त्रों का ग्रहण करना, गाँव वालों के द्वारा चिढ़ाकर मार कर भगाया जाना, उसके द्वारा यक्ष और यक्षिणी के सिद्ध होने का माया जाल तथा ऐसे ही अन्य चरित्रों से समानता रखते हैं।

दोनों कथा-ग्रन्थों का अध्ययन करने से हमें यह प्रतीत होता है कि कादम्बरी की प्रबन्ध भूमि का बहुत कुछ प्रभाव 'वैशाली की नगरबधू' पर पड़ा है, जिसका निर्वाह भी ग्रन्थ की अन्यान्य पृष्ठ-भूमियों के साथ कौशल से किया गया है। हिन्दी साहित्य के लिए कादम्बरी के मनोरम और अलौकिक प्रबन्ध-पाटव का आचार्य चतुरसेन के द्वारा यह अवतार गौरव की बात है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगनयनी की पात्रायें

श्री वीरेन्द्रकुमार श्रीवास्तव

वर्माजी की विशिष्ट पात्राएँ प्रारम्भ में तो साधारण घराने की होती हैं किन्तु अपने गुणों के कारण उनका सम्बन्ध राजघराने से हो जाता है। घूरे में छिपे रत्न को ढूँढ निकालना वर्माजी की विशेषता है। उनके उपन्यासों का नामकरण भी उन रत्नों के आधार पर ही होता है। 'मृगनयनी' की विशिष्ट पात्राएँ साधारण घरानों से सम्बन्धित होते हुए भी अपने शौर्य, शील, संयम आदि गुणों से समाज में प्रतिष्ठित स्थान पाती हैं। पात्राओं में निन्नी या मृगनयनी, लाखी, सुमन तथा कला हैं। दो नटिनी भी हैं एक का नाम पिल्ली तथा दूसरी का नाम नहीं उपाधि है नायकिन।

उपन्यास की नायिका मृगनयनी एक गरीब किसान परिवार की है। सिकन्दर लोदी के आक्रमण से राई गाँव उजड़ जाता है और उसके माता-पिता की मृत्यु हो जाती है। मात्र उसका भाई ही शेष रह जाता है जो उसे तीर-कमान चलाने की शिक्षा देता है। वह किसान घर की बेटी होते हुए भी बाण चलाने में प्रवीण, स्वस्थ, सुन्दर तथा हँसमुख है। शस्त्र चलाने तथा शारीरिक बल में पुरुषों से कम नहीं। नाहर को एक तीर में मार गिराना, अरने को सींग पकड़ कर घुमा देना उसके लिए साधारण बात है। वह अपनी तुलना रानियों से करते हुए सोचती है—"राजा लोग अपने थोड़े से भाई-बान्धवों को किसी गढ़ में बन्द कर लड़ते-लड़ते मर जाते हैं और उनकी स्त्रियाँ चिता में जल कर भस्म हो जाती हैं! क्या ये स्त्रियाँ तीर चलाना नहीं जानती होंगी? क्या इनके खेत नहीं होंगे जिनकी रखवाली करने के लिए उनको मचान पर तीर-कमान और तलवार लेकर बैठना पड़ता हो? उनके खेत तो नहीं होंगे, क्योंकि रानियाँ तो पर्दे में मुँह छिपाये बैठी रहती हैं। सुनती तो यही आई हूँ परन्तु क्या उनके हाथ पैर इतने निकम्मे होते होंगे कि अपने ऊपर हाथ डालने वाले पुरुष को घूँसे से धरती न सुँघा सकें? कैसी स्त्रियाँ होंगी ये! खाने को इतना अच्छा मिलते हुए भी मन उनके ऐसे मरियल! चिता पर जल मरें स्त्रियों पर हाथ डालने वाले! मैं तो कभी इस तरह नहीं मरने की।" और वह घूँसे से धरती सुँघाने की बात सोचती ही नहीं बल्कि गयासुद्दीन द्वारा भेजे गये घुड़सवारों को वह और लाखी मारकर भगा देती हैं। रात्रि में जाग कर जङ्गली पशुओं से खेत की रखवाली करना आदि कार्य तो प्रतिदिन के हैं।

उसमें धीरता गम्भीरता प्रचुर मात्रा में है। स्त्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति कपड़े तथा आभूषण प्राप्त करने की ओर होती है किन्तु पिल्ली के लोभ दिखाने पर भी उन वस्त्रों को लेना उचित नहीं समझती। किसी की कृतज्ञता से दबना नहीं चाहती—"हम कुछ शिकार मार कर ले आवें और तुमको दें, तब हम भी तुम से कुछ ले सकती हैं। यों ही सेतमेंत किसी का कुछ ले लेना हमारे कुल की रीति नहीं।"—अतः सीताफलों को खाने के उपरान्त बदले में शिकार मार कर जानवर देती है। उसे लाखी से प्रेम है और द्वेष-भाव नहीं रखती बल्कि प्रसन्न रखने का सतत प्रयत्न करती है। वह अपने भैया तथा भाभी के सुखी रहने में अपना सुख समझती है। वह प्रकृति प्रेमी भी है। जब खेतों को लहलहाता देखती है तो उसे अपने पास संग्रह कर लेना चाहती है।

मानसिंह जब उससे विवाह करने की बात करता है तो वह सोचती है, जाल में फँसाने का चारा तो नहीं क्योंकि उस समय राजाओं का प्रायः बहु-विवाह होना साधारण बात थी, अतः इस सम्बन्ध को पक्का करने के लिए कहती है—"गरीबों का और बड़ों का जन्म सङ्ग कैसा?" इस पर मानसिंह को कहना ही पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। "गङ्गा-यमुना की सौगन्ध खाता हूँ कि जन्म सङ्गिनी रहोगी।" वह नहीं चाहती कि नारियाँ वांछा और कामना की शृङ्गार मात्र रहें। वह यदि जानती कि महल में पहले ही से आठ रानियाँ हैं तो कभी-भी मानसिंह के साथ विवाह नहीं करती—यद्यपि यह उसका भ्रम है, वह पहली बार मानसिंह को देखते ही प्रेम करने लगी थी—क्योंकि उसके मन में प्रश्न उठता है "जब पहली स्त्री से ब्याह किया होगा तब उससे भी इसी प्रकार का प्रेमालाप करते होंगे। फिर दूसरा, तीसरा और आठवां ब्याह किया, हर एक रानी के साथ आरम्भ में इसी प्रकार चिकनी और मीठी बातें करते होंगे। क्या मेरे साथ सदा ऐसा ही बर्ताव करेंगे या किसी दसवीं के साथ विवाह करेंगे और मुझसे वैसे ही बर्तेंगे जैसा इन आठों के साथ आजकल बर्त रहे हैं ?"

वह नारी की महत्ता को भली भाँति जानती है कि नारी पुरुष की प्रेरणा है। वह मानसिंह को यह कह कर "वीणा को बजाते बजाते काम पड़ने पर यदि तुरन्त तलवार न उठ पाई, कोमल सेज पर सोते-सोते सङ्कट आने पर यदि तुरन्त कमर न कसी, ध्रुपद को गाते गाते शत्रु के सामने आ खड़े होने पर, यदि तुरन्त चिनौती न दे पाई, जिन कानों में मीठे स्वरों की रसधार बह-बह कर जा रही थी, उन्हीं कानों में यदि रण वाद्यों और कड़खी की धुन न समा पाई तो ऐसी वीणा, सेज और ध्रुवपद की तानों का काम ही क्या ?" कर्त्तव्य-मार्ग पर आरूढ़ करती है। जब मानसिंह उसके निकट आने का प्रयास करता है तो वह कहती है "और निकट आये तो मैं बहुत छोटी रह जाऊँगी।" सम्भवतः इसी प्रकार के तथ्य को लेकर एक कहावत प्रचलित है "घर की मुर्गी दाल बराबर।" असंयम से रहने पर कुरुचि उत्पन्न होती है और पति-पत्नी के सम्बन्ध में स्थिरता नहीं रह जाती। अतः वह मानसिंह के पूछने पर संयम से ही स्थिरता लाई जा सकती है कहकर प्रेम की स्थिरता का रहस्य बतलाती है। वह लाखी को इतना प्यार करती है कि स्वयं सोने के गहने पैर में नहीं पहनना चाहती क्योंकि लाखी ने चाँदी के पहन रक्खे हैं।

वह सङ्गीत, नृत्य तथा चित्रकारी सीखती है जो उसके कला-प्रेम के परिचायक हैं। वह सङ्गीत इतना शीघ्र सीख लेती है कि उसके आचार्य बैजनाथ को कहना पड़ता है—"महाराज वह पूर्व जन्म में सङ्गीत का अवतार रही होगी। मुझको अपना आचार्य पद बनाये रखने के लिये विशेष अभ्यास रखना पड़ेगा।" वह किसी से लज्जा-पर्दा नहीं करती किन्तु मर्यादा की सीमा में ही रहती है। जब मानसिंह उसके ताण्डव नृत्य को बैजू तथा विजय के सामने दिखाने का अनुरोध करता है तो वह नाहीं कर देती है क्योंकि पर्दा न करने का यह प्रयोजन नहीं कि गुरुजनों के सामने प्रसन्न करने के ध्येय से—नृत्य किया जाय। उसके सामने सदैव कर्त्तव्य तथा कला का आदर्श है पहले वह कर्त्तव्य और कला को सन्तुलित करती है क्योंकि "सङ्कल्प और भावना जीवन-तखड़ी के दो पलड़े हैं। जिसको अधिक भार से लाद दीजिये, वही नीचे चला जायेगा। सङ्कल्प कर्त्तव्य है और भावना कला। दोनों के समन्वय की आवश्यकता है।" किन्तु कर्त्तव्य के सामने कला भी पीछे रह जाती है। मानसिंह जब कला की ओर अधिक झुक जाने के कारण सिकन्दर लोदी को कुछ सोना चाँदी देकर लौटाना चाहता है तब वह उसे सचेत करती है। उस पर परिस्थितियों की प्रतिक्रिया का प्रभाव भी पड़ता है। वह कहीं-कहीं सौतिया डाह से पराभूत हो जाती है। एक स्थल पर सोचती है "महाराज मेरे और अकेले मेरी सम्पदा हैं। मैं उनकी, वह मेरे। कितने गहरे हैं। मैं भी ऐसी ही बनूँगी और इतना हँसूँगी इन आठों के ऊपर कि हाँ! नाहरों और अरनों की परवाह नहीं की, तो ये किस खेत की मूली हैं!" यहाँ वह भूल जाती है कि जितना अधिकार महाराज पर उसका है उतना ही अधिकार अन्य रानियों का भी। परन्तु वह बड़ी रानी से किसी प्रकार का बदला नहीं लेती और अपनी उदारता का परिचय देती है। अपने पुत्रों को ग्वालियर का राज सिंहासन न दिलवा बड़ी रानी के पुत्र को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलवा देती है जिससे उसका त्याग व्यक्त है।

लाखारानी या लाखी भी वीर, सरल, उदार व सुन्दरी है। वर्माजी तो पहले उसको लेकर लड़खड़ाये से हैं किन्तु अन्त में अच्छा चरित्र-विकास किया है। वर्माजी ने जहाँ कहीं भी दो स्त्रियों को सर्वगुण सम्पन्न दिखाने का प्रयास किया है वहीं लड़खड़ाये से हैं। कचनार में कलावती—पहली रानी—को उचित सहानुभूति नहीं दे पाये हैं यद्यपि वह कचनार से अधिक भोली, सरल व उदार हृदया है। इस उपन्यास में मृगनयनी का व्यक्तित्व विकसित करना है सम्भवतः इसीलिए लाखी को प्रारम्भ में महत्त्व नहीं दिया गया है। अरनों का आखेट करना, रात्रि में तीर कमान लेकर खेतों की रखवाली करना आदि कार्य उसकी निडरता का परिचय देते हैं। वह चञ्चल और तरल स्वभाव की है, उसमें गम्भीरता का अभाव है। स्त्रियों की दुर्बलताएँ भी क्षणिक मात्रा में उपलब्ध हैं। वह नटिनी के आभूषण-वस्त्र आदि पाने के लिए लालायित रहती है। मृगनयनी पर उसका अत्यधिक प्रेम है। उसके सुख के लिए त्याग करने के लिए सर्वदा तत्पर रहती है। वह चाहती है कि मानसिंह से मृगनयनी का विवाह हो जाय और कहती है—"यदि कालो माई को अपना सिर भेंट करके तुमको ग्वालियर की रानी बनवा सकूँ तो कभी नहीं झिझकूँगी।" मृगनयनी के ग्वालियर चले जाने पर उदास रहती है किन्तु उसके उज्ज्वल भविष्य से सुखी।

उसमें आत्मगौरव भी पूर्णरूप से विद्यमान है। जब वह स्त्रियों द्वारा सुनती है कि ग्वालियर जाकर मृगनयनी की चेरी बनेगी—यद्यपि यह उसका भ्रम है—तो राई से जाते समय ग्वालियर न जाकर नरवर की ओर जाती है। उसे यह सह्य नहीं कि उसे कोई चेरी कहे और अटल को राजा का दास या रोटियारा। वह अटल से प्रेम करती है; अतः जाति को ठुकरा अटल के साथ गाँव छोड़ देती है। सोचती है वन के पशु गाँव के इन पशुओं से कहीं अच्छे हैं। नटिनी के बहकाये जाने पर पहले तो उनकी चालों में आ जाती है किन्तु नरवर पहुँचने पर उनकी चालों को समझ जाती है। उसका उचित दण्ड उनको दे वह नरवर को बचा लेती है। अन्त में राई की गढ़ी की रक्षा वीरता के साथ करते हुए मारी जाती है। उसके मुँह से खून के फौव्वारे छूटते हैं तब भी गढ़ी में आये हुए शत्रुओं को समाप्त कर देती है। उसमें असंयम लेशमात्र—अपने प्रेमी के साथ वर्षों से रहते हुए—भी नहीं आ पाता। सचमुच उसकी स्मृति के खण्डहर नहीं हो सकते और उससे भारतीय नारी का गौरव स्पष्ट ज्ञात है।

अन्य पात्राओं में सुमन मोहिनी, कला तथा पिल्ली हैं। सुमन मोहिनी में सौतिया डाह स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। सौतिया डाह के कारण ही वह मृगनयनी तथा लाखी को जहर देकर मारने का प्रयास दो-दो बार करती है किन्तु असफल रहती है। कला राजसिंह की प्रेमिका है और उसके कथनानुसार सङ्गीताचार्य बैजू के साथ ग्वालियर की शक्ति का पता चलाने जाती है परन्तु असफल रहती है। किन्तु निहालसिंह के साथ झूठ-मूठ का, दिखावा प्रेम कर कार्य का साधन बनाना चाहती है किन्तु निहालसिंह की मृत्यु से इसमें भी असफल रहती है। वह सङ्गीत तथा चित्रकला जानती है। अन्त में जब वह राजसिंह के साथ नरवर के किले में जा कर खण्डित मूर्त्तियों को देखती है तो उसमें भारतीय नारीत्व कुछ जाग्रत होता सा प्रतीत होता है किन्तु कुछ क्षणों के लिए ही। उसके पश्चात् उसका कुछ पता नहीं चलता। पिल्ली तथा नादबिन का चरित्र कुटिनी के रूप में चित्रित किया गया है। अङ्गों का तोड़-मरोड़ तथा बेहयाई पिल्ली के चरित्र की निष्कृष्टता की ओर सकेत करते हैं।

वर्माजी अपने उपन्यासों में स्त्री पात्रों की ओर अधिक ध्यान देते हैं। उनकी पात्राएँ वीर, संयमी, उदार, सरल एवं विद्वान होती हैं। वे पात्राओं के चरित्र-विकास में अत्यधिक जागरूक रहे हैं। स्त्री-पात्रों की प्रतिष्ठा पुरुष-पात्रों से कहीं अधिक दे रक्खी है। क्योंकि उनकी शक्ति को पहचानते हैं। पुरुष-शक्ति के स्रोत में प्रेरणा की उफान वही तो है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रथ के पहिये'—उपन्यास की एक नई दिशा

स्व० डॉ० सुधीन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०

मानव-सभ्यता का रथ निरन्तर बढ़ता चला आया है। उसका आदितम रूप मोहनजोदड़ो में है और अन्तिम रूप क्या है? 'सत्यार्थीजी' के 'रथ के पहिये' आदिवासियों की प्रगति की दिशा में चल रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने प्राचीन युगों की मोहन-जोदड़ो की 'मृत' सभ्यता से लेकर आधुनिक युग के आदिवासी जीवन की जीवित सभ्यता का संकेत किया है। मुख्य आधार आदिवासी-जीवन का ही लिया है।

कौन नहीं जानता कि यद्यपि मोहनजोदड़ो की सभ्यता अत्यन्त प्राचीन है और हम उसकी खोज करके अपने अतीत पर गर्व कर सकते हैं—पर लेखक का मन्तव्य है कि केवल उसी से तो वर्तमान की समस्याओं का हल और भविष्य का निर्माण नहीं हो जाता। जो सभ्यता खण्डहर हो चुकी है उसे पूजने की अपेक्षा जीवित सभ्यता को जगा कर प्रगति के पथ पर आरूढ़ करा लेना ही लेखक को अपेक्षित है, अन्यथा वर्तमान आदिवासियों की सभ्यता भी मुर्दों का टीला बन जायगी। वर्तमान काल में धरती पर दो सभ्यतायें पनप रही हैं—एक तो भौतिक प्रगति की विकृत सभ्यता और दूसरी आदिवासियों की प्रकृत सभ्यता। यदि प्रगति के पथ को निरन्तर बढ़ते रहना है तो उसमें ये दोनों दो पहियों के रूप में अवश्य ही जोड़ी जायेंगी। उनमें से एक की भी उपेक्षा करके मानव-सभ्यता जी नहीं सकती। यही है 'रथ के पहिये' से 'रीं-रीं-ना' की ध्वनि में व्यक्त होने वाला सन्देश।

उपन्यास का कथानक मोहनजोदड़ो से आरम्भ होता है। मोहनजोदड़ो का क्यूरेटर बड़ी लगन से पुरातत्त्व प्रेमी यात्रियों को पाँच हजार वर्ष पुरानी सभ्यता से परिचित कराता है। उसकी आगे खुदाई की भी आज्ञा उसने प्राप्त करली है और वह चाहता है कि उसका पुत्र आनन्द एम० ए० (एन्थ्रोपोलोजी) ही इस कार्य को पूरा करे। पर यहीं से रथ के पहिये एक मोड़ लेते हैं क्योंकि आनन्द एक 'कब्रिस्तान' को अपना कार्यक्षेत्र नहीं बनाना चाहता। वह चाहता है आदिवासियों की सभ्यता को प्रकाश में लाना कि वे भी कब्रिस्तान न बन जावें। वह इसी अवसर की खोज में है कि वह एक यात्री मित्र कुलदीप से गोंडों के जीवन की झलक पाता है और चल पड़ता है मध्य-प्रदेश में स्थित गोंडों के एक ग्राम करंजिया को। साथ में उसका मित्र चित्रकार सोम भी है।

आदिवासियों के करंजिया ग्राम का जागरण कथा का प्रकृत विषय है। आनन्द और सोम ग्राम के अङ्ग बनते हैं। वे उस गाँव में एक 'कला भारती' की स्थापना करते हैं, जिसमें चित्रकारी, बढ़ईगीरी, पढ़ाई और अन्य हस्तकलायें भी सिखाई जाती हैं। मंडल पटेल की लड़की रूपी भी इन लोगों के कार्यों में दिल-चस्पी लेती है। आनन्द और सोम के प्रयत्न से धीरे-धीरे करंजिया करवट लेकर उठ बैठता है—उसकी पञ्चायत का सङ्गठन होता है, अत्याचारी मालगुजार के विरुद्ध ग्रामवासी उठ खड़े होते हैं—बेगार बन्द हो जाती है—गाँव का शराबखाना टूट जाता है और धीरे-धीरे करंजिया खुशहाल हो जाता है। एक बार जब करंजिया में अकाल पड़ता है तब वहाँ आनन्द की ओर से 'रिलीफ कमेटी' का निर्माण होता है जिससे गाँव वाले मौत के मुँह से बच जाते हैं। बाद में वहाँ नहर बनाई जाती है और करंजिया फिर लहलहा उठता है।

कथा के प्रतिनायक मालगुजार धनपाल के अत्याचार भी बढ़ते जाते हैं। वह आनन्द और सोम को मरवाना चाहता है—साथ ही उन दोनों से प्रभा-वित ग्राम वासियों पर भी अत्याचार करता है। धन-पाल से एक गोंड युवती फुलमत की रक्षा करके सोम उससे विवाह करलेता है और घर बसा कर करंजिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही रहने लगता है। यद्यपि करञ्जिया में आनन्द का काम पूरा हो चुका है—परन्तु अभी प्रगति का अन्त नहीं है। अब वह आसाम को अपनी कर्मभूमि चुनता है और वहाँ से चल पड़ता है। मण्डल पटेल की लड़की रूपी भी उसके साथ चल देती है और अन्त में वह आनन्द की परिणीता हो जाती है। मण्डल भी इसे स्वीकार करता है क्योंकि गोंडों की प्रथा के अनुसार लड़की की बात टाली नहीं जा सकती।

करञ्जिया में आनन्द बैलगाड़ी में बैठ कर आया था और अब कार में बैठकर लौट जाता है। इस प्रकार इस छोटे से ग्राम में एक युगान्तर उपस्थित करके वह आगे चल पड़ता है—'मानव की उसी गतिशील परम्परा में योगदान देने के लिए'—क्योंकि—"जीवन का रथ तो संसार की डगर पर आगे ही आगे जायगा—वह रुक नहीं सकता—चाहे कोई रथ से उतर जाये, चाहे कोई रथ पर सवार हो जाये—पर रथ रुक नहीं सकता।" उसके पहिये कभी धीरे और कभी तेज चलते ही रहेंगे—इस अटल विश्वास के साथ ही उपन्यास की इतिश्री होती है और पाठक के कानों में दूर जाते हुए रथ के पहियों की 'रीं-रीं-ना' ध्वनि गूँजती रहती है।

प्रस्तुत उपन्यास में देशकाल का चित्रण अच्छा हुआ है। 'सत्यार्थी' जी की यह अपनी रुचि का विषय भी है। द्वितीय महायुद्ध के बाद से भारत की जनता आजादी के लिये तड़प उठती है—सन् १९४२ की क्रान्ति होती है। इस प्रकार देश की पास आती हुई आजादी की झलक—गान्धीजी के रचनात्मक कार्य, ग्रामसुधार-योजना और आदिवासियों के पुनरुत्थान की रूपरेखा उपन्यास में उभरी है। दूसरे शब्दों में कहें तो उपन्यास में गान्धीजी के आदिवासियों के उत्थान का स्वप्न साकार हो उठा है!

गोंड जीवन की झाँकी तो उपन्यास की सजीवता है। लामसेना-प्रथा, भीमसेन की कहानी, करमानृत्य और उनके लोकगीतों में गोंडों की सामाजिक प्रथाएँ, धार्मिक विश्वास और संस्कृति समाई हुई है। उपन्यास में चित्रित आदिवासियों का जीवन स्केच, उनकी विभिन्न जातियाँ, उनके विभिन्न-निवास-स्थानों की गणना लेखक की मनोरुचि का परिचय देती हैं।

'रथ के पहिये' की एक मौलिक विशेषता है। घिसी-पिटी राह पर चलने वाले उपन्यासों में यह उपन्यास कथा-क्षेत्र में एक नवीन दिशा खोलता है। यद्यपि अभी इस क्षेत्र में यह प्रवेश ही है। यह सुखद परिवर्तन अभिनन्दनीय है। संस्कृति को एक नयी उठान मिली है इस उपन्यास में।

जहाँ आनन्द प्रगति के नये-नये द्वार खोलता है। और उस ओर उसके चरण सतत् गतिशील रहते हैं—वहीं सोम इस 'पैर के चक्कर' और 'जगह-जगह भटकने की मनोवृत्ति' की उपेक्षा करता हुआ कहता है—"मैं कोई सिकन्दर महान् तो हूँ नहीं कि दुनियाँ भर को हाथ लगा कर यह सन्तोष पाने के लिए पीछे मरता रहूँ कि मैंने विश्व पर विजय प्राप्त कर ली।" सन्तोष की पराकाष्ठा सोम के इन शब्दों में देखी जा सकती है कि—"मानव जहाँ भी रहता है वहीं उसका विश्व विराजमान है, क्यों न वह अपने चतुर्दिक ध्यान से देखे और समाज की सङ्घर्षशील शक्तियों में अपनी शक्ति मिला दे। जो सुगन्ध विश्व में भटक रही है वह किसी एक फूल को सूँघने से भी प्राप्त हो सकती है।" इस प्रकार आनन्द और सोम की गतिशील और स्थिर कार्य-प्रणाली उपन्यास में अनूठा सामञ्जस्य उपस्थित करती है। लेखक ने दोनों ही पथों का दिग्दर्शन करा दिया है—जो जिसे चाहे उसी पथ का पथिक बने। आनन्द के चरणों में एक यात्री की गतिशीलता है तो सोम के चरणों में एक नृत्यकार की। दोनों का प्रत्येक चरण नवीन और सौन्दर्यशाली है। दोनों ही रूपों में प्रगति का रथ गतिशील है—जब तक मानव अपने "गतिशील और विकासशील सत्य" को नहीं पा लेगा, जब तक उसकी "विजय यात्रा और सत्य यात्रा" पूरी न होगी तब तक ये रथ के पहिये चलते ही रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्ध

साहित्यिक निबन्ध—लेखक—श्री राजनाथ शर्मा एम० ए०, प्रकाशक—विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। पृष्ठ ४७६, मूल्य ७॥) सजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के ४१ निबन्धों का संग्रह है जिन्हें उसने पाँच भागों में विभक्त कर दिया है—साहित्य का इतिहास, भाषा और लिपि, विविधवाद, साहित्यालोचन और स्फुट। इतिहास सम्बन्धी १२, भाषा सम्बन्धी ३, लिपि पर १, वादों पर ६, आलोचना पर १२ और विविध विषयों पर ८ लेख हैं। लेखक ने इस बात की सफल चेष्टा की है कि साहित्य सम्बन्धी सभी प्रमुख विषयों की चर्चा इस पुस्तक में हो जाय। लेखक की शैली परिचयात्मक अधिक है विश्लेषणात्मक कम। इस पुस्तक को पढ़कर कालेज के विद्यार्थी को ही नहीं प्राइवेट अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को भी विषय का साधारण ज्ञान हो जायगा और इसी उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई ज्ञात होती है। इस प्रकार उसको लिखने में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

कविता

राजमती—लेखक—श्री दौलतसिंह लोढ़ा अरविन्द प्रकाशक—यतीन्द्र-साहित्य-सदन-धामणिया (मेवाड़)। पृष्ठ ११३, मूल्य १।=)

भगवान श्रीकृष्ण के समकालीन उन्हीं के सम्बन्धी भ० नेमिनाथ की कथा जैन शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है। भ० नेमिनाथ की बरात जब विवाह के लिए पहुँची तो वहाँ नेमिनाथ ने असंख्य पशुओं को एक बाड़े में बन्द देखा जिनका विवाह के अवसर पर वध होने वाला था। उन्हें देखकर बड़ा दुःख हुआ और पशुओं का क्रन्दन सुनकर एक दम वैराग्य हो गया। वे तुरन्त मुनिदीक्षा लेकर पहाड़ पर चले गए। राजमती के साथ उनका विवाह होना था, उसे नेमिनाथ का इस प्रकार चला जाना बड़ा दुःखद प्रतीत हुआ। राजमती के विलाप का वर्णन जैन ग्रंथों में बहुत है। प्रस्तुत पुस्तक में उसी कथा को लेकर एक काव्य का रूप दिया गया है, जो रोचक तो बहुत है पर कविता की दृष्टि से बहुत साधारण है। —म०

उपन्यास

मोम के मोती—लेखिका—श्रीमती रजनी पनिकर, प्रकाशक—शारदा मन्दिर, नई सड़क देहली। पृष्ठ १६५ मूल्य ३॥)

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीमती रजनी पनिकर का एक लघु मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक उपन्यास है। इस नारी-प्रधान उपन्यास में इसकी सम्पूर्ण कथावस्तु माया के आसपास घूमती है। कथावस्तु में उसकी स्थिति उस मकड़ी के समान है जो घटनाओं का ताना-बाना अपने हाथों बुनती है और जिस प्रकार मकड़ी के जाले में अन्य कीटाणु आ फँसते हैं उसी प्रकार उसके जीवन-चक्र के ताने-बाने में अन्य पात्र आ जाते हैं जो घटना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्र को गति देने में सहायक होते हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्री और पुरुष के शाश्वत सम्बन्ध से जन्य समस्याओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक साथ-साथ रहते हुए भी न जाने क्यों पुरुष का विश्वास नारी की पवित्रता पर टिक नहीं पाता, यदि उसे पता हो कि अमुक नारी अमुक पुरुष के सम्पर्क में आ चुकी है या आती है। पुरुष ने नारी को देवी, लक्ष्मी और शक्ति आदि अनेक रूपों में सम्मानित किया है फिर भी वह उस पर सदैव अविश्वास ही करता रहा है। सीता से लेकर आज तक की नारी पुरुष के इसी अविश्वास का भाजन बनी रही है और यही कारण है कि विधान-प्रदत्त स्वतन्त्रता के बाद भी हम सामाजिक-सुधार तथा अन्य राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में नारी को पुरुष के साथ कंधा मिलाकर काम करते नहीं देखते, क्योंकि उन्हें इस अविश्वास के कारण समाज और कुटुम्ब में तिरस्कृत एवं अपमानित होने का भय रहता है। माया एक सङ्घर्षशील नारी है। अपनी आर्थिक परिस्थितियों को सुधारने के उद्देश्य से वह समाज में काम करती है। उसे भी समाज की कटु आलोचनाओं का शिकार बनना पड़ता है पर सब की उपेक्षा करते हुए सङ्घर्ष में जूझी रहती है। यद्यपि यत्रतत्र उसके चरित्र में भी हम नारियोचित भावना का उद्रेक पाते हैं। इससे चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता बनी रहती है। माया के माध्यम से लेखिका ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सङ्घर्ष-रत जीवन ही सच्चा जीवन है। सङ्घर्ष से परे जीवन की शोभा और चमक मोम के मोतियों की तरह है जो देखने में भले ही सुन्दर लगें पर जिनका कोई वास्तविक मूल्य नहीं होता।

कहानी

अतीत के कम्पन—लेखक-श्री आनन्दप्रकाश जैन, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड, बनारस। पृष्ठ २३६, मूल्य ३)

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री आनन्दप्रकाशजी जैन की ११ ऐतिहासिक कहानियाँ संग्रहीत हैं। इतिहास और साहित्य का सम्बन्ध सनातन और अविच्छिन्न है। इतिहास के ईंट-पत्थर को जब साहित्यकार कल्पना की छेनी से सुन्दर आकार-प्रकार और व्यवस्था देता है तब वह साहित्य की संज्ञा ग्रहण कर लेता है। श्री जैन ने प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध घटनाओं को कहानियों की कथा-वस्तु के रूप में चुना है और अनेक सच्चे और काल्पनिक पात्रों का आश्रय लेकर उनकी देश-प्रियता, रोमांस, वीरता, त्याग और मित्रता आदि प्रवृत्तियों का चित्रण किया है। क्योंकि कहानियों का उद्देश्य केवल मनोरञ्जन करना ही नहीं है वरन् असाधारण तथ्यों का निर्देश कर समाज को कुछ देना भी है। लेखक यथास्थान इस उद्देश्य की रक्षा करने में सफल हुआ है। इन कहानियों में लेखक को अतीत के प्रति मोह ही नहीं है वरन् इनमें उसका बौद्धिक मूल्याङ्कन भी किया गया है। कहानियों का वातावरण सर्वथा ऐतिहासिक और अतीत-कालीन है। यद्यपि ये कहानियाँ बहुत लम्बी हो गई हैं फिर भी पात्रों का चरित्र-चित्रण, कथोपकथन और घटनाओं का आरोह-अवरोह उनकी रोचकता को बनाये रखता है। कहानियों की भाषा प्रसङ्गानुकूल ओजपूर्ण और सरस है। इन कहानियों में 'चन्द्रगुप्त की मोहर', 'पत्थर की आँखें', 'पीलेहाथ' और 'स्नेह की शर्त' कहानियाँ अपेक्षाकृत सुन्दर बन पड़ी हैं। —हेमन्तकुमार एम० ए०

बिल्लो का नकछेदन—लेखक-श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, प्रकाशक-गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा। पृष्ठ ११६, मूल्य २)

प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी के प्रौढ़ कवि एवं साहित्यकार श्री मिलिन्दजी की २७ हास्य और व्यङ्ग कहानियाँ तथा शब्द चित्र संग्रहीत हैं। उचित प्रकार का सुरुचिपूर्ण हास्य और व्यङ्ग जीवन सङ्घर्ष को सरस, सह्य तथा उत्साहपूर्ण बना देता है तथा उसका अभाव जीवन को नीरस तथा बोझिल। इसी हेतु अनेक रसों के साथ-साथ साहित्य में हास्य की आवश्यकता भी अनुभव की जाती है। इन कहानियों तथा शब्दचित्रों में लेखक ने सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के कार्यकर्त्ताओं, सङ्घ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठनों एवं संस्थाओं, उनकी कार्यप्रणाली और रीति पर बहुत ही पैना, तीखा और चुभने वाला व्यङ्ग किया है जिसका प्रभाव विद्युत-'शॉक' का-सा लगता है। इस प्रकार के व्यङ्ग की रचना में लेखक का यह विश्वास है कि व्यङ्ग और हास्य की उपादेयता केवल मनोरञ्जन तक ही सीमित नहीं है वरन् वैयक्तिक एवं सामाजिक विषमताओं, असन्तुलन और पाखण्ड का परिष्कार कर व्यक्ति को सामाजिक और समाज को सभ्य बनाने में भी है। और लेखक अपने इस विश्वास की रक्षा करने में सफल रहा है। इस दृष्टि से 'महामूर्ख सम्मेलन', 'नरकपालिका' 'अस्पताल का चक्कर', 'प्रो०अलमस्तखाँ' आदि सुन्दर रचनाएँ हैं। जहाँ तक हास्य की बात है उसका आनन्द बीच-बीच में मिलता रहता है यद्यपि उसमें स्वाभाविकता कम, कृत्रिमता अधिक है। फिर भी हिन्दी साहित्य में सुरुचि-पूर्ण व्यंग और हास्य की जो कमी है उसे दूर करने में लेखक का प्रयत्न सराहनीय है। —हेमन्तकुमार

जीवनी

जीवन-प्रभात—लेखक—श्री प्रभूदास गांधी, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ ४३२, मूल्य ५)

इस पुस्तक के लेखक—श्री प्रभूदासजी गांधीजी के निजी परिवार से निकटतर सम्बन्धित थे। इसीलिए आपने गांधीजी को बहुत निकट से देखा था। गांधीजी के बचपन का और उनके पूर्वजों का जो वर्णन गांधीजी स्वयं अपनी आत्म-कथा में नहीं कर सके थे उसे प्रभूदासजी ने इस पुस्तक में कर दिया है। विशेषता यह है कि इसमें प्रभूदासजी की लेखनी में जो रस है उसका भी आस्वादन मिलता है। अब तक गांधीजी की सैकड़ों जीवनियाँ छप चुकी हैं, पर यह पुस्तक अपना अलग अस्तित्व रखती है। ऐसी सुन्दर पुस्तक को प्रकाश में लाकर मण्डल ने बड़ा उपकारी काम किया है। इसमें गांधीजी के प्रारम्भिक जीवन का सुन्दर चित्र है और इसीलिए पुस्तक का नाम भी सार्थक है।

गान्धी की कहानी—लेखक—लुई फिशर, प्रका०—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। पृष्ठ ३६४, मू० ४)

लुई फिशर अमरीका के प्रसिद्ध पत्रकार हैं जो कई बार भारत आये, गांधीजी के साथ रहे और निकट से उन्हें देखने की चेष्टा की। उन्होंने गांधीजी को जैसा पाया, वैसा ही चित्र रूप से उतार कर इस पुस्तक में रख दिया है। उन्होंने गांधीजी में भारत का ही नहीं, यूरोप, एशिया और अमरीका का एक महान् उद्धारक का रूप देखा है। उनकी पुस्तक पढ़ने से इस बात की प्रेरणा मिलती है कि जैसा जीवन गांधीजी ने बिताया, वैसा जीवन हम भी बितावें और जो कुछ गांधीजी ने किया वह हम भी करें। लेखक को गांधी जी का आध्यात्मिक रूप अधिक पसन्द आया है और उसने राजनीति में अध्यात्म के समावेश की आवश्यकता का अनुभव किया है—यही उसकी महत्ता है। ऐसी महान् पुस्तक मण्डल की कृपा से हिन्दी जगत को मिली इसके लिए उसका आभार मानना चाहिये।

अञ्जलि—सम्पादक—श्री वाल्मीकि चौधरी, प्रकाशक—यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली ८। पृष्ठ ५२+६६, मूल्य ३)

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू का व्यक्तित्व महान् है। वे देश के महानतम रत्नों में से हैं। उनकी ७० वीं वर्षगाँठ पर यह श्रद्धापूर्वक अर्पण की गई एक 'अञ्जलि' है। इसके प्रारम्भ के ५२ पृष्ठों में हिन्दी में और फिर ६६ पृष्ठों में अंग्रेजी में देश और विदेश के महान लेखकों और महापुरुषों के लेख, कविता या वक्तव्य सन्निहित हैं। प्रारम्भ में ही राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी की कविता है जिसकी चार पंक्तियाँ हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"लगता है, विधि 'वरंब्रूहि' कह लेने चला परीक्षा
लाये तुम देवत्व छोड़कर मनुष्यत्व की दीक्षा,
देहमात्र रुज-गेह, शुद्ध मन, बुद्धि अहं भूली है,
किस युग को राजेन्द्र, तुम्हारी होगी नहीं प्रतीक्षा ?"

'दिनकर' जी की भी दो सुन्दर कविताएँ हैं। एक में आपने हिमर्षि राजेन्द्र बाबू को 'भारत की तलवार' कहा है। चयन बहुत सुन्दर हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय विभूतियाँ—लेखक-श्री तेजनारायण टण्डन तथा श्री योगेन्द्रनाथ शर्मा, प्रकाशक-विद्या-मन्दिर, लखनऊ । पृष्ठ ६५, मूल्य १)

सम्राट चन्द्रगुप्त, अशोक, शिवाजी, रणजीतसिंह, लक्ष्मीबाई, स्वामी दयानन्द, लो० तिलक, लाजपतराय, रवीन्द्रनाथ टैगौर, सुभाषचन्द्र बोस, महात्मा गान्धी और सरदार पटेल की जीवनियों पर इस पुस्तक में संक्षेप में प्रकाश डाला गया है । इन महान पुरुषों के चित्र भी दिये जाते तो अच्छा था ।

विन्ध्यभूमि-पावस अङ्क—सम्पादक श्री विद्या-निवास मिश्र, प्रकाशक-सूचना एवं प्रचार विभाग, विन्ध्य प्रदेश, रीवां । पृष्ठ १३६,

विन्ध्य प्रदेश की सरकार विन्ध्य-भूमि नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका निकालती है । उसी का पावस अङ्क हमारे सामने है । इसमें वर्षा से सम्बन्धित १५ विन्ध्य के सम्बन्ध में ३ और इतने ही लेख अन्य विषयों पर हैं । कई आकर्षक और ऐतिहासिक चित्र हैं । अन्त में कुछ त्रैमासिक आँकड़े हैं । कई सुन्दर कविताएँ भी हैं । अङ्क बाहर भीतर सभी तरह से अच्छा है ।

भारतीय राष्ट्रीयता—लेखक-श्री देवदूत विद्यार्थी, 'शिशु हृदय' प्रकाशक-साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा पृष्ठ १७०, मूल्य १॥)

"भारतीय राष्ट्रीयता" नामक पुस्तक को मैंने बड़े मनोयोगपूर्वक पढ़ा है । इस स्वल्प-काय किन्तु परम उपादेय पुस्तक में हमारे देश की उस नवीन राष्ट्रीयता अथवा राजनीतिक चेतना की उत्पत्ति, क्रमिक विकास तथा चरम परिणति का चित्रपट के समान सजीव, रोचक तथा विशद चित्रण किया गया है, जिससे अनुप्राणित होकर हमारे देश के स्वातन्त्र्य-समर के निःशस्त्र वीरों ने अपने अदम्य उत्साह और उत्कट बलिदानों से प्रथम कोटि के शक्तिशाली ब्रिटिशों के दृढ़मूल शासन का प्राण-शोषक भार उतार कर फेंक दिया । अनेक विद्वानों, मनीषियों तथा राजनीतिज्ञों के मन्तव्यों के प्रचुर उद्धरणों से पुस्तक की श्रीवृद्धि हुई है । स्वार्थान्ध, पदलोलुप लोभमूलक राजनीति का पिशाच, धर्म और सम्प्रदाय का वेश धारण करके, किस प्रकार मानवता को कलङ्कित कर सकता है, किस प्रकार पाशविक नग्न नृत्य और जघन्य पैशाचिक काण्ड कर सकता है, इस ओर भी पुस्तक के अन्त में संकेत कर दिया गया है । भारत के विभाजन को महात्मा गान्धी ने "सर्वनाश" कहा है और आज हमारी राजनीति की जटिल समस्यायें इसकी यथार्थता को प्रमाणित कर रही हैं ।

पुस्तक बड़ी सुन्दर शैली में लिखी गयी है, तथा प्रत्येक देशभक्त नवयुवक के पढ़ने और मनन करने योग्य है ! —कैलाशचन्द्र मिश्र, एम० ए०, साहित्याचार्य

ब्रह्मचर्य (दूसरा भाग)—लेखक-महात्मा गांधी, प्रका०-सस्ता सा. मंडल नई दिल्ली । पृ. ७६, मू. ।।।)

महात्मा गांधी के संयम तथा ब्रह्मचर्य सम्बन्धी लेखों का सङ्कलन इस पुस्तक में किया गया है । इस विषय पर पहली पुस्तक 'अनीति की राह पर' मण्डल द्वारा ही प्रकाशित हुई थी । ब्रह्मचर्य का प्रथम भाग भी मण्डल द्वारा ही छपा था । अब यह दूसरा भाग छपा है । गांधीजी के लेख और 'सस्ता' साहित्य मण्डल छापे फिर भी मूल्य साधारण प्रकाशक की तरह रक्खा जाय, यह शोचनीय बात है ।

(पृष्ठ ३५६ का शेषांश)

माण्डवी आदि को पत्थर के नीचे दबा दिया" (२) गुप्तजी ने पं० रामचन्द्र शुक्ल के चरणों में बैठ कर साकेत महाकाव्य की रचना की है ।

व्याकरण सम्बन्धी योग्यता

राम का कार्य गाथामय रह जाती है ।

वाल्मीकि अपने रामायण में राम को एक मर्यादा-पुरुषोत्तम के ही रूप में अङ्कित किए रही ।

सुमित्रानन्दन पन्थ-प्रकृति साम्यवादी कवि ने भारत के कवियों की श्रृङ्खला में अपनी अलग धारा बहा ही दी ।

नोट—कई सूत्रों से प्राप्त इन उत्तरों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि बहुत से छात्र एम० ए० कक्षा के नितान्त अयोग्य होते हैं । परन्तु पता नहीं कैसे वह बी० ए० की शिला सरका आते हैं । ऊपर जो वाक्य उद्धृत किए गए हैं उनमें भाषा की भूलें भी द्रष्टव्य हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एम० ए० हिन्दी छात्रों के ये दर्शनीय उत्तर

प्रो० गोपीनाथ तिवारी एम० ए०

प्रस्तुत लेख के लेखक सैंट एण्ड्रूज कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। एम० ए० तक हिन्दी पढ़ाते हैं और शायद एम० ए० के परीक्षक भी हैं। आपने नीचे जो वाक्य संग्रह किए हैं वे एम० ए० के विद्यार्थियों की उत्तर पुस्तकों से लिए गए हैं। इन उत्तरों से विद्यार्थियों की योग्यता का शोचनीय प्रदर्शन होता है। देखिए रत्नाकरजी और उनके 'उद्धवशतक' के सम्बन्ध में वे क्या लिखते हैं।

रत्नाकरजी और उद्धवशतक

(१) रत्नाकरजी रीतिकालीन कवि थे। (२) उद्धवशतक में रीतिकालीन परम्परा की छाया तक नहीं छू गई। (३) यह पद्यांश 'उद्धवशतक' नामक महाकाव्य से उद्धृत किया गया है। इसके रचयिता श्री जगन्नाथप्रसाद रत्नाकर हैं। (४) (उद्धवशतक की विशेषताएँ) इसमें अन्तरङ्ग गीति की प्रधानता है। इसके पदों को पढ़ते ही तुरन्त सूरदासजी के भ्रमरगीत के गीत याद आ जाते हैं। इसी गीत प्रधानता के कारण उद्धवशतक अंग्रेजी में टिनसर, शेक्सपियर और कार्लाइल को छोड़ कर सब से ऊँचा हो गया है। (५) भारतेन्दु आदि ने भी गोपी विरह वर्णन किया है पर प्रयत्न करने पर भी वह भ्रमरगीत न बन सका। (६) बहुत सुन्दर पुस्तक है, बड़े, खूब भाव हैं। बड़े उच्च कवि हैं। (७) उद्धवशतक प्रबन्ध काव्य है।

भ्रमरगीत की परम्परा

(१) रत्नाकरजी के भ्रमरगीत के सामने सूर एवं नन्ददासजी का भ्रमरगीत नाक रगड़ता है और हाथ जोड़ता है। (२) भागवत के पहले यह कथा हमें ऋग्वेद, उपनिषद, वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं पुराणों में विस्तार से मिलती है। (३) हिन्दी के आदि-काल के कालिदास ने अपने मेघदूत में यक्ष के रूप में यक्षिणी के पास संदेशा भेजा है। इसके बाद विद्यापति ने भी केवल मेघदूत की नकल की। (४) सूर का भ्रमरगीत—राधा में ज्ञान है, वह उद्धव को ज्ञान देती है। (५) सूर के बाद भ्रमरगीत का वर्णन केशव, बिहारी, नन्ददास, रसखान आदि रीतिकालीन कवियों ने किया। (६) गोकुल में हरएक आदमी की बात में तीनों रस मिलते हैं पर श्रेष्ठता करुण रस की है।

पन्तजी की उत्तरा

(१) उत्तरा में पन्तजी ने आने वाले व्यक्तिवाद, रहस्यवाद आदि संसार के प्रमुख वादों का वर्णन किया है। (२) यह पन्तजी का खड़ीबोली का महाकाव्य है। (३) पन्तजी ने पुरानी कथावस्तु को एक ऐसा नया रूप दे दिया है जिससे मालूम पड़ता है कि यह घटना अभी हाल ही की है। (४) रङ्गभूमि का वर्णन ऐसी सुन्दरता से किया गया है जिसे पढ़ कर जी उछल कूद पड़ता है। (५) पन्तजी पहिले रहस्यवादी कवि थे जैसा कि उनकी ग्राम्या, ज्योत्स्ना तथा स्वर्णमयी आदि पहिले की कविता पुस्तकों से साफ हो जाती है। (६) आपकी उत्तरा में दार्शनिक विचारों की भी कमी नहीं है। उसमें आपने इस मानव जगत को नष्ट होने वाली बातों का वर्णन नहीं किया है केवल देवलोक की साधना को और आपने हम लोगों को पथ भी दिखाया है। उत्तरा में पन्तजी ने किसी मधुर स्वप्न को देखा था उसका ही चित्र खींचा है। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि उत्तरा आज के विचारों से बहुत दूर की चीज है। (शब्द चमत्कार मात्र देखिए) (७) पन्तजी की प्रतिभा एक झोंपड़ी से भवन तक है। दीन से मालदार तक है, नदी में कलकल झरनों में, शिखर से बातें करते हुए पर्वतों में, पवन में, चन्द्र की किरण जाल में, किलोल करती हुई, मानव समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों में, वर्त्तमान मानव जीवन के पथ प्रदर्शन के आधार में, गृहस्थ जीवन में, स्त्री समाज में, मानव-जीवन के कलह में अर्थात् पन्तजी ने स्वयं अनुभव कर के सभी वर्ग प्राणियों को प्रोत्साहित किया है। आज पन्तजी की प्रतिभा देश को साहित्यिक प्रवाह में प्रवाहित कर रही है, मानव जीवन को अप्रासित क्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है और एक समय आवेगा जब कि इतिहास में इनकी रचनाएँ अपना वास्तविक अस्तित्त्व का रूप दर्शाती रहेंगी।

प्रसादजी की 'कामायनी'

(१) इसमें केवल छायावाद तथा रहस्यवाद का ही वर्णन है। इसमें यथा स्थान पर घटनाओं की कमी है। केवल मनु और ईड़ का ही बार-बार वर्णन आते रहते हैं। विनाश की ओर अग्रसर होना इसका प्रधान अंश है। इससे इसमें रस की व्यञ्जना का आभास ही नहीं मिलता है इसमें बहुत वस्तुओं का अभाव-सा मालूम पड़ता है। इस सुन्दर काव्य का सौष्ठव उतना आनन्द देने वाला नहीं है। जितना काव्य की उत्तमता है। इससे हम इस विचार पर पहुँचते हैं कि कामायनी की रसात्मकता अपने प्रभाव को छोड़ कर अलग चली जाती है। (२) अद्वैतवाद का अभिप्राय ही यह है कि एक ही ईश्वर सब कुछ है, सब कहीं है, सब के ऊपर है। वही सृष्टिकर्त्ता एवं संहारक भी है, एक तरफ वह बनाता है, दूसरी ओर मारता है। (३) छायावाद कविता के जन्मदाता यदि कविवर प्रसाद को माना जाय तो कौशिक, निराला, गुप्त और पन्त को उसका पोषक मानना ही पड़ेगा। (४) दूसरे यह कहना कि उनका (कामायनी की घटनाओं का) सम्बन्ध प्राग-ऐतिहासिक काल से है उनका लोक समन्वित भूमि से कोई आधार नहीं; ठीक नहीं है। क्योंकि जल प्लावन की कहानी संसार के प्रत्येक धर्मावलम्बी के ग्रन्थों में पाई जाती है जैसे ईसाई के यहाँ, मुसलमान के यहाँ, बौद्धों के यहाँ। उनकी कहानी पर कल्याणकारी भावना का विचार होने से उपनिषदों के आधार पर लेने से साम्प्रदायिक भावना का भी रङ्ग पड़ा है······ (५) श्रद्धा, मोह, काम, क्रोध और इच्छा के छन्दों पर अनुशीलन एवं मनन करें तो आपको स्पष्ट हो जाय कि उपनिषद में अद्वैतवाद क्या है और प्रसादजी ने उसकी धारा बहाई है। (६) प्रसादजी की कामायनी में मनु, श्रद्धा, भक्ति, इड़ा, काम, क्रोध शान्ति आदि भावों का व्यक्तिकरण हुआ है। श्रद्धा उनके मुख में विलीन हो जाती है। (७) मेरे द्वारा विस्तृत जगत का जन व्यापार निश्चितया अग्रसर होगा और मेरी वृत्तियाँ मानवता को पल्लवित एवं फलित देखेंगी—जल-प्लावन प्रतिहत चेष्टा का ह्रास, उदासीन वृत्ति का परिग्रहण, अधुना एक नवीन चेतना एवं जागरण में स्वकीय परिणति तथा श्रद्धा व मनु दोनों का सम्मिलन इस उद्देश्य का पूरक होगा। (८) अद्वैतवाद शृङ्गार-प्रधान है अतः प्रसाद को कुछ रसिकता होने की जरूरत पड़ी। (९) श्री जयशङ्करप्रसाद ने कामायनी में, राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्तजी ने साकेत में और अयोध्याप्रसादजी ने प्रियप्रवास में ईश्वर के अवतारों का अमर सन्देश हम तक पहुँचाया है।

उपाध्यायजी का 'प्रियप्रवास'

यह पद्य-खण्ड प्रियप्रवास से लिया गया है जिसके रचयिता श्री मैथिलीशरण गुप्त हैं। (२) यद्यपि वात्सल्य, शान्त वीर, वीभत्स आदि रस भी इसमें हैं और वात्सल्य रस यशोदा के विलाप में, वीर-रस कृष्ण के बचपन के कार्यों की याद में, वीभत्स विकट दन्त दिखाकर खोपड़ी आदि स्थलों पर हमें दिखलाई पड़ते हैं किन्तु ये सब करुण रस में सहायक ही होते हैं। (३) सांस्कृतिक दृष्टकोण से यह प्रबन्ध काव्य की कोटि के स्तर से नीचे नहीं है किन्तु वर्त्तमान युग वैज्ञानिक युग है। इस समय की दृष्टि से यह खण्ड-काव्य के स्तर के नीचे गिर चुका है। (४) सातवें सर्ग के बाद यदि सारे सर्ग न भी रक्खे जायँ तो भी कथानक में कमी नहीं आती। कवि को सारी सृष्टि वेदना मिश्रित प्रतीत होती है किन्तु उनकी वेदना में वह तड़पन नहीं, वह कसक नहीं, वह टीस नहीं। उनकी वेदना मूक है जिसका प्रवाह करुणा के आकार पर ही स्थित है।

गुप्तजी का 'साकेत'

(१) "साकेत की रचना मैथलीशरणजी ने इस लिए किया कि महाकवि वाल्मीक, तुलसीदास ने केवल राम, लषण, भरत के गुण का गान किया और अन्य पात्रों का नाम तक न लिया तथा उर्मिला,

(शेष पृष्ठ २५७ पर देखिये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृष्ठ ३४३ का शेषांश)

रख सकते। फिर भी जो पुस्तकें प्राप्त हैं उन्हीं के आधार पर काल विभाजन करते हुए हम उस काल को 'वीरगाथा काल' ही कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं भविष्य में शोधों के अनुसार यह नामकरण बदल भी सकता है। हमें इसके लिए सदा सावधान रहने की आवश्यता है। एक प्रश्न और उठता है कि खुसरो और विद्यापति की रचनाओं को फुटकल कह कर ध्यान न देना उचित है या नहीं? इतना तो अवश्य है कि खुसरो हिन्दी भाषा का प्रथम प्रयोक्ता था और विद्यापति की रचनाओं में काफी कलात्मकता और काव्यात्मकता है, इसलिए उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमें उनकी परम्परा को भी खोजना चाहिए जो हमारे लिए—हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए पूर्ण उपादेय होगी। परन्तु जब इस सिद्धान्त—जिसमें विशेष ढङ्ग की रचना अधिक दिखायी दे—के अनुसार नामकरण हो तो उनकी रचनाओं की उपेक्षा न करते हुए भी हमें वीरगाथा काल कहना ही युक्ति सङ्गत लगता है क्योंकि शुक्लजी की आधार पुस्तकों में बहुत सी पुस्तकें जब अपना निश्चित अस्तित्व रखने लगी हैं।

वीरगाथा काल के बाद अन्य काल (आधुनिक काल छोड़कर) का नामकरण विवादग्रस्त नहीं है। सभी प्रभृत विद्वान प्रायः एक ही नाम से सहमत हैं। परन्तु हमें यह भी सत्य एवं स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि किसी काल विशेष नामकरण का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि उस काल में दूसरे ढङ्ग की रचना लिखी ही नहीं जाती थी। यदि ऐसी बात सोचें तो वह गलत है। प्रबल प्रवृत्तियों के आधार पर ही हम नामकरण करते हैं। और काल-विभाजन में सबूत देने का भी यह अर्थ नहीं कि उस साल के प्रथम दिन से ही अमुक प्रवृत्ति की धारा एकदम टूट गई और दूसरी प्रवृत्ति आरम्भ हो गई। परिवर्तन का क्रम बहुत शनैः शनैः होता रहता है।

'साहित्य सन्देश' के सम्बन्ध में

आवश्यक निवेदन

'साहित्य सन्देश' के अनेक पाठक हमें बार-बार लिखते हैं कि हम 'साहित्य-सन्देश' में कागज रफ न लगाकर अच्छा लगावें। पाठकों की इस माँग को हम बराबर टालते रहे हैं—इसलिए कि चार रु० मूल्य में छोटे टाइप में इतनी अधिक पाठ्य-सामिग्री देकर अच्छा कागज लगाना सम्भव नहीं है और अनेक गरीब पाठकों का ध्यान कर मूल्य बढ़ाने में हमें बड़ा संकोच है। इन दोनों बातों पर विचार कर अब हमने यह निश्चय किया है कि हम साहित्य-सन्देश के दो संस्करण निकालेंगे। एक संस्करण तो जैसा निकलता है वैसा ही निकलता रहेगा। दूसरा संस्करण बढ़िया कागज पर निकाला जायगा और उसका मूल्य चार के स्थान पर पाँच रुपये होगा। क्योंकि रफ कागज से सफेद कागज का रेट ड्यौढ़े से भी अधिक है। पुराने ग्राहक भी यदि अच्छे कागज का संस्करण चाहेंगे तो १) भेजकर वे बढ़िया संस्करण के अधिकारी हो जायेंगे। नवीन ग्राहकों को पाँच रुपये भेजने होंगे, जो सादा कागज चाहेंगे वे यथा पूर्व चार रुपये के ग्राहक रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधे मूल्य में

गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष में ३१ मार्च ५५ तक

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

गोस्वामी तुलसीदासजी पर महाकाव्य

देवार्चन

सजिल्द
मू० ६)

सुन्दर छन्दों में अत्यन्त परिमार्जित भाषा और हृदय-स्पर्शी भावनाओं का भण्डार, यह सत्रह सर्गों का महाकाव्य आपके सम्मुख गोस्वामी तुलसीदासजी का सांस्कृतिक नेतृत्व समूर्त कर देगा। इस महाकाव्य को पढ़ कर आपका हृदय राष्ट्रीयता की उच्च भावनाओं और विश्व संस्कृति के अनिर्वचनीय प्रभाव से स्पन्दित हो उठेगा। तुलसीदासजी की महाप्राण सहधर्मिणी रत्ना का जीवनवृत तथा उसके पुत्र तारक का अवांछनीय निधन आपको करुणार्द्र कर देगा और वीर, शान्त, अद्भुत, तथा करुण रसों का एक साथ आनन्द लेने के लिए आज ही ३।।।=) [३) मू० ।।=) पोस्टेज] भेजें। पुस्तक की पृष्ठ सं० ४०० और मूल्य सजिल्द ६) है। अजिल्द ५)

साहित्य-रत्न-भण्डार, ५ गांधी मार्ग, आगरा।

साहित्य-सन्देश की

परीक्षोपयोगी फाइलें

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी हमने परीक्षार्थियों के लाभ की दृष्टि से साहित्य-सन्देश की कुछ परीक्षोपयोगी फाइलें बनाई हैं जिससे गत वर्ष हमारे हजारों ग्राहकों ने लाभ उठाया है। फाइल के समाप्त हो जाने पर हमने अपने सैकड़ों ग्राहकों से न भेजने के लिए क्षमा माँगी थी। पिछली बार हमने एक फाइल का मूल्य ३) रक्खा था लेकिन सब विद्यार्थी लाभ उठा सकें इसलिए हमने १।।) की प्रत्येक फाइल बनाई है। प्रत्येक फाइल में चार अङ्क हैं। इस वर्ष हमने निम्न परीक्षाओं के लिए फाइलें तैयार की हैं :—

एम० ए० (प्रथम वर्ष)	एम० ए० (द्वितीय वर्ष)
साहित्य-रत्न ,,	साहित्य-रत्न ,,

उक्त फाइलों का : उनकी लागत मात्र ही रक्खा है, अतः फाइल साधारण डाक से मंगाने के लिये १।।।) और रजि० मंगाने के लिये २) भेजें।

विषय-सूची मुफ्त मँगायें।

नोट—इण्टर, बी० ए० की फायलें समाप्त हो गई हैं अतः उनके आर्डर अब न भेजें।

साहित्य-सन्देश कार्यालय, ४, गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. A. 263.
Sahitya Sandesh, Agra.

MARCH 1955.

LICENSE No. 16.
Licensed to post without Prepayment.

Biggest Circulation

Amongst all Hindi Literary Magazines

In India.

Kailash & Co. Agra

We have examined the Books of Account and other records of SAHITYA-SANDESH, a monthly magazine published from 4, Mahatma Gandhi Road, Agra and do hereby certify that their average sale for the six months from Ist July 1954 to 31st December 1954 was 7263 (Seven thousand two hundred sixty three) copies a month as per statement shown below. This figure is exclusive of free copies.

Month & Year	Sale through Agents And Subscribers,	Sale of Back Nos. in File	Total
July 1954	,85	944	6,797
August	6,666	1,128	7,794
September	7,136	220	7,356
October	6,680	84	6,764
November	6,935	332	7,267
December	6,991	612	7,603
Total	40,261	3,320	43,681

5/3/55

Kailash Lal Agarwal
Chartered Accountant

ADVERTISE
IN
SAHITYA-SANDESH

Ask for advertisement rates

Sahitya Sandesh Office, 4, M. Gandhi Road, Agra

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश

वर्ष १६

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

मुद्रक
साहित्य-प्रेस आगरा।

अङ्क १०

[वार्षिक मूल्य ४)] आगरा—अप्रैल १९५५ [विशेष संस्करण

इस अङ्क के लेख

—हमारी विचार-धारा	सम्पादक
—वृत्ति-विचार प्रक्रिया में रसानुभूति	प्रो० राजनारायण मिश्र एम० ए०, साहित्य रत्न
—हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
—पृथ्वीराज रासो के वृहद् संस्करण के उद्धारक	श्री अगरचन्दजी नाहटा
—अपभ्रंश और हिन्दी	श्री रामप्रसन्नसिंह एम० ए०
—भारतेन्दु और उनके पश्चात आधुनिक व्रजभाषा	श्री बालकृष्णराव प्रभाकर
—उपन्यास लेखक श्री किशोरीलाल गोस्वामी	श्री विष्णुकान्त शास्त्री एम० ए०, बी० एस-सी०
—प्रसाद और नियति	श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०
—कहानी में प्रयोगवाद	श्री चन्द्रशेखर दुबे एम० ए०
—प्राकृत भाषा का स्वरूप और गाथा-सप्तशती	श्री हरिशङ्कर तिवारी एम० ए०
—हिन्दी की हिमायत	श्री मा० व० राय 'चतुरानन' बी० ए० आनर्स
—साहित्य-परिचय	
—शङ्का-समाधान	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'साहित्य-सन्देश' के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह की १५ तारीख को निकलता है।

२. साहित्य-सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है। किसी भी महीने से ग्राहक बनने पर पूरे १२ अङ्क मिलेंगे।

३. महीने की ३० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्ट आफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिये, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।

४. किसी तरह का पत्र-व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। विना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।

५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।

६. साहित्य-सन्देश में कविता, कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापिस कर दिए जाते हैं।

७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन : मार्च १९५५

आलोचना

हिन्दी साहित्य प्रश्नोत्तर—हरिहर एम० ए० ५।।)
रेडियो नाटक—हरिश्चन्द्र खन्ना ६)
हिन्दी के आलोचक—शचिरानी गुर्टू ८)
हिन्दी वीर काव्य—टीकमसिंह तोमर १२)

कविता

धूप के धान—गिरजाकुमार माथुर ३)
केशव ग्रंथावली भाग १—विश्वनाथप्रसाद मिश्र ५)

कहानी

सिन्दूर बिन्दी—इकबाल बहादुर २।।)

उपन्यास

कली मुस्कराई—सत्यप्रकाश सेंगर ३)
पेरिस का रंगीला—गा० द० मोपासाँ ३)
ममता के बन्धन—विलियम समरसेट मॉम ३)
मधुपर्क—भगवती प्रसाद वाजपेयी ३।।)
अतृप्त वासनायें—अ० मोराविया २)
विन्दो का लल्ला—शरतचन्द २)
शास्त्री साहब—बद्रीनारायण शुक्ल ३)
दिया जला दिया बुझा—यादवेन्द्र शर्मा ३।।)
धूलि और नर्तन—वनकाम सुनील ४)
मरुभूमि—महेशचन्द सरल ३।।)

नाटक

नदी प्यासी थी—धर्मवीर भारती २।।)
सत्य का स्वरूप—डा० रामकुमार वर्मा १।।)

इतिहास

कोशाम्बी के अतःपुर का कला विलास—देवदत्त शास्त्री २।।)
चन्देले और उनका राजत्व काल—केशवचन्द्र मिश्र ८)

जीवनी

एंटैन चेखोव—राजेन्द्र यादव १।।।)
तुलसी की जीवन भूमि—चन्द्रवली पांडे ३)
संसार के महान् युग प्रवर्तक—इन्द्र एम० २।।)

बालोपयोगी

राजस्थान की लोक कथाएँ—पुरुषोत्तम १)
महाराणा प्रतापसिंह— १)

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मँगाने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेहत
और
ताकत
का
नुस्खा
विटामिनों से
पूर्ण
जे. बी.
मंघाराम
के
नरिशिंग
बिस्कुट
बच्चों की सेहत
के लिये आदर्श

सभी दूकानदारों के यहाँ मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'साहित्य सन्देश' के सम्बन्ध में

आवश्यक निवेदन

'साहित्य सन्देश' के अनेक पाठक हमें बार-बार लिखते हैं कि हम 'साहित्य सन्देश' में कागज रफ न लगा कर अच्छा लगावें। पाठकों की इस माँग को हम बराबर टालते रहे हैं—इसलिए कि चार रुपये मूल्य में छोटे टाइप में इतनी अधिक पाठ्य-सामग्री देकर अच्छा कागज लगाना सम्भव नहीं है और अनेक गरीब पाठकों का ध्यान रख कर मूल्य बढ़ाने में हमें बड़ा सङ्कोच है। इन दोनों बातों पर विचार कर अब हमने यह निश्चय किया है कि हम साहित्य सन्देश के दो संस्करण निकालेंगे। एक संस्करण तो जैसा निकलता है वैसा ही निकलता रहेगा। दूसरा संस्करण बढ़िया कागज पर निकाला जायगा और उसका मूल्य चार के स्थान पर पाँच रुपये होगा। क्योंकि रफ कागज से सफेद कागज का रेट ड्यौढ़े से भी अधिक है। पुराने ग्राहक भी यदि अच्छे कागज का संस्करण चाहेंगे तो १) भेज कर वे बढ़िया संस्करण के अधिकारी हो जायेंगे। नवीन ग्राहकों को पाँच रुपये भेजने होंगे, जो सादा कागज चाहेंगे वे यथा पूर्व चार रुपये के ग्राहक रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रथमा सं० २०१२ (१९५५)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(संक्षिप्त विवरण पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

संक्षिप्त नियम :—

१—३१ अगस्त सन् १९५५ तक परीक्षार्थियों के सशुल्क आवेदन-पत्र स्वीकार किये जायँगे। उसके बाद एक रुपया अतिरिक्त शुल्क लेकर केन्द्र व्यवस्थापक १० सितम्बर १९५५ तक आवेदन पत्र ले सकते हैं।

२—आवेदन पत्र का मूल्य तीन आना है। अपने निकट के केन्द्र व्यवस्थापक से प्राप्त करें।

३—परीक्षा शुल्क ७।) (अङ्क शुल्क सहित) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के नाम भेजा जाय। पोस्ट आफिस से प्राप्त रसीद फार्म पर चिपका देनी आवश्यक है।

४—परीक्षाएँ २७, २८, २९, ३० तथा ३१ दिसम्बर १९५५ को होंगी।

५—हिन्दी विश्वविद्यालय की प्रथमा परीक्षा निम्नलिखित विषयों में देनी होगी।

१—(१) हिन्दी साहित्य, (२) इतिहास, (३) भूगोल (४) गणित (महिलायें यदि चाहें तो गणित की जगह गार्हस्थ्य शास्त्र ले सकती हैं) तथा निम्नलिखित वैकल्पिक विषयों में से एक और लेना होगा।

२—(१) स्वास्थ्य रक्षा, (२) अँग्रेजी, (३) कला, (४) संस्कृत, (५) पालि, (६) सामान्य-विज्ञान, (७) धर्मशास्त्र, (८) अर्थशास्त्र, (९) नागरिक-शास्त्र, (१०) कृषिशास्त्र, (११) सङ्गीत।

पाठ्यक्रम

हिन्दी साहित्य—

प्रश्न-पत्र १—सूर संग्रह ॥), काव्यसंग्रह भाग १—१॥।), काव्यसंग्रह भाग २—२॥), काव्याङ्ग कल्पद्रुम ॥।)

सहायक ग्रन्थ—प्रथमालङ्कार निरूपण ।=)

प्रश्न पत्र २—साहित्य प्रवेश २), हिन्दी भाषा सार १॥)

प्रश्न पत्र ३—हिन्दी साहित्य परिचय २), रचना तथा व्याकरण १॥।)

सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य का सुबोध इति० ३।), संक्षिप्त हिन्दी साहित्य १।), हिन्दी साहित्य की रूपरेखा ।=)

इतिहास—भारतवर्ष का इतिहास ३) या लघु इतिहास प्रवेश ५)

भूगोल—भूगोल सार ३), भारतवर्ष का भूगोल २॥), भू परिचय ३।),

गणित—अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित (कोई भी पुस्तक उपयोग में लाई जा सकती है)

वैकल्पिक विषय—(कोई एक विषय लीजिए)

नोट:—इनमें दो-दो प्रश्न पत्र ५०-५० अङ्कों के होंगे।

स्वास्थ्य—आरोग्य विधान ६), आदर्श भोजन १।) स्वास्थ्य-विधान (तीनों भाग) स्वास्थ्य प्रदीपिका १॥),

सामान्य विज्ञान—वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान की प्रारम्भिक पुस्तक, सरल सामान्य विज्ञान, प्रा० जीव विज्ञान, जीवन की कहानी। रसायन प्रवेशिका, प्रारम्भिक रसायन, प्रारम्भिक भौतिकी, सामान्य भौतिक तथा रसायन, सरल सामान्य विज्ञान।

कला—प्राइमर आफ आर्ट ३) अथवा कला के मुख्य तत्व तथा हिस्ट्री आफ आर्ट १॥।), ऐलमेण्ट्री डिजायन २), फ्री हैण्डड्राइङ्ग और डिजायन २), सक्सेस इन आर्ट १॥) (अथवा) कला और [illegible] कार्य भाग ३ व ४।

संस्कृत—मित्र लाभ १।), नीतिशतक ॥।), प्रारम्भिक संस्कृत व्याकरण १), व्याकरण नवीनतम १।),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिक और रसायन विज्ञान—प्रारम्भिक रसायन १।), सरल सामान्य विज्ञान, रसायन प्रवेशिका ३), प्रारम्भिक भौतिकी।

धर्मशास्त्र—श्रीमद्भागवत संग्रह ।।।≈), धर्म शिक्षा ३), (खण्ड १-२-३) मनुस्मृति हिन्दी अनुवाद (अध्याय १, २, ३, ५), भारतीय संस्कृति, हिन्दुओं की पोथी २), सदाचार और नीति २),

नागरिक शास्त्र—हाईस्कूल नागरिक-शास्त्र २।।) नागरिक शिक्षा १।।), भारतीय संविधान १), नागरिक-शास्त्र के सिद्धान्त ४)

कृषिशास्त्र—कृषि प्रवेशिका १।), प्रारम्भिक कृषि विज्ञान तीन भाग २।।), कृषि विज्ञान भाग १–।।≈), भाग २–।।।–), ग्रामीण ज्ञानोदय २)

अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त ३), प्रारम्भिक अर्थशास्त्र २≈), भारतीय अर्थशास्त्र की सरल रूप-रेखा ३), भारतीय अर्थशास्त्र ५)

सङ्गीत—सङ्गीत रागदर्शन २ भाग, सङ्गीतशास्त्र २ भाग, रागविज्ञान ३ भाग, सङ्गीत कौमुदी ३ भाग, हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति भाग १, २, ३, ४।

अँग्रेजी—Gems of English prose 1/2, Some Indian Leaders 1/-, A book of English Verse /10/-, Selection from Mahatma Gandhi 1/2 Letters from a father to his daughter 1/-, Modern High School Essays and letters 2/8/-,

पालि—जातक संग्रह, पाली प्रबोध २।), सरल पालि व्याकरण,

गार्हस्थ्य-शास्त्र—(केवल महिलाओं के लिए) तीमारदारी ।।।), गार्हस्थ्य-शास्त्र २), सरल शरीर विज्ञान १।।). सरस भोजन कैसे बनावें ३।।।) परिचर्या गृह प्रबन्ध २।), मातृकला।

परीक्षार्थियों को साहित्य-सन्देश पढ़ना आवश्यक है

परीक्षा में पास होने और हिन्दी का अच्छा ज्ञान करने के लिए आलोचनात्मक मासिक 'साहित्य सन्देश' आगरा जिसका वार्षिक मूल्य ४) है को निरन्तर पढ़ना चाहिये तथा 'परीक्षार्थी प्रबोध' के चारों खण्डों को पढ़ लेना आवश्यक है। मूल्य प्रत्येक खण्ड ३)। परीक्षार्थी प्रबोध साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेगा—जो ग्राहक नहीं है वे वार्षिक चन्दे के ४) भेज कर ग्राहक बन जायँ।

नोटः—ऊपर लिखी पुस्तकों का मूल्य कम-बढ़ भी हो सकता है, पुस्तकों का वही मूल्य लिया जावेगा जो पुस्तकों पर छपा होगा। २) का मनीआर्डर पेशगी मिलने पर पुस्तकें भेजने में सुविधा होगी।

प्रथमा परीक्षा के लिए सहायक पुस्तकें :—

१—प्रथमा दिग्दर्शन (हिन्दी, इतिहास, भूगोल, गणित)	(सं० २०१२ के लिए)	३।।)
२—प्रथमा हिन्दी पथ प्रदर्शक गाइड	,,	६)
३—काव्यसंग्रह भाग १ की टीका	,,	३)
४—काव्यसंग्रह भाग २ की टीका	,,	४)
५—सूर संग्रह की टीका	,,	२)
६—प्रथमा प्रश्न पत्र हिन्दी उत्तर सहित सं० २००२ से २०११ तक		५)
७—प्रथमा प्रश्न पत्र इतिहास उत्तर सहित सं० २००२ से ७ तक		२)
८—प्रथमा प्रश्न पत्र भूगोल उत्तर सहित सं० २००२ से ६ तक		१)

हिन्दी की सभी परीक्षाओं की पुस्तकें मिलने का एक मात्र स्थान :—

साहित्य-रत्न-भण्डार, ४, गान्धी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मध्यमा [विशारद] सं० २०१२ [१९५५]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(संक्षिप्त विवरण पत्रिका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग)

हिन्दी—परीक्षाओं की पुस्तकें मिलने का सबसे बड़ा स्थान:—

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

संक्षिप्त नियम—

१—मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए परीक्षार्थी को सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा, हाई स्कूल परीक्षा, सरकारी कोविद परीक्षा, काशी विद्यापीठ की प्रथमा परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की प्रवेशिका परीक्षा, हिन्दी विद्यापीठ बम्बई की रत्न परीक्षा, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विद्या विनोदिनी परीक्षा या वर्धा की विनीता इत्यादि परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

२—३१ अगस्त सन् १९५५ तक परीक्षार्थियों के सशुल्क आवेदन पत्र केन्द्र व्यवस्थापक द्वारा स्वीकार किये जायेंगे। उसके बाद एक रुपया अतिरिक्त शुल्क लेकर केन्द्र व्यवस्थापक १० सितम्बर १९५५ तक आवेदन पत्र ले सकते हैं।

३—आवेदन-पत्र का मूल्य तीन आना है जो अपने निकट के केन्द्र व्यवस्थापक से प्राप्त कर लें।

४—परीक्षा शुल्क १२) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के नाम भेजा जाय और मनीआर्डर की पोस्ट आफिस से प्राप्त रसीद फार्म पर चिपकानी आवश्यक है।

५—परीक्षाएं २७—२८—२९—३० तथा ३१ दिसम्बर १९५५ को होंगी।

६—मध्यमा परीक्षा के प्रत्येक परीक्षार्थी के लिये हिन्दी साहित्य विषय लेना अनिवार्य होगा। निम्नलिखित वैकल्पिक विषयों के दो समूहों में से प्रत्येक से एक विषय लेना होगा।

क—(१) गणित, (२) इतिहास, (३) वैद्यक (४) अङ्गरेजी, (५) कृषि, (६) दर्शन, (७) धर्मशास्त्र, (८) मनोविज्ञान तथा (९) केवल महिलाओं के लिये गार्हस्थ्य-शास्त्र।

ख—(१) संस्कृत, (२) पालि, (३) विज्ञान, (४) भूगोल, (५) राजनीति, (६) अर्थशास्त्र, (७) ज्योतिष, (८) बंगला, (९) गुजराती, (१०) मराठी, (११) तमिल, (१२) तेलगु, (१३) कन्नड (१४) मलयालम, (१५) सिन्धी तथा (१६) सङ्गीत।

पाठ्यक्रम

हिन्दी साहित्य—

प्रश्नपत्र १—ब्रज माधुरी सार ४), तुलसी संग्रह १।), आधुनिक काव्य संग्रह १॥), अयोध्याकाण्ड २) (अङ्क १००)

सहायक ग्रन्थ—संक्षिप्त अलङ्कार मञ्जरी २), भाषा भूषण १)

प्रश्नपत्र २—हिन्दी गद्य पारिजात १॥।), शकुन्तला नाटक १॥) (अङ्क १००)

निम्नलिखित पाँच नाटकों में से कोई एक:—

ध्रुवस्वामिनी ॥।), राजयोग १।), अमीरी या गरीबी २), कोणार्क ३), चारुमित्रा २॥)

कहानी संग्रह, प्रतिनिधि कहानियाँ १।)

निम्नलिखित पाँच उपन्यासों में से कोई एक:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गोदान (संक्षिप्त) ४), परख १॥), झाँसी की रानी (संक्षिप्त) २॥), चेतन अश्क ६॥।), निशागीत ३)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक ग्रन्थ—प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी १), आधुनिक हिन्दी नाटक १।।।), हिन्दी एकाङ्की २।।)

नोटः—साहित्य की आलोचना तथा नाट्य-शास्त्र पर भी प्रश्न पूछे जायँगे। जिसके लिए 'साहित्य सन्देश' आगरा (आलोचनात्मक मासिक पत्र) का अध्ययन कीजिये।

प्रश्नपत्र ३—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास (गुलाबराय) ३।।, हिन्दी साहित्य का सं० इतिहास (वर्मा) २) हिन्दी साहित्य का इतिहास (वार्ष्णेय) १।।), नागरी अङ्क और अक्षर ।≈), हिन्दी भाषा और लिपि १) (प्रयाग) लिपि विकास ।।।), प्रामोरय हिन्दी १।।), हिन्दी साहित्य समीक्षा २।।)

प्रश्नपत्र ४—निबन्ध कला ३।।), प्रबन्ध प्रदीप २।।), हिन्दी प्रयोग १।।), सम्मेलन निबन्ध माला १।।), जीवन यज्ञ २), निबन्ध रचना तथा संक्षेप लेखन ३)

वैकल्पिक विषय

इतिहास प्रश्नपत्र १—इतिहास प्रवेश ८), मौर्यकालीन भारत २), प्राचीन भारत हिन्दू काल का इतिहास ७), भारतीय इतिहास की रूपरेखा १०), गुप्त साम्राज्य का इतिहास ४), अकबर की राज्य व्यवस्था २।।), अशोक ४), प्राचीन भारत का इतिहास १०), हमारा राजस्थान ६), भारत में मुगल साम्राज्य।

प्रश्नपत्र २—विश्व इतिहास की झलक २१), माडर्न हिस्ट्री (हेज), आउट लाइन ऑफ हिस्ट्री (वैल्स), आधुनिक भारत का इतिहास, विश्व इतिहास की झाँकी २।।), भारत में ब्रिटिश साम्राज्य १?)

अर्थशास्त्र प्रश्नपत्र १—गांधीजी की आर्थिक योजना २।।), भारतीय अर्थशास्त्र ५), भारतीय राजस्व ३), कौटिल्य के आर्थिक विचार १।।), अर्थशास्त्र की रूपरेखा ६), अर्थशास्त्र (जोशी) १०), सर्वोदय योजना ।।), सर्वोदय अर्थशास्त्र ४)

प्रश्नपत्र २—गाँव की समस्यायें १), भारत में कृषि सुधार २।), ग्राम्य अर्थशास्त्र २), ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार २।।), भारतीय सहकारिता आन्दोलन ३।।), नेत्रयोग १।।), खादी मीमांसा ३), ग्राम आन्दोलन की आवश्यकता ३।), भारतीय कृषि अर्थशास्त्र (गुप्त) ८)

गणित प्रश्नपत्र १, २—स्वराशिकल ४), ठोस ज्यामिति १≈), गति विज्ञान ३।।), नियामक ज्योमित, माध्यमिक बीजगणित, माध्यमिक त्रिकोणमित, बीजगणित।

दर्शन प्रश्नपत्र १—गीता में ईश्वरवाद १।), अवतारिका ४), द्रव्य संग्रह ।।), दर्शन की रूपरेखा, श्री मद्भगवद्गीता (अध्याय २, ३, ४), १।) तर्क संग्रह

प्रश्नपत्र २—जीवात्मा ३), मनोविज्ञान २), तर्क शास्त्र भाग १ व २—३), भारतीय तर्क शास्त्र १)

विज्ञान प्रश्नपत्र १ व २—भौतिक विज्ञान प्रवेशिका (दो भाग) १५) साधारण रसायन (दो भाग) १), सामान्य रसायन शास्त्र, कार्बनिक रसायन।

धर्मशास्त्र प्रश्नपत्र १—मनुस्मृति अध्याय १, २, ७ (हिन्दी अनुवाद) ५), याज्ञवल्क्य स्मृति १।), उपनिषदों की कहानियाँ प्रथम भाग—२।।), वैष्णव धर्म ३)

प्रश्नपत्र २—भगवद्गीता का हिन्दी अनुवाद—अध्याय २, ३, ४, १६ तथा १८—२।।) धर्म शिक्षा (खण्ड ४, ६) ३), उपनिषदों की कहानियाँ द्वितीय भाग—२।।)

ज्योतिष प्रश्नपत्र १—मङ्गलाचरण, सौरपरिवार १२, सूर्यसिद्धान्त,

प्रश्नपत्र २—प्रश्नशिरोमणि, लघु पाराशरी, भारतीय ज्योतिष ९) षट्पञ्चाशिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्यक प्रश्नपत्र १—[illegible] शरीर विज्ञान १॥), शरीर की [illegible] ॥=), [illegible] परिचय १॥), शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य २।), आरोग्य विधान ६), हम सौ वर्ष कैसे जीवें २), नागरिक आरोग्य २), स्वास्थ्य और प्राणायाम २), सरल स्वास्थ्य साधन, योगासन और ब्रह्मचर्य गुप्तावस्था २)

प्रश्नपत्र २—फल उनके गुण और उपयोग २), शाक भाजी २), परिचर्या प्रबोध १॥), पथ्यापथ्य निरूपण १॥)

संस्कृत प्रश्नपत्र १—कुमार सम्भव (पञ्चम सर्ग) २), किरातार्जुनीय (सर्ग १ व २), हर्ष चरित-सार ॥=), संस्कृत साहित्य की रूपरेखा ४॥।), संस्कृत साहित्य का इतिहास ५)

प्रश्नपत्र २—संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका ५), संस्कृत प्रकाश १॥)

पालि प्रश्नपत्र १—जातक पाठ, सच्च सङ्ग हो ।=), धम्मपद १॥)

प्रश्नपत्र २—पालि प्रबोध २), पालि महा व्याकरण ।

अंग्रेजी प्रश्नपत्र १—A book of English Essays (in the Pelican Series) Great Expectations (Dickens), Merchant of Venice 2/-/- अंग्रेजी साहित्य का इतिहास २)

प्रश्नपत्र २—Palgrave's golden Treasury, Sohrab & Rustum (Arnold) 1/4/-

भूगोल प्रश्नपत्र १—भूगोल सार ३), भू परिचय ३।), भू-तत्त्व २), समुद्र विज्ञान १)

प्रश्नपत्र २—व्यापारिक भूगोल २॥), भारतवर्ष की वाणिज्यात्मक सम्पत्ति २), उत्तर प्रदेश ५), भारतवर्ष का आर्थिक भूगोल २।)

कृषिशास्त्र प्रश्नपत्र १—कृषिशास्त्र २।), संयुक्त प्रान्त में कृषि उन्नति १), पशुओं का इलाज ॥), फल संरक्षण २॥), शाक भाजी खेती ४), पैदावार प्रबोध ॥), कृषि कार्य १॥), उत्तर प्रदेश की प्रमुख फसलें, ढोरों का इलाज ॥=)

प्रश्नपत्र २—हमारे गाँव और किसान ।॥), भारत में कृषि सुधार २॥), नेतागीरी १॥), कृषि सुधार का मार्ग ।॥), गाँव की समस्याएँ १), ग्राम्य अर्थशास्त्र २), कानूनी कब्जा अराजी मालिक प्रान्त १), ग्राम आन्दोलन की आवश्यकता ३॥), यू० पी० पञ्चायत राज एक्ट १।), यू० पी० जमींदारी उन्मूलन एक्ट २),

राजनीति प्रश्नपत्र १—हिन्दू राज्य शास्त्र ५), कौटिल्य की शासन पद्धति २), कौटिल्य अर्थशास्त्र मीमांसा, भारतीय विधान ४), देशी राज्य शासन ३॥), राजनैतिक भारत, आधुनिक भारतीय शासन ५), प्रान्तीय स्वायत्त शासन १॥), देशी राज्यों की जन जागृति ५), भारतीय संविधान तथा नागरिकता ४॥), भारतीय संविधान और नागरिक जीवन ४)

प्रश्नपत्र २—बीसवीं सदी की राजनैतिक विचार धाराएँ १॥), सरल नागरिक शास्त्र ।), [illegible] शासन १।), संसार शासन ३), नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त ४), नागरिक शास्त्र की परीक्षा ५), नागरिक शास्त्र की विवेचना ४), गांधी विचार दोहन १॥), व्यक्ति और राज १॥), नागरिक नीति ३), राजनीति विज्ञान ४), आदर्श भारत की रूपरेखा २॥)

मनोविज्ञान प्रश्नपत्र १ व २—बाल मनोविज्ञान ६), शिक्षा का विधान और शिक्षा के सिद्धान्त २।), सरल मनोविज्ञान (शुक्ल) ६), सरल मनोविज्ञान (भाटिया) ४), शिक्षा मनोविज्ञान (चन्द्रावती लखनपाल) ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्गीत प्रश्नपत्र १ व २—हि[illegible] भाग १, २, ३ व ४, [illegible] भाग १, २, ३, ४ व ५, सङ्गीत शास्त्र भाग १, २, सङ्गीत कौमुदी भाग १, २ व ३, सङ्गीत शास्त्र भाग २, मृदङ्ग तबला वाद्य सुबोध (भाग १, २) सितार मार्ग, बेला शिक्षक, सङ्गीत शास्त्र भाग २ (महेशनारायण सितार मार्ग)।

गार्हस्थ्य शास्त्र प्रश्नपत्र १ व २—शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य २॥), घर की लक्ष्मी २॥।), पाक विज्ञान ३), मातृत्व ५), हमारे बच्चे स्वस्थ और दीर्घजीवी कैसे हों, मातृकला ॥।)

विज्ञान प्रश्नपत्र १ व २—भौतिक विज्ञान प्रवेशिका (दो भाग) साधारण रसायन (दो भाग) ११), सामान्य रसायन शास्त्र, कार्बनिक रसायन शास्त्र, कार्बनिक रसायन।

[विशेष जानकारी के लिए सम्मेलन की बड़ी विवरण-पत्रिका १॥=) भेज कर हमसे मँगावें।]

नोटः—ऊपर लिखी पुस्तकों का मूल्य कम-बढ़ भी हो सकता है। मूल्य वही लिया जायगा जो पुस्तक पर छपा होगा। आर्डर भेजते समय २) मनीआर्डर से पेशगी भेजने पर पुस्तकें भेजने में हमें विलम्ब न होगा।

परीक्षार्थियों को साहित्य सन्देश पढ़ना आवश्यक है

परीक्षा में पास होने और हिन्दी का अच्छा ज्ञान करने के लिए आलोचनात्मक मासिक 'साहित्य-सन्देश' आगरा जिसका वार्षिक मूल्य साधारण संस्करण ४), विशेष संस्करण ५) है को निरन्तर पढ़ना चाहिए तथा 'परीक्षार्थी-प्रबोध' के चारों खंडों को पढ़ लेना आवश्यक है। मूल्य प्रत्येक खण्ड ३), परीक्षार्थी-प्रबोध साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेगा—जो ग्राहक नहीं हैं वे वार्षिक चन्दे के ४) या ५) भेजकर ग्राहक बन जायँ। सूची मुफ्त मँगाएँ।

मध्यमा (विशारद) परीक्षा के लिए सहायक पुस्तकें—

१—परीक्षार्थी-प्रबोध—भाग १-२-३-४ प्रत्येक ३)
२—मध्यमा पथ-प्रदर्शक गाइड— ६)
३—विशारद दिग्दर्शन— ३॥)
४—प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी—कृष्णकुमार सिन्हा १)
५—गोदान एक अध्ययन—प्रेमनारायण टण्डन १॥।)
६—झाँसी की रानी एक अध्ययन— १)
७—अयोध्याकाण्ड एक अध्ययन— १)
८—जीवनयज्ञ परिचय— १॥)
९—अयोध्याकाण्ड दिग्दर्शन— ॥।)
१०—ब्रजमाधुरी सार की टीका— २॥)
११—आधुनिक काव्य संग्रह की टीका— २॥)
१२—तुलसी संग्रह की टीका— २)
१३—मध्यमा प्रश्नपत्र हिन्दी उत्तर सहित— सं० २०११ तक ३॥)
१४—मध्यमा प्रश्नपत्र हिन्दी उत्तर सहित सं० २००३ से २०११ तक ५॥)
१५—मध्यमा प्रश्नपत्र इतिहास उत्तर सहित सं० २००४ से १० तक ४॥)
१६—मध्यमा प्रश्नपत्र भूगोल उत्तर सहित सं० २००४ से ८ तक ४)
१७—मध्यमा प्रश्नपत्र कृषिशास्त्र उत्तर सहित सं० २००४ से ८ तक २)
१८—मध्यमा प्रश्नपत्र अर्थशास्त्र उत्तर सहित सं० २००४ से ९ तक ४)

प्रथमा, प्रवेशिका, विद्याविनोदिनी, साहित्य-रत्न, बी० ए०, एम० ए० तथा हिन्दी की अन्य सभी परीक्षाओं की पुस्तकें मिलने का स्थान—

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उत्तमा [साहित्य रत्न] सं० २०१२

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(संक्षिप्त विवरण पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

हिन्दी की सभी परीक्षाओं की पुस्तकें मिलने का सबसे बड़ा स्थान—

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

संक्षिप्त नियम

१—हिन्दी विश्वविद्यालय की उत्तमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए प्रत्येक परीक्षार्थी को हिन्दी-विश्वविद्यालय की मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक होगा। परन्तु जो परीक्षार्थी किसी विश्व-विद्यालय की हिन्दी अथवा संस्कृत लेकर बी० ए० अथवा किसी भी विषय की एम० ए० या एम० एस० सी०, संस्कृत कालेज काशी के आचार्य, बिहार संस्कृत एसोशिएशन के आचार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय और काशी विश्व वद्यालय के आचार्य, पञ्जाब यूनीवर्सिटी की हिन्दी प्रभाकर, हिन्दी विद्यापीठ देवघर की साहित्य-भूषण, महाविद्यालय ज्वालापुर की विद्या भास्कर, दयानन्द महाविद्यालय गुरुकुल डोरली के स्नातक, प्रयाग महिला विद्यापीठ की विदुषी (आनर्स), आन्ध्र विश्वविद्यालय के भाषा प्रवीण या मद्रास विश्व-विद्यालय के विद्वान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के राष्ट्र-भाषा रत्न, बम्बई हिन्दी विद्यापीठ के साहित्य सुधारक, गुरुकुल महाविद्यालय अयोध्या के विद्या-वागीश, विद्यामार्तण्ड, गुरुकुल कांगड़ी को विद्यालङ्कार तथा विद्यालंकृता, ऋषिकुल विश्वविद्यालय हरिद्वार की विद्याकलानिधि, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की राष्ट्रभाषा प्रवीण, अजमेर बोर्ड की प्रभाकर परीक्षा पास होंगे वह बिना मध्यमा में उत्तीर्ण हुए ही उत्तमा परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे।

२—उत्तमा में परीक्षार्थी को अपने आवेदन पत्र के साथ केन्द्र व्यवस्थापक द्वारा प्रमाणित अपने फोटो की दो प्रतियाँ भेजनी होंगी। चित्र बिना दफ्ती और ३॥×२॥ नाप के होने चाहिए। महिलाओं के लिए चित्र भेजना आवश्यक न होगा।

३—उत्तमा परीक्षा दो खण्डों में दो वर्षों में ली जायगी। प्रथम खण्ड पास कर लेने पर ही द्वितीय खण्ड की परीक्षा में बैठ सकेंगे।

४—प्रथम खण्ड में चार प्रश्नपत्र तथा द्वितीय खण्ड में पाँच प्रश्नपत्र होंगे।

५—परीक्षा का शुल्क प्रथम खण्ड का १२) तथा द्वितीय खण्ड का १३) है।

६—परीक्षाएँ २७, २८, २९, ३० तथा ३१ दिसम्बर ५५ की होंगी।

७—आवेदन पत्र ३१ अगस्त तक स्वीकार किए जायेंगे। इसके बाद एक रुपया अतिरिक्त शुल्क लेकर १० सितम्बर १९५५ तक केन्द्र व्यवस्थापक आवेदनपत्र ले सकते हैं।

नोट—उत्तमा के परीक्षार्थियों को 'परीक्षार्थी-प्रबोध' भाग १-२-३-४, (पुस्तक सूची प्रत्येक ३) जो परीक्षा में बहुत उपयोगी है अवश्य पढ़नी चाहिये।

हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड

प्रश्नपत्र १—डिङ्गल में वीर रस ३), (केवल पृथ्वीराज, दुरसाजी और बाँकीदास) वीरकाव्य ६), (चन्द नरपति, नाल्ह, जोधराज और भूषण तथा भूमिका), कबीर संग्रह १), हिन्दी सन्त काव्य संग्रह ५) (नानक, दादू, सुन्दरदास, रैदास, मलूकदास, सहजोबाई नामदेवजी) सूफी काव्य संग्रह ३), हिन्दी प्रेम गाथा-काव्य ६॥)

सहायक ग्रन्थ—राजस्थानी भाषा और साहित्य ६), चन्दबरदाई ८), उत्तरी भारत की सन्त परम्परा १२), कबीर ४), जायसी ग्रन्थावली ५), तसव्वुफ अथवा सूफीमत ४), जायसी ग्रन्थावली (केवल भूमिका भाग) ५), अनुराग बाँसुरी १॥) (केवल भूमिका भाग), हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य ७॥)

प्रश्नपत्र २—(क) भक्तिकाव्य—

उत्तरकाण्ड १।॥), विनयपत्रिका ६) (स्तोत्र अंश प्रारम्भ के ६१ पद छोड़कर), मीराबाई की पदावली ३) रासपञ्चाध्यायी २)

(ख) रीतिकाल—

संक्षिप्त रामचन्द्रिका १॥), बिहारी सतसई ३),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवित्त रत्नाकर ३॥), देव शब्द रसायन: (मनोज) २॥) रसखान और घनानन्द १॥)

सहायक ग्रन्थ—(क) भक्तिकाव्य–गो० तुलसीदास १॥।), तुलसी २) सूरदास ८), मीराबाई १॥) विनय-पत्रिका दर्शन १॥), तुलसीदास (प्रश्न उत्तर) २॥), सूरदास (प्रश्न उत्तर) २॥)

सहायक ग्रन्थ—(ख) रीतिकाव्य–बिहारी की वाग्विभूति १॥।=), केशव की काव्य कला २॥), देव और उनकी कविता ६)

प्रश्न पत्र ३—आधुनिक पद्य—प्रियप्रवास (एकादश सर्ग तक) ३=), साकेत (नवम् सर्ग मात्र) ५), कामायनी (आरम्भ से लज्जा तक) ३।) आधुनिक कवि पन्त २॥) आरा ३॥), हिमतरंगिनी ४॥), आधुनिक कवि (महादेवी वर्मा) २॥), कुरुक्षेत्र ३।), उद्धव-शतक २)

सहायक ग्रन्थ—प्रसाद की कला ३), सुमित्रानन्दन पन्त २॥), साकेत एक अध्ययन ३), गुप्तजी की कला २), महाकवि हरिऔध ४), ज्योति विहग ५), कवि प्रसाद की काव्य साधना ३॥), कामायनी सौन्दर्य ४॥), जयशङ्करप्रसाद ३) गुप्तजी की काव्यधारा ३॥), आधुनिक काव्य धारा ४॥), आधुनिक काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमिका ३॥), हिन्दी कविता में युगान्तर ८)

प्रश्नपत्र ४—गद्य, निबन्ध, कला, साहित्य तथा नाटक।

निबन्ध—चिन्तामणि दोनों भाग ६), भट्ट निबन्धावली १॥), अतीत के चलचित्र २), अशोक के फूल ३)

कथा साहित्य—मृगनयनी ५), टेढ़े मेढ़े रास्ते ७), निमन्त्रण ३), इक्कीस कहानियाँ ३), कर्मभूमि ५) सुबह के भूले ५)

नाटक—मुद्राराक्षस १॥), चन्द्रगुप्त ३), सिन्दूर की होली १।), प्रतिनिधि एकाङ्की ३), हड़ताल २।)

सहायक ग्रन्थ—विचार-विमर्श २), हिन्दी नाटक साहित्य ४), हिन्दी गद्य मीमांसा ६), हिन्दी उपन्यास ४॥), हिन्दी में निबन्ध साहित्य १।), हिन्दी नाट्य-साहित्य २॥।), हिन्दी एकांकी २॥), आधुनिक हिन्दी नाटक १॥।)

द्वितीय खण्ड—हिन्दी साहित्य

प्रश्न पत्र १—निम्नलिखित कवियों में से किसी का विशेष अध्ययन।

१–कबीर, २–सूरदास, ३–तुलसीदास, ४–केशवदास, ५–देव, ६–हरिश्चन्द्र, ७–जयशङ्करप्रसाद।

१—कबीर—पाठ्य ग्रन्थ—कबीर ग्रन्थावली साखी अंश ४), कबीर बीजक ५॥)

सहायक ग्रन्थ—कबीर का रहस्यवाद ३॥) कबीर ४) हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय ७), कबीर की विचारधारा ७)

२—सूरदास—पाठ्य ग्रंथ—सूरसागर २ भाग प्रत्येक भाग १०)

सहायक ग्रन्थ—सूरदास ३॥), सूरदास ८), सूर-सौरभ ५॥।), सूर निर्णय ५), अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय २ भाग २०)

३—तुलसीदास—पाठ्य ग्रन्थ—रामचरित मानस १२) और ७॥), तुलसी ग्रन्थावली दूसरा खण्ड ४॥)

सहायक ग्रन्थ—गोस्वामी तुलसीदास १॥।), तुलसी दर्शन ५) तुलसीदास ८) तुलसीदास (श्रीकृष्णलाल ४॥)

४—केशव पाठ्यग्रन्थ – रामचन्द्रिका दो भाग ५।), कविप्रिया ।।–), रसिक-प्रिया ।।–), विज्ञान गीता।

सहायक ग्रन्थ—केशव की काव्य कला २॥), केशवदास ६)

५—देव पाठ्य ग्रन्थ–देवसुधा २॥), भाव विलास १॥), देवदर्शन २), भवानीविलास, रसविलास।

सहायक ग्रन्थ—देव और उनकी कविता ६), देव और बिहारी ३॥) देव शब्द रसायन: मनोज: २।)

६–हरिश्चन्द्र-पाठ्य ग्रन्थ-भारतेन्दु नाटकावली ८)

सहायक ग्रन्थ—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ५), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र: एक अध्ययन २॥), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र २।) भारतेन्दु के निबन्ध ४।), भारतेन्दु उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि ।।), विशेषकर भारतेन्दु विशेषाङ्क १)

७—जयशङ्कर प्रसाद—पाठ्य ग्रन्थ–काव्य-झरना १), लहर १।) आँसू १), कामायनी ३।), नाटक—अजातशत्रु १॥), जनमेजय का नाग यज्ञ १) ध्रुवस्वामिनी ॥।), स्कन्दगुप्त १॥), चन्द्रगुप्त ३), उपन्यास—कङ्काल ४), तितली ४), कहानी संग्रह—प्रतिध्वनि १) काव्य कला तथा अन्य निबन्ध १॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक ग्रन्थ—कवि प्रसाद की काव्य-साधना ३॥), प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन ३॥), प्रसाद के नाटकीय पात्र ५), जयशङ्कर प्रसाद ३), प्रसादजी की कला ३),

प्रश्न पत्र २—भाषा विज्ञान तथा हिन्दी-भाषा का इतिहास १०० अङ्क, (क) भाषा विज्ञान ५० अङ्क (ख) हिन्दी भाषा का इतिहास ५० अङ्क।

(क) भाषा विज्ञान, पाठ्य ग्रन्थ—सामान्य भाषा विज्ञान ६)

सहायक ग्रन्थ—भाषा विज्ञान ४), तुलनात्मक भाषा शास्त्र ५), भाषा विज्ञान ५),

(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास। पाठ्य ग्रन्थ—हिन्दी भाषा २), हिन्दी भाषा का इतिहास ८), दक्खिनी हिन्दी ३)

प्रश्न पत्र ३—साहित्यालोचन, साहित्य का इतिहास तथा काव्य शास्त्र १०० अङ्क।

(क) साहित्यालोचन ३० अङ्क (ख) साहित्य इतिहास ४० अङ्क (ग) काव्य शास्त्र ३० अङ्क।

(क) साहित्यालोचन

सहायक ग्रन्थ—साहित्यालोचन ५॥), साहित्य मीमांसा ४), समालोचना शास्त्र २)

(ख) साहित्य का इतिहास—

हिन्दी साहित्य का इतिहास ७) हिन्दी साहित्य की भूमिका ३॥), हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास ३) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास १०), आधुनिक हिन्दी साहित्य का भूमिका ८), विवेचना ४), हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण ८), कवि रहस्य २)

(ग) काव्य शास्त्र—

काव्य प्रकाश ६), काव्य दर्पण १०)

प्रश्न पत्र ४—निबन्ध १०० अङ्क।

पाठ्य ग्रन्थ—कला कल्पना और साहित्य ४)

प्रश्न पत्र ५—प्राचीन भाषा तथा आधुनिक प्रान्तीय भाषा १०० अङ्क।

प्राचीन भाषा—

संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश में से एक विषय—५० अङ्क।

संस्कृत—रघुवंश तेरहवाँ सर्ग १॥) मित्रलाभ १)

पालि—सब सङ्ग हो (=) पालि-प्रबोध व्याकरण

प्राकृत—प्राकृत प्रवेशिका।

अपभ्रंश—अपभ्रंश प्रकाश।

आधुनिक प्रान्तीय भाषा—

बङ्गला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड़ में से कोई एक विषय ५० अङ्क।

बङ्गला—साहित्य-सञ्चयन २), काव्य प्रतिभा १॥) बङ्गला साहित्य की कथा १॥)

गुजराती—काव्य समुच्चय भाग ३, ४) हिमालय नो प्रवास १॥)

सहायक ग्रन्थ—गुजराती साहित्यना मार्ग सूचक स्तम्भो ३). हिन्दी गुजराती शिक्षा १॥)

मराठी—दैनिक स्वाध्याय, प्रतिभा साधन अथवा स्वैर विचार।

सहायक ग्रन्थ—मराठी का सं० इतिहास ३), मराठी का वर्णनात्मक व्याकरण।

परीक्षार्थियों के लिए मराठी व्याकरण तथा इतिहास का संक्षिप्त अध्ययन अपेक्षित है।

तमिल—परीक्षार्थियों को तमिल साहित्य का ज्ञान होना आवश्यक है। तमिल साहित्य के इतिहास तथा आधुनिक गद्य तथा पद्य की प्रगति से सम्बन्धित प्रश्न भी पूछे जायँगे।

तेलुगू—गद्य पद्य संग्रहम्, आन्ध्र वाङ्मय चरित संग्रहम्।

मलयालम्—चिताय, चिष्टाय, सीता, तचोलि अंतेनन व्याकरण तथा साहित्य का इतिहास, राजधर्म राजा।

कन्नड़—सखी गीता, पाँचजन्य, कानून विल्लु भाग २, मध्य भारत, सार, पूर्व भाग, साहित्य मनु जीवन।

सहायक ग्रन्थ—कर्णाटक कद कैपिडि, कन्नड़ कैपिडि कन्नड़ साहित्य।

'साहित्य-सन्देश' आगरा

सम्पादक—गुलाबराय, सत्येन्द्र, महेन्द्र

१६ वर्षों से निरन्तर विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों की सेवा करता आ रहा है। यह आलोचनात्मक मासिक पत्र है जो विद्यार्थियों को अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है। उत्तमा (साहित्य रत्न) परीक्षाओं में साहित्य-सन्देश पढ़ना बहुत उपयोगी होगा। आज ही ४) मनीआर्डर भेज कर वार्षिक ग्राहक बन जायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-रत्न प्रथम खण्ड की सहायक पुस्तकें

फाइल १६५१—५२ (साहित्य-सन्देश)	५)
साहित्य रत्न गाइड—	१०)
,, ,, दिग्दर्शन	७॥)
उत्तमा प्रश्नोत्तर सं० २००२—११	२२॥)
मृगनयनी प्रश्नोत्तरी	॥=)
उद्धव शतक परिशीलन—	२)
प्रिय प्रवास की टीका—	४)
कर्मभूमि : एक अध्ययन —	१॥)
आचार्य शुक्ल और उनकी चिन्तामणि—	॥=)
चिन्तामणि दर्शन —	३)
चन्द्रगुप्त एक अध्ययन—	२॥)
कुरुक्षेत्र की सरल टीका—	२॥)
मृगनयनी : समीक्षा—	१॥)
आधुनिक तीन महाकाव्य—साकेत, प्रिय प्र. कामा०	३)
विनय पत्रिका दर्शन	१॥)
आधुनिक कवि पन्त की टीका—	२)
,, ,, वर्मा की टीका—	३)
हिन्दी एकाङ्की—डा० सत्येन्द्र	२)
परीक्षार्थी प्रबोध—भाग १, २, ३, ४ प्रत्येक	३)

साहित्य-रत्न द्वितीय खण्ड की सहायक पुस्तकें

साहित्य रत्न निबन्ध माला—	४॥)
हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक इतिहास—	१॥)
संस्कृत पथ प्रदर्शक गाइड—	१॥)
साहित्य-रत्न गाइड—सरोज	८)
साहित्य-रत्न गाइड—गौतम	१०)
साहित्य-रत्न दिग्दर्शन—कमलेश	६)
उत्तमा प्रश्नोत्तर सं० २००२ से ११ तक—'कमलेश'	१५)
तुलसी का विवेचनात्मक अध्ययन—दशरथ झा	२)
सूरदास उनका साहित्य—शान्तिस्वरूप गौड़	३)
परीक्षार्थी प्रबोध भाग १, २, ३, ४ टीक	३)
साहित्यालोचन सिद्धान्त—	१)
भाषा विज्ञान गाइड—	२॥)
सूर एक सरल अध्ययन—गौतम	३)
प्रसादजी की कला—गुलाबराय	३)
फाइल १६५२-५३ (साहित्य सन्देश)	५)

नोट—ऊपर लिखी पुस्तकों का मूल्य कम-बढ़ भी हो सकता है। पुस्तकों का वही मूल्य लिया जायेगा जो पुस्तकों पर छपा होगा। यदि आप आर्डर के साथ २) का मनीआर्डर भेज देंगे तो पुस्तकें भेजने में हमें सरलता होगी।

परीक्षार्थी प्रबोध

हिन्दी के परीक्षार्थियों के लिए परीक्षोपयोगी अपूर्व पुस्तक

परीक्षार्थी प्रबोध भाग १, २, ३, ४ हिन्दी साहित्य के परीक्षार्थियों की सामयिक सहायता के लिए तैयार की गयी है मध्यमा, उत्तमा, विदुषी, सरस्वती, भूषण-प्रभाकर, साहित्य-भूषण, साहित्यालङ्कार, इण्टर, बी० ए० तथा एम० ए० आदि परीक्षाओं के लिए चुने हुए उपयोगी विषयों पर इसमें अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री दी गयी है। पृष्ठ सं० प्रत्येक लगभग ३०० और मूल्य प्रत्येक ३)

विषय सूची मुफ्त मँगायें।

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को पौने मूल्य में

यह पुस्तक दी जायगी। इस रियायत के अधिकारी वही ग्राहक माने जायेंगे जो इस समय ग्राहक हैं अथवा ४) वार्षिक शुल्क भेजकर ग्राहक बन जायेंगे।

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा।

साहित्य-रत्न प्रथम और द्वितीय खण्ड की 'साहित्य-सन्देश' की परीक्षोपयोगी फाइलें हमसे मँगायें; मू० प्रत्येक १॥)

—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १६] आगरा—अप्रैल, १९५५ [अङ्क १०

हमारी विचार-धारा

सरकार द्वारा हिन्दी के कार्य में प्रगति—

यद्यपि हिन्दी के विषय में भारत-सरकार का कार्य सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता, तथापि सरकार की ओर से हिन्दी में 'विश्वकोष-निर्माण' का कार्य तेजी से आगे बढ़ रहा है। हिन्दी-विश्वकोष की प्रथम जिल्द छपने के लिये तैयार हो चुकी है। विश्व-इतिहास व भारतीय-इतिहास भी तैयार किये जा रहे हैं। हिन्दी के वे शब्द जो आसामिया, कन्नड़, तमिल व उड़िया में पाये जाते हैं, एकत्रित कर लिये गये हैं। दूसरे कोष में बँगला, गुजराती, काश्मीरी, मलयालम, मराठी व तेलगू के ऐसे ही शब्दों को एकत्र किया जा रहा है। एक संक्षिप्त कोष १९५५ के अन्त तक 'हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी' की ओर से प्रकाशित हो जायगा। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रामाणिक हिन्दी शब्द-कोष तैयार कराया जा रहा है। कालेजों में प्रयोग के लिये विस्तृत शब्द सूचियाँ तैयार हो रही हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी की उन्नति के लिये केन्द्र की ओर से अनेक पुरस्कार दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में निवेदन यह है कि यदि एक योजना के अनुसार लेखकों से विभिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखवाई जावें तो अधिक लाभ होगा। क्योंकि अभी तो पारितोषिक उन पुस्तकों पर भी दे दिया जाता है जो इस योग्य नहीं होतीं और कभी-कभी पारितोषिक देने के लिये अभीष्ट विषय पर पुस्तकें मिलती भी नहीं। संस्थाओं से अलग-अलग जो कार्य कराया जा रहा है उसके चयन में भी अधिक विवेक के प्रयोग की आवश्यकता है। उदाहरण स्वरूप 'जामिया मिलिया' की ओर से हिन्दी का बाल-साहित्य तैयार हो रहा है। 'जामिया मिलिया' से यदि उर्दू के काव्यों को देवनागरी लिपि में प्रकाशित करने का काम कराया जाता तो अधिक अच्छा होता। इसी प्रकार 'हिन्दुस्तानी कल्चरल सोसाइटी' को ६०००० रुपये देकर उसे हिन्दी-कोष बनाने का कार्य सौंप दिया गया, परन्तु सरकार द्वारा नियुक्त समिति की रिपोर्ट ने उक्त संस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कोष-निर्माण के अयोग्य बताया है परन्तु सरकार को इसकी चिन्ता नहीं।

शिक्षा-मन्त्रालय की यह दशा है कि अहिन्दी प्रान्तों के सदस्यों ने अपने संक्षिप्त नामों को हिन्दी की परम्परा के अनुसार लिखने के लिये जब आवेदन-पत्र दिया तो शिक्षा-मन्त्रालय के एक सचिव श्रीमाली महोदय ने अँगरेजी परम्परा को ही उचित बताया। उनकी दृष्टि से का० लू० श्रीमाली उचित नहीं। के० एल० श्रीमाली ही उचित है। शिक्षा-मन्त्रालय हिन्दी विकास का कार्य हिन्दी न जानने वालों से कराता है। स्वयं शिक्षा-मन्त्रालय के मन्त्री व सचिव हिन्दी नहीं जानते।

श्री भालचन्द्र आप्टे का भाषण—

पूर्वार्द्ध मण्डल प्रथम हिन्दी महासभा विजयनगरम् के हिन्दी अध्यापक सम्मेलन में श्री 'आप्टे' महोदय ने हिन्दी व प्रादेशिक भाषाओं की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं—

(१) हिन्दी केन्द्रीय सरकार, संसद, न्यायालय व अन्तर-राज्यीय व्यवहार की भाषा रहे।

(२) प्रत्येक राज्य की सरकार, विधान सभाओं व न्यायालयों की भाषा प्रादेशिक हो।

(३) प्रारम्भ से लेकर विश्व-विद्यालय के स्तर तक शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा रहे।

(४) हिन्दी एक अनिवार्य विषय के रूप में माध्यमिक व विश्वविद्यालय-शिक्षा में पढ़ाई जाय।

इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन यह है कि हिन्दी भाषा-भाषी व हितैषी उक्त सुझावों को अक्षरशः मानने को प्रस्तुत हैं। क्योंकि हिन्दी-हितैषी यह नहीं चाहते कि प्रादेशिक भाषाओं का विकास समाप्त हो जाय। यदि दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा की यह नीति रही है कि हिन्दी प्रादेशिक भाषाओं का स्थान न ले तो हिन्दी के पक्षपोषकों ने सदा ही अन्य प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति में कभी बाधा नहीं पहुँचाई, न आगे वैसा करने का विचार है। अतः अहिन्दी भाषा-भाषियों को प्रत्येक प्रकार की आशङ्का को हृदय से निकाल देना चाहिए।

हिन्दी में शोध-कार्य—

जहाँ सरकार की ओर से 'हिन्दी' के प्रचार, प्रसार तथा उसे शिक्षा व सरकारी कार्यों के माध्यम बनाने के यत्किञ्चित प्रयत्न चल रहे हैं वहाँ विश्वविद्यालयों से पी० एच-डी०, डी० फिल्०, तथा डी० लिट्० आदि उपाधियों की प्राप्ति के लिये खोजपूर्ण निबन्धों के लिखने की परम्परा भी चल रही है। प्रयाग, काशी, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, नागपुर आदि कई विश्वविद्यालयों से अनेक खोजपूर्ण निबन्ध (थीसिस) प्रकाशित हुये हैं, कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी अब हिन्दी में खोज पूर्ण निबन्धों पर उपाधियाँ दी जायँगी, वहाँ कार्य भी प्रारम्भ हो गया है। किन्तु इस सम्बन्ध में अभी कई बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है:—

विषय-चयन—

'विषय-चयन' करने के लिये प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक 'शोध-समिति' के निर्माण की आवश्यकता है। ये अलग अलग शोध समितियाँ एक 'अन्तर्विश्वविद्यालय-शोध समिति' से सम्बन्धित होनी चाहिये। क्योंकि प्रायः एक ही विषय पर एक ही समय में और कभी आगे पीछे दो या अधिक विश्वविद्यालयों में कार्य होता है अतः या तो शोधित-सामग्री की पुनरावृत्ति होती है या प्रबन्धों में असम्बद्ध-सामग्री की भरमार हो जाती है। अतः शोध-समितियों के द्वारा इस प्रकार का प्रयत्न होना चाहिये कि चयन किये गये विषयों की पुनरावृत्ति न होने पाये। साथ ही शोध सम्बन्धी विषयों के चयन में विद्यार्थियों की ये समितियाँ नये-नये विषयों का सुझाव दे सकती हैं। तात्पर्य यह है कि सारे देश में शोध-कार्य एक योजनाबद्ध रूप से होना चाहिये। तभी पर्याप्त लाभ हो सकता है। आज स्थिति यह है कि विद्यार्थी विषयों के चयन के लिये इधर उधर भटकता है, या किसी भी विषय को लेकर उसे स्वीकार कराने का प्रयत्न करता है। यह प्रवृत्ति श्रेयस्कर नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध-कार्य—

अब तक जो कुछ भी शोध-कार्य हुआ है, वह नगण्य तो नहीं परन्तु अधिक सन्तोषजनक भी नहीं है। सामान्यतः विद्यार्थी ऐसे विषय को चुनने का प्रयत्न करते हैं जिन पर सरलता से उपाधि प्राप्त हो जाये। यदि शोध कार्य में भी साधारण परीक्षाओं की तरह किसी प्रकार उत्तीर्ण होने की प्रवृत्ति बनी रही तो यह उपाधि भी महत्त्वहीन हो जायगी। अतः ऐसे क्षेत्रों में कार्य होना चाहिये जिन पर कार्य नहीं हुआ है। हिन्दी भाषा की पृष्ठभूमि में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंशों की सशक्त परम्परा है। अभी हम अपभ्रंश साहित्य पर कितना कार्य कर सके हैं? हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, धार्मिक व साहित्यिक मान्यताओं तथा सिद्धान्तों का जो रूप हमें दिखाई पड़ता है वह अपने पीछे शताब्दियों की विकास-परम्परा को छिपाये हुये है। कितने विद्यार्थी इस ओर सोचते हैं? अतः हिन्दी साहित्य केवल वीरगाथा काल, भक्ति काल, रीतिकाल व आधुनिक काल तक सीमित न होकर आदिम काल से लेकर दसवीं शताब्दी तक विकसित अनेक प्रवृत्तियों को अपने गर्भ में छिपाये हुये है। अतः हिन्दी में शोध के लिए अभी इतना क्षेत्र होने पर भी विषयों की पुनरावृत्ति क्यों होती है? केवल साहित्य ही नहीं, भाषा के ऊपर कितना कार्य हो रहा है? प्रायः नहीं के बराबर। हिन्दी में भाषा-विज्ञान पर कार्य करने की न सुविधा है न उत्साह, न वातावरण। अतः अनेक बोलियों व भाषाओं का अध्ययन अभी तक आरम्भ ही नहीं हुआ है।

निर्देशक—

शोध-कार्य में दूसरी कठिनाई निर्देशक की है। प्रायः एक व्यक्ति के नीचे विभिन्न विषयों पर कई विद्यार्थी कार्य करते हैं। प्रायः निर्देशक को एक ऐसा सर्वज्ञ व्यक्ति मान लिया जाता है कि वह प्रत्येक विषय का पथ-प्रदर्शन साधिकार कर सकता है, यह असम्भव है। अतः होना तो यह चाहिए कि विषय-चयन करने के पश्चात् विश्वविद्यालय निर्देशक की नियुक्ति करे जो उस विषय का अधिकारी विद्वान हो। यदि ऐसा नहीं होता तो शोध-कार्य एक दिखावा बन कर रह जायगा। इस सम्बन्ध में इतना निवेदन और है कि विश्वविद्यालय व कालेजों से बाहर हिन्दी के अधिकारी विद्वानों व लेखकों को भी शोध-कार्य के लिए निर्देशक बनाया जाना चाहिए। अभी बहुत कम लोगों को यह सुविधा मिली है।

थीसिस एक विडम्बना—

अब तक के शोध-कार्य में इतिहास प्रस्तुत करने की—तथ्य संग्रह करने की भावना अधिक रही है। तथ्य-संग्रह के उत्साह में विषय से सामग्री की सम्बद्धता व असम्बद्धता का भी ध्यान नहीं रक्खा जाता। अध्ययन का प्रदर्शन करने के लिए जहाँ जो कुछ मिलता है उससे थीसिस के फुटनोटों को भर देने की प्रवृत्ति अधिक बलवती होती जा रही है। ऐसे विद्यार्थी के लिए ऋग्वेद से लेकर आधुनिकतम सभी साहित्य हस्तामलकवत् प्रतीत होता है। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए थीसिस में उद्धरण कम दिए जाते हैं। यह दिखाने के लिए उद्धरण अधिक दिए जाते हैं कि हमने अमुक अमुक ग्रन्थ पढ़ लिए हैं चाहे उनके 'उद्धरण' किसी अन्य ग्रन्थ से ही लिए गये हों। यह प्रवृत्ति मिथ्या अहङ्कार व झूठे ज्ञान को बढ़ावा देती है। अतः शोध-कार्य अधिक सीमित क्षेत्र में, गहराई के साथ होना चाहिए, अन्यथा उद्धरणों के अम्बार लगाना व्यर्थ है। मौलिकता तो आज के प्रबन्धों में बहुत कम देखने को मिलती है। जहाँ न तो अज्ञात सामग्री को प्रकाश में लाया जाता है, न ज्ञात सामग्री के बल पर कोई नई बात कही जाती है। तब उसे 'शोध' क्यों कहा जाता है और यदि सब कुछ 'शोध' है तो प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक पर उपाधि क्यों नहीं दी जाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद—

'हिन्दी वाङ्मय' में श्री कन्हैयालाल सहल ने एक बड़ी अच्छी बात कही कि हिन्दी में संस्कृत की पुस्तकों के सशक्त अनुवादों की बहुत अधिक आवश्यकता है। हर्ष का विषय यह है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में डा० नगेन्द्र के प्रयत्न से तथा श्री आचार्य विश्वेश्वरजी के परिश्रम से 'ध्वन्यालोक' व काव्यालंकार 'सूत्र वृत्ति' के अनुवाद प्रकाशित हुये हैं परन्तु यह तो आरम्भ मात्र है, अभी संस्कृत का अमूल्य ग्रन्थ 'अभिनव-भारती', हिन्दी के विद्यार्थी के लिये सर्वथा अपरिचित बना हुआ है। रसगंगाधर, काव्य प्रकाश के भी समर्थ अनुवाद अभी तक नहीं हो पाये। 'अभिनव भारती' की प्रतियाँ कलकत्ता की नेशनल लाइब्रेरी तथा मद्रास विश्वविद्यालय में विद्यमान हैं। कम से कम उसका प्रकाशन ही यदि सम्भव हो जाता तो साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र में चल रहे अनेक विवादों की समाप्ति हो जाती।

इसी प्रकार 'काव्य प्रकाश' से सम्बन्धित अनेक व्याख्या-ग्रन्थ जो 'टीका' कहलाकर भी मौलिक ग्रन्थों से कम महत्त्वपूर्ण नहींहैं, प्रकाशित ही नहीं हुये, उनके अनुवाद की बात तो दूर है। प्रकाशकों ने परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये सरल से सरल पुस्तकें प्रकाशित करने की प्रतिज्ञा करली है यह प्रवृत्ति हिन्दी के लिये हानिकर है। आशा है अधिकारी विद्वान व प्रकाशक इधर ध्यान देंगे।

छत्तीसगढ़ी शोध-संस्थान—

रायपुर मध्य प्रदेश में छत्तीसगढ़ी शोध-संस्थान स्थापित हो गया है। 'छत्तीसगढ़ी' नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित हुआ है। 'संस्थान' मूलतः शोध कार्य करेगा, यथा—छत्तीसगढ़ी भाषा में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज व प्रकाशन, छत्तीसगढ़ी का प्रामाणिक इतिहास, शब्दकोष, लोक-साहित्य का संग्रह आदि कार्य करना। हम इस शोध संस्थान का स्वागत करते हैं तथा प्रत्येक जन-भाषा में ऐसे शोध-संस्थानों तथा प्रतिनिधि मासिक पत्रिकाओं की आवश्यकता अनुभव करते हैं।

अन्य मन्त्रालय और हिन्दी—

विभिन्न मन्त्रालयों के आधीन विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न विषयों के कोश बनाये जा रहे हैं। इनमें अब तक २७००० शब्द निर्मित कर लिए गए हैं। अहिन्दी भाषा-भाषियों को हिन्दी सिखाई जा रही है। शिक्षा-मन्त्रालय ने २३००० शब्द निर्मित किए हैं जिनमें १०००० प्रकाशित हो चुके हैं। विधि मन्त्रालय में ८०० विधियों में २२० का हिन्दी अनुवाद हो चुका है। 'परेड' में आदेशात्मक शब्दों के लिए ३०० शब्दों का अब तक अनुवाद हो चुका है। उधर सूचना-विभाग में अँगरेज़ी के प्रति अनुचित पक्षपात की सदन में इस बार कड़ी आलोचना हुई है।

उत्तर-प्रदेशीय सरकार और हिन्दी—

हिन्दी प्रचार के सम्बन्ध में उत्तर-प्रदेशीय सरकार ने हिन्दी की प्रामाणिक पुस्तकें लिखवाने के लिए एक लाख रुपये बजट में रख लिए हैं। गत वर्ष १९५४-५५ में एक लाख दो हज़ार रुपये के पुरस्कार दिए गए हैं। सूची बहुत बड़ी होने के कारण हम उसे यहाँ नहीं दे रहे हैं।

कालिदास का स्मारक—

खेद का विषय है कि राज्य-सभा में कालिदास-स्मारक विषयक प्रस्ताव वापस होगया। डा० रघुवीर ने ठीक ही कहा कि जो लोग कालिदास को जानते ही नहीं हैं उनसे इस दिशा में नेतृत्व की आशा करना बेकार है। जो सरकार अब तक 'हिन्दी टाइप राइटर तालिका पट्ट' का निर्माण नहीं कर सकी उससे हिन्दी का कितना हित और कितने समय में होगा यह स्पष्ट है।

लेनिनग्राड-पुस्तकालय में पाण्डु लिपियाँ—

लेनिनग्राड के 'साल्तीकोव श्चेड्रिन' राज्य पुस्तकालय में अनेक भारतीय पाण्डु-लिपियाँ विद्यमान हैं। ये संस्कृत व हिन्दी में हैं। आजकल इनकी सूची बनाई जा रही है। इनमें पाँच पाण्डु लिपियाँ अस्त्राखान शहर में लिखी गई थीं। इनसे भारतीय व रूसी सम्बन्धों पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्ति-विचार प्रक्रिया में रसानुभूति

प्रो० राजनारायण मिश्र एम० ए०, साहित्य-रत्न

समीक्षा के वे प्राचीन 'मान' जो हमारे साहित्य-शास्त्र की स्थायी निधि हैं, जिन पर शताब्दियों तक विवेचन–अनुशीलन होता रहा है, समय और समाज की परिवर्तित गति में 'ध्रुव' सत्य के रूप में गृहीत हैं। वृत्तियों एवं रीतियों के समुचित ज्ञान के बिना काव्य और नाटक के प्रेरक तत्त्व समझे नहीं जा सकते; उनकी भावभूमि पर उतरा नहीं जा सकता। अतः ऐसी परिस्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि वृत्ति, रीति और रस में सामञ्जस्य स्थापित किया जाय। आये दिन कुछ नवोदित काव्य-मनीषी पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों के 'मानों' पर भारतीय काव्य तथा नाटक के तत्त्वों को भी कसने का प्रयास करते हैं, जो व्यापक दृष्टिकोण न हो कर संकुचित कुण्ठाओं की अभिव्यक्ति मात्र रह जाता है।

वृत्तियों का रस और रीति से सम्बन्ध जोड़ने के पूर्व यह आवश्यक है कि वृत्ति के 'पारिभाषिक' पक्ष पर विचार किया जाय। 'वृत्ति' शब्द वृत्-वर्तने धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय के संयोग से बना है, जिसका अर्थ है— पुरुषार्थ का साधक व्यापार; वह व्यापार जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति में सहायक हो। अभिनव गुप्त ने 'वृत्ति' को 'साधक व्यापार' कहा है। अभिनव भारती में 'वृत्ति' को 'काव्य तथा नाट्य की माता' कहा गया है। ‡ किन्तु काव्य तक ही इसका क्षेत्र परिमित नहीं है। 'समस्त संसार ही वृत्तियों से व्याप्त है।' × आचार्य भरत मुनि 'रसोचित चेष्टा को ही वृत्ति स्वीकार करते हैं'। 'तथा वृत्तयः काव्य मातरः इति यदुक्तं मुनिना तत्र रसोचित एव चेष्टा विशेषो-वृत्तिः।' लोचन पृष्ठ २३२, ३ उद्योत। आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है—'व्यवहारोहि वृत्तिरित्युच्यते' व्यवहार ही अर्थात् ढङ्ग ही वृत्ति कहलाती है। इसके अर्थ-स्वभाव, प्रकृति, व्यवहार आदि भी होते हैं। जिस प्रकार मानव की तथा अन्य पशुओं की स्वभावज वृत्तियाँ हुआ करती हैं, उसी प्रकार काव्य की भी वृत्ति होती है।

इस प्रकार वृत्ति के पारिभाषिक पक्ष पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है तथा रसानुभूति में इसका सहयोग नितान्त आवश्यक है।

वृत्ति और रस—वृत्तियों से दर्शकों तथा पाठकों के हृदय में रस तथा भाव का संचार होता है। इस सम्बन्ध में भरत मुनि का प्रयास उल्लेखनीय है। इन्होंने इनका सम्बन्ध भिन्न-भिन्न रसों से जोड़ा है, क्योंकि अभिनय तभी सफल होता है जब उससे तद्-तद् विषयक रस की भी सृष्टि होती हो। कैशिकी वृत्ति में शृङ्गार तथा हास्य, सात्वती में वीर, रौद्र, अद्भुत; आरभटी में भयानक, वीभत्स, रौद्र; और भारती में करुण तथा अद्भुत रसों का सन्निवेश होता है। कुछ नाट्यकारों ने कुछ परिवर्तन के साथ वृत्ति और रस में सामञ्जस्य स्थापित किया है। यथा—

'शृङ्गारे चैव हास्ये च वृत्तिः स्याद् कैशिकीतिसा।
सात्त्वती नाम साज्ञेया, वीररौद्राद्भुताश्रया ॥६५॥
भयानके च वीभत्से, रौद्रे चारभटी भवेत्।
भारती चापि विज्ञेया, करुणाद्भुत संश्रया ॥६६॥

—नाट्य शास्त्र २२

उपर्युक्त विवेचन में सात्त्वती में रौद्र, अद्भुत; आरभटी में रौद्र तथा भारती में अद्भुत रसों की पुनरावृत्ति हो गई है। यहाँ इसका तात्पर्य एक के प्रधान

‡ तस्माद् व्यापारः पुमर्थ साधको वृत्तिः। स च सर्वत्र वर्ण्यते इत्यतो वृत्तिः काव्यस्य मातृका इति। वृत्तयो नाट्य मातरः। —अभिनव भारती।

× आस्तां काव्यार्थ, सर्वोहि संसारः वृत्तिचतुष्केन व्याप्तः। —अभिनव भारती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा दूसरे के उपप्रधान होने से है। रुद्रट ने कहा है—वृत्तियों का प्रयोग औचित्य के साथ करना चाहिए।

वृत्ति और रीति—अलङ्कार शास्त्र में वृत्ति के अन्तर्गत काव्य-वृत्ति भी आती है। अभिधा, लक्षणा, तात्पर्य तथा व्यञ्जना के लिए भी काव्य-वृत्ति का प्रयोग होता है। इन्हें 'शब्द-वृत्तियाँ' कहते हैं। किन्तु कालान्तर में नाट्य वृत्ति को छोड़ कर शेष सब वृत्तियाँ भुला दी गईं। शब्द-वृत्ति में उपनागरिका, परुषा और कोमला मुख्य रूप से आती हैं। किन्तु वामन में इनका अन्तर्भाव हो गया है। ‡ मम्मटाचार्य ने वृत्तियों को रीतियों के साथ अभिन्न मान कर उन दोनों को मिला दिया। अपने नाट्य शास्त्र में भरत मुनि ने इन वृत्तियों की उत्पत्ति चार वेदों से मानी है। यथा—

'ऋग्वेदाद् भारती वृत्तिर्यजुर्वेदात्तु सात्वती।
कैशिकी सामवेदाच्च, शेषा चाथर्वणात्तथा॥
—नाट्यशास्त्र २२।१४

इस प्रकार वृत्तियों की कल्पना वेदों में भी अन्तर्भुक्त है। ११वीं शती में जब से आचार्य मम्मट ने वृत्तियों का समन्वय रीतियों में कर दिया तब से स्वतन्त्र रूप से इन पर विचार नहीं किया गया। ये साहित्य-शास्त्र के उपेक्षित अङ्ग हो गये। पण्डितराज जगन्नाथ जैसे उद्भट आलोचक ने वैदर्भी को रीति के साथ वृत्ति के नाम से अभिहित किया है। आनन्दवर्धनाचार्य और उनके टीकाकार अभिनवगुप्त ने उपनागरिका आदि वृत्तियों को माधुर्यादि गुणों से भिन्न नहीं माना है। वे वृत्ति को रीति का पर्याय मात्र मानते हैं।

काव्य वृत्तियों में समन्वय भी हुआ है। कुछ समय तक तो नाट्य-वृत्तियों को छोड़ कर शेष पर कुछ भी विचार नहीं हो सका। किन्तु अलङ्कार-शास्त्र में काव्य-वृत्तियों का दो रूपों में प्रयोग हुआ है १—अनुप्रास जाति के रूप में, २—समास जाति के रूप में। मम्मटाचार्य ने वैदर्भी, गौड़ी तथा पांचाली रीतियों में वृत्तियों को मिला दिया। अतः मम्मट के पश्चात् अनुप्रास जाति और समास जाति के रूपों में ही काव्य-वृत्तियाँ गृहीत हो सकीं। आचार्य रुद्रट के अनुसार वृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं। १—असमस्ता, २—समस्ता। समस्ता वृत्ति तीन प्रकार की होती है। १—पांचाली, जिसमें केवल दो-तीन समास-युक्त पद हों, २—लाटीया जिसमें पाँच या सात समास-युक्त पद हों। ३—गौड़ीया—जिसमें आद्यान्त समास हों। रुद्रट ने अनुप्रास-वृत्तियों में तीन के स्थान पर पाँच वृत्तियाँ मानी हैं। १—मधुरा, २—प्रौढ़ा, ३—परुषा, ४—ललिता, ५—भद्रा। किसी-किसी ने आठ वृत्तियों तक का उल्लेख किया है। १—मधुरा, २—परुषा, ३—कोमला, ४—ओजस्विनी, ५—निपुणा, ६—ललिता, ७—गम्भीरा, ८—सामान्या।

वास्तव में आये दिन काव्य-वृत्तियाँ इन्हीं को माना जाता है क्योंकि इनका उपयोग अलङ्कार शास्त्र के क्षेत्र में किया गया है जिससे रसानुभूति के द्वारा औचित्य की सीमा तक पहुँच जाता है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने इनको ध्वनि के अन्तर्गत ही समाविष्ट किया है। किन्तु वे यह भी मानते हैं कि शब्द-वृत्ति, अर्थ-वृत्ति, रीति आदि सब रसों पर ही निर्भर हैं। इस स्थिति में विचार-धारा को रसानुगुण बनाने के लिए साधन विशेष के रूप में वृत्तियाँ भी आती हैं। इस सम्प्रदाय से सम्बद्ध आचार्यों ने भले ही साध्य माना हो।

इन वृत्तियों का हिन्दी साहित्य में कहाँ तक विचार-विमर्श हुआ है, इसे भी देख लेना अत्यन्त आवश्यक है। सैद्धान्तिक विवेचन के रूप में इन पर यत्किंचित प्रकाश अवश्य डाला गया है, पर लक्षणों में नहीं। संस्कृत के आचार्य गद्य में टीकायें और वृत्तियाँ भी लिखते थे। किन्तु हिन्दी में रसानुगुण वृत्ति का प्रयोग अधिक हुआ है। इससे यह पता चलता है कि वृत्तियों को गुणों का पर्याय मान लिया गया।

‡ एतास्तिस्रो वृत्तयः वामनादीनां मते वैदर्भी गौड़ी पाञ्चाल्याख्या रीतियो मताः।
—काव्य प्रकाश ६।४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार वृत्ति, रस और रीति के तत्त्वों का निरूपण करते हुये उनके सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। वास्तव में वृत्तियों के समुचित अध्ययन से हमारे आलोचनात्मक दृष्टि-पथ का विस्तार होता है। यों तो वृत्तियों का उपयोग हमारे नित्य-प्रति के साहित्यिक जीवन में होता रहता है। किन्तु उसके सम्यक् ज्ञान से साहित्य में शिष्टता आती है, भाव-गाम्भीर्य की टूटती हुई श्रृङ्खला पुन जुड़ने लगती है। वृत्तियों का रीति और रस में अन्तर्भुक्त हो जाना वाङ्मय की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसकी उत्पत्ति तथा वर्गीकरण का भी आधार साहित्य-विकास की दिशा में एक सशक्त प्रयोग है जिससे हम वञ्चित नहीं रह सकते। इसकी उत्पत्ति से हमें शैव और वैष्णव विचार-धाराओं के क्रमिक विकास का तारतम्य मालूम होता है। जिस पर फिर कभी विचार किया जायगा। 'वृत्तियाँ' नाटकीय अङ्ग हैं, इनसे काव्य को भी रमणीयता प्राप्त होती है।

कई साम्प्रदायिक आचार्यों ने विभिन्न रूपों को काव्यात्मा मान कर अपने-अपने सम्प्रदायों का विकास किया है। यथा—रस, अलङ्कार, रीति, वृत्ति, ध्वनि तथा वक्रोक्ति आदि। किन्तु काव्य न तो अन्त तक रसमय ही होता है, न ध्वनिमय, न अलङ्कारमय, न वक्रोक्तिमय ही। ये सब काव्य को सरस, सुन्दर एवं रमणीय बनाने के साधन विशेष हैं। वास्तव में औचित्य सम्प्रदाय ही सर्वमान्य है जिसमें सभी तत्त्वों का यथा स्थान यथोचित प्रयोग होना चाहिए। क्षेमेन्द्र ने औचित्य को ही रस सिद्ध काव्य का प्राण माना है। 'औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।' ऐसी स्थिति में यदि वृत्ति-विचार रसानुभूति के रूप में हो तो उससे औचित्य की चरम सीमा तक पहुँचा जा सकता है जो सत्काव्य का एक मात्र इष्ट है। अतः काव्य में सभी अङ्गों और तत्त्वों का उचित सन्निवेश होना आवश्यक है।

(पृष्ठ २७२ का शेषांश)

जिस संयम प्रधान मार्ग का सृजन किया था, सूर और तुलसी ने अपने इष्ट देवता के देव मन्दिरों की सिद्ध यात्रा के लिए उसी से आगे प्रस्थान किया।

इसी युग में भारतीय विचारधारा के साथ आत्मानुभव पर आश्रित सूफी विचारधारा का भी सम्मिलन हो रहा था। उसने हिन्दी के प्राचीन साहित्य में एक विशेष धारा को जन्म दिया। सूफी विचारधारा किस प्रकार भारतीय रँग में रँग गई इसका पूर्ण परिचय जायसी से प्राप्त होता है। अपने से पूर्वगत योग, कुण्डली साधन, षट्चक्र, निर्गुण भक्ति आदि समस्त तत्त्वों को लेकर उन्हें प्रेम साधना के अन्तर्गत सजाकर जायसी ने एक नये ही दर्शन को जन्म दिया जिसे उन्होंने प्रेमपन्थ कहा है। उनकी पद्मावत प्रेम कथा है। इस पद्धति में स्त्री और पुरुष के प्राचीन प्रतीकों को अपनाते हुए उनमें नया अध्यात्म अर्थ लाने का प्रयत्न किया गया है। आत्मानुभव में ही उसकी सफलता दिखाई गई है। यह प्रेम संयम से उत्कट बनता है, विलास से नहीं। जायसी का प्रेम विश्व की चैतन्य अमृत ज्योति के लिए जीव की ऐसी आकुलता है जो तत्त्व की प्राप्ति के बिना किसी प्रकार शान्त नहीं होती। इस पुस्तक में जायसी के प्रतिबिम्बवाद का विवेचन बहुत ही सुन्दर हुआ है। यह स्मरण रखना चाहिये कि पद्मावत के रूपक की कुञ्जी 'तन चित उर मन राजा कीन्हा' इत्यादि छन्द पद्मावत की किसी भी प्राचीन प्रति में नहीं है। वह जायसी कृत नहीं है। पद्मावत की कई हस्तलिखित प्रतियाँ देखी हैं जो सूफी सम्प्रदाय के अनुयायियों ने अपने पढ़ने के लिये लिखी थीं। वैसे ही किसी श्रद्धालु कवि ने यह दोहा बनाकर पद्मावत के अन्त में किसी समय जोड़ दिया।

श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का यह अध्ययन स्वागत के योग्य है। लेखक ने कठिन विषय लेकर उपलब्ध प्रमाण सामग्री का सपरिश्रम अध्ययन और विश्लेषण किया है एवं स्पष्ट सरल शैली में तथ्यों का निरूपण करते हुये अपने निष्कर्षों को रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

[उपर्युक्त शीर्षक से श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हाल ही में लिखा है जिसकी विशद और सम्यक आलोचना डा० अग्रवाल ने ग्रन्थ की भूमिका के रूप में की है। ग्रन्थ और भूमिका दोनों ही की उपयोगिता और महत्ता समझ कर हम उसे यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक]

हिन्दी साहित्य का दीर्घकालीन इतिहास भाषा, काव्यरूप, काव्यरस और भावों की दृष्टि से अत्यन्त गम्भीर है। इन चारों क्षेत्रों में संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा और साहित्य का पुष्कल उत्तराधिकार हिन्दी को प्राप्त हुआ है। भाषा के क्षेत्र में, काव्यरूपों के क्षेत्र में, रस के क्षेत्र में और भावों या दार्शनिक विचारों के क्षेत्र में ज्यों-ज्यों हिन्दी साहित्य का उत्तरोत्तर अध्ययन किया जायगा त्यों-त्यों विद्वज्जन उसके गम्भीरतर स्तरों में बैठकर उसकी प्राचीन परम्पराओं का उद्घाटन करने में समर्थ होंगे। जिस प्रकार पृथिवी के गर्भ में छिपी हुई सुवर्णादि धातुओं को खोजने वाला व्यक्ति भीतर पहुँच कर चारों ओर छिटकती हुई धातु गर्भित सींवनों को उधेड़ता है और उस संस्थान से परिचित हो जाता है जिससे उस खान का रूप निर्मित हुआ है, उसी प्रकार की कुछ स्थिति साहित्य में गर्भित विचारों के इतिहास की भी है। अभी तो हम विशाल हिन्दी साहित्य के देहली द्वार में ही प्रविष्ट हुए हैं। उसके बाह्य तोरण पर जो आशा से भरा हुआ स्वागत सन्देश है उसने हमें अपनी ओर आकृष्ट किया है। अभी तो ऊपर कहे हुए चतुर्विध अध्ययन का हम श्री गणेश ही कर पाये हैं। भाषा के क्षेत्र में हिन्दी की अति विस्तृत शब्दावली हमारी ऐतिहासिक छानबीन की बाट जोह रही है। कौन शब्द किस युग में और किस शती में पहली बार हिन्दी में आया, कहाँ से उसका उद्गम हुआ, किस प्रकार के ध्वनि परिवर्तन से वह वर्तमान साँचे में ढला और युगानुक्रम से किस प्रकार उसके अर्थों का विकास हुआ, इस प्रकार की ऊहापोह प्रत्येक शब्द के लिए अपनी भाषा में करनी होगी। उदाहरण के लिए, एक नेत्र शब्द किस प्रकार वैदिक काल से चल कर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की पीढ़ियाँ पार करता हुआ हम तक आ पहुँचा है, किस प्रकार नेत्र और नेत के रूप में आँख, रस्सी, रेशमी वस्त्र और धुआँ निकलने का छिद्र—इन भिन्न अर्थों में उसका विकास हुआ है, इन प्रश्नों का उत्तर हमें साहित्य से ही देना होगा और ऐसा करते हुए हिन्दी के शब्दों की प्राचीन परम्परा को अपभ्रंश, प्राकृत, संस्कृत और वैदिक भाषा तक ढूँढ़ना होगा। साथ ही हिन्दी भाषा के व्याकरण का जो ठाठ है उसकी छानबीन के लिए उस गङ्गोत्री तक जाना होगा जहाँ से हिन्दी की धाराओं का उद्गम हुआ है। इसी प्रकार हिन्दी के प्रबन्ध काव्य, खण्ड काव्य, मुक्तक, सतसई, बावनी, सबद, साखी, रमैनी, चूनड़ी, फाग, रास आदि अनेक काव्यरूपों की परम्परा के इतिहास को टटोलना होगा। इस प्रकार के सैकड़ों काव्यरूप मध्यकालीन हिन्दी में विद्यमान हैं। अकेले रास ग्रन्थों की संख्या कई सौ है। इसीसे सम्बन्धित प्रश्न हिन्दी के छन्दः शास्त्र के विकास का है। हिन्दी के शब्दों का, उसके काव्यरूपों और छन्दों का एवं अन्तर्गर्भित रसों के इतिहास का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, रोचक, विस्तृत और आवश्यक है।

किन्तु 'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि' के चतुःसूत्री कार्यक्रम* में सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग वह है जो भावों या अर्थों से सम्बन्ध रखता है। 'अर्थसंघानाम्' कहकर महाकवि ने उसी की ओर संकेत किया है। शब्द स्थूल और बाह्य है, अर्थ सूक्ष्म और आन्तरिक है। अर्थ अमृत और अनन्त है। वह विचारों के रूप में प्रकट होता है। अर्थ की शक्ति से ही शब्द को शक्ति प्राप्त होती है। शब्द तो अर्थों के प्रतीक मात्र

* वर्णानाम् भाषा और व्याकरण। अर्थसंघानाम् दार्शनिक विचार या भाव। रसानाम् काव्य के रस गुण, अलङ्कार आदि। छन्दसाम् काव्य के विविध रूप और छन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अर्थसङ्घ या अर्थों के समूह प्रत्येक साहित्य की सच्ची सम्पत्ति हैं। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अर्थों या विचारों से ही सञ्चालित होता है। अर्थों का साक्षात्कार ही दर्शन है। जिस युग में जिस विचार का प्रादुर्भाव होता है वही उस युग का दर्शन है। विचारों का साक्षात्कार करने वाले मनीषियों को प्राचीन काल में 'साक्षात् कृतधर्मा' ऋषि कहते थे। उन्हें ही मध्य-युग में सन्त कहने लगे। साक्षात्कार के बिना कोई ऋषि या सन्त नहीं हो सकता। जिसने शब्द के पीछे भरे हुए अर्थ को स्वयं देखा है उसे ही सन्त कहते हैं। अर्थ सुन लेने मात्र से कोई सन्त नहीं हो सकता, पण्डित भले ही हो जाय। हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य की जो शक्ति है वह इसी कारण कि उसके निर्माता सन्त थे। उन्होंने अपने हृदय में उन अर्थों का साक्षात्कार किया था। उन-उन विचारों से वे स्वयं जूझे थे। वही उनकी साधना थी। उन विचारों के पीछे उनके जीवन का सत्य था। उनकी आत्माहुति से ही उन विचारों की व्याख्या समाज के लिये बोधगम्य बन सकी थी। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के पिछले एक सहस्र वर्षों के इतिहास का जब हम ध्यान करते हैं तो उस साहित्य की अर्थसिद्धि के प्रति मन श्रद्धा से भर जाता है। विचारों का यह कैसा अद्भुत कैलाश हमारे समक्ष उपस्थित है। अनेक महात्माओं के, ध्यानी योगियों के, भक्त सन्तों के, नीतिवान् गृहस्थों के, जो व्यापक अनुभव और राशीभूत विचार हैं वे ही तो हिन्दी साहित्य के रूप में एवं और भी प्रादेशिक साहित्यों के रूप में आज मूर्तिमन्त हैं। साहित्य के अधिदेवता के तृतीय नेत्र की शक्ति से युग-युग में इन अर्थों का दर्शन हुआ है। ज्ञान, कर्म, उपासना, योग, भक्ति वेदान्त के अनर्घ्य तत्त्वों से सम्बन्धित कितने ही दार्शनिक दृष्टिकोण हिन्दी साहित्य में उपलब्ध होते हैं।

वेदों के देववाद, उपनिषदों के आत्मवाद, दर्शनों के प्रमाणवाद, पुराणों के बहुदेवतात्मैक्यवाद, भागवतों के समन्वयात्मक विभूतिवाद, शैवों के साधनात्मक योगवाद, तान्त्रिकों के पिण्डब्रह्माण्डैक्यवाद, वेदान्तियों के ब्रह्मात्मैक्यवाद एवं भक्तों के प्रपत्तिवाद—ऐसे ही अनेकानेक दार्शनिक दृष्टिकोण इस देश में फूले-फले हैं। न केवल सिद्धान्त-पक्ष में बल्कि व्यवहार-क्षेत्र में भी इन मतों ने समाज के जीवन को आन्दोलित किया है। विचारों की प्रत्येक धारा अपने पीछे साहित्य के पद-चिह्न छोड़ती हुई चलती है। इन विचारों के उद्गम और विकास, उत्थान और ह्रास एवं उनके पारस्परिक आदान-प्रदान और प्रभावों का विश्लेषण साहित्य में उपनिबद्ध अर्थों की समग्र जानकारी के लिये आवश्यक है। साहित्य को उसके आचार्यों ने 'कान्ता संमिततयोपदेशयुजे' कहा है। इसका अभिप्राय यही है कि साहित्य के क्षेत्र में दार्शनिक तत्त्वों को अभिव्यक्त करने की जो पद्धति है उसमें उन प्रतीकों की सृष्टि की जाती है जो सरस होते हैं, जो इस प्रकार मन को आकर्षक प्रतीत होते हैं जैसे पुरुष को स्त्री के भाव। 'कामिहिं नारि पियारि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।' कवि की यह उक्ति जीवन के सत्य से निकली है। साहित्यिक वर्णनों के पीछे जो दार्शनिक अर्थ हैं वे स्थायी मूल्य रखते हैं, किन्तु सौन्दर्यशास्त्र की परिपाटी से उनकी अभिव्यक्ति यही सच्ची कला है। यही साहित्य का सौन्दर्य है।

पहिली ही बार हिन्दी साहित्य के लिये दार्शनिक पृष्ठभूमि का इस प्रकार का क्रमबद्ध विवेचन इन पृष्ठों में किया गया है। प्रत्येक युग में दर्शन और साहित्य रथ के दो पहियों की भाँति सहयुक्त रहते हैं। समाज का सच्चा दर्पण साहित्य है, जिसमें आगे आने वाले लोग भी उसके तत्कालीन स्वरूप का दर्शन पा सकते हैं। पहले अध्याय में लेखक ने संक्षेप में किन्तु क्रमबद्ध विवेचन से यह बताया है कि साहित्य के पीछे तत्त्वज्ञान और धर्म-साधना के कौन-कौन से प्रमुख सूत्र किस-किस युग में रहे हैं। लेखक ने स्पष्ट शैली में अपना अभिमत प्रकट किया है।

बौद्ध धर्म शीर्षक दूसरे अध्याय का भी हिन्दी साहित्य के लिये विशेष महत्त्व है क्योंकि एक तो वेदान्त की पूर्वपीठिका को ठीक प्रकार अवगत करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये बौद्ध दर्शन के शून्यवाद और विज्ञानवाद को समझना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरे महासुख की खोज में सहजयान के रूप में बौद्ध धर्म और दर्शन का जो पर्यवसान हुआ, जिसे एक ओर हम वज्रयान के गुह्य समाज में व्याप्त देखते हैं और दूसरी ओर जिसके मन्थन से सिद्धों के दर्शन और साहित्य का जन्म हुआ उसका भी हिन्दी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। गुह्य समाज में दीक्षित प्रत्येक साधक मुद्रा साधना करता था। 'मुद्रिता योषित्' वह स्त्री होती थी जो साधक की मनः समाधि को परखने की कसौटी थी। वह साधक के लिए अगम्या थी, पर उस अग्नि के समान थी जिसके सान्निध्य में आकर भी साधक अपने घृत रूपी मन को पिघलने न देता था। इसी 'मुद्रिता योषित्' की संज्ञा मुद्रा थी मुद्रा के सान्निध्य में साधना का जो आसन बन्धी रूप निष्पन्न हुआ उसी से मध्यकालीन देव मन्दिरों में उत्कीर्ण युगनद्ध मूर्तियों के आसन अथवा बन्धों की व्याख्या होती है। वैष्णव परम्परा में जो भागवत, पञ्चरात्र या सात्वतों का प्राचीन धर्म और दर्शन है उसमें कहीं भी राधा और माधव के उद्दाम विलास की चर्चा नहीं है। भक्तकवि जयदेव में अकस्मात् वह कैसे प्रकट हो गई, इस जटिल प्रश्न का समाधान सहजयान के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों में ही मिलता है। सहजयान की 'मुद्रा' जिसे प्रज्ञा भी कहते थे मानों ज्यों की त्यों राधा के रूप में साकार हो उठी। दोनों में इतना अन्तर अवश्य है कि जहाँ मुद्रा या प्रज्ञा व्यक्ति के विलास का क्षेत्र थी वहाँ राधा अध्यात्म धरातल पर नारायण रूपी माधव के विलास की सङ्गिनी बन जाती है। मुद्रा साधना की रहः केलियों में जो नग्नता थी जयदेव ने आंशिक रूप में उस मैल का प्रक्षालन किया। दोनों परम्पराओं का पारस्परिक सम्बन्ध तो स्पष्ट ही समझा जा सकता है। इस दशा में और भी अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

'वेदान्त दर्शन' शीर्षक तीसरा अध्याय हिन्दी के मध्यकालीन भक्त साहित्य को समझने के लिए उपयोगी है। शङ्कर, रामानुज, मध्वनिम्बार्क और वल्लभ के दार्शनिक दृष्टिकोण भक्ति के साथ मिलकर लोक के लिए अति प्रभावपूर्ण और उपकारी हुए। उनके पीछे साहित्य की धाराएँ प्रवर्त्तित हुईं। वस्तुतः वेदान्त संयुत भक्ति अथवा भक्ति संयुत वेदान्त का दृष्टिकोण ही मध्ययुगीन भारत का राष्ट्रगत धार्मिक दृष्टिकोण बन गया। भक्ति को जिस चैतन्य अमृत तत्त्व की आवश्यकता थी वह उसे वेदान्त से प्राप्त हुआ और वेदान्त को जिस एकनिष्ठ आराधना की आवश्यकता थी वह उसे भक्ति से मिल गया। ऊँच-नीच सबके लिए भक्ति धर्म का द्वार उन्मुक्त कर देना भागवतों की प्राचीन परम्परा थी। दो सहस्र वर्ष पूर्व मथुरा से जिस भागवत दृष्टिकोण का प्रचार हुआ था उसमें यवन, शक, पह्लव सबके लिये स्वागत का भाव था। भागवत धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण वरदान वह समन्वयात्मक दृष्टिकोण था जिसके कारण भागवत धर्म के क्षेत्र में न केवल विभिन्न जातियों का सङ्गम हुआ किन्तु यक्ष, नाग, मातृका आदि की प्राचीन पूजा पद्धतियाँ भी महाविष्णु की पूजा के साथ समन्वित हुईं। जितने देवता हैं वे सब एक ही चैतन्य तत्त्व की पृथक्-पृथक् विभूतियाँ हैं, यही भागवतों का विभूतियोग था जिसके प्रादुर्भाव का फल समाज के लिए बहुत हितकारी हुआ। पेड़ों में पीपल, जलचरों में मगरमच्छ, नदियों में गङ्गा, पर्वतों में मेरु—ये सब एक ही महती शक्ति की आत्म विभूतियाँ हैं। गीता के दशम् अध्याय का यही लक्ष्य अर्थ है। इस दृष्टिकोण से इस देश का समस्त साहित्य प्रभावित हुआ और अन्ततोगत्वा यही समन्वय प्रधान दृष्टिकोण यहाँ का राष्ट्रीय दृष्टिकोण बन गया।

'भक्ति का विकास' नामक अध्याय में भागवत धर्म के इतिहास से सम्बन्धित कुछ तथ्यों का परिगणन किया गया है। न केवल मथुरा बल्कि अन्यत्र भी भक्ति धर्म के जो अंकुर प्रस्फुटित हुए, विशेषतः दक्षिण भारत में शैव और वैष्णव सन्तों द्वारा भक्ति का जो विकास हुआ, उस ओर भी लेखक ने ध्यान दिया है। शङ्कर के अनन्तर रामानुज के विशिष्टाद्वैत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भारतीय साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव डाला। साथ ही बल्लभ के शुद्धाद्वैत तथा चैतन्य के अचिन्त्य-भेदाभेद ने भी प्रादेशिक भाषाओं को प्रभावित किया। लेखक ने इन सब दृष्टिकोणों का सुन्दर विवेचन किया है। उधर महाराष्ट्र में एक प्रकार का भक्ति संयुत दृष्टिकोण प्रचलित हो रहा था जिसमें एक ओर निर्गुण प्रभाव भी अवशिष्ट था और दूसरी ओर साहित्यिक सन्त वैष्णव मत के अनुसार अपनी परिभाषाओं को सँजो रहे थे। ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ आदि सन्तों की कृतियाँ इसी दृष्टिकोण की सूचक हैं। लेखक ने ठीक ही कहा है कि इस मत की विचारधारा इस बात का प्रतीक है कि किस प्रकार भारतीय धर्मसाधना में बौद्धों के मध्ययुगीन मतवाद को वैष्णवों ने अपने अनुकूल बनाकर एक में मिला लिया।'

बल्लभाचार्य की दार्शनिक वाणी का श्रेष्ठ साहित्यिक परिपाक सूर की साधना में हुआ। सूर ने नाथपन्थ, वेदान्त, शांकर वेदान्त, वैष्णव सहजयान के प्रभावों को समेटते हुए एवं कबीर आदि निर्गुणी सन्तों के दृष्टिकोण को भी समझते हुए बल्लभाचार्य के प्रभाव से उन सबको एक नये ही रसपूर्ण तत्त्वों में ढाल दिया। बल्लभ की दृष्टि में निर्गुण का कथन जिसमें आनन्द तत्त्व की अनुभूति का अभाव हो, अनुभव विहीन साधक के घिघियाने के समान है। सूर ने पुरुषोत्तम कृष्ण के रूप में सच्चिदानन्द ज्योति की कल्पना की। जहाँ-जहाँ यह ज्योति रमती है वहीं रस या आनन्द बसता है। जीवन की सरसता चैतन्य के साथ है। चैतन्य विहीन जड़ वस्तु नीरस है। कृष्ण का सान्निध्य अमृत रस की साक्षात् अनुभूति है। उनका वियोग भी सरस है। सूर को इसी के रसपूर्ण चित्रण में सर्वाधिक सफलता मिली है। सूर का भ्रमरगीत विश्व काव्य की अनुपम कृति है। उसका मर्म यही है कि यद्यपि कृष्ण का स्थूल शरीर गोपियों की दृष्टि से ओझल हो गया तथापि चैतन्य तत्त्व अपने सम्पूर्ण आनन्द की अभिव्यक्ति लेकर उनके हृदय में भर गया। उस रस से उन्हें किसी प्रकार वंचित नहीं किया जा सकता। कृष्ण के सर्वात्मना स्मरण से गोपियों का हृदय और भी गहराई से उस रस में डूब गया। विरह की जो व्याकुलता सूर में है वह जयदेव और विद्यापति में कहाँ है? सूर का ब्रज एक पवित्र धाम है जिसके प्रभाव की दिव्य रश्मियाँ प्रत्येक वाचक के मन का पवित्र संस्कार करती हैं।

भक्ति द्वारा तुलसी ने अनेक दार्शनिक मतों के समन्वय का जो दृष्टिकोण अपनाया उसका प्रभावपूर्ण सौन्दर्य विलक्षण था। वह व्यक्ति विशेष के लिये आकर्षण की वस्तु न रहकर समाज के लिये परम कल्याणकारी तत्त्व बन गया। वेदमत, पुराणमत, आगममत, स्मार्त्तमत इन सबकी दार्शनिक और धार्मिक परम्पराओं को तुलसी ने स्वीकार किया, किन्तु सबको भक्ति के सुधा-जल से सींच कर ग्राह्य बनाया। तुलसी के दार्शनिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वे अद्वैतवादी थे या विशिष्टाद्वैतवादी। लेखक का यह कथन समीचीन है कि गोस्वामीजी को शङ्कर और रामानुज के दार्शनिक मतभेदों में रुचि न थी। उनकी निजी विशेषता यह थी कि उन्होंने मायावाद का भक्ति के साथ समन्वय किया। माया रामरूप ब्रह्म की शक्ति है। सगुण और निर्गुण दोनों ही रूप सत्य हैं। तुलसी किसी आचार्य का सर्वांश में अनुगमन नहीं करते। उन्होंने सगुण और निर्गुण के समन्वय को एवं ज्ञान और भक्ति के समन्वय को अपनी अद्भुत मौलिकता से प्रतिपादित किया है। तुलसी का दर्शन एकाङ्गी नहीं। वह शङ्कर और रामानुज के श्रेष्ठ तत्त्वों को मान्य करके उन्हें अपने भक्ति प्रधान मौलिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। वस्तुतः रामायण दर्शन के पृथक् विस्तृत विवेचन की अब भी आवश्यकता बनी है जिसमें मध्यकालीन समस्त भारतीय दर्शनों के साथ उसकी तुलना अपेक्षित है।

हिन्दी साहित्य पर बौद्धों के सहजयान सम्प्रदाय का अतिव्यापक प्रभाव पड़ा था इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। बौद्ध तान्त्रिक मत नामक अध्याय में लेखक ने स्पष्ट शैली में इस मत का विवेचन किया है। प्रवृत्ति, अद्वय, युगनद्ध, समरस, महासुख, मुद्रा, शून्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि पारिभाषिक शब्दावली की स्पष्ट व्याख्या की गई है। खेद है कि सिद्ध साहित्य के दोहे और चर्या-पद अभी तक सुसंपादित होकर हिन्दी जगत् के सामने नहीं आ सके हैं। यह साहित्य, विशेषतः सरहपा के दोहे जो राहुलजी को तिब्बत से ताड़पत्र की प्रतियों में मिले हैं, दशवीं शती से प्राचीन हैं। इस साहित्य की भाषा अपभ्रंश है। उसे जिस प्रकार प्राचीन बङ्गला माना गया है, वैसे ही प्राचीन हिन्दी का रूप भी कहा जा सकता है, क्योंकि इन दोनों भाषाओं के प्राचीन रूप का उद्गम अपभ्रंश से ही हुआ। बौद्ध सहजयान ने परवर्त्ती साहित्य को दूर तक प्रभावित किया। वह प्रभाव जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास आदि की वैष्णव काव्यधारा में सुरक्षित है। उसमें जो विलास का ऐसा उद्दाम वर्णन मिलता है उसकी व्यख्या इसी 'पृष्ठभूमि' में सम्भव है। वैष्णव कवियों ने साधक की मुद्रा-साधना को राधा और कृष्ण की अलौकिक लीला के रूप से परिष्कृत किया। पुरुष और स्त्री की युगनद्ध मुद्रा का ही आध्यात्मिक नामान्तर कृष्ण और राधा की रास-केलि है। लेखक का यह कथन सत्य है कि भागवत पुराण में गोपी विशेष से कृष्ण के प्रेम के मूल में राधा की खोज व्यर्थ है। वस्तुतः राधा का विकास सहजयान की परम्परा से हुआ। केवल नाम भेद था। शाक्तों के कौल सम्प्रदाय का भी मध्यकालीन समाज में कम प्रचार न था। यद्यपि कौलों ने दार्शनिक मतवाद को भी सामने रखा किन्तु उनकी बीभत्स कामाचार प्रधान साधना पद्धति से जनता परित्रस्त हो गई। समाज में उनकी घोर प्रतिक्रिया हुई। जनता को जिसे आचार प्रधान नैतिक धर्म की आवश्यकता थी उसका सूत्रपात तो नाथ सम्प्रदाय के गोरख आदि योगियों ने कर दिया था। वे ब्रह्मचर्य और आत्मसंयम को सबसे अधिक महत्त्व देते थे। पर नीति प्रधान आचार का लोक ग्राह्य आदर्श वैष्णव कवियों ने ही अपने अवतारों की लीलाओं में प्रस्तुत किया। राजशेखर ने जिस नग्न कौल धर्म का संकेत किया है* वह लोक के लिये अति भयंकर पन्थ था। नवीं शती से बारहवीं शती तक बौद्ध, शाक्त और शैवों के इस निम्न धार्मिक स्तर से समाज का उत्थान किस प्रकार हुआ और इस बड़े अजगर से उसका पिण्ड कैसे छूटा इसकी कहानी अभी पूरी तरह समझी या कही नहीं जा सकी है।

शैवों के विभिन्न सम्प्रदाय, काश्मीर शैव दर्शन एवं नाथ पंथ आदि के जो अनेक सम्प्रदाय और मत-वाद थे, जिनके घने जङ्गल में भूली हुई जनता को सच्चा मार्गदर्शन मिलना कठिन हो रहा था, उनके दोषों को पचाकर गुणों को प्रकट करने के लिए जिस तेजस्वी व्यक्तित्व की आवश्यकता थी, देश के सौभाग्य से वह कबीर के रूप में प्रकट हुआ। उत्तर भारत की जनता के लोक मानस को स्वच्छ करने में कबीर ने जो साका किया उसका सच्चा मूल्याङ्कन कठिन है। जायसी, सूर, तुलसी इन सबने उस अमृत जल का पान किया जिसे कबीर अपनी शब्द निर्मली से बहुत कुछ स्वच्छ और पेय बना चुके थे। सब प्रकार का निर्मलीकरण कबीर की महती साधना थी। मूँड मुड़ाकर कपड़ा रँगाने वाले एवं धूनी जलाकर काम भस्म करने वाले जोगियों की जैसी मिट्टी कबीर ने कूटी है वैसी और किसी से सम्भव न हुई। क्या गृहस्थ, क्या सन्यासी, जिसके जीवन में जो पाखण्ड था उसी के विरुद्ध कबीर ने खड्ग हस्त प्रहार किया। कबीर के साहित्य में सब प्रकार के पाखण्ड की होली जलाई गई है। तो भी कबीर केवल होली जलाकर उसकी राख मलने वाले न थे। उन्होंने योग, सहज-साधना, निर्गुण साधना, प्रेम साधना और भक्ति इन सबके सात्विक अंशों को स्वीकार करके जीवन के निर्माण पक्ष पर भी बहुत बल दिया है। कबीर ने

(शेष पृष्ठ ३६७ पर देखिए)

* भैरवानन्द की उक्तिः

रंडा चंडा दिक्खिदारा धम्मदारा मज्जं मंसं
पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेजा कोलो धम्मो
कस्स नो होइ रम्मो।
—कर्पूर मंजरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वीराज रासो के बृहद् संस्करण के उद्धारक

श्री अगरचन्दजी नाहटा

लम्बे समय से पृथ्वीराज रासो का रचनाकाल विवाद का विषय बना हुआ है। कई विद्वान इसे प्राचीन मानते हैं और कई विद्वान सं० १६०० और १७०० के बीच की रचना। जहाँ तक १६०० के पहिले की प्रति उपलब्ध न हो जाय, इस विवाद का अन्त होता नजर नहीं आता। पर अभी तक जो कुछ शोध हुई है उसके आधार से चाहे जितने छोटे रूप में हो पर चन्द कवि ने पृथ्वीराज सम्बन्धी पद्यों की रचना की थी, यह निश्चित सा है। प्रबन्ध संग्रह में जो ४ पद्य उद्धृत मिले हैं उनमें से तीन का रासो के प्राप्त सभी रूपान्तरों में पाया जाना और उद्धृत ४ पद्यों की भाषा, इस कथन की समर्थक है।

पृथ्वीराज रासो के लघुतम, लघु और मध्यम तीनों संस्करणों की प्रतियाँ सं० १६६७ से ६२ के बीच की प्राप्त हो चुकी हैं। थोड़े से समय के बीच में ही चारों रूपान्तर प्रसिद्धि में आगये व प्रतियाँ मिलने लगीं इससे भी मूल रासो की रचना की प्राचीनता का समर्थन होता है। १७वीं शताब्दी में रासो में वर्णित-कथा बहुत प्रसिद्धि पा चुकी थी, और सं० १७०५ में रचे गये जसवंत उद्योत ‡ में रासो का एक प्रसिद्ध व उल्लेखनीय ग्रन्थ के रूप में निर्देश पाया जाता है।

कुछ वर्षों पूर्व तक रासो के बृहद संस्करण का ही सबको पता था। उसके प्रकाशन का प्रारम्भ ऐशियाटिक सोसाइटी, बंगाल से हुआ, पर इसकी ऐतिहासिकता के विवाद को लेकर प्रकाशन स्थगित हो गया तो नागरी प्रचारिणी सभा ने इसको प्रकाशित किया। स्वर्गीय गौरीशङ्करजी ओझा ने पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल शीर्षक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निबन्ध सं १६८५ में कोशोत्सव स्मारक संग्रह में प्रकाशित किया। उसमें उन्होंने रासो का रचनाकाल सं० १६०० के आसपास का अनुमानित किया था। पर उदयपुर के डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने अपने दो लेखों एवं "राजस्थानी भाषा और साहित्य" नामक ग्रन्थ में रासो का रचना काल सं० १७०० के बाद का बतलाया है। आपके मन्तव्य इस प्रकार हैं—१–कुछ सुनी सुनाई बातों के आधार पर १८ वीं शताब्दी में किसी दूसरे व्यक्ति ने भेद के नाम से उसे बनाया है। २—सम्भवतः इसकी और राजप्रशस्ति की रचना लगभग साथ-ही हुई है। राजप्रशस्ति का लिखना सं० १७१९ में प्रारम्भ हुआ था और समाप्ति सन् १७३२ में हुई थी। अतएव इसी समय के समानान्तर वा समय पृथ्वीराज रासो का रचना का भी समय है। परन्तु यदि कोई यह कल्पना करे कि राजप्रशस्तिका लिखना प्रारम्भ करने से पूर्व उसके लिये सामग्री जुटाने का काम शुरू हो गया होगा और सम्भव है उसी समय रासो का भी श्रीगणेश हो गया हो तो इस समय को खींच-खाँच कर संवत् १७०० तक भी ले जाया जा सकता है परन्तु इससे आगे लेजाना इतिहास और अनुमान का गला घोंटना है।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि रासो की प्राचीन लिखित प्रतियों से होती है। सम्पूर्ण रासो की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ अभी तक प्राप्त हुई हैं वे उस समय के बाद की हैं। इससे पहले की जो भी प्रतियाँ बतलाई जाती हैं वे सब जाली हैं। सबसे प्राचीन प्रति संवत् १७६० की है। वह मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय के शासनकाल (सं० १७५५—६७) में लिपिबद्ध हुई थी।

इसके पश्चात् आपने उस प्रति का पुष्पिका लेख

‡ रासो पृथ्वीराज को तहाँ बहुत विस्तारु।
मैं वरन्यौं संक्षेप ही सकल कथा को सारु॥ ४॥
—(प्रकाशित पृ० ४०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसके अन्त में पाये जाने वाले "मिलि पंकज गन उदधि" और "गुन मनियन रस पोई।" ये दो प्रसिद्ध छप्पय उधृत करते हुए लिखा है कि दूसरे छप्पय में "चित्रकोट राज अ रेश नृप हित श्रीमुख आयस दयो" शब्दों से अभिप्राय चित्तौड़ के राजा अमरसिंह प्रथम (सं० १६५३—७६) लिया गया है। आपकी राय में वह मिथ्या धारणा है। पर मेनारियाजी के उक्त मन्तव्य सही नहीं हैं। इसी पर प्रकाश डालने के लिये यह लेख जा रहा है।

आपने सबसे प्राचीन प्रति सं० १७६० वाली को ही माना है। इससे प्राचीन प्रतियों को वे जाली मानते हैं पर उनका यह कथन अति भ्रामक ही है। जहाँ तक रासो के अन्य रूपान्तरों के प्रतियों का प्रश्न है लघुतम रूपान्तर की संवत् १६६७ और ६७ की लघु की सं० १६७० के करीब की और मध्यम के सं० १६६२ की लिखित प्रति प्राप्त है ही, पर वृहद् संस्करण के लिये ही कहा गया हो तो उसकी भी सं० १७६० से पूर्व की कई प्रतियाँ मेरे अवलोकन में आई हैं यथा—भींडर की प्रति सं० १७३४ की है। "लिखिते ऋषि मनोहर श्री दसोर मद्धे संवत १७३४ वर्षे चैत्र वदि ६ दिने।"

कानोड़ की प्रति सं० १७४६ की है। संवत् १७४६ वर्षे मगसिर वदि ७ शुक्ले पुष्प नक्षत्रे आयुष्माने जोगे श्रीरस्तु कल्याणमस्तु वा० श्री श्री ५ श्री शोत्राजी श्री खरतर गच्छे। तत्शिष्य लिखितं रूप कुशल तीसरी गलूंड की प्रति का लेखन समय १६३१-३२ तो संदिग्ध है पर वह शोत्रजी के लिखित है। जिसमें भींडर वाली सं० १४८४ की प्रति लिखी है अतः इस प्रति का समय सं०१७३१-३२ माना जाना चाहिए ऐसा स्वामी नरोत्तमदाजी का विचार है।

ये तीनों प्रतियाँ ६५ समय (खंडों) वाली हैं अतः वृहद संस्करण की हैं। ४ समय पीछे फिर बढ़ाये शेष वृहद् संस्करण के उद्धारक के सम्बन्ध में अभिनव प्रकाश डालने वाली एक विशेष महत्त्वपूर्ण प्रति विद्या विभाग कांकरोली में है जो सं० १७४६ से ५० में लिखी गई है। इस प्रति में सबसे महत्त्वपूर्ण उल्लेख वृहद् संस्करण के उद्धारक के नाम जगतेश मिलता है। पत्रांक २२६ ए० में वह पद्य इस प्रकार है।

गुन मनियनि सर पोइ, चन्द कवियन कर दिधी
छन्द गुनी ते धुरि, मन्द कवि भिन भिन किधी
देश देश विखरी, मेलगुन पारन पावे
उदिम करि मेलवै, आस बिनु आलस आवे
चित्र कोटि रान जगतेश त्रिप,
हित श्रीमुख आईस दियो।
गुन विनि विनि करुणा उदधि,
लिखि रासो उद्यम कियो।
लघु दीरघ ओछे अधिक, जो कछु अन्तर होई
सो कवियन मुख सुद्धि तो, कहो आप बुधि जोई

इस पद्य में सुप्रसिद्ध 'अमरेस' पाठ की जगह 'जगतेश' पाठ है। यह मेनारियाजी के सं० १७०० के बाद रचे जाने मत को खण्डित करता है। क्योंकि सं० १७६० की लिखित प्रति में अमरेस पाठ देख रासो के इस संस्करण के उद्धारक को पहला अमरसिंह मानना मिथ्या धारणा मानते हैं पर 'जगतेश' पाठ व दूसरे अमरसिंह के समय से पहले की यह लिखित प्रति होने से इस पद्य का रचना समय आगे बढ़ जाता है। जगतसिंह का राज्यकाल सं० १६८४ से १७०९ का है राजसिंह इसके बाद राजा हुये। उसके बाद जयसिंह और तब अमरसिंह द्वितीय हुए। इससे रासो की रचना, राजप्रशस्ति के रचना के समय मेनारियाजी मानते है वह भी असिद्ध हो जाता है।

वास्तव में तो जगतेस व अमरेश दोनों के समय से रासो का रचनाकाल नहीं माना जाकर इस संस्करण का संकलन उद्धरण लिपि-काल माना जा सकता है और इस संस्करण के उद्धार या पाठ संग्रहीत करवाने वाले कांकरोली के प्रति के अनुसार महाराणा जगतसिंह थे। सम्भव है संवत् १७६० में जब अमरसिंह के समय वाली प्रति लिखी गई हो उसमें जगतेश के स्थान पर अमरेस पाठ परिवर्तित कर दिया गया हो या अमरेश पाठ प्राचीन हो और जगतेश परवर्ती पाठ हो तो अमरसिंह पहला होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश और हिन्दी

श्री रामप्रसन्नसिंह एम० ए०

हिन्दी भाषा के क्रमिक विकास को ढूँढ़ने के लिए हमें अपभ्रंश के नाम से अभिहित साहित्य की ओर जाना पड़ता है। यद्यपि आज भी यह विवाद का विषय है कि अपभ्रंश शब्द का तात्पर्य क्या है फिर भी अपभ्रंश के नाम पर हेमचन्द्र आदि सिद्ध तथा जैन कवियों की कृतियों को निस्सन्देह अपनाया जा रहा है।

विद्वानों ने अपनी अन्वेषक प्रवृत्ति के सतत् प्रयास के कारण अपभ्रंश का प्राचीनतम उल्लेख पातञ्जल महाभाष्य में प्राप्त किया है। महामुनि ने शब्द और अपशब्द का विचार करते हुए विकृत शब्दों के लिए अपभ्रंश का प्रयोग किया है—

"भूयांसोऽपशब्दाः, अल्पीयांसः शब्दा इति।
एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा·······॥"

(अपशब्द बहुत हैं और शब्द थोड़े हैं। एक-एक शब्द के बहुत से अपभ्रंश हैं।)

इससे स्पष्ट है कि श्री पतञ्जलि ने अपभ्रंश शब्द से किसी भाषा की ओर उल्लेख नहीं किया है। एक वैयाकरण की दृष्टि से उन्होंने शब्दों के असाधु प्रयोग को ही 'अपभ्रंश' नाम से अभिहित किया है। महाभाष्य के इस अपभ्रंश शब्द का अर्थ अपाणिनीय प्रयोग ही है। दण्डी ने इसे अपने काव्यादर्श में अत्यन्त स्पष्ट करते हुए लिखा है कि शास्त्र में संस्कृतेतर शब्द को अपभ्रंश कहते हैं। "ई० पू० द्वितीय शताब्दी के मध्य में अपने व्याकरण महाभाष्य को लिखते समय श्री पतञ्जलि ने जिसे अपभ्रंश कहा है, उससे उनका अभिप्राय संस्कृत से भिन्न तत्कालीन बोलचाल की भाषा से था जो प्राकृत की पूर्वजा पाली ही हो सकती थी। लेकिन आज जिस भाषा को अपभ्रंश नाम दिया गया है वह उसकी पुत्री भी नहीं, पौत्री है जिसमें सिद्धों ने अपनी कविताएँ की।"*

भाषा-वैज्ञानिकों ने भरत के नाट्य-सूत्र के इस अंश पर विचार करते हुए अपभ्रंश का सम्बन्ध आभीरों की भाषा से बतलाया है—

हिमवत्सिन्धु सौवीरान्ये च देशाः समाश्रिताः।
उकार बहुलां तज्ज्ञास्तेषु भाषां प्रयोजयेत॥

आभीरों की भाषा को उकार बहुला पाकर ही उसे अपभ्रंश मान लिया गया है। लेकिन उस समय की अन्य भाषाओं में भी उकारान्त की यह विशेषता लक्षित होती है। ऐसी अवस्था में यह कहना मुश्किल हो जाता है कि अपभ्रंश का सम्बन्ध आभीर भाषा तक ही कैसे सीमित किया जाय। पीछे चल कर ११वीं शती में यह शिष्ट समुदाय की भाषा के रूप में ग्रहीत हुई। संस्कृत के रुद्रट आदि आलङ्कारिकों तथा प्राकृत के वैयाकरणों ने इसे परिनिष्ठित अपभ्रंश के रूप में ग्रहण किया।

अपभ्रंश का काव्य अत्यन्त ही उत्कृष्ट था। अपभ्रंश के महाकवियों ने अपनी प्रतिभा से यह दिखला दिया है कि उनका साहित्य उपेक्षा की वस्तु नहीं। भारत की आधुनिक भाषाएँ अपने मूलोद्गम को प्राप्त करने के लिये यहाँ तक आती हैं। भारत की आधुनिक भाषाओं में से अधिकांश का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से इन अपभ्रंशों से है। हिन्दी का सम्बन्ध शौरसेनी और अर्द्धमागधी से है। हिन्दी में भी पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी के नाम से दो प्रशाखाएँ हैं। विशेषकर बिहार की बोलियों को हिन्दी कहा जाय या नहीं—भाषा वैज्ञानिकों के लिए यह एक प्रश्न रहा है। डा० ग्रियर्सन ने बँगला, असमिया, बिहारी आदि को बहिरङ्ग भाषा के अन्तर्गत रखा है। पश्चिमी और

---

* सिद्ध कवियों की भाषा (निबन्ध)—राहुल सांकृत्यायन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वी हिन्दी का सम्बन्ध अन्तरंग भाषा से है। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का यह मत उल्लेखनीय है—

"सर जार्ज ग्रियर्सन ने बिहारी और मैथिली को मागधी से निकली होने के कारण हिन्दी से अलग माना है। पर केवल भाषा-शास्त्र की दृष्टि से कुछ प्रत्ययों के आधार पर ही साहित्य-सामग्री का विभाग नहीं किया जा सकता। कोई भाषा कितनी दूर तक समझी जाती है, इसका भी विचार तो आवश्यक होता है। किसी भाषा का समझा जाना अधिकतर उसकी शब्दावली (Vocabulary) पर अवलम्बित होता है। यदि ऐसा न होता तो उर्दू हिन्दी का एक ही साहित्य माना जाता।"*

भाषा शास्त्र की दृष्टि से बिहारी बँगला आदि की बहिन अवश्य है लेकिन आज बिहार की साहित्यिक भाषा हिन्दी है और हिन्दी क्षेत्रों से ही यह अधिक सम्बन्ध रखती है। विकास के इस क्रमिक स्वरूप को अब पलटा नहीं जा सकता क्योंकि किसी के प्रयास से बिहार ने हिन्दी को नहीं अपनाया। सच तो यह है कि मागधी प्राकृत की सर्वप्रमुख विशेषता का भी बिहार की बोलियों में अभाव है। 'स' का 'श' और अकारान्त का एकारान्त। उच्चारण सर्वत्र नहीं पाया जाता। पटना, मुँगेर और भागलपुर के लोग 'सकल' को शकल और जल को 'जोल' के रूप में उच्चरित नहीं करते जैसा सामान्यतया बँगाली लोग किया करते हैं।

बिहारी बोलियों के बाद पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी—तो हिन्दी के नाम से पुकारी ही जाती है। उनका सम्बन्ध अर्द्धमागधी और शौरसेनी अपभ्रंश से है। इन्हीं पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आज की हिन्दी से सम्बन्धित सभी बोलियों का क्षेत्र पड़ता है। अपभ्रंश के व्यापक रूप से हमारा सम्बन्ध भी नहीं। मार्कण्डेय ने २६ अपभ्रंशों की कल्पना की है। लेकिन हिन्दी का सम्बन्ध शौरसेनी और अर्द्धमागधी से ही अधिक है। श्री राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्य-धारा' के नाम से अपभ्रंश के प्रमुख कवियों की कृतियों का एक संकलन निकालकर एक आदर्श प्रस्तुत किया है। थोड़े से उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी और अपभ्रंश का सम्बन्ध कितना समीप का है—

वायसु उड्डावतिए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति,
अद्धा बलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड़त्ति।
भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु,
लज्जेजं तु वयंसि अउ जइ भग्गा घर एंतु।

हिन्दी पर अपभ्रंश के प्रभाव को दिखलाने के प्रयत्न में डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, श्री राहुल सांकृत्यायन तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने पर्याप्त सफलता पाई है। आचार्य द्विवेदीजी का कार्य अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक स्रोत को अविच्छिन्न गति से बहते हुये दिखलाया है। इतिहास को तिथियों के कठघरे में बाँधकर व्यक्ति विशेष के जीवन पर ही केन्द्रित कर देने के पक्ष में ये नहीं हैं। आपने सामाजिक पृष्ठभूमि में इतिहास को परखने का प्रयत्न किया है। सिद्ध तथा नाथ-पन्थियों से प्रभावित होकर सन्त कवियों ने अपने काव्य का निर्माण किया और उन्हीं रूढ़ियों तथा मान्यताओं को अभिव्यक्त भी किया। जिस 'सद्गुरू' की महिमा सन्त-काव्य में पग-पग पर मिलती है उसे हम सहजयानियों, वज्रयानियों तथा नाथपन्थियों में भी उसी रूप में समादृत होते हुए पाते हैं।×

इतना ही नहीं कबीर आदि पर डिंगल-काव्य परम्परा के माध्यम से भी अपभ्रंश का यह प्रभाव कुछ कम नहीं पड़ा है। राजस्थानी साहित्य में 'ढोलामारू दोहा' अत्यन्त ही विकसित काव्य के रूप में पाया जाता है। इसकी मौखिक परम्परा के कारण इसमें बहुत कुछ परिवर्त्तन भी हो गये हैं, फिर भी उसमें संयोग-वियोग का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है।

* हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य शुक्ल

× वे ही पद, वे ही राग-रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की हैं जो उक्त मत के मानने वाले उनके पूर्ववर्ती सन्तों ने की थीं।

—हि० सा० की भूमिका : ह० प्र० द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर बहुश्रुत तथा पर्यटक थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा के लिए न जाने कितने स्रोतों से उपादान ग्रहण किये थे। कबीर की साखियों में हम स्थान-स्थान पर विरह की मार्मिक व्यञ्जना पाते हैं। विद्वानों का मत है कि ये दोहे इन डिङ्गल-काव्यों के ही हैं जिन्हें कबीर ने अपनी प्रतिभा से दूसरा ही रूप दे दिया है। +

एक ओर हिन्दी का रीतिकालीन शृङ्गारी काव्य हाल की 'गाथा-सप्तशती' से प्रेरणा पाकर आगे बढ़ा तो दूसरी ओर हिन्दी के प्रबन्ध-काव्य अपभ्रंश के चरित काव्यों की रीढ़ पर पले हैं। अपभ्रंश के भविसयत्त कहा, जसहर चरिउ, करकंडु चरिउ तथा हिन्दी के पद्मावत, मधुमालती तथा मृगावती में विद्वानों ने बहुत सी समान बातें खोज निकाली हैं जैसे—प्रेम-कथा, गुणश्रवण तथा चित्रदर्शन आदि से प्रेम का प्रारम्भ, विवाह से पूर्व नायक का प्रयत्न, आध्यात्मिक संकेत, सिंहल-यात्रा का मोह आदि।

छन्द की दृष्टि से भी अपभ्रंश से हिन्दी ने बहुत कुछ पाया है। दोहा 'गाथा' का ही परिवर्त्तित रूप है। अपभ्रंश का 'अडिल्ल' छन्द हिन्दी में चौपाई के रूप में उपस्थित हुआ और उल्लाला 'रोला' बन गया। जिस प्रकार संस्कृत से उत्तराधिकार के रूप में अपभ्रंश ने बहुत कुछ पाया उसी प्रकार हिन्दी ने भी परम्परा के रूप में अपभ्रंश से कुछ कम नहीं पाया है। इस क्षेत्र में अब भी पर्याप्त खोज की आवश्यकता है क्योंकि ऐसे शोधकार्यों से अपने इतिहास की परम्परा को समझने के लिये काफी बल प्राप्त होता है।

+ कबीर के दोहों में से जो अनेक भाव-प्रवण मार्मिक होते हैं वे ढोला-मारू में भी मिलते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोक-प्रचलित दोहों को कबीर ने भक्तिपरक पानी देकर अपना लिया।
—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग : नामवरसिंह

(पृष्ठ ३८० का शेषांश)

भावपक्ष और कलापक्ष पर विचार करने के बाद ब्रजभाषा पर भी कुछ विचार कर लिया जाय, तो अनुपयुक्त न होगा। भारतेन्दु के पश्चात् उनके समकालीन तथा अनुयायी कवियों ने ब्रजभाषा में कोई विशेष परिष्कार नहीं किया। न तो उन्होंने उसमें साहित्यिक सौष्ठव ही बढ़ाने का प्रयत्न किया और न उसे आधुनिक भाव-व्यञ्जनोचित बनाने का ही विशेष उद्योग। उसमें एक रूपता लाने का भी प्रयत्न नहीं हुआ, किन्तु उसकी सरलता, स्पष्टता और सुबोधता की ओर वे विशेष प्रयत्नशील होते हुये प्रतीत होते हैं।

उत्तरकालीन ब्रजभाषा में दो अत्यन्त प्रमुख विशेषतायें हैं और उन विशेषताओं से ब्रज भाषा को विशेष प्रकार का गौरव प्राप्त हुआ है। प्रथम तो यह है कि उत्तर कालीन ब्रजभाषा में प्रायः इधर के सभी उत्कृष्ट कवियों द्वारा संस्कृत शब्दों की विशेषतया योजना की गई है, जिससे भाषा बहुत कुछ उत्कृष्ट, साहित्यिक और स्थायी सी हो गई। श्रीधर पाठक, हरिऔध, रत्नाकर आदि सुकवियों की ब्रजभाषा इसके उदाहरण में रखी जा सकती है। पूर्व और उत्तरकाल के मध्य में भाषा-मिश्रण-परिपाटी के आधार पर चलने वाली ब्रजभाषा को हम दो मुख्य रूपों में रख सकते हैं। एक तो ब्रजभाषा का वह रूप जिसमें खड़ीबोली के भी शब्द (क्रिया-पद आदि) तथा प्रयोग स्वतन्त्रता से प्रयुक्त होते हैं। ऐसी भाषा बचनेश और सनेही जैसे सुकवियों की रचनाओं में मिलती है। दूसरा ब्रजभाषा का वह रूप है, जिसमें अवधी तथा अन्य प्रान्तीय बोलियों के पद और प्रयोग भी व्यवहृत किये जाते हैं। ऐसा स्वरूप द्विजेश और अम्बिकेश जैसे कवियों की रचनाओं में मिलता है।

रत्नाकरजी और उन्हीं के साथ रसिक मण्डल के सुकवियों ने ब्रजभाषा की विशुद्धता और एक रूपता की ओर विशेष ध्यान दिया है। यद्यपि रत्नाकरजी की भाषा में भी कुछ पूर्वीय प्रयोग पाये जाते हैं; फिर भी उनकी भाषा अपने एक नये ढाँचे में ढली हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु और उनके पश्चात् आधुनिक ब्रजभाषा

श्री बालकृष्णराव प्रभाकर

आधुनिक हिन्दी काव्य का अभिराम आराम वस्तुतः दो विभिन्न विभागों में विभक्त है। प्रथम विभाग तो ब्रजभाषा का काव्य-कुञ्ज-पुञ्ज है और द्वितीय खड़ी बोली का वह काव्य कानन है, जिसमें कियत काल से ही कलाकारों ने रम्य रचना का श्रीगणेश किया है। प्रथम विभाग के भी स्थूल रूप में दो उप-विभाग किये जा सकते हैं। एक तो प्राचीन परिपाटी के ही सर्वथा समीचीन है, और दूसरा कुछ अर्वाचीन विशेषताओं का अपने रङ्ग-ढङ्ग से आभास लिए हुये नवीन। दोनों ही विभागों में कार्य हुआ है। दोनों में सुन्दर सुमनों का विकास-प्रकाश है और दोनों में अपनी-अपनी रुचिर रोचकता है।

साधारणतया हम ब्रजभाषा के काव्य को आधुनिक ब्रज साहित्य कह सकते हैं। साथ ही इसका प्रस्फुटन-प्रारम्भ स्थूल रूप से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पश्चात् से ही मान सकते हैं। अतएव कहना चाहिए कि अभी केवल पचास वर्षों का ही समय इसके प्रारम्भ-प्रसार को हुआ है। इन पचास वर्षों के समय को हम दो मुख्य भागों में बाँट सकते हैं—

(१) पूर्वार्द्धकाल—जो स्थूलतया संवत् १९४७ (सन् १८९०) से संवत् १९७२ (सन् १९१५) तक आता है।

(२) उत्तरार्द्धकाल—जो लगभग संवत् १९७२ (सन् १९१५) से संवत् १९९९ (सन् १९४२) तक या आज तक आता है।

प्राचीन परिपाटी के अन्तिम तथा अर्वाचीन-पद्धति के प्रारम्भक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि वे सत्काव्य के लिये ब्रजभाषा को ही अधिक उपयुक्त समझते थे। उनकी सभी सुन्दर, सरस और उत्कृष्ट रचनायें ब्रजभाषा में ही हैं। हाँ, साधारण रचनायें नाटक आदि खड़ी बोली में हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि उनके विचार से ब्रजभाषा ही सत्काव्य के लिए उपयुक्त है। उनका यह विचार उस समय समीचीन भी था, क्योंकि उस समय तक ब्रजभाषा ही सत्काव्य साहित्य की एक मात्र सर्वमान्य व्यापक भाषा थी।

भारतेन्दु बाबू को जिस प्रकार खड़ीबोली को बहुत कुछ निखार-बिखार कर काव्योचित बनाने का श्रेय प्राप्त है उसी प्रकार ब्रजभाषा को परिमार्जित एवं सुसंस्कृत बनाने का भी है। कहना चाहिये कि उन्होंने ही इस काल में (पूर्वार्द्ध) ब्रजभाषा का एक ऐसा रूप रखा, जो समय और समाज की परिवर्तित दशा के अनुकूल ठहरा और जो प्राचीन ब्रजभाषा का एक नये रङ्ग-ढङ्ग से निखारा हुआ साहित्यिक रूप होकर फिर आगे चलने में सफल हो सका।

भारतेन्दु ने ऐसा करने में प्रथम तो प्राचीन ब्रजभाषा का परिशोधन किया—उसमें से बहुत से ऐसे शब्द और प्रयोग हटा दिये, जो बहुत घिस कर साधारणतया जनता के प्रयोग से दूर हट चुके थे, और केवल परम्परा के पालनार्थ ही रखे जाते थे। साथ ही ऐसे शब्दों तथा वाक्यांशों को भी उन्होंने छोड़ दिया जो प्रयोग बाहुल्य से श्रुति सुखद भी न रह गये थे, वरन् केवल कवि परिपाटी के ही आधार पर व्यर्थ के लिये प्रयुक्त किये जाते थे और जो बहुत कुछ अपनी भाव व्यञ्जकता भी खो चुके थे। बहुधा ऐसे शब्दों का प्रयोग इधर के साधारण कवि बिना उनके अर्थादि के जाने ही कर दिया करते थे। इसी प्रकार उन्होंने उन पदों और वाक्यांशों को भी विलग कर दिया जिनमें विशेष अर्थ गम्भीरता और भाव-व्यञ्जकता नहीं थी।

इसके अनन्तर भारतेन्दु ने ब्रजभाषा के क्षेत्र में नव्य-भव्य-भाव व्यञ्जक और रस-राग व्यञ्जक पदों तथा प्रयोगों का सुन्दर समावेश भी कर दिया, जिससे ब्रज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में नवीन स्फूर्ति और शक्ति आ गई। उसमें नव-जीवन का सुसञ्चार हो चला और फिर वह सबल और सजीव होने लगी।

इस समय से पूर्व व्रजभाषा के काव्य कला-काल का अवसान युग चल रहा था, किन्तु इस समय व्रज-भाषा काव्य के क्षेत्र में काव्य-कला कौशल का कोई विशेष प्राधान्य न रह गया था। काव्य में अलङ्कार-चातुर्य्य की भी विशेष प्राधानता नहीं थी। यद्यपि तत्कालीन कवियों के समक्ष काव्य के लिये कोई विशेष सामिग्री न रह गई थी। केवल प्राचीन परम्परागत भक्ति-शृङ्गार आदि सम्बन्धी कुछ विशेष विचारधारायें अवश्यमेव थीं, किन्तु उनमें भी मौलिकोद्भावना के लिये बहुत कम स्थान बचा था। मुक्तक रचना का बाहुल्य इस समय भी विशेष रूप में रहा। इसी के साथ समस्या पूर्ति की प्राचीन प्रथा अवश्यमेव बड़ी प्रबलता और प्रचुरता के साथ चलती रही यद्यपि इसे आश्रय देने वाले राज दरबार नहीं थे, तथापि साधारण जनता में इसका बहुत प्रचार था। काव्य-रचना केन्द्र इस समय प्रायः नगरों में बिखर चुके थे, और काशी, कानपुर जैसे प्रमुख नगरों में कवियों के कुछ सङ्गठित समाज बन चुके थे, जिनके द्वारा समय-समय पर कवि सम्मेलनों के आयोजन किये जाते थे, और कवि उनमें उपस्थित होकर समस्यापूर्ति के आधार पर मंजु-मुक्तक रचनाओं द्वारा जनता का मनोरञ्जन करते थे। ऐसी रचनायें पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो जाती थीं।

इस काल में प्रायः भक्ति काव्य की ही विशेष प्रबलता रही, और उसमें भी कृष्ण काव्य प्रधान रहा। राम भक्ति और निर्गुण काव्य एक प्रकार से शून्य रहे। ऋतु वर्णन और प्रकृति चित्रण की ओर अवश्यमेव पर्याप्त ध्यान दिया गया। इनकी रचना प्राचीन परिपाटी के आधार पर अलङ्कार-योजनान्तर्गत होती थी। इस काल में काव्य के प्रबन्ध और मुक्तक दो भेद किये गए। उक्त नई शैली के काव्य को हम उक्त किसी भी भेद में नहीं रख सकते, इसीलिए इस नई शैली को निबन्ध काव्य की संज्ञा देते हैं। इससे हमारा तात्पर्य ऐसी काव्य रचना से है, जिसमें कवि किसी एक विषय पर निबन्ध के रूप में अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। भारतेन्दु का 'यमुना वर्णन' इस प्रकार के निबन्ध काव्य का अच्छा उदाहरण है। इस प्रकार की काव्य-रचना के भी मुख्यतया निम्न रूप हैं—

(१) अलंकृत—वर्ण्य वस्तु का वर्णन उत्प्रेक्षा, सन्देह रूपक अलङ्कारों के आधार पर होता है।

(२) वर्णनात्मक—वर्ण्य वस्तु का वर्णन चित्रोपमता के साथ यथा तथ्य रूप में होता है। इसमें स्वभावोक्ति प्रधानतया रहती है।

(३) अन्योक्ति मूलक—इसमें भाव की प्रधानता रहती है।

(४) उक्ति वैचित्र्य मूलक—कवि इसमें अपनी वचन-विदग्धता का परिचय देता है।

इसके अलावा भी और कई रूप हमारे सामने आते हैं। यद्यपि यह परिपाटी व्रजभाषा काव्य-क्षेत्र में प्रचलित न हो सकी, तथापि खड़ी बोली के लिए मार्ग दर्शन इसने अवश्य किया।

इस काल में व्यक्ति काल सम्बन्धी गीत-काव्य की परम्परा यद्यपि अच्छे रूप में आगे न बढ़ सकी, किन्तु उसका नितान्त लोप भी न हो सका—कवियों ने सुन्दर पदों की रचना भी की—यद्यपि अधिक मात्रा में नहीं। कुछ कवियों ने तो स्त्री समाज और गायक समाज में गाये जाने के योग्य भिन्न-भिन्न प्रकार के राग और रागनियों वाले गीत भी लिखे। उदाहरण में पं० प्रतापनारायण मिश्र और पं० बदरीनारायण चौधरी का प्रयत्न सफल हुआ है, पर यह कार्य आगे न बढ़ सका।

इस काल में रीति-ग्रन्थों की रचना का कार्य प्राचीन परिपाटी के आधार पर न्यूनाधिक रूप से चलता रहा। यद्यपि इसमें भी बहुत कुछ शिथिलता सी रही। कई रीति-ग्रन्थ इस समय में लिखे गये, किन्तु उनमें मौलिकता न थी। थोड़े ही समय में पद्य-बद्ध रीति-ग्रन्थों के स्थान पर गद्यात्मक रीति-ग्रन्थ तैयार हो चले। एक विशेष बात इस काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में और हुई कि लक्षण-ग्रन्थ के उदाहरणों के भागों में कुछ कवियों ने नूतनता का कुछ सञ्चार किया। नायक-नायिका भेद में कुछ नई बातें समाविष्ट की गईं। हरिऔधजी के द्वारा 'रसकलस' में देश प्रेमिका और समाज-सेविका आदि नायिकाओं के नये भेद इसके उदाहरण हैं।

यों तो अन्य पूर्ववर्ती कालों की रचना शैलियाँ न्यूनाधिक रूप में इस काल में भी चलती रहीं, तथापि अधिक प्रचलित केवल कवित्त-सवैया, शैली, दोहा शैली, रोला शैली और विविध छन्द शैली ही विशेष रूप में रहीं। इनमें से कवित्त रचना शैली में 'रत्नाकर' तथा 'सरस' जैसे कुछ कवियों ने नव्य विशेषता उत्पन्न की और कवित्त के पाठ प्रवाह अथवा गति का ऐसा परिष्कार किया कि वह त्वरागति और मन्थर गति दोनों में समान रूप से चल सके। कहना चाहिये कि इस काल में कवित्त, रोला, दोहा तीन छन्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ। सवैया, छन्द श्रुति-सुखद होता हुआ भी अधिक प्रचलित न रह सका।

सबसे बड़ी विशेषता इस समय काव्य-क्षेत्र में यह देखी जाती है कि प्रबन्ध और मुक्तक दोनों काव्यों को मिलाते हुये कवित्त छन्द के द्वारा एक ऐसी नवीन प्रकार की काव्य-रचना शैली उत्पन्न की गई, जिसमें एक साधारण घटना या कथा भी चलती रहती है, और रचना का प्रत्येक कवित्त मुक्तक के समान सर्वथा पूर्ण और स्वतन्त्र भी रहता है। 'उद्धवशतक' और 'अभिमन्युवध' इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

इस काल में कुछ कवियों ने नन्ददास कृत 'भँवर-गीत' का भी सफल अनुकरण किया है, परन्तु कुछ आधुनिकता के साथ। सत्यनारायण 'कविरत्न' का 'भ्रमरगीत' इसका अच्छा उदाहरण है। विविध छन्दात्मक शैली को लेकर 'दैत्यवंश' जैसी पुस्तकें सामने आईं, जिन्हें सफल प्रबन्ध काव्य कह सकते हैं।

ब्रजभाषा-काव्य-सदन में दो तीन प्रमुख सतसइयाँ भी हमारे सामने आती हैं—वीर सतसई, ब्रज सतसई आदि। साथ ही शतकद्वय और शतकत्रय की परिपाटी भी प्रचलित हुई और दुलारेलाल जैसे दो-एक कवियों ने इसके आधार पर अपनी दोहावलियाँ प्रकाशित कीं। इसीके साथ श्री जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' ने अष्टक और रचना परिपाटियों से भी आठ आठ और पाँच-पाँच कवित्तों के स्तवक बनाकर विभिन्न विषयों पर रुचिर रचनायें की।

इस काल में जिस प्रकार खड़ी बोली के कवियों ने निबन्ध काव्य रचना की एक नई परिपाटी चलाई, उसी प्रकार और सम्भवतः सर्व प्रथम ब्रजभाषा के कवियों ने उसी निबन्ध-काव्य की सुन्दर और सराहनीय रचना की। निबन्ध-काव्य से हमारा तात्पर्य उस काव्य से है—जिसमें किसी प्राकृतिक दृश्य तथा वस्तु आदि पर कवि काव्योचित रूप-रंग के साथ पद्यात्मक निबन्ध या लेख सा लिखता है। पं० श्रीधर पाठक की 'काश्मीर सुषमा', लाला भगवानदीन का 'राम गिर्यो-श्रम' और 'मेघस्वागत', सत्यनारायण कविरत्न का 'बसन्त स्वागत' जैसी रचनायें इसके उदाहरण स्वरूप हैं।

भूषण आदि ने पूर्वकाल में वीरकाव्य को राष्ट्रीयता के रङ्ग में रँगने का जो स्मरणीय और अनुकरणीय कार्य किया था, उसीका अनुसरण करते हुए इस काल में भी ब्रजभाषा में कुछ कवियों ने वीर-काव्य लिखे जिनमें आधुनिक राष्ट्रीय भावना और स्वदेशानुराग का सच्चा और सुन्दर स्वरूप मिलता है।

वर्त्तमान काल की कुछ नई पद्धतियों और विचार-धाराओं को भी कतिपय सुकवियों ने सुचारुता से निखारते और सिंगारते हुये ब्रजभाषा के काव्य-क्षेत्र में नये रंग-ढङ्ग से उपस्थित किया है। रहस्यवाद, प्रतिबिम्बवाद और छायावाद के वास्तविक मर्मों को लेते हुये 'हरिऔध' जैसे कुछ कवियों ने बड़ी सुन्दर रचनायें की हैं। आध्यात्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों को मार्मिकता के साथ तार्किक रूप में मौलिकता लाते हुये मिश्र बन्धुओं और डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी जैसे कवियों ने काव्य के क्षेत्र में आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार संक्षेप में आधुनिक ब्रज-भाषा काव्य के

(शेष पृष्ठ ३७७ पर देखिये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास लेखक श्री किशोरीलाल गोस्वामी

श्री विष्णुकान्त शास्त्री, एम० ए०, बी० एस सी०

हिन्दी उपन्यास साहित्य का इतिहास कुल तिहत्तर वर्ष पुराना है। इस अल्प समय में ही उसने ऐसी प्रौढ़ता प्राप्त कर ली है कि देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। प्रेमचन्द, प्रसाद, वृन्दावनलाल, जैनेन्द्र, भगवतीचरण, उग्र, इलाचन्द्र, यशपाल, अज्ञेय आदि की कृतियों पर किसी भी साहित्य को गर्व हो सकता है। यह भी उचित ही है कि हम इन कलाकारों के अवदानों का सम्मान करें, किन्तु साथ ही हमें उन नींव के पत्थरों के प्रति भी अपनी श्रद्धा अर्पित कर अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए जिनके ऊपर ही हमारे उपन्यास साहित्य का यह भव्य भवन खड़ा हो सका है। ऐसे नींव के पत्थरों में अन्यतम हैं श्री किशोरीलाल गोस्वामी।

गोस्वामी जी का जन्म सन् १८६५ ई० में अपने नाना के यहाँ काशी में हुआ था। उनका घराना कट्टर सनातन धर्मी था। वे वृन्दावन के रहने वाले थे एवं निम्बार्क वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य थे। बचपन से ही साहित्य के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि थी। रीतिकाल के कवियों की परम्परा में वे अत्यन्त सरस शृङ्गारी कवितायें भी करते थे। यों तो उन्होंने नाटक, निबन्ध और जीवन चरित्र आदि भी लिखे हैं किन्तु उनका प्रधान क्षेत्र उपन्यास ही था। उनका पहला उपन्यास प्रणयिनी परिणय सन् १८८७ में लिखा गया था। सन् १८९८ में उन्होंने 'उपन्यास' नामक मासिक पत्र प्रकाशित करना शुरू किया एवं छोटे-बड़े मिलाकर पैंसठ उपन्यास लिखे जिनमें मल्लिकादेवी, तारा, चपला, रजिया बेगम, तरुण तपस्विनी, लखनऊ की कब्र, माधवीमाधव, राजकुमारी, अंगूठी का नगीना आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी रचनायें प्रेमचन्द के आगमन के बाद तक प्रकाशित होती रहीं और वे काफी लोकप्रिय भी हुईं। गोस्वामीजी ६७ वर्ष की आयु भोगकर १९३२ में स्वर्ग सिधारे।

गोस्वामीजी की रचनाओं पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें तत्कालीन युग की समस्त परम्परायें, मान्यतायें एवं प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। उन्हें उत्तराधिकारी के बतौर मिला था संस्कृत का कथा-साहित्य तथा रीति काल का वासना प्रधान शृङ्गारी काव्य। उनके अपने समय में एक तरफ श्री देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों की धूम थी तो दूसरी तरफ श्री गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की। बंगला के सामाजिक, ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे थे। गोस्वामीजी स्वयं बंगला के अच्छे जानकार थे और उन्होंने भी कई बँगला उपन्यासों के अनुवाद किए थे। इन समस्त प्रवृत्तियों को अपना कर उन्होंने अपनी उपन्यास-कला का विकास किया। अंग्रेजी का सीधा प्रभाव उन पर अपेक्षाकृत कम था। यद्यपि कुछ समालोचकों ने उनके प्रेम व्यापारों, षड्यन्त्रों और दाव-पेचों में रेनाल्ड्स के लण्डन-रहस्य की छाप देखी है किन्तु उनके प्रेरणास्रोत मुख्यतः रीतिकालीन प्रेम-चित्रण तथा दिल्ली एवं लखनऊ के शाही परिवार एवं दरबार ही हैं।

गोस्वामीजी की उपन्यास-कला पर विचार करने के पूर्व यह उचित होगा कि हम उनकी उपन्यास सम्बन्धी मान्यताओं से भी परिचित हो लें। वे अपने प्रथम उपन्यास लावण्यमयी या प्रणयिनी परिणय की भूमिका में लिखते हैं—'उपन्यास', उप-नी-उपसर्ग पूर्वक 'आस' धातु से बना है—यथा (उप) समीप (नी) न्यास (आस) रखना, अर्थात् इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक हो एवं इसकी कथा कुछ छिपी हुई क्रमशः समाप्ति में परिस्फुटित हो·······उपन्यास भी प्राचीन काल से भारतवर्ष में प्रचलित है और 'दश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कुमारचरित', 'वासवदत्ता', 'श्रीहर्षचरित', 'कादम्बरी', 'भोजराज', 'विक्रमादित्य' आदि उपन्यास इसकी प्राचीनता में जाज्वल्यमान प्रमाण हैं। इसी विचारधारा के कारण तथा तत्कालीन परिस्थिति एवं पाठकों की रुचि के अनुकूल उनके उपन्यास कौतूहलवृत्ति प्रधान हैं। उनके रहस्यावृत कथानक क्रमशः स्पष्ट होते हैं। संस्कृत-कथा-साहित्य की परम्परा में होने के कारण ही उनके कथानकों में आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम की अवस्थायें स्पष्टतापूर्वक निखरी हैं। उनके प्रायः सभी उपन्यासों के सुखान्त होने का रहस्य भी यही है। सचमुच कर्म-फल पर दृढ़तापूर्वक विश्वास करने वालों के लिए यह कठिन है कि वे सत्पक्ष के ऊपर असत्पक्ष की विजय दिखलायें। गोस्वामीजी कट्टर सनातन धर्मी होने के कारण कर्म-फल पर विश्वास करते ही थे एवं प्राचीन भारतीय मान्यता के अनुसार ही वे भी यह मानते थे कि अन्त में नायक को फल-प्राप्ति होनी चाहिए। परिणामतः उनके प्रायः समस्त उपन्यास नायक-नायिका के मिलन तथा उनकी समृद्धि के वर्णन के साथ ही समाप्त हुए हैं।

गोस्वामीजी ने सामाजिक, ऐतिहासिक तथा तिलस्मी ऐयारी सभी प्रकार के उपन्यास लिखे हैं। इनके उपन्यासों की एक सामान्य विशेषता यह है कि उनकी कथावस्तु अनिवार्य रूप से प्रेमलीला से सम्बन्धित होती है। दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि उन्होंने स्वस्थ प्रेम के स्थान पर छिछली वासना तथा लालसा के चटकीले चित्र खींचे हैं। रीतियुग की परम्परा के अनुसार नायक नायिका प्रत्यक्ष या चित्र दर्शन या गुण श्रवण मात्र से ही एक दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं फिर दूती या सखी के कौशल से मिलन भी होता है। प्रेमपत्र, मिलनोत्कण्ठा, अभिसार, भाव आदि प्रसङ्गों का वर्णन करने में उन्होंने विशेष रुचि दिखाई है जिसके कारण उनके उपन्यासों को आलोचकों ने नवयुवक नवयुवतियों के लिए हानिकर घोषित कर दिया है। प्रेम की गुत्थियाँ सुलझाते रहने के कारण ही उन्हें इतना अवकाश नहीं मिल सका कि अपने उपन्यासों में वे समस्याओं पर भी विचार करते। फिर भी उनके सामाजिक उपन्यासों में तत्कालीन रीति-नीति, आचार-व्यवहार, पारिवारिक सम्बन्ध आदि कुशलतापूर्वक चित्रित हुए हैं। उन्होंने अपनी भूमिकाओं में यह भी स्पष्ट किया है कि 'अँगूठी का नगीना', 'माधवी-माधव' आदि कई उपन्यासों की रचना सत्य घटनाओं के आधार पर हुई है। वास्तव में उन्होंने अपने सामाजिक उपन्यासों द्वारा हिन्दी पाठकों को तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी उपन्यासों के मायाजाल से उबारने की चेष्टा की, साथ ही प्रेमचन्द के उपन्यासों के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की।

उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में यह अभियोग बार-बार उपस्थित किया गया है कि उनमें ऐतिहासिकता की रक्षा नहीं की गयी है। इस अभियोग पर विचार करने से पहले इस विषय में उनके मत को भी जान लेना अच्छा होगा। वे अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'तारा' के निवेदन में कहते हैं—"इतिहास की मूल भित्ति सत्य है" वैसे ही "उपन्यास की मूल भित्ति कल्पना है......ऐसी अवस्था में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए इतिहास के सत्यांश के साथ तो कल्पना की थोड़ी ही आवश्यकता पड़ती है, पर जहाँ इतिहास की घटना जटिल सत्याभास मात्र और कपोल-कल्पित भासती है, वहाँ लाचार होकर इतिहास को बाँधकर कल्पना ही अपना पूरा अधिकार जमा लेती है।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी भी साधारणतः ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए कल्पना की थोड़ी ही आवश्यकता समझते थे, किन्तु जहाँ ऐतिहासिक सामग्री अनुपलब्ध या अल्पमात्रा में उपलब्ध है वहाँ वे कल्पना को विशेष छूट देने के पक्षपाती थे और यदि दुर्भाग्यवश ऐतिहासिक सामग्री उन्हें कपोलकल्पित मात्र अर्थात् उनके मनोनुकूल नहीं होती थी तो उनकी कल्पना उसके एकदम विरुद्ध जाने के लिए भी स्वतन्त्र थी। स्पष्टतः उनके मत का समर्थन नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक उपन्यासकार या नाटककार ह...

(शेष पृष्ठ ३६३ पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद और नियति

श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०

एक ऐसी शाश्वत और अपरिहार्य शक्ति में लोग विश्वास करते आये हैं जो क्या व्यक्ति और क्या राष्ट्र, सभी के कर्म-फलों की नियामिका है। हम में से बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने निजी अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि अनेक घटनाओं पर उनका कोई वश नहीं चलता, उन्हें घटित होने से वे रोक नहीं सकते। रामचरितमानस में तो नारद के मुख से यहाँ तक कहलवाया गया है—

"कह मुनीस हिमवन्त सुनु, जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार॥"

जन्म और मरण हमारे हाथ में नहीं। वैज्ञानिक प्रकृति पर धीरे-धीरे अधिकार करते चले जा रहे हैं किन्तु ऐसा कोई वैज्ञानिक अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ जिसने मृत्यु पर अधिकार कर लिया हो। सतत प्रयत्न करने पर भी जब कोई मनुष्य अपने प्रयत्नों में सफलता नहीं प्राप्त कर पाता तो वह एक ऐसी शक्ति की सत्ता को स्वीकार करने लगता है जिसे भाग्य, दैव, प्रारब्ध, अदृष्ट तथा नियति जैसे नामों से सामान्यतः अभिहित किया जाता है।

कवियों और विशेषतः नाट्यकारों ने अपने-अपने नायकों में इस शक्ति का चित्रण किया है। रोम और ग्रीस के नाटकों में साधारणतः यह देखा जाता है कि नायक को अपने भाग्य का पता है; वह उससे बचने के लिए अनेक प्रकार के उपाय काम में लाता है किन्तु दैव की प्रतिकूलता के कारण उसके सभी साधक प्रयत्न बाधक बन जाते हैं; भवितव्य हो कर ही रहता है। इसके विपरीत शेक्सपियर के नायकों को अपने भाग्य का पूर्व ज्ञान नहीं रहता; उन्हें भी अपनी किसी व्यक्तिगत दुर्बलता अथवा अन्य किसी कारण से नियति की चक्की में पिसना पड़ता है।

भाग्य-सम्बन्धी इस भावना को उमर खय्याम ने निम्नलिखित रूप में प्रकट किया है :—

"किसी की लौह लेखनी भाल-
शिला पर लिख जाती कुछ लेख,
न फिर फिरती पीछे की ओर,
लिखा क्या इतना तो ले देख!
न कम कर देगी आधी पंक्ति,
देख सब तेरी भक्ति, विवेक,
न तेरे आँसू की ही धार,
सकेगी धो लघु अक्षर एक!"

—(श्री बच्चन द्वारा अनूदित)

पिछली बार जब नार्थ एवेन्यू दिल्ली स्थित गवर्नमेण्ट क्वार्टर पर श्री मैथिलीशरणजी गुप्त के यहाँ चाय पीने गये तो संयोग से प्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ श्री रायकृष्णदास भी वहीं थे। बातों ही बातों में जब प्रसादजी के नियतिवाद पर चर्चा छिड़ी तो रायकृष्णदासजी ने बतलाया कि उमर खय्याम की निम्नलिखित रुबाई प्रसादजी को बेहद पसन्द थी—

"नहीं-हाँ" के प्रश्नों से व्यर्थ
दीन कन्दुक रखता कब काम?
खिलाड़ी लुढ़काता जिस ओर
चला जाता दक्षिण या वाम।
हमें भी कन्दुक-सा ही जान
वही जिसने फेंका अज्ञात,
लुढ़कने को भू पर हर ओर
हमारी जाने सारी बात।

—(श्री बच्चन द्वारा अनूदित)

उमर खय्याम की रुबाइयात की पुस्तक जब श्री प्रसादजी के हाथ पड़ जाती तो वे उलट-पुलट कर इसी रुबाई को देखा करते थे। कन्दुक का यह रूपक प्रसादजी को अत्यन्त प्रिय था। 'स्कन्दगुप्त' में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने एक स्थान पर कहलवाया है—"समय मनुष्य और स्त्री का गेंद लेकर दोनों हाथ से खेलता है।" गेंद उछल कर किधर गिरेगा, यह उछालने वाला ही जानता है। गेंद बेचारा क्या जाने ?

रायकृष्णदासजी की पहली स्त्री का जब देहान्त हुआ तो प्रसादजी ने कहा था—"नियति चैन नहीं लेने देती।" इसी प्रकार राय साहब बतला रहे थे कि जब उनके पुत्र उत्पन्न हुआ और वे आर्थिक कठिनाइयों से चिन्तित रहने लगे तो प्रसादजी समाधान के स्वर में बोल उठे थे—"आप इसके भविष्य की क्यों चिन्ता करते हैं ? यह लड़का अपना भाग्य ले कर आया है।"

और यह तो सभी जानते हैं कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जब प्रसादजी क्षय रोग से पीड़ित हुए तो उनके मित्रों ने बड़ा आग्रह किया कि वे किसी पहाड़ी स्थान पर जाकर अपनी चिकित्सा करवायें। किन्तु प्रसादजी ने उस समय भी यही उत्तर दिया था कि मैंने तो अपने आपको विश्वनाथ की शरण में छोड़ दिया है; उपचार के लिए अन्यत्र कहीं मैं नहीं जाऊँगा।

रायकृष्णदासजी की मान्यता है कि नियति के सम्बन्ध में आशावादी और निराशावादी दोनों ही प्रकार का दृष्टिकोण प्रसादजी का था।

उपर के विवेचन को पढ़ कर स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि इस विश्व में मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का क्या कोई स्थान नहीं है ? क्या ऐसी कोई दैवी शक्ति है जिसके द्वारा संसार का प्रत्येक कार्य पहले से ही निर्दिष्ट अथवा निर्धारित है ? गीताकार ने इसका उत्तर देते हुए स्पष्ट कहा है :—

"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥"

अर्थात् जगत् का प्रभु न कर्तापन रचता है, न कर्मों की सृष्टि करता है; न कर्म और फल का मेल साधता है। प्रकृति ही सब करती है।

किन्तु गीता में ही एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि किसी भी कर्म की सिद्धि के लिए शरीर, कर्त्ता, भिन्न-भिन्न साधन, भिन्न भिन्न चेष्टाएँ अथवा प्रयत्न तथा दैव—ये पाँच हेतु होते हैं :—

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्व कर्मणाम्॥
अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्॥

गीताकार का 'दैव' से यहाँ क्या तात्पर्य है ? 'दैव' से क्या यह अभिप्राय है कि किसी दैवी शक्ति ने प्रत्येक कार्य और उसका फल पहले से ही निर्दिष्ट कर दिया है ? अथवा 'दैव' का तात्पर्य यह है कि किसी भी कार्य में ऐसी बाधा उपस्थित हो सकती है जिसकी हमने कभी कल्पना भी न की थी और जिसका रोकना भी हमारे बूते के बाहर था ? बहुत सम्भव यह है कि गीताकार को 'दैव' का दूसरा अर्थ ही अभिप्रेत रहा होगा, क्योंकि पहले अर्थ का तो ऊपर उद्धृत 'न कर्तृत्वं न कर्माणि' आदि द्वारा खण्डन होजाता है।

उदाहरण के लिए कल्पना कीजिये कि किसी से मिलने के लिए हम रेल द्वारा दिल्ली की यात्रा कर रहे हैं किन्तु रास्ते में रेल का एंजिन खराब हो गया और देर से पहुँचने के कारण हम उस व्यक्ति-विशेष से न मिल सके। एंजिन का बिगड़ जाना 'दैव-योग' कहा जा सकता है। इस प्रकार के 'दैव-योग' पर व्यक्ति का वश नहीं चल सकता।

दार्शनिक सिद्धान्त की दृष्टि से भारतवर्ष कर्मवादी रहा है, दैववादी अथवा भाग्यवादी नहीं। पाश्चात्य देशों में भाग्य को अन्धा चित्रित किया गया है किन्तु भारतवर्ष का कर्मवाद कार्य-कारण की अटूट शृङ्खला से बँधा है। हाँ, यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि सैद्धांतिक रूप से हमारा देश कर्मवादी भले ही रहा हो किन्तु परिस्थिति की विवशता के कारण व्यावहारिक जीवन में हम भाग्यवादी बन गये; इस भाग्यवाद में ही हमें सान्त्वना और संतोष के दर्शन हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी में प्रयोगवाद

श्री चन्द्रशेखर दुबे, एम० ए०

इन दिनों प्रयोगवाद का नाम बहुत सुनने में आ रहा है। काव्य में तो खासकर इसकी धूम है। कहानी अभी तक इस बीमारी से बची हुई थी। लेकिन अब कहानी पर भी इस बीमारी ने हमला बोल दिया है। इसलिए कहानी के प्रेमियों को इस नये खतरे के प्रति सजग रहना आवश्यक हो गया है।

प्रश्न यह है कि इस नये खतरे की आखिर शक्ल-सूरत कैसी है? यह प्रयोगवाद है क्या?

इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं है। क्योंकि अभी तक प्रयोगवाद के मसीहा स्वयं ही इसकी रूप-रेखा के बाबत में एक मत नहीं हैं। इसलिए बहतर यही होगा कि हम यह देखें कि कहानी पर इस बीमारी का क्या असर हुआ है? आज की कहानी में और पहले की कहानी में क्या खास फर्क पैदा हो गया है?

मौजूदा कहानी का कोई भी पाठक यदि जरा सी सावधानी से काम ले तो इस बीमारी के चिह्नों को कहानी में आसानी से पकड़ सकता है। जरा सी सावधानी की बात मैं यूँही नहीं कह रहा हूँ। आज की कहानी पाठक के सामने बड़ी बन-ठन कर आती है। लच्छेदार शब्दावली, नई-नई उपमाएँ व अनूठे वाक्य-विन्यास के कारण आज की कहानी सहज ही पाठक को लुभा लेती है। पाठक को छलना अब कहानी के लिए आसान हो गया है। कहानी के पाठक की शुरूआत में ठीक वही हालत होती है जो कि एक राहगीर की आधुनिक वेश-भूषा से सुसज्जित; पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक, नेलपालिश आदि न जाने क्या-क्या बनाव सिंगार के साधनों से लिपी-पुती उच्च वर्ग की आधुनिक शहरी रमणी पर एक उड़ती नजर डाल कर होती है। कहानी का पाठक भी आधुनिक कहानी को देख कर पहले पहल प्रभावित हो जाता है। यह बात पृथक है कि अन्त तक वही प्रभाव रहता भी है या नहीं?

कहानी का पाठक पूरी कहानी को पढ़ जाने के बाद अपने को ठगा सा, लुटा सा अनुभव करता है। उसकी हालत विचित्र हो जाती है। उसे कहानी अच्छी भी लगती है, अच्छी नहीं भी लगती है। कहानी पर जब उसकी राय माँगी जाती है तो वह कुछ नहीं कह पाता है। हाथ मलता रह जाता है। कहानी का जादू उस पर चढ़ता जाता है, मगर उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता है। पहले की कहानी उसके मन में हलचल मचा जाती थी, उसको सोचने की सामग्री दे जाती थी; मगर आधुनिक कहानी उसे देती कुछ नहीं है, उल्टे चक्कर में डाल देती है। वह सोचता ही रह जाता है कि आखिर इस कहानी में है क्या? लेखक कहना क्या चाहता है? यह कहानी है भी या नहीं?

हाँ, तो आधुनिक कहानी, कहानी है भी या नहीं?—यही प्रश्न आज हर कहानी प्रेमी के मस्तिष्क को मथने लगा है। लिहाजा हम कह सकते हैं कि—यही वह खास फर्क है जो आधुनिक कहानी में आगया है। प्राचीन कहानी, कहानी थी और आधुनिक कहानी, कहानी नहीं रही है या धीरे-धीरे कहानी से हटती जा रही है।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि आधुनिक कहानी, कहानी क्यों नहीं रही है? कहानी के रूढ़िवादी हिमायती इस प्रश्न का उत्तर कहानी परम्परागत परिभाषा दे कर व कहानी के तत्वों को पेश कर, आधुनिक कहानी को इस कसौटी पर खरी न उतरने वाली साबित कर देना चाहेंगे। मगर मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मैं रूढ़िवादी नहीं हूँ। मैं बदलती हुई सामाजिक परिस्थिति व बदलते हुये समाज के आर्थिक ढाँचे के अनुसार कहानी के रूप व आत्मा में परिवर्त्तन अवश्यम्भावी मानता हूँ। प्रत्येक युग की अपनी समस्याएँ होती हैं व उनका असर उस युग के साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पड़े बिना नहीं रहता है। इतना सब होते हुये भी में कहानी के सभी तत्त्वों में से 'कथानक' को कहानी के लिए हमेशा अत्यन्त आवश्यक मानता हूँ। कथानक (Plot) को मैं कहानी का प्राण या रीढ़ की हड्डी (Back-Bone) मानता हूँ। कथानक विहीन कहानी, मेरी दृष्टि में कहानी कहलाने की अधिकारिणी ही नहीं रहती है।

आधुनिक कहानी धीरे-धीरे कथानक विहीन सी होती जा रही है। कथानक का स्थान आधुनिक कहानी में गौण या नगण्य-सा हो गया है। यही प्रयोगवाद रूपी बीमारी का खास लक्षण है। यही शिकायत मुझे, व मैं समझता हूँ मुझ जैसे हजारों कहानी प्रेमियों को आधुनिक कहानी से है।

प्रयोगवादी, प्रयोग के नाम पर कहानी को लच्छेदार शब्दावली, निराली उपमाएँ, अनूठे वाक्य-विन्यास, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व नई टेकनीक आदि के द्वारा उलझनों का एक व्यूह-सा बना कर पेश करते हैं। वे कथानक की जरा भी परवाह नहीं करते हैं। कथानक को वे कहानी के लिए अनावश्यक-सा बोझ व बन्धन बताते हैं। कहानी का कथानक से सम्बन्ध विच्छेद कर वे प्रगति, प्रयोग व स्वतन्त्रता आदि के नारे लगाते हैं। लेकिन उनकी यही हरकत कहानी को बेजान बना देती है। उनकी यह करतूत मुर्दे को बेशकीमती गहने व कपड़े पहनाने जैसी होती है।

मेरी इस बात का यह मतलब नहीं है कि मैं कहानी में उपरोक्त बातों को बुरा समझता हूँ। बल्कि मैं तो कहानी के लिए ऊपर बतलाई सभी बातों को अत्यन्त आवश्यक मानता हूँ। लच्छेदार शब्दावली, निराली उपमाएँ, अनूठा वाक्य विन्यास, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व टेकनीक के नये प्रयोग सभी कहानी को आकर्षक व सजीव बनाने में सहायक होते हैं। लच्छेदार शब्दावली, निराली उपमाएँ व अनूठे वाक्य-विन्यास कहानीकार के कौशल को ही नहीं बतलाते हैं, बल्कि इनसे कहानी में अनूठा आकर्षण पैदा हो जाता है। ठीक यही बात मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व टेकनीक के नित-नूतन प्रयोगों के बाबत भी कही जा सकती है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने कहानीकार के लिए एक नया ही क्षेत्र खोल दिया है। साथ ही युग की बदली हुई परिस्थितियों के चित्रण के लिए टेकनीक के नूतन प्रयोग व वक्त का तकाजा बन गये हैं।

इस तरह उपरोक्त सभी बातों का महत्व है व वे कहानी के लिए अत्यन्त आवश्यक भी हैं, लेकिन इससे कहानी में कथानक का महत्त्व किसी भी तरह कम नहीं हो जाता है। उपरोक्त सभी बातें यदि कहानी के लिए आभूषण हैं, तो कथानक कहानी की जान ही है। मगर आभूषणों के मोह में, कहानी की जान को भुला देना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। आभूषण के भार से कहानी का दम ही निकाल लेना युक्ति-सङ्गत नहीं कहा जा सकता। गहने शरीर के लिए होते हैं, न कि शरीर गहनों के लिए। गहने सौन्दर्य-वृद्धि के साधन हैं न कि साध्य।

इसलिए आज के प्रयोगवादी का कहानी के उपरोक्त भूषणों को ही कहानी समझना एक भयङ्कर भूल है। उसकी हालत आज ठीक उस अलङ्कारवादी जैसी ही है, जो काव्य को भूलकर अलङ्कार को ही सब कुछ मान बैठा था। या यदि वह यह मानने के लिए तैयार न हो तो, उसका कथानक से जी चुराना, हमारी दृष्टि में उनकी बुद्धि का दिवालियापन ही घोषित करता है। उसके पास कहने को कुछ नहीं है; इसलिए वह उपरोक्त भूषणों की आड़ लेकर अपने खोखले पन को छिपाना चाहता है। क्योंकि कथानक-विहीन रचना को यदि वह कहानी न कह कर शब्द-चित्र, रेखा-चित्र, स्केच या इसी तरह और कुछ कहता तो हमें ऐतराज न होता। मगर दुःख तो यह है कि वह अपनी ऐसी रचनाओं को कहानी कहकर पेश कर रहा है। किन्तु मैं तो किसी भी तरह की कहानी के लिए—कथानक की डोर आवश्यक समझता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृत भाषा का स्वरूप और गाथा सप्तशती

श्री हरिशङ्कर तिवारी एम० ए०

भारतवर्ष में प्राकृत भाषा का प्रादुर्भाव कब, कैसे और कहाँ हुआ? इस सम्बन्ध में कोई विश्वस्त और निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इतिहास एवं साहित्य के प्राप्त ग्रन्थों के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि प्राकृत का प्रयोग बोलचाल की भाषा में ईसा के कुछ पूर्व या पश्चात् अवश्य होने लगा था। उस समय प्राकृत देश के किसी एक प्रान्त अथवा एक भाग की भाषा न थी, अपितु इसका प्रयोग कुछ हेर-फेर के साथ सर्वत्र होता था। दक्षिण में महाराष्ट्र प्रदेश से लेकर उत्तर में अवध तक और पूर्व में बिहार से लेकर सौराष्ट्र प्रदेश के पश्चिमी भाग तक प्राकृत जन-साधारण की बोलचाल की भाषा बन गई थी।

ईसा की प्रथम शताब्दी में प्राकृत काव्य के क्षेत्र में उतर चुकी थी। हाल कवि की 'गाथा सप्तशती' का निर्माण इसी शताब्दी में हुआ। इसके अतिरिक्त भी कुछ छिटपुट रचनाएँ होती रहीं होंगी। पर प्राकृत का एक स्निग्ध और काव्यमय स्वरूप लेकर गाथा सप्तशती ही अवतरित हुई।

प्राकृत के स्वरूप निर्णय के सम्बन्ध में अनेकों विद्वानों के अनेक मत हैं। कुछ लोगों के कथन के अनुसार संस्कार-गुण विवर्जित भाषा प्राकृत माननी चाहिए। इस विज्ञप्ति के लिए यह श्लोक—

"एतदेव विपर्यस्तं संस्कार गुण विवर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम्॥"

बहुत प्रसिद्ध है। कुछ विद्वान् इस मत का खंडन करते हुए प्राकृत को दैवी भाषा मानते हैं। उनके मत के अनुसार प्राकृत का प्रयोग अनादि काल से होता चला आ रहा है। इसी पक्ष के समर्थन में, भर्तृहरि "दैवी वाक् व्यवकीर्णेयम् शक्तरभिधातृभिः" कह कर अपना मत प्रगट करते हैं। पर बारहवीं शताब्दी में होने वाले सुप्रसिद्ध विद्वान हेमचन्द्राचार्य इस मत को भी नहीं मानते। उनके विचार से 'प्रकृतिः संस्कृतम्, तत्रभवं प्राकृतम्' अर्थात प्रकृति ही संस्कृत है और संस्कृत से प्रादुर्भूत हुई भाषा प्राकृत है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान इस मत का भी विरोध करते हैं। वे प्राकृत को वेद मूलक भाषा मानते हैं। इसमें लिङ्ग, वचन और विभक्तियों का प्रयोग पूर्ण रूप से वैदिक भाषा के प्रयोगों जैसा ही होता है। प्राकृत के 'अम्हे' और वैदिक भाषा के 'अस्मे' आदि वेदों में अत्यधिक साम्य दिखाई पड़ता है। अतः लौकिक संस्कृत का जन्म प्राकृत के ही गर्भ से मानना चाहिए। आगे चल कर कुछ मनीषियों ने इस मत को भी काट दिया और 'स्वभावेन सिद्धं प्राकृतम्' कह कर अपने मत का विज्ञापन करना आरम्भ किया। इन विद्वानों के कथनानुसार व्याकरण के पंडितों ने प्राकृत को ही काट छाँट एवं तराश कर संस्कृत का नव-निर्माण किया। पर साम्प्रदायिक विचारकों के मतानुसार प्राकृत न तो दैवी वाक् है, न स्वभाव सिद्ध और न वेद-मूलक ही। क्योंकि यदि दैवी वाक् मान लिया जाय तो इसके आन्तरिक और बाह्य स्वरूपों में किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए। दैवी स्वभाव में कभी विरूपता नहीं होती। अग्नि में उष्णता दैवी स्वभाव है उसमें शीतलता कभी नहीं होती। पर प्राकृत भाषा में विरूपता स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। देश भेद के साथ इसके उच्चारण में विविध प्रकार के परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। महाराष्ट्र प्रदेश में बोली जाने वाली प्राकृत का जैसा उच्चारण होता है, वैसा शूरसेन, मगध और अवन्ति इत्यादि प्रान्तों में बोली जाने वाली प्राकृत का नहीं होता। अतः इस विरूपता के कारण इसे दैवी वाक् नहीं कह सकते। दूसरे पक्ष में यदि इसे स्वभाव-सिद्ध भाषा मान लिया जाय तो कोई न कोई इसका स्वभाव अवश्य होना चाहिए। पर इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभाव का भी कुछ पता नहीं चलता। इसलिए 'स्वभावेन सिद्धम् प्राकृतम्' का सिद्धान्त भी अमान्य ही समझना चाहिए। अब रही इसके वेदमूलक भाषा होने की बात। यह बात भी ठीक ढङ्ग से नहीं जँचती। क्योंकि यदि इस भाषा को वैदिक भाषा से उत्पन्न हुई मानते हैं तो पाणिनीय इत्यादि व्याकरणों की पूर्ण रूप से अपूर्णता प्रतीत होती है। साथ ही भाषा सम्बन्धी सम्पूर्ण सृष्टि में उथल-पुथल मच जाने की सम्भावना होने लगती है। अतः इस मत को स्वीकार करना किसी भी प्रकार समीचीन नहीं जान पड़ता। ऐसी स्थिति में केवल एक ही मत ऐसा है, जिसके मान लेने पर किसी प्रकार का विरोध एवं भाषा विषयक किसी प्रकार की विशृङ्खलता उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रह जाती, और वह मत है हेमचन्द्राचार्य का—'प्रकृतिः संस्कृतम् ततः आगतं प्राकृतम्'। गीत गोविन्द और शकुन्तला में प्रसिद्ध इन उक्तियों से—'संस्कृतात्प्राकृतं श्रेष्ठं ततोऽपभ्रंश भाषणम्'—भी यही प्रमाणित होता है कि संस्कृत से प्राकृत श्रेष्ठ और उससे उत्पन्न हुई अपभ्रंश भाषा है। प्राकृत की श्रेष्ठता का प्रमाण 'प्राकृत मञ्जरी' में भी मिलता है। 'व्याकर्तुं प्राकृतत्वेन गिरः परिणतिं गताः" इस मत के अनुसार भाषा में परिवर्तन प्राकृतत्व अर्थात् संस्कार के द्वारा ही होता है। इसलिए इसके वेदमूलकत्व के लिए कोई प्रमाण नहीं रह जाता। समग्र रूप से विचार करने पर यही प्रमाणित होता है कि प्राकृत वह भाषा है जिसका जन्म संस्कृत से हुआ और जिसमें अधिक से अधिक रमणीयता और लालित्य पाया जाता है।

प्राकृत भाषा की रमणीयता, सुकुमारता और उसके लालित्य पर मुग्ध होने वाले कुछ विचारकों का यह कहना है कि प्राकृत वास्तव में स्त्रियों की भाषा है। सब से पहिले स्त्रियों ने इस भाषा का प्रयोग करना आरम्भ किया। बात बहुत हद तक सही भी जान पड़ती है। संस्कृत के अधिकांश नाटकों में स्त्री पात्र प्राकृत में ही बातचीत करते हैं। इसके गुण-स्वभाव भी ठीक स्त्रियों जैसे ही लक्षित होते हैं। प्राकृत की मनोहारिता और रमणीयता की उपपत्ति में—

अहो तत् प्राकृतं हारि प्रिया वक्त्रेन्दु सुन्दरम्।
सूक्तयः यत्र राजन्ते सुधानिष्पन्द निर्झराः॥

यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है। इसके अनुसार प्राकृत भाषा में वही मनोहारिता, सुकुमारिता और सरसता वर्तमान है जो प्रिया के चन्द्रमुख में रहती है। प्राकृत भाषा में प्रयुक्त उक्तियाँ उतनी ही मधुर होती हैं, जितनी चन्द्रमा से झरती हुई पीयूष धारा। प्राकृत की सुकुमारता का समर्थन प्रसिद्ध कवि राजशेखर भी करते हैं। उनकी इस उक्ति के अनुसार कि—

परुसा सक्किअबन्धा, पाउदबन्धो बि होइ सुउमारो।
पुरुस महिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअ निमाणं॥

संस्कृत और प्राकृत के गुण और स्वभाव में उतना ही अन्तर है जितना पुरुष और स्त्री में। भावार्थ यह है कि संस्कृत में पुरुष जैसी कठोरता और प्राकृत में स्त्री जैसी सुकुमारता विद्यमान है। चाहे जो हो प्राकृत-भाषा अत्यन्त कोमल, अत्यन्त ललित और अति सुकुमार भाषा है। इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं। प्राकृत में प्रसिद्ध मधुरोक्तियाँ किसी से छिपी नहीं हैं और वे सर्वथा इसके मधुर और ललित स्वरूप को स्पष्ट कर देती हैं।

यों तो प्राकृत भाषा में फुटकल रचनायें बहुत पहिले से ही होती चली आ रही थीं और बहुत पहिले से इसमें सरस उक्तियों का प्रयोग होता चला आ रहा था, पर इसके काव्यमय स्वरूप का दर्शन ईसा की प्रथम शताब्दी में या उसके बाद से होना आरम्भ हुआ। हाल कवि की सतसई जिसे 'गाथा सप्तशती' भी कहते हैं, ईसा की प्रथम शताब्दी में बनी। गाथा सप्तशती प्राकृत भाषा में लिखी गई और इसका प्रणयन ईसा की प्रथम शताब्दी में हुआ, इसकी उपपत्ति हमें कथा सरित-सागर में मिलती है। यहाँ कहा गया है कि ईसा की पहिली शती में 'सातवाहन' नाम का एक राजा हुआ जिसने अनेक ग्रन्थों से चुन-चुन कर गाथा सप्तशती का संग्रह किया। प्रबन्ध कोष में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनमत के प्रवर्तक महावीर स्वामी के मोक्ष प्राप्त होने के ४७० वर्ष बाद राजा विक्रमादित्य का समय निर्धारित किया गया है और उसी के समकालीन सातवाहन की कल्पना की गई है। इस दृष्टि से देखने पर भी सातवाहन का होना ईसा की प्रथम शताब्दी में ही सिद्ध होता है। अब रहा प्रश्न सातवाहन और हाल का। 'जगत्यां प्रथिता गाथा, सातवाहन भूभुजा' के अनुसार 'गाथा' का निर्माणकर्त्ता सातवाहन ही सिद्ध होता है। राज शेखर सूरि के प्रबन्ध कोष में यह उक्ति भी मिलती है—

"उत्तर ओ हिमवन्तो

दाहिणो शालवाहनो राआ" अर्थात् दक्षिण प्रदेश में शालवाहन नाम का कोई राजा था। यह शालवाहन या साल वाहन सात बाहन का ही रूपान्तर जान पड़ता है। आगे चल कर 'साल' के रूप में भी विकृति हो गई और 'साल' का 'हाल' रूप बन गया। यदि ऐसा परिवर्तन हो भी गया हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। 'साल' का 'हाल' हो जाना 'साला हणाम्मि हालो' इत्यादि प्राकृत की उक्तियों से भी प्रगट है। दूसरे प्रकृति का विकृत रूप होना ही प्राकृत का स्वरूप माना जाता है। अतः यह निर्विवाद जान पड़ता है कि यह 'हाल' सातवाहन का ही नामान्तर है।

गाथा सप्तशती के अन्तिम श्लोक के अनुसार भी इस सतसई का निर्माण हाल कवि के द्वारा ही सिद्ध होता है, यथा—

इअ सिरिहाल विरइए पाउअ कव्वामि सत्तसए,
सत्तम सअ समत्तं गाहाणँ सहावर मणिज्जम्।

और यह 'हाल' 'साल' का ही दूसरा रूप है, इसके प्रमाण में प्राकृत का यह श्लोक प्रसिद्ध है—

एसो कविणामङ्किअ गाहापड़िवद्ध वड्ढिआ माओ
सत्तसअओ समत्तो साहाहण विरइओ कोसो।

अर्थात इस सप्तशतक कोष के समाप्त कर्त्ता सालवाहन ही हैं। इन अनेक प्रमाणों के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि 'गाथा' की रचना प्राकृत में और ईसा की पहिली शताब्दी में हुई। इसके संग्रहकर्त्ता हाल या सालवाहन नाम के कवि थे।

प्राकृत भाषा के उद्भव और रूप का विवेचन कर लेने के बाद हमारा ध्यान इस भाषा की साहित्यिक और काव्यात्मक रमणीयता की ओर आकर्षित होता है। प्राकृत का साहित्यिक और काव्यमय स्वरूप बड़ा ही मोहक और मनोरम है। पहिले चर्चा की जा चुकी है कि प्राकृत वह भाषा है—'सूक्तयः यत्र राजन्ते सुधानिष्पन्दनिर्झराः' अर्थात जहाँ सुन्दर उक्तिओं से अमृत के निर्झर प्रवाहित होते रहते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्राकृत के बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही रूप अत्यन्त हृदयग्राही हैं।

अब प्राकृत साहित्य की कतिपय निजी प्रवृत्तियों का विचार कर लेना भी आवश्यक जान पड़ता है। प्राकृत का साहित्य बहुत प्रशस्त तो नहीं पर इसमें भावात्मक गहराई बहुत अधिक है। इसके अथाह सरोवर में चमत्कार भरी उक्तियों की चञ्चल तरंगें मन को आकर्षित किये बिना नहीं रहतीं। रस का परिपाक जितना पुष्ट रूप से प्राकृत साहित्य में हुआ है, उतना सम्भवतः अन्य किसी भी परवर्ती साहित्य में न हो सका। प्राकृत का काव्यमय माधुर्य अत्यन्त ही आस्वाद्य है। रस राज शृङ्गार को ही इस साहित्य ने अपने हृदय में प्रमुख स्थान दिया।

प्राकृत काव्यों की सरसता और शृङ्गारिकता के प्रमाण में 'गाथा' का एक श्लोक साफ शब्दों में कहता है—

अमिअं पाउअ कव्वं
पढ़िउं सोउं जेण आणन्ति
कामस्स तत्ततान्ति कुणन्ति
ते कहं ण लज्जन्ति।

अर्थात् जो लोग अमृत सदृश प्राकृत काव्य पढ़ना और सुनना नहीं जानते, काम शास्त्र के तत्वों की चिन्ता करते हुए वे लज्जित क्यों नहीं होते। इससे स्पष्ट है कि प्राकृत काव्यों में शृङ्गार की परम्परा काम शास्त्र से ही आई होगी। प्राकृत काव्यों में केवल शृङ्गार रस की ही अधिकता नहीं अपितु अलङ्कारों की छटा भी कुछ कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर्षक नहीं है। 'गाथा' की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए एक श्लोक में यह भी कहा गया है कि—

सत्त सताइं कइ वच्छलेण,
कोडीअ मज्झ आरम्भि
हालेण विरइ आइं
साल काराणँ गाहाणम्।

अर्थात् अलङ्कार पूर्ण कोटि गाथाओं के बीच कवि वत्सल हाल ने सात सौ गाथाओं का निर्माण किया। इस उक्ति से यह स्पष्ट है कि 'गाथा' की रचना अन्य रचनाओं की अपेक्षा जान बूझ कर आलङ्कारिक भाषा में की गई है। 'गाथा' के प्रणयन में कवि ने जिन अनेक अलङ्कारों से इसे सजाया है, उनमें वक्रोक्ति की छटा अद्‌भुत है। गाथा के अधिकांश श्लोकों में वक्रोक्ति और व्यङ्ग की शोभा अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। नायिका भेद का जैसा मनोहारी वर्णन संयोग और वियोग पक्ष की दशाओं का निरूपण सप्तसती के श्लोकों में लक्षित होता है, अन्यत्र दुर्लभ है। लक्षणा और व्यञ्जना वृत्तियों की रमणीयता तो सर्वत्र ही दिखाई पड़ती है। 'सप्तशती' के एक श्लोक में व्यञ्जना की रमणीयता देखिए—

रन्धण कम्मणि उणिए,
मा जूरसु रत्तपाडल सुअन्धम्।
मुहँ मारुअं पिअन्तो,
धूमाइ सिही ण पजलइ॥

अर्थात् "हे रन्धन कर्म में निपुण प्रिये! क्रोध न करो। रक्तपाटल कुसुम के सौरभ से युक्त तुम्हारे मुख मारुत को पीती हुई अग्नि जलती नहीं है, केवल धुआँ ही प्रगट कर रही है।" भावार्थ यह कि अग्नि, तुम्हारे अधरों से निसृत पवन-पान के लोभ से धुआँ प्रगट करती है; प्रज्वलित हो जाने पर वह सौरभ भरा पवन उसके लिए असम्भव हो जायगा। दूसरी ओर व्यञ्जनार्थ यह प्रगट होता है कि 'हे प्रिये! मैं तुम्हारे मुख को देखने के लिए आया, किंतु तुम मेरी ओर तनिक भर भी नहीं देखती हो।' किसी धार्मिक व्यक्ति के प्रति किसी कुलटा नायिका का उपालम्भ देखिए। धार्मिक करञ्ज वृक्ष की शाखा से दातून तोड़ रहा है, पर वह करंज ही नायिका का सकेत-स्थल है। नायिका धार्मिक से कहती है—

भञ्जन्तस्स वि तुह सग्ग गामिणो,
णइ करंज साहा ओ।
पाआ अज्ज वि धम्मिअ
तुह कहँ धरणिं विअ छिवन्ति॥

अर्थात् 'हे स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखने वाले धार्मिक इतनी ऊँचाई पर करंज शाखा को तोड़ते हुए तुम्हारे पाँव पृथ्वी पर क्यों पड़ रहे हैं?' तात्पर्य यह कि ऐसा कर्म करने वाले हे धार्मिक तुम्हें आज ही मर जाना चाहिए। इस प्रकार की व्यंग्योक्तियों के अतिरिक्त वियोग पक्ष की करुणा-भरी रमणीयता भी देखने योग्य है:—

पिअ संभरण पलोट्टन्त
वाह धाराणि वाह भी आए।
दिज्जइ वंकग्गी वाए
दीवओ पहिअजाआए॥

नायिका सन्ध्या समय दीपक हाथ में लेकर निकलती है। उसी समय उसे अपने प्रवासी प्रियतम की सुधि आ जाती है। वह आँसुओं की धारा से दीपक बुझने का भय समझ कर झट अपनी ग्रीवा को टेढ़ी कर लेती है। इस प्रकार तिर्यक कण्ठ होकर वह दीपक आगे बढ़ाती है। यहाँ नायिका की इस मरोड़ मुद्रा में कवि ने दुहरी शोभा की झाँकी ली है। एक ओर उसके हृदय की विरह जन्य करुणा लक्षित होती है तो दूसरी ओर उसकी तिर्यक दृष्टि की रमणीयता की सृष्टि होती है। तनिक और आगे बढ़कर प्रियतम-चुनाव में किसी नायिका की हार्दिक कामना पर मनन कीजिए—

ता मज्झिमो विअ वरं
दुज्जण सुअणेहिं दोहिं वि ण कज्जम्।
जह दिट्ठो तवइ खलो,
तहे अ सुअणो अईं सन्तो॥

अर्थात् 'मुझे मध्यम नायक ही प्रिय है, दुर्जन और सुजन दोनों से मुझे काम नहीं। क्योंकि दुर्जन प्रत्यक्ष होकर कष्ट देता है और सुजन परोक्ष होकर सन्ताप का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण बनता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'मिलत एक दारुण दुख देहीं; बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं' कह कर सम्भवतः इसी आशय का समर्थन किया है।

अब तनिक गाथा की दूसरी प्रवृत्तियों पर भी दृष्टि फेरिए। नैतिक और लोक प्रसिद्ध उक्तियों के कथन में भी गाथा के कवि ने चूक नहीं की है। यद्यपि ये सुभाषित गाथा में नायक-नायिका के स्नेह सिंचित क्षेत्र के अन्तर्गत ही आरोपित किये गये हैं, तथापि इनका स्वतन्त्र अस्तित्व साधारण जीवन में भी लागू होता है। यह एक लोक प्रसिद्ध बात है कि—

उप्पाइअ दव्वाणँ वि खलाणं,
को भाअणं खलो च्चेअ।
पक्काइँ वि णिम्ब फलाइँ,
णवरं काअणहिं खज्जन्ति।

'अर्थात् दुष्टों द्वारा उपार्जित धन का पात्र, दुष्ट के अतिरिक्त दूसरा नहीं होता; जिस प्रकार नीम के पके फलों का भोक्ता केवल कौआ ही होता है।' लोकोक्ति का एक दूसरा उदाहरण लीजिए—

सो अत्थो जो हत्थे,
तं मित्तं जं णिरन्तरं वसणे।
तं रूअं जत्थ गुणा
तं विण्णाणं जहिं धम्मो॥

'अर्थात् वही धन है जो हाथ में हो, वही मित्र है जो विपत्ति में काम आवे; वही रूप है जिसमें गुण हों और वही ज्ञान है जो धर्म के सहित हो।' आगे एक सुजन के स्वभाव का परिचय लीजिए—

सुअणो ण कुप्पइ च्चिअ
अह कुप्पइ विप्पिअं ण चिन्तेइ।
अह चिन्तेइ ण जम्पइ
अह जम्पइ लज्जिओ होइ।

अर्थात् सज्जन व्यक्ति पहले तो क्रोध नहीं करता और करता भी है तो अप्रिय नहीं सोचता। यदि किसी कारण वश अप्रिय सोच भी लेता है तो उसे मुख से प्रगट नहीं करता और जब वह उसे प्रगट कर देता है तो स्वयं लज्जित भी होता है। इसी प्रकार के अनेक सुभाषित गाथा में भरे पड़े हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा ले सकता है। जीवन से सम्बन्ध रखने वाली और निशदिन के उपयोग में आने वाली बहुत बड़ी बड़ी बातें गाथा में कही गई हैं पर उनके कहने की शैली में क्या विशेषता है, इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। सम्पूर्ण गाथा में अन्योक्ति शैली का प्रयोग किया है। अधिकांशतः नायक नायिका की अन्तर्दशाओं और रूप के वर्णन तथा उनमें एक दूसरे के प्रति अनुरागातिशय उत्पन्न कराने के काम में दूती का ही विशेष हाथ है वही सन्देश वाहिका बन कर एक की बात दूसरे तक पहुँचाती है। वह अपने दौत्य कार्य में इतनी दक्ष दिखाई पड़ती है कि एक साधारण बात को भी अन्योक्ति के सहारे अत्यन्त प्रभाव युक्त बना देती है। कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ दूती के बिना भी काम चल गया है, पर वे बहुत कम हैं। ऐसे स्थलों में नायक ने अपने मित्र के द्वारा काम निकाल लिया है और नायिका ने अपनी अन्तरङ्ग सखी के द्वारा।

नायिका भेद का वर्णन करते हुए गाथाकार की दृष्टि सभी पहलुओं पर गई है। उसने उत्तम से उत्तम और अधम से अधम सभी प्रकार के नायक नायिकाओं का चित्र खींचा है। अनेक स्थलों पर ये चित्र शृङ्गार की चरम सीमा तक पहुँच गये हैं। फिर भी उक्ति वैचित्र्य के खाके में अङ्कित होने के कारण बीभत्स होने से बच गये हैं। उनकी अर्थ रमणीयता ही आकर्षण का कारण बन गई है।

इस प्रकार गाथा सप्तशती की सम्पूर्ण रचना महाराष्ट्री प्राकृत की मनोरम और मधुर भाषा में होकर साहित्य के लिए ईसा की प्रथम शताब्दी की अद्भुत देन है। इस सप्तशती के कारण प्राकृत साहित्य और प्राकृत भाषा भी यशस्वी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की हिमायत

श्री मा० ब० राय 'चतुरानन' बी० ए० आनर्स, सा० रत्न

'साहित्य-सन्देश' के पिछले अङ्कों में श्री एन० अय्यप्पन नायर की 'मलयालम की चुनौती' तथा श्री गोबद्धन शर्मा एम० ए०, साहित्य-रत्न का 'राजस्थानी का नम्र निवेदन' पढ़ने को मिले। हमें मानवीकरण के ऐसे सूत्र अपने पूर्वज एवं संस्कृत के आदिकवि वाल्मीकि मुनि की कविता में भी मिल जाते हैं, यथा—

"नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायणम्॥"

अतः देशी भाषाओं के वर्त्तमान या प्राचीन कवियों का अपने पूर्वजों से प्रेरणा ले कुछ नवीन उद्भावनाओं में प्रवृत्त होना स्वाभाविक ही है। किन्तु यह मानना होगा कि हमारा कवि-समाज मध्यकाल में प्रकृति से कुछ दूर जा पड़ा था और जब छायावादी युग में उसका प्रकृति के साथ सम्बन्ध-सूत्र फिर से सुदृढ़ हुआ, तब भी ऐसे चित्र वह न दे पाया; **जिनमें नागरिकता बाधक थी। तथापि, मैं हिन्दी को उक्त चुनौती का उचित उत्तर देने में समर्थ पाता हूँ। लम्बी-चौड़ी भूमिका में क्यों भरमाऊँ? ठीक मतलब की** ही बातें करता हूँ।

१—प्रियतम के दर्शन एवं आलिङ्गन से प्रियतमा को रोमाञ्च स्वेद-सात्विक हो जाता है। कुछ ऐसी ही दशा, हमारे ब्रज भाषा के सुकुमार कवि स्व० मानसिंह 'द्विजदेव' जी ने, पृथ्वी की लक्ष्य की है। ऋतुराज बसन्त के आगमन से वह ऐसी हर्षित हुई कि पुलक से भर तथा स्वेद-सलिल से भींग मानो अपनी काम-चेष्टा की सूचना-सी देने लगी—

"नहीं नव अंकुर ये सरसात।
धरयो छिति हूँ कछु कण्टकगात॥
रहे नहिं ओस के बुन्द बिराजि।
प्रसेद के बुन्द रही छिति छाजि।

अर्थात् 'यह जो दिखाई पड़ते हैं, वह नए नए अंकुर तथा उन पर ओस की बूँदें नहीं हैं; बरञ्च पृथ्वी-सुन्दरी भी कुछ पुलकित एवं रोमांचित हो रही है, यह उसी की कंटकित रोमराजी तथा प्रस्वेद बिन्दु हैं जिनसे वह शोभा संयुक्त है।' यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कितने सफल एवं संयत रूप से कवि ने यह गूढ़ बात प्रकट की है।

(२) मलय पवन लक्ष्य करके दिगन्त से कहता है कि प्राची-सुन्दरी रात मधुवन-विहार से फिर कर आयी है, वह कितनी शरमाई हुई-सी देख रही है! उसमें आलस्य की अँगड़ाई समा गई है! कवि 'प्रसाद' की इस मार्मिक उक्ति की भी तनिक बानगी ले देखिए—

"कहता दिगन्त से मलय पवन,
प्राची की लाज-भरी चितवन।
है रात घूम आई मधुवन,
यह आलस की अँगड़ाई है!"

(३) अब ज़रा 'बसन्त-रजनी' अभिसारिका का मोहक शृङ्गार तथा उत्कण्ठिता आगत-पतिका 'अवनी' की भी एक झाँकी देख लें जिनसे श्रीमती महादेवीजी की निम्न पंक्तियाँ कितनी सुरुचिपूर्ण, भाव एवं कला-पक्ष की दृष्टि से कितनी उत्कृष्ट हो उठी हैं! मलयालम के तीसरे उदाहरण से मिलान कीजिये—

"धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ बसन्त-रजनी!
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीशफूल कर शशि का नूतन,
रश्मिवलय सित घन अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी!
पुलकती आ बसन्त-रजनी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिहर-सिहर उठता सरिता-उर,
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,
मचल-मचल आते पल फिर-फिर,
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी !
सिहरती आ बसन्त-रजनी !"

अन्त में मैं 'द्विजदेव' जी की निम्न उद्धृत अछूती उत्प्रेक्षा का नमूना उपस्थित करता हूँ जिसको सभी प्रशंसा करेंगे—

"कुञ्ज-गृह मंजु मधु मधुप अमन्द राजैं,
तामैं कालिह स्यामै विपरीति रति रॉंची री।
'द्विजदेव' कीर कलकंठन की धुनि जैसी,
तैसियै अभूत भाई सूत धुनि माची री॥
लाज बस बाम छाम छाती पै छलाके मानो,
नाभि-त्रिबली तें दूजी नलिनि उमाची री।
उपमा हुतो पै मानी दे रतन साँची या तें,
बिधिहिं सतावै अजौं सकुचि-पिसाची री॥"

अर्थात् सुन्दर चैत्र मास में मंजुल कुञ्ज-गृह में चञ्चल-मुखर भ्रमर शोभित होते, उसी में कल श्याम ने (नायिका के साथ) विपरीत-रति का अनुष्ठान किया। 'द्विजदेव' कवि कहते हैं जैसी शुक-पिक कल-रव की सुन्दर ध्वनि हो रही थी, कुछ वैसी ही (नायिका की) घुँघरुदार करधनी की भी अपूर्व सुहानी झनकार मच गयी। लज्जा से सहमती रमणी प्रियतम के कृश वक्षस्थल पर ऐसी शोभित हो रही थी मानों नाभि-समीपस्थ उदर-रेखा से दूसरी कमलिनी उत्पन्न हो गयी हो।

(पृष्ठ ३८२ का शेषांश)

हास के शून्य को कल्पना से अवश्य भर सकता है किन्तु ऐसा करने में वह इतिहास के विरुद्ध नहीं जा सकता, न ऐतिहासिक व्यक्तियों पर नवीन एवं काल्पनिक व्यक्तित्व का ही आरोप कर सकता है। उसे पर्याप्त अध्ययन एवं शोध के उपरांत ही अपनी कलम उठानी चाहिए। गोस्वामीजी में इसका अभाव था। उनके ऐतिहासिक पात्र भी उपन्यासों में नया जामा पहनकर आये हैं। गम्भीर ऐतिहासिक ज्ञान न होने के कारण कई स्थानों पर घटनायें देशकाल के अनुरूप नहीं हो सकी हैं। अतः यह कथन ठीक ही है कि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वे अधिक सफल नहीं हुए हैं।

उनके विरुद्ध दूसरा प्रमुख आक्षेप यह है कि अपने उपन्यासों में उन्होंने भाषा के साथ मजाक किया है। कहीं संस्कृत-निष्ठ समास बहुला भाषा है तो कहीं लोकोक्तियों मुहावरों से सजी-संवरी बोलचाल की भाषा और कहीं अरबी-फारसी से भरी उर्दू ए-मुअल्ला। इस सम्बन्ध में निवेदन है कि पात्र, भाव, अवस्था के अनुकूल भाषा में परिवर्त्तन होता है, होना चाहिए। हाँ, इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि भाषा अपनी मूल प्रकृति के विरुद्ध न चली जाय। इस दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों में अरबी फारसी से लदी उर्दू का प्रयोग अवश्य अनुचित है किन्तु गोस्वामीजी अपने समय की मान्यताओं से बद्ध थे। उन्होंने ऐसी उर्दू का प्रयोग मुसलमान पात्रों के कथोपकथनों में या उनके साथ किए गये वार्त्तालापों में ही किया है। उस समय ऐसी ही परम्परा थी। भारतेन्दु ने नीलदेवी में तथा पं० केशवराम भट्ट ने 'सज्जाद सुम्बेलु और शमशाद-सोसन' में मुसलमान पात्रों से उर्दू ही बुलवाई है। फिर भी यह सही है कि इस अनुचित परम्परा का अनुकरण करने के कारण उनके उपन्यासों का साहित्यिक-गौरव घट गया है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अपनी समस्त त्रुटियों के बावजूद अपने आकर्षक कथानकों, सजीव सामाजिक चित्रणों एवं काव्यगरिमा युक्त वर्णनों के कारण गोस्वामीजी के उपन्यास साहित्य-भाण्डार की निधि हैं और रहेंगे। यह भी स्मरणीय है कि वे ही पहले उपन्यासकार हैं जिनने पात्रों के चरित्र चित्रण की तरफ ध्यान दिया। उनके उपन्यासों का ऐतिहासिक मूल्य तो निर्विवाद है ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

सूर और उनका साहित्य—लेखक–डा० हरवंशलाल शर्मा, प्रकाशक–भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़। पृष्ठ १६+५२६+१६, मूल्य सजिल्द ७)

'सूर और उनका साहित्य' विद्वान् लेखक के विस्तृत एवं गहन अध्ययन का प्रतिफल है। व्रजभाषा की माधुरी के माध्यम से अभिव्यक्त हुए सूर-सागर की लहरों का सार जानने के लिए हिन्दी के कितने ही विद्वानों ने उसमें अवगाहन किया है। आचार्य प्रवर डा० धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में लिखा हुआ डा० व्रजेश्वर वर्मा का 'सूरदास' नामक शोध-ग्रन्थ ही पहला माना जा सकता है जिसमें सूर के काव्य का विशद विवेचन हुआ है। इसके उपरान्त इस क्षेत्र में डा० मुन्शीराम शर्मा 'सोम' ने शोध-कार्य किया और उसके फल-स्वरूप 'भारतीय साधना और सूर साहित्य' हिन्दी-जगत को भेंट किया गया। अब डा० हरवंशलाल शर्मा ने 'श्रीमद्भागवत' और 'सूर-सागर' नाम से एक गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। विद्वान् लेखक के व्यापक तथा गम्भीर मनन का ही यह परिणाम है कि गवेषणात्मक ग्रन्थ के अतिरिक्त 'सूर और उनका साहित्य' भी आज हिन्दी के पाठकों को प्राप्त हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त सूर पर जो भी प्रामाणिक आलोचनात्मक साहित्य मिलता है, उन सब का नीर-क्षीर-विवेक सम्मत अध्ययन करके श्री शर्माजी ने सार को ग्रहण कर लिया है।

'सूर और उनका साहित्य' में तीन दृष्टियों से विषय की विवेचना की गई है जो ग्रन्थ के एकादश अध्यायों में समाविष्ट है—

१—सूर का जीवन।
२—सूर की दार्शनिकता और भक्ति।
३—सूर का काव्य-पक्ष।

सम्पूर्ण ग्रन्थ को आदि से अन्त तक पढ़ जाने पर यह मानना पड़ेगा कि सूर के दर्शन और भक्ति का विवेचन मौलिक और विस्तृत है, अतएव वह अभिनन्दनीय है। वैदिक साहित्य, महाभारत, भागवत और अन्य सभी पुराणों से प्रतिपादित कृष्ण के स्वरूप को पूर्णतः बोधगम्य कर के उसकी विकास-परम्परा बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रस्तुत की गई है। हिन्दी के वे पाठक जो सूर की दार्शनिकता और भक्ति के जन्म और विकास का अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें डा० शर्मा के इस ग्रन्थ का अवलोकन अवश्य करना चाहिए। सार्वभौमिक दृष्टिकोण से भी यह मानना पड़ेगा कि ग्रन्थ अपने में पूर्ण है और एक मननशील अध्यापक को जिन-जिन दृष्टियों से काव्य की विवेचना करनी चाहिए, वे सभी ग्रन्थ में प्रतिपादित हुई हैं। विद्वान् लेखक ने निरन्तर पन्द्रह वर्ष तक हिन्दी की एम० ए० कक्षाओं को पढ़ाते हुए जो अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अनुभव प्राप्त किया है उसकी सुन्दर एवं श्लाघनीय उपयोगिता 'सूर और उनका साहित्य' के रूप में अभिव्यक्त हुई है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी की भक्ति काव्य-धारा को अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति की वाणी बताया है। डा० शर्मा ने ठोस प्रमाणों और सबल तर्कों के आधार पर सिद्ध किया है कि भारतीय भक्ति-आन्दोलन उल्लास, प्रमोद तथा हर्षोद्रेक का स्रोत है जिसका प्रवाह सच्चे सुख और शाश्वत रसमयता को लेकर चलता रहा है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी ऐसा ही मत है, जिसे उन्होंने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' पुस्तक में अभिव्यक्त किया है। सूरदासजी के जीवन वृत्त के निर्धारण में डा० शर्मा ने वार्ता साहित्य को ही प्रामाणिक माना है और उसी के आधार पर सिद्ध किया है कि कवि का वास्तविक नाम 'सूरदास' ही था। सूर का जन्म-स्थान 'सीही' और जन्म-तिथि बैशाख शुक्ला ५ मङ्गलवार सं० १५३५ को ही लेखक ने प्रमाण रूप में मान्य सिद्ध किया है। डा० शर्मा ने सूरदासजी को जन्म से ही अन्धा माना है। आपका कहना है कि 'वे (सूरदास) भक्ति द्वारा उस साधना स्थिति पर पहुँच चुके थे जहाँ पहुँच कर भक्ति के लिए समस्त ब्रह्माण्ड हस्तामलकवत् हो जाता है।"

सूरसागर की प्रतियाँ लीलापरक-संग्रहात्मक और कथापरक-द्वादशस्कन्धात्मक पदों के रूप में मिलती हैं। लेखक का कहना है कि "द्वादशस्कन्धात्मक प्रतियों का सङ्कलन संग्रहात्मक प्रतियों के पश्चात् ही हुआ होगा।" इससे सिद्ध होता है कि विद्वान् लेखक के मतानुसार सूर-सागर का लीलापरक संग्रह ही मौलिक एवं प्रामाणिक है। इसका समर्थन साहित्य-भवन, प्रयाग से प्रकाशित 'सूरसागर-सार' (पदों का संकलन) की भूमिका में सङ्कलन कर्ता डा० धीरेन्द्रजी वर्मा द्वारा किया गया है।

'सूर और उनका साहित्य' का ग्यारहवां अध्याय विद्यार्थियों के लिए बड़ा उपयोगी है। उसमें सूर की भाषा और सूर के पदों की काव्य-शास्त्रीय विवेचना की दृष्टि से सांगोपाङ्ग प्रकाश डाला गया है।

अन्त में परिशिष्टान्तर्गत 'सूर-साहित्य की कुछ ज्ञातव्य बातें' शीर्षक लेख में कुछ ऐसी प्रमुख धाराओं की ओर संकेत किया गया है जिनमें कृष्ण काव्य, राधा और व्रजभाषा को दृष्टि-पथ में रख कर शोध कार्य करने की भी प्रेरणा मिलती है। लेखक के विवेक और भावोद्रेक में उचित सामञ्जस्य पाया जाता है।

पुस्तक में यदि थोड़ा दोष है तो बस इतना ही कि कहीं कहीं प्रूफ की अशुद्धियाँ रह गई हैं। 'सर्जन' के स्थान पर 'सृजन' 'सु कत' के स्थान पर 'सुकृत' 'स्रष्टा' के स्थल पर 'सृष्टा' और 'जाग्रत्' के स्थान पर जाग्रत' छप गया है। आशा है विद्वान् लेखक उन्हें आगामी संस्करण में सुधारने का कष्ट उठायेंगे। अन्त में यही कहा जा सकता है कि लेखक की पुस्तक विषय-सामग्री तथा मुद्रण की दृष्टि से उपादेय सफल और सुन्दर है। इसके लिए डा० शर्मा हिन्दी-पाठकों की बधाई के पात्र हैं। —प्रो० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

कविता

'प्रेरणा'—लेखक—दानबहादुर पाठक 'वर', प्रकाशक—'वर' उ० मा० विद्यालय प्रयागपुर, बहराइच। पृष्ठ ५०, मूल्य १।)

२६ कविताएँ संग्रहीत हैं। प्रथम प्रयास होने पर भी यथेष्ट सरसता है। प्रेम सम्बन्धी कविताएँ भाव में तो श्रेष्ठ हैं पर अभिव्यक्ति का माध्यम अभी उच्च हो रहा है। 'तुम्हारी शपथ मैं तुम्हारा नहीं हूँ', 'आज रात चाँद को पुकारती रही', 'दूर देश का राही हूँ मैं"। भाव-प्रवणता की दृष्टि से अच्छी हैं। नीचे अन्य उद्धरण भी कवि देता चला है। भाषा सरल है। छन्द तुकांत हैं।

'अर्घ्य'—लेखक—श्रीकृष्ण टण्डन, हरि प्रकाशन मन्दिर, कानपुर। पृ० ७६, मू० १॥=)

४७ कविताओं का छोटा सा संग्रह है। जीवन के विभिन्न कालों की कविताएँ हैं, अतः विविधता है। अनुभूति मार्मिक एवं तीव्र है। भाषा पर कवि का अधिकार मालूम पड़ता है। परिमार्जित होकर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीकात्मक है। शब्द चयन, लाक्षणिकता उसके प्रधान गुण हैं। प्रेम सम्बन्धी गीतों में पहले पार्थिव दृष्टि है अवश्य लेकिन कवि ऊपर उठता हुआ अनुभूति को व्यापक कर देता है। ऊँची भिखारिन का एक दृश्य तो निराला के भिखारी का स्मरण करा देता है। भाव तथा भाषा दोनों ही दृष्टियों से कविताओं का स्तर ऊँचा है।

'मुक्तिका'—लेखक-जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, प्रकाशक-सरस्वती सदन, लश्कर, (ग्वालियर)। पृ० ११०, मूल्य २॥)

३३ कविताएँ संग्रहीत हैं। मिलिन्दजी हिन्दी के माने हुए कवि हैं। विचारों की गहराई, निर्भीकता, मौलिकता, अनुभूति की तीव्रता स्पष्ट परिलक्षित होती है। इन कविताओं को स्वयं उन्होंने प्रौढ़ 'तम माना' है। कविताओं में मुक्ति का स्वर यथा सम्भव व्याप्त है। आज के जीवन में जिस शीघ्रता से मनुष्य के जीवन-मान, सिद्धांत बदल रहे हैं, उनकी हलकी सी झलक देने का प्रयत्न है। उनका लक्ष्य परम-परोक्ष सत्ता का वर्णन नहीं, जनता की वस्तु-स्थिति का परिचय कराना है, इसलिए कविताएँ स्वस्थ, सोद्देश्य तथा सार्थक दिशा की ओर उन्मुख हैं।

नीम के पत्ते—दिनकर, प्रकाशक-श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना ४। पृष्ठ ३६, मू० ॥)

छोटी सी पुस्तक से १५ कविताएँ संग्रहीत हैं। जनता के उद्बोधन, धरती के गीत गाना कवि को प्रिय रहा है। 'जनता और जवाहर', 'गाँधी', 'सपनों का धुँआँ, 'निराशावादी' आदि कविताओं में भावों की तीव्रता के साथ-साथ भाषा भी प्रवाह युक्त है। प्रचलित शब्द चोरबाजारी, तिकड़म, चिन्हाने आदि का भी यथेष्ट प्रयोग हुआ है। दिनकर की कविताओं में दुरूहता कहीं नहीं मिलती।

दिल्ली—लेखक-दिनकर, प्रकाशक-श्री अजंता प्रेस लिमिटेड पटना ४। पृष्ठ २३, मूल्य ॥)

इसमें चार कविताओं का संग्रह है। पहली कविता बहुत सुन्दर है। व्यंग्य, बहुत मार्मिक है। यह सन् १९३३ में लिखी गई थी। दिल्ली और मास्को में स्थिति वैषम्य स्पष्ट किया गया है। कवि का क्षोभ व्यंजित है। 'हक की पुकार' तथा 'भारत का यह रेशमी नगर, कविताएँ स्वराज्य के बाद की हैं जिनमें वर्तमान विषण्णता, विषमता पर चोट की गई है। इन कविताओं से कवि का दिल्ली के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है।

'रेणुका'—दिनकर, प्रका०-अजंता प्रेस, पटना। पृ० १३६, मूल्य २॥)

दिनकर की प्राचीन लोकप्रिय कविताओं का नवीन संस्करण है। ३६ कविताएँ इसमें हैं जिनमें लगभग १२ नवीन हैं। 'व्योम कुंजों की परी अयि कल्पने', 'गा रही कविता युगों से मुग्ध हो' 'फूँक दे जो प्राण में उत्तेजना' कविताएँ अनुभूति की तीव्रता, भाषा प्रवाह की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कविता की पुकार' 'मिथिला' की आत्म-प्रधान शैली अत्यन्त व्यञ्जनात्मक है। दो उदाहरण देखिए:—

"आज न उड़ के नील कुञ्ज में स्वप्न खोजने जाऊँगी,
आज चमेली में न चन्द्र किरणों से चित्र बनाऊँगी।
"मैं पतझड़ की कोमल उदास बिखरे वैभव की रानी हूँ,
मैं हरी-भरी हिमशैल तटी की विस्मृत स्वप्न कहानी हूँ।"

'नील कुसुम—लेखक-दिनकर, प्रकाशक-अजंता प्रेस, पटना। पृ० १०६, मू० ३)

यह भी ४० नवीन कविताओं का संग्रह है, हिन्दी कवियों की नई पीढ़ी को समर्पित की गई है। दो कविताएँ 'दिल्ली' और 'नीम के पत्ते' 'पहले भी आ चुकी हैं। हिन्दी कविता का क्षितिज आलोचना के सिद्धांत बदल रहे हैं और कवि उसका स्वागत करता है। यह संग्रह नई परिधि की झाँकी है—

"झाँकी उस नई परिधि की है,
जो दीख रही कुछ थोड़ी सी।
क्षितिजों के पास पड़ी पतली,
चमचम सोने की डोरी सी!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा सर्वत्र भावानुकूल, सरस व सुबोध है। यही गुण तो दिनकरजी की विशेषता है।

—त्रिलोचन पाण्डेय

'मीर' गजलों के बादशाह—सम्पादक—डा० सैयद एजाजहुसैन, प्रकाशक—लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद। पृ० २८७, मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक में उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'मीर' की रचनाओं का संग्रह है। ४५ पृष्ठों में 'सम्पादक' ने कवि परिचय प्रस्तुत किया है तथा कवि के दृष्टिकोण व तात्कालिक परिस्थितियों का वर्णन किया है। इससे 'मीर' की रचनाओं को समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी। उर्दू में 'मीर' ने ६ दीवान लिखे हैं तथा इनकी मसनवियाँ, मरसिये तथा अन्य रचनाएँ भी बहुत सी हैं। वह समय आयेगा जब ये देवनागरी लिपि में प्रकाशित होंगी। परन्तु तब तक के लिए प्रस्तुत संग्रह 'मीर' का परिचय पाने के लिए तथा उनके काव्य का आनन्द प्राप्त करने के लिए पूर्ण रूप से सहायक होगा। इस संग्रह में 'मीर' के प्रत्येक 'दीवान' से चुनी हुई रचनाएँ दी गई हैं। इसके अतिरिक्त 'घर की दुर्दशा', 'होली', 'बड़पेटा', 'देहात का सफर' शीर्षक रचनाएँ बहुत ही मार्मिक हैं जो उस समय की जिन्दगी का चित्र प्रस्तुत करती हैं। कुछ रुबाइयाँ भी दी गई हैं। इस प्रकार यह संग्रह 'मीर' की मुख्य-मुख्य रचनाओं का सङ्कलन है और हिन्दी जगत के लिए अत्यधिक आकर्षण है। उर्दू के प्रथम महाकवि 'मीर' से परिचय प्राप्त करने तथा उनकी शायरी का आनन्द लेने के लिए यह संग्रह पठनीय एवं संग्रहणीय है।

अकबर इलाहाबादी—सम्पादक—डा० सैयद एजाज़ हुसैन, प्रकाशक—इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस। पृष्ठ १६०, मूल्य २॥)

उक्त संग्रह में 'अकबर' की चुनी हुई कवितायें संग्रहीत हैं। प्रारम्भ के ६१ पृष्ठों में कवि का जीवन-वृत्त व उसकी कविता तथा उर्दू काव्य में व्यंग्य व हास्य शीर्षक निबन्ध हैं जो संग्रह की उपयोगिता को और भी बढ़ाते हैं। संग्रह में हास्य रस की कवितायें, बड़ी कवितायें, गजलें, रुबाइयाँ तथा अन्य विषयों पर फुटकल कवितायें हैं। 'अकबर' के दृष्टिकोण तथा उनके काव्य से परिचित होने के लिये यह संग्रह पठनीय है। हास्य-रस कैसे लिखा जाता है इसकी शिक्षा के लिये 'अकबर' सबसे बड़े उस्ताद हैं। 'अकबर' की शायरी को हिन्दी-जगत् के सम्मुख लाने के लिये हम 'सम्पादक' को बधाई देते हैं तथा आशा करते हैं कि वह और भी ऐसे महत्त्वपूर्ण संग्रह प्रकाशित कराते रहेंगे।

—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

निःश्वास—लेखक—श्री अमरसिंह, प्रका०—आनन्द कुटीर कोटा (राजस्थान)। पृष्ठ ११०, मू० १॥)

आलोच्य ग्रन्थ में राजस्थान के उदीयमान कवि श्री अमरसिंहजी की 'निःश्वास' शीर्षक से एक दीर्घ कविता प्रकाशित है। इसमें कवि हृदय की व्यथा इन निःश्वासों के रूप में साकार हो उठी है। यह काव्य शोक गीतों की परम्परा में एक उत्कृष्ट कोटि की रचना है। इस काव्य का भी उद्‌भव—आन्तरिक वेदना की असीमता के कारण हुआ है। अतः उसमें सर्वत्र करुण रस की प्रधानता है। इसमें आन्तरिक अनुभूति और सौन्दर्यवृत्ति का सुन्दर समन्वय होने से अद्‌भुत माधुर्य और सरलता आगई है। फिर कवि ने रहस्यवाद की परम्परा को भी निभाने का प्रयत्न किया है जिससे इसमें अस्पष्टता आगई है; परन्तु उससे काव्य का सौन्दर्य और भी अधिक निखर उठा है। इसमें जिस 'प्रेम-पीर' की अभिव्यक्ति हुई वह प्रसाद के 'आँसू' का स्मरण करा देती है। जिस प्रकार 'आँसू' में कवि 'प्रसाद' के आँसू संग्रहीत हैं उसी प्रकार इन गीतों में कवि के निःश्वास संग्रहीत हैं। एक नमूना देखिए—

रागिनी विकल क्रन्दन बन—
है कम्पित स्वर में बजती,
दुर्दिन की वीणा बनकर
गीले स्वर नभ में भरती।

यही भाव हम 'प्रसाद' के आँसू में पाते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो घनी भूत पीड़ा थी,
मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बन कर,
वह आज बरसने आई!

किसी की स्मृति अन्तर की पीड़ा को रह-रह कर उभाड़ देती है—

सागर में लहर विकल है,
मानस में पीर मचलती;
है कौन प्रतिध्वनि किसकी
करुणा गाथा सी कहती?

प्रसाद के आँसू में इससे मिलता जुलता पद देखिये—

आती है शून्य क्षितिज से,
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी।
टकराती बल खाती-सी,
पगली-सी देती फेरी?

उपन्यास

जर्जर हथौड़े—लेखक-श्री बरुआ, प्रकाशक—आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ ४०४, मूल्य ६)

आलोच्य ग्रन्थ श्री बरूआकृत एक सामाजिक और वैयक्तिक समस्या-प्रधान उपन्यास है। इस ग्रन्थ में लेखक ने रजनी नामक युवक के वर्षों के जीवन के उतार-चढ़ाव का चित्रण किया है, जिसमें उसने १६४० से १६४७ तक के भारतवर्ष के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का भी चित्रण किया है। अतः इसमें कांग्रेस के नेतृत्व में होने वाली आजादी की लड़ाई का सन् १६४२ के आन्दोलन का और १६४६-४७ में होने वाले भारत-विभाजन के फलस्वरूप जो खून-खराबी हुई थी उस सबका चित्र देखने को मिलता है तथा ये सब घटनाएँ ही कथावस्तु के निर्माण में सहायक हुई हैं। लेखक ने सम्पूर्ण कथा में समाज की जर्जरता के साथ उसके नेताओं की बौद्धिक और नैतिक जर्जरता का खाका खींचा है। फिर भी यह समझाने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार ये नेतागण जो हमारे समाज के और देश के हथौड़े हैं और आज अपनी कमजोरी से जर्जर हो चुके हैं, देश के गरीब और अबोध नर-नारियों पर अपने सांघातिक प्रहार करते रहते हैं कि वे पनप नहीं पाते और न शक्ति बटोर कर अपना स्वतन्त्र निर्माण ही कर पाते हैं।

रजनी इसी प्रकार के नर-नारियों में से एक युवक है जिस पर समाज के इन जर्जर हथौड़ों का प्रहार होता है और वह जर्जर गृहस्थी के खण्डहरों से भाग निकलता है, पर फिर समाज के जर्जर राजमहलों में अपना रास्ता भूलने लगता है। जागरूक होने पर वहाँ से भागता है तो जर्जर न्याय और समाज-व्यवस्था का बन्दी बन जाता है। उसे फिर जेल में रहना पड़ता है जो इंसान निर्मित एक नाटकीय दुनियाँ है। वहाँ से फिर भागता है तो जर्जर राजनीति के खूनी दलदल में आ फँसता है। वहाँ से अन्त में वह एक सहायता-शिविर में पहुँच जाता है—जहाँ पहुँच कर उसे शान्ति मिलती है। देश की राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल का लेखक ने सुन्दर चित्रण और विश्लेषण किया है और कथा में इसी की प्रधानता है। रजनी और माधवी के चरित्र चित्रण के साथ-साथ लेखक ने अन्य समस्याएँ जैसे स्त्री-स्वातन्त्र्य, धर्म-स्वातन्त्र्य, राजनीतिक-स्वातन्त्र्य आदि समस्याओं को उठाया है पर उनका समाधान नहीं दिया है। कथा-वस्तु में अनावश्यक विस्तार है, अतः अनेक स्थलों पर शिथिलता आगई है जो खटकती है। चरित्र-चित्रण भी मनोविज्ञान की दृष्टि से सफल नहीं हो पाया है तथा अनेक चित्र असङ्गत एवं अनावश्यक हैं। परन्तु लेखक ने समाज और उसके हथौड़ों (नेताओं) की जिस जर्जरता का चित्रण दिया है वह सफल रहा है।

पुस्तक की छपाई-सफाई सुन्दर है। ग्रन्थ का मूल्य अधिक प्रतीत होता है। —हेमन्तकुमार एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का-समाधान

१—"अंग्रेजी साहित्य में रस्किन ने Pathetic Fallacy पैथेटिक फेलेसी नाम का एक प्रकृति काव्य का दोष बतलाया है जिसका विशद विवेचन उन्होंने किया है। गुजराती साहित्य में भी इस सम्बन्ध में अनेक विवेचकों ने चर्चाएँ की हैं। क्या हिन्दी के साहित्य-विवेचकों ने इस सम्बन्ध में विचार किया है? और यदि किया हो तो किन विद्वानों ने किया है?"

—बालमुकुन्द भट्ट, बड़ौदा।

—हिन्दी में कई पुस्तकों में इसकी चर्चा आई है। डा० कन्हैयालाल सहल की 'समीक्षाञ्जलि' में इस विषय पर पूरा एक अध्याय है जो 'साहित्य-सन्देश' में प्रकाशित उनके एक लेख की ही पुनरावृत्ति है। साहित्य-सन्देश के सम्पादक के लिखे हुए 'सिद्धान्त और अध्ययन' में 'प्रकृति चित्रण' शीर्षक अधिकरण में भी इसकी चर्चा है। इन दोनों पुस्तकों में यह बतलाया गया है कि प्राकृतिक पदार्थों का—जैसे कि तालाब में दरारें पड़ जाना अथवा गेहूँ के हृदय का फटा होना विरह-वेदना ही के कारण है। सूर ने भी जमुना को 'विरह जुर जरी अतिकारी' कहा है। 'संवेदना के हेत्वाभास' पर तो कवि लोग उदाहरण उपस्थित करते ही आये हैं और प्राचीन कवियों ने कुछ इसके सम्बन्ध में शङ्का भी उपस्थित की है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में लिखा है—"कामार्ताहि प्रकृतिकृपणः चेतना चेतनेषु"। नन्ददास ने भी इसकी छाया ली है। प्रकृति चित्रण पर इस समय हिन्दी में तीन पुस्तकें हैं। एक डा० श्रीमती किरणकुमारी की, दूसरी डा० रघुवंश की और तीसरी प्रो० खण्डेलवाल की। इनमें भी थोड़ा-बहुत उल्लेख है। दण्डी ने भी भ्रमर आदि को दूत बनाने की प्रथा को दूषित ठहराया है। काव्य के वर्ण्य में विभाव जहाँ पर है वहाँ प्रकृति-चित्रण के प्रकार दिये हुए हैं।

Pathetic Fallacy तथा मानवीकरण (Personification) में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर रहता है। मानवीकरण में कवि जान बूझ कर अचेतन प्रकृति पर चेतन प्राणियों की चेष्टाओं का आरोप करता है किन्तु 'पैथैटिक फैलैसी' या 'संवेदना के हेत्वाभास' में चेतना का केवल आभास मात्र रहता है। पाठक या आलोचक उस चेतना के आरोप को स्वयमेव खोजकर निकालते हैं। मैथ्यू आर्नल्ड के काव्य "सुहराब एण्ड रुस्तम" में सुहराब की मृत्यु के पश्चात् सरिता के वर्णन में 'पैथैटिक फैलैसी' खोजी जा सकती है। हिन्दी में इसके लिए मानवीकरण का ही प्रयोग अधिक है।

२—'कुणाल' काव्य में युवराज कुणाल राजाज्ञा के अनुसार अपने नेत्र अर्पित कर देते हैं और 'पुनर्मिलन' नामक सर्ग के पश्चात् क्या नेत्रहीन रह कर ही राज्य करते हैं? क्या कुणाल शासनोपयुक्त थे? नेत्रों में ज्योति कैसे आई? कहाँ तक सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का प्रयोग इस काव्य में किया गया है?

—रामाधार तिवारी, कालिकाकुटी, मसवानी, फतेहपुर।

—आपने एक ही साथ अनेक प्रश्न कर डाले! कुणाल 'क्षमादान' सर्ग में इस प्रकार नेत्र-ज्योति पाते हैं—

दिखाई पड़ा अलौकिक दृश्य-
वहाँ, लख सब हो गये विमुग्ध।
लौट आई आँखों में ज्योति,
देखते थे कुणाल अब मुग्ध॥

स्पष्ट है कि अलौकिक शक्ति से कुणाल को नेत्र ज्योति प्राप्त होगई थी। यह 'ज्योति' आई कैसे? इसका उत्तर है कवि द्वारा 'अलौकिक-तत्त्व' (Supernatural element) में विश्वास। कुणाल सर्वथा शासनोपयुक्त थे—केवल भावुक अधिक थे, कवि ने उन्हें भावना की पवित्रता का आदर्श मान कर चित्रण किया है अतः काव्य में शिवं और सुन्दरम् तो सर्वत्र है। 'सत्यम्' का भी विधान है पर 'सम्भावित सत्य' के रूप में। कुणाल जैसा चरित्र सर्वथा असम्भव भी नहीं है।

३—"आधुनिक भारतीय कवियों ने संस्कृति का सच्चा स्वरूप ग्रामों में ही स्वीकार किया है जबकि सुमित्रानन्दन पन्त कहते हैं—

"ये भारत के ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित"

यह कहाँ तक औचित्य पूर्ण है?"

—रामभरोसे गुप्त, आलमपुर, झाँसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—जिन कवियों ने ग्रामों की प्रशंसा की है, वे प्रायः आदर्शवादी कवि हैं, यथा मैथिलीशरण गुप्त आदि। किन्तु पन्तजी के 'युगवाणी, युगान्त' आदि में समाजवादी दृष्टिकोण से ग्रामों की दशा पूँजीवादी व्यवस्था में अत्यधिक शोचनीय हो गई है वहाँ अशिक्षा, अज्ञान, अन्धविश्वास का साम्राज्य है, नगर ग्रामों का शोषण कर रहे हैं अतः ग्राम आधुनिक ज्ञान के प्रकाश से दूर हैं अतः "सभ्यता से निर्वासित" विशेषण उचित ही है। रही 'भारतीय' संस्कृति की बात, सो आदर्शवादियों को भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में कोई दोष ही नहीं दिखाई पड़ता। यथार्थवादी दृष्टि से भारतीय संस्कृति का रूप क्या है इसके लिए डा० रांगेय राघव की पुस्तक "भारतीय इतिहास की परम्परा" का अवलोकन कीजिए।

४—"विरह-विदग्ध-व्यक्ति चाहे पुरुष हो या नारी अपने प्रिय का आगमन सुन मिलनातुर हो उठता है। बुद्ध के आगमन पर सब उनसे मिलने के लिये जाते हैं परन्तु यशोधरा यह क्यों कहती है "रे मन आज परीक्षा तेरी!"

—गुप्तजी ने यशोधरा को एक मनस्विनी नारी के रूप में चित्रित किया है। यशोधरा के मन में प्रिय-मिलन की उत्कण्ठा न हो यह बात नहीं, किन्तु वह प्रेम के गाम्भीर्य की रक्षा करती है। साथ ही उसे बुद्ध से यह शिकायत भी थी कि वे चुपचाप साधना के लिए क्यों चले गये—"सखि वे मुझसे कह कर जाते" यशोधरा समझती थी कि वह प्रिय की साधना में बाधा नहीं बन सकती थी। इसीलिये उसने मान किया था और बुद्ध को स्वयं उससे मिलने जाना पड़ा। नारी की गरिमा का इससे सुन्दर और क्या उदाहरण हो सकता है?

५—क्या सिद्धों व योगियों की रचनायें साहित्य-कोटि में आती हैं?

—शिवाधार ओझा बी० ए०, आरा।

—शुक्लजी ने सिद्धों व योगियों की रचनाओं को साहित्य-कोटि में सम्मिलित नहीं किया है। इसका खण्डन 'राहुलजी' व पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कर दिया है। शुक्लजी सिद्धों व योगियों की रचनाओं को धार्मिक साहित्य कहते हैं पर तुलसी व सूर की रचनाओं का धार्मिक साहित्य के रूप में भी पठन-पाठन होता है। धर्म, दर्शन आदि को यदि भावना, कल्पना तथा साहित्यिक शैली में व्यक्त किया जायगा तो उसे 'साहित्य' मानना ही चाहिये। इस दृष्टि से सिद्धों व योगियों की रचनायें साहित्य के अन्तर्गत ही ठहरती हैं।

* * *

कुमारी शांति डागा, नई दिल्ली—

—'द्वापर' प्रबन्ध काव्य है क्योंकि उसमें एक कथा का क्रम बद्ध वर्णन है।

श्री छोटेलालसिंह गौतम, गौरा (रायबरेली)—

—गोस्वामी तुलसीदासजी ने संस्कृतज्ञ होते हुए भी जन कल्याण की भावना से हिन्दी में कविता की। संस्कृत में लिखते तो उससे कम लोग लाभ उठा पाते।

श्री रामनवमीप्रसादसिंह 'गोकुलीय' गोकुला (मु० पुर)—

—अभिनय कला निर्देशन पर कोई पुस्तक हिन्दी में अभी तक नहीं निकली।

श्री एम० सुब्बरामय्या, तिरुपति (आंध्र)—

—साकेत के नवम् सर्ग में आद्यन्त करुण रस का समावेश है।

श्री गिरीश मिश्र, अरेराज (चम्पारन)—

—कवि जो लिखता है उसमें काल दूषण क्षम्य भी माना गया है।

श्री रामानन्दसिंह, सिलौंगहट (आसाम)—

—अस्थायी, आकाश कुसुमवत्, विचरणशील और तत्वहीन मनोभावों का नाम कल्पना और स्थायी, हार्दिक और चिन्तनशील मनोभावों का नाम भावना है।

श्री रामचन्द्र खण्डेलवाल, भरतपुर—

—तुलसी और सूर अपने समय के बहुत बड़े उपदेशक या प्रचारक थे, परन्तु उन्होंने अपना यह रूप यथाशक्ति गुप्त ही रक्खा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

लेखक—**श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय** एम० ए०, (हिन्दी, संस्कृत)

प्राध्यापक—आगरा कालेज, आगरा ।

भूमिका लेखक—**डा० वासुदेवशरण अग्रवाल**, काशी विश्व-विद्यालय ।

तथा

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, सागर विश्व-विद्यालय ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में प्रतिबिम्बित दार्शनिक विचार-धाराओं का प्रौढ़ अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें साहित्य व दर्शन का परस्पर सम्बन्ध, शून्यवाद विज्ञानवाद, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, शांकर वेदान्त, भक्ति का विकास, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, अचिन्त्य भेदाभेदवाद, वैष्णव सम्प्रदाय, सूरदास के दार्शनिक विचार, तुलसी का दार्शनिक दृष्टिकोण, बौद्ध तान्त्रिक मत, वैष्णव सहजयान, शाक्तमत, शैवमत, वीर शैवमत, कापालिक, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, पाशुपत सम्प्रदाय, नाथपन्थ और दर्शन, कबीर की विचारधारा, सूफी दर्शन तथा जायसी की विचारधारा, इतने शीर्षकों में दार्शनिक विचारधाराओं के अध्ययन, विकास, प्रेरणा के स्रोत, परस्पर प्रभाव, तुलनात्मक अन्तर तथा काव्य में उनके प्रयुक्त रूपों का गम्भीर विश्लेषण किया गया है। किन सामाजिक परिस्थितियों में दर्शनों का उद्भव व विकास हुआ, इसका भी विस्तृत विवेचन किया गया है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में—"पहली ही बार हिन्दी साहित्य के लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि का इस प्रकार का क्रमबद्ध विवेचन इन पृष्ठों में किया गया है।" श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार—"प्रस्तुत पुस्तक सांस्कृतिक विकास के दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट करने में पूरी सहायक होगी।" इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी काव्य को समझने के लिए तथा कबीर, तुलसी, सूर व जायसी की विचार-धारा के प्रामाणिक अनुशीलन के लिए उक्त ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है। इस ग्रन्थ के द्वारा हिन्दी के एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। काव्य-संस्कृति व दर्शन तीनों विषयों का एक साथ अध्ययन करने में यह ग्रन्थ अमूल्य सहायता करेगा। ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। शीघ्र आर्डर भेज कर अपनी प्रति सुरक्षित करालें। पृष्ठ संख्या ४००, (१८×२२) मूल्य—सजिल्द ६।।), पोस्टेज १-)

प्रकाशकः—**साहित्य-रत्न-भण्डार, ४ गांधी मार्ग, आगरा ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. A. 263. APRIL 1955. LICENSE No. 16.
Sahitya Sandesh, Agra. Licensed to post without Prepayment.

साहित्य सम्मेलन प्रयाग

की

प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा की संक्षिप्त विवरण पत्रिकाएँ

मुफ्त मँगाएँ

पाठकों की सुविधा के लिए उक्त सभी परीक्षाओं की विवरण पत्रिकाएँ हमने इस अङ्क में छाप दी हैं—फिर भी यदि और अधिक मगानी हों तो वे एक कार्ड डाल कर हमसे मुफ्त मँगालें।

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

आधे मूल्य में

गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष में ३० अप्रैल ५५ तक

साहित्य-सन्देश के ग्राहकों को

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

गोस्वामी तुलसीदासजी पर महाकाव्य

देवार्चन

सजिल्द मू० ६)

सुन्दर छन्दों में अत्यन्त परिमार्जित भाषा और हृदय-स्पर्शी भावनाओं का भण्डार, यह सत्रह सर्गों का महाकाव्य आपके सम्मुख गोस्वामी तुलसीदासजी का सांस्कृतिक नेतृत्व समूर्त कर देगा। इस महाकाव्य को पढ़ कर आपका हृदय राष्ट्रीयता की उच्च भावनाओं और विश्व संस्कृति के अनिर्वचनीय प्रभाव से स्पन्दित हो उठेगा। तुलसीदासजी की महाप्राण सहधर्मिणी रत्ना का जीवनवृत तथा उसके पुत्र तारक का अवांछनीय निधन आपको करुणार्द्र कर देगा और वीर, शान्त, अद्भुत, तथा करुण रसों का एक साथ आनन्द लेने के लिए आज ही ३।।।=) [३) मू० ।।।=) पोस्टेज] भेजें। पुस्तक की पृष्ठ सं० ४०० और मूल्य सजिल्द ६) है। अजिल्द ५)

साहित्य-रत्न-भण्डार, ५ गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गुरुकुल कांगड़ी

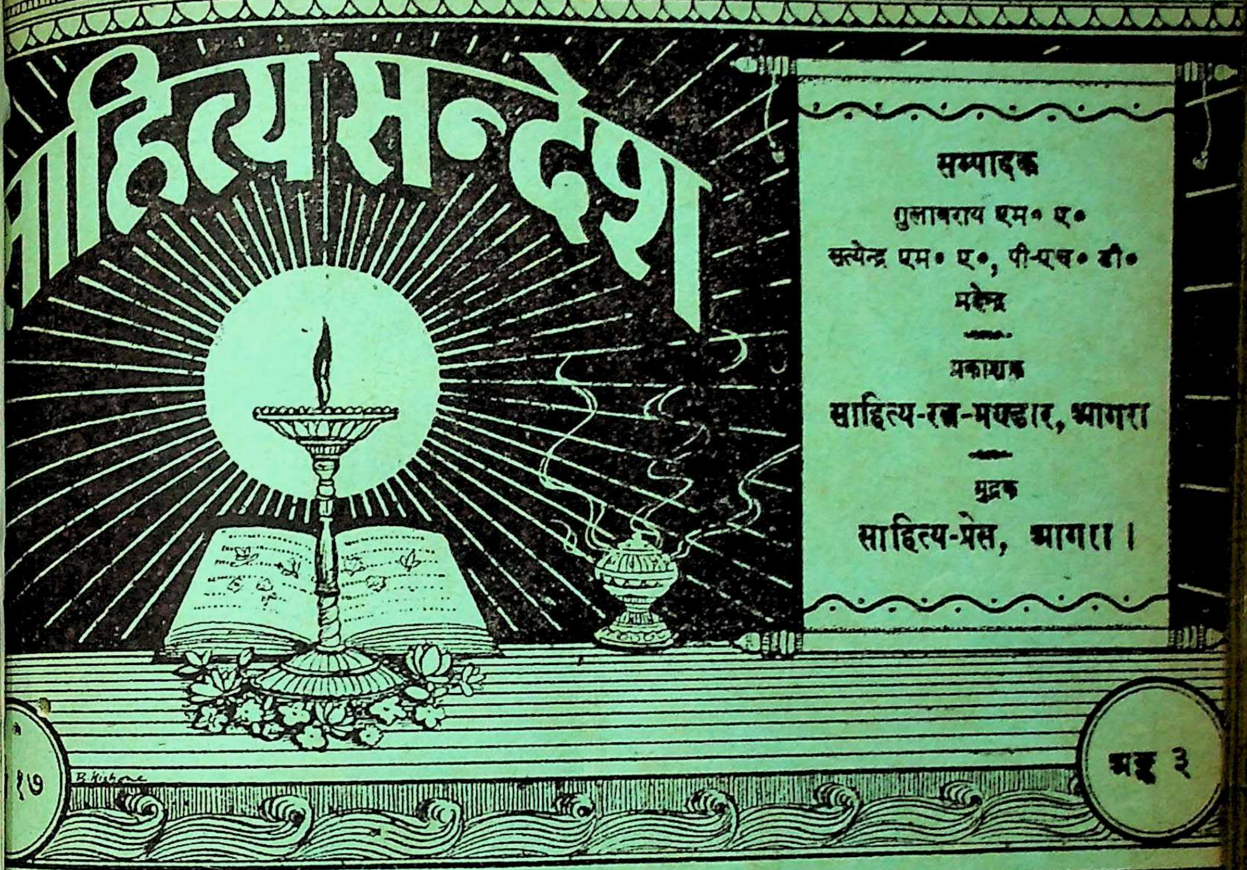

क मूल्य ४)] आगरा — सितम्बर १९५५ [विशेष संस्करण ५)

नाटक परिशिष्टाङ्क

इस अङ्क के लेख

मारी विचार-धारा	सम्पादक
ारतेन्दु कालीन नाटक तथा परवर्ती नाटकों पर उनका प्रभाव	प्रो० रामगोपालसिंह चौहान एम० ए०
द्विवेदी कालीन नाट्य साहित्य	प्रो० तारकनाथ बाली एम० ए०
नाटककार प्रसाद और उनका युग	प्रो० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना एम० ए०
सादोत्तरीय युग के नाटकों की प्रवृत्तियाँ	प्रो० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए०
हिन्दी में समस्या-नाटकों की परम्परा	श्री इन्द्रपालसिंह एम० ए०
हिन्दी में रेडियो नाटक	प्रो० त्रिलोचन पाण्डेय एम० ए०
एकाङ्की नाट्य-कला	प्रो० महेन्द्र भटनागर एम० ए०
भारतीय भाषाओं में विकसित नाट्य-कला पर विहंगावलोकन	प्रो० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए०
बङ्गीय नाट्य-साहित्य तथा रङ्गमञ्च	श्रीमती अपर्णलता राय एम० ए०
साहित्य-परिचय	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह की १ तारीख को निकलता है।

२. साहित्य-सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है। किसी भी महीने से ग्राहक बनने पर पूरे १२ अङ्क मिलेंगे।

३. महीने की २० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्टआफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिये, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।

४. किसी तरह का पत्र-व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।

५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।

६. साहित्य-सन्देश में कविता, कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापिस कर दिए जाते हैं।

७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन अगस्त १९५५

आलोचना

हिन्दी निबन्ध—प्रभाकर माचवे	२)
शरत् के नारी पात्र—	४।।)
शिक्षा—डा० जाकिरहुसैन	३)

कविता

कदली वन—नरेन्द्र शर्मा	२)
काव्यधारा—शिवदानसिंह चौहान	६)
कवितायें (१९५४)—सङ्कलन	२।।)

उपन्यास

गुंठन—गुरुदत्त	५)
सीधा सादा रास्ता—रांगेय राघव	६।।)
मुर्दों का टीला— ”	७।।)
बोलते खंडहर— ”	३)
नादिरा—गिरजादत्त शुक्ल गिरीश	४)

कहानी

पाकिस्तान—रघुपतिसहाय फिराक	३।।)

नाटक

वाह रे मैं वाह—के० एम० मुन्शी	४)
चक्रव्यूह—रघुवरदयाल श्रीवास्तव	३)
नया समाज—उदयशङ्कर भट्ट	१।।)

स्फुट

हिन्दू सभ्यता—राधाकुमुद मुकर्जी	६।।)

बालोपयोगी

नटखट के गीत—चिरंजीत	[illegible]
एक था राजा एक थी रानी—,,	१।)
चरित्र-निर्माण की कहा०—राय बहादुरसिंह	१।)
उत्तर भारत की लोक कथाएँ—३ भाग प्रत्येक	१।)
मनोरञ्जक कहानियाँ—सावित्री देवी	१)

विज्ञान

पक्षियों का जीवन—अली सफदर	।।)
हमारी फसलें—सत्यप्रकाश गुप्त	।।)
पेड़ पौधे—मुनीस सक्सैना	।।)
कीड़े मकोड़े और मक्खी मच्छर—,,	।।)
फल और सब्जियाँ—सूर्यकुमार जोशी	।।)
चींटी चींटों की दुनिया—जगपति चतुर्वेदी	२)

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेहत
और
ताक़त
का
नुस्खा
विटामिनों से
पूर्ण
जे. बी.
मंघाराम
के
नरिशिंग
बिस्कुट
बच्चों की सेहत
के लिये आदर्श

सभी दूकानदारों के यहाँ मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एम० ए०, बी० ए०, साहित्यरत्न आदि के परीक्षार्थियों के लिये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभदायक पुस्तकें

सूर और उनका साहित्य—हिन्दी संसार में एक अद्वितीय प्रकाशन। लेखक-डा० हरवंशलाल शर्मा, अध्यक्ष हिन्दी संस्कृत विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़। मूल्य ७)

जिन भारतीय मनीषियों ने 'सूर और उनका साहित्य' पर सम्मतियाँ भेजी हैं वे निम्न प्रकार हैं—डा० अमरनाथ झा, डा० सिद्धेश्वर वर्मा, डा० नगेन्द्र, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० सत्येन्द्र, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० बाबूराम सक्सेना, श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० टी० एन० दीक्षित, महामहोपाध्याय डा० पी० के० आचार्य तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त। इनके अतिरिक्त अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने इस ग्रन्थ की एक स्वर से प्रशंसा की है।

आर्थिक विचारों का विकास—(A development of economics thought) लेखक श्री यतेन्द्रकुमार एम० ए०। पृष्ठ संख्या ३५०, डिमाई आकार, मूल्य ५)

पुस्तक अपने विषय पर अनूठी है। एम० ए० के छात्रों के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई है। हिन्दी में अर्थशास्त्र की अपनी जैसी यह अकेली ही पुस्तक है।

विशारद दीपिका—ले० श्री रमाशंकर जैतली एम० ए०, तथा देवर्षि सनाढ्य एम० ए० आदि मूल्य ६)

'विशारद दीपिका' आपकी सहायता को तैयार है। हिन्दी के चारों प्रश्नपत्रों की पाठ्य पुस्तकों का सार तथा उनके विषय में जानने योग्य बातें 'विशारद दीपिका' में प्रस्तुत करदी गई हैं। विद्वान और अनुभवी लेखकों ने पुस्तक को इस कुशलता के साथ तैयार किया है कि दीपिका पढ़ने के बाद और कुछ पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं रहती। विशारद (मध्यमा) करने वालों की यह आज की पहली आवश्यकता है।

हिन्दी आलोचना में एक नया प्रयास

भावना और समीक्षा—(आलोचनात्मक निबन्ध) ले० डा० ओम्प्रकाश, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, हंसराज कालेज, देहली। मूल्य ४)

पुस्तक में हिन्दी काव्य के एक हजार वर्ष, वीर काव्य की परिस्थितियाँ, विद्यापति और चण्डीदास, कबीर का जीवनचरित, विनयपत्रिका, सूर की राधा, तुलसी का दार्शनिक मत, बिहारी का काव्य-कौशल, हिन्दी काव्यशास्त्र के आचार्य, शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध, कहानीकार जयशङ्करप्रसाद, कुरुक्षेत्र, चाणक्य और चन्द्रगुप्त, आदि २१ निबन्धों का मौलिक विवेचन और संस्कृत, बँगला, गुजराती साहित्य से तुलना दर्शनीय है।

बी० ए० के हिन्दी छात्रों के लिए अत्युपयोगी पुस्तकें

१—मध्यकाल के पाँच श्रेष्ठ कवि—आगरा वि० वि० के बी० ए० (प्रथम वर्ष) के हिन्दी पाठ्यक्रम में निर्धारित पाँचों कवियों—जायसी, सूर, तुलसी, केशव, घनानन्द और उनके कृतित्व का सांगोपांग विवेचन। १९५५ ई० के परीक्षार्थियों ने इस पुस्तक से बड़ा लाभ उठाया है। मूल्य १।।)

२—आधुनिक काल के चार श्रेष्ठ कवि—यह पुस्तक बी० ए० (द्वितीय वर्ष) के हिन्दी छात्रों के लाभार्थ लिखी गई है। रत्नाकर, मैथिलीशरण, प्रसाद और पन्त इन चारों कवियों की आलोचनात्मक विवेचना। पुस्तक शीघ्र प्रकाशित होगी। दोनों पुस्तकों के लेखक हैं धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़ के प्राध्यापक श्री रमाशङ्कर जैतली और श्री देवर्षि सनाढ्य। मूल्य १।।)

३—दो प्रतिनिधि हिन्दी नाटक—बी० ए० (द्वितीय वर्ष) हिन्दी में निर्धारित 'भारत-दुर्दशा' और 'अजातशत्रु' का पूरा-पूरा विवेचन। लेखक श्री देवर्षि सनाढ्य।

प्राप्तिस्थान—भारत प्रकाशन मन्दिर, सुभाष रोड, अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १७] आगरा—सितम्बर १९५५ [अङ्क ३

हमारी विचार-धारा

नाटक-विशेषाङ्क का परिशिष्ट—

'साहित्य सन्देश' के अन्तःप्रान्तीय नाटक विशेषाङ्क का स्वागत जिस प्रेम से हुआ है उससे हमें बड़ी प्रसन्नता है। इस विशेषाङ्क में स्थान के अभाव से नाटक सम्बन्धी कई आवश्यक लेख छपने से रह गए थे। 'बँगला नाटक' लेख के लिए तो हमें पृष्ठ छोड़ देने पड़े। इन्हीं सब के लिए हमें इस विशेषाङ्क का यह परिशिष्टाङ्क निकालना पड़ा। इनके विना नाटक विशेषाङ्क सचमुच अधूरा था, जैसा हमने स्वयं उस अङ्क के सम्पादकीय में स्वीकार किया है। समस्या नाटक, एकाङ्की नाटक और रेडियो नाटक पर स्वतन्त्र चर्चा होने की आवश्यकता थी। और हिन्दी नाटक के क्रमिक विकास को विस्तार से बताना भी जरूरी था। यह कमी इस अङ्क से पूरी हो जाती है। विशेषाङ्क और परिशिष्टाङ्क मिला कर नाटक की गतिविधि का संक्षेप में पूर्ण चित्र पाठक के सामने आ जाता है। इस प्रकार १५० पृष्ठ की यह सुपाठ्य सामग्री जो पुस्तकाकार प्रकाशित की जाय तो चार रुपये की स्वतन्त्र पुस्तक तैयार हो जायगी—'साहित्य-सन्देश' की इस वर्ष की देन है। हमारे सहयोगी सम्पादक इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए साहित्य सन्देश की चर्चा अपने पत्रों में कर सकें तो हम उनका बड़ा आभार मानेंगे। हमारे पाठक भी इसकी ओर ध्यान देकर ग्राहक बढ़ाने में हमारी कुछ सहायता करेंगे तो निश्चय ही वे 'साहित्य-सन्देश' की सहायता ही नहीं करेंगे हिन्दी के सत्साहित्य के प्रचार में भी सहायक बनेंगे। साहित्य सन्देश आर्थिक दृष्टि से घाटे पर निकल रहा है यह घाटा तभी पूरा हो सकता है जब हमारे सभी ग्राहक बन्धु इसे अपना पत्र समझ कर इसके प्रचार में सहायक बनें।

इस विशेषाङ्क में जिन विशिष्ट लेखकों के लेख छपे हैं उनके प्रति आभार मानना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। श्री प्रभाकर माचवे के हम विशेष आभारी हैं जिनकी कृपा के विना यह अङ्क इस रूप में नहीं निकल सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजधानी में हिन्दी प्रदर्शनी—

१२ अगस्त को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी ने दिल्ली में एक प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था, जिसमें हिन्दी की उन पुस्तकों को रक्खा गया था जो पिछले कुछ वर्षों में प्रकाशित हुई हैं, विशेषकर अहिन्दी भाषी प्रान्तों में। राष्ट्रपति ने अपने भाषण में इस बात पर बहुत बल दिया कि हिन्दी दूसरे प्रान्तों पर लादी नहीं जायगी। इस अवसर पर आपने कुछ मौलिक सुझाव भी दिए जिनमें एक यह है—इस प्रकार की प्रदर्शनी और भी की जायँ और उनमें केवल हिन्दी की ही नहीं भारत की सभी भाषाओं की पुस्तकें रक्खी जायँ। हमारा विश्वास है कि राष्ट्रपति के इस सुझाव के अनुसार आगे भी ये प्रदर्शनियाँ होंगी। और होनी भी चाहिए। यही सोच कर कि भविष्य में भी ये प्रदर्शनियाँ होंगी हम शिक्षा-मन्त्रालय से निवेदन करते हैं कि—

१—प्रदर्शनी में प्रयत्न कर सभी विषयों की सभी पुस्तकें इकट्ठी की जायँ। अच्छी पुस्तकों को किसी हालत में न छोड़ा जाय। वर्तमान प्रदर्शनी के बारे में यह आम शिकायत है कि उसमें पुस्तकें बहुत ही कम थीं। अगर हिन्दी साहित्य की सम्पन्नता के स्थान पर उसकी दरिद्रता की घोषणा करनी हो तो बात दूसरी है। इन पुस्तकों को इकट्ठा करने के लिए प्रकाशकों की दया पर निर्भर रहना ठीक नहीं है। मन्त्रालय को पुस्तकें स्वयं उपलब्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए। सरकार को इस कार्य में सफलता लाने के लिए एक स्वतन्त्र अधिकारी नियुक्त करना चाहिए। हिन्दी के सभी कार्यों को अकेले श्री यदुवंशीजी के भरोसे छोड़ना ठीक नहीं।

२—प्रदर्शनी को आकर्षक बनाने के लिए भी कुछ उपाय खोजना चाहिए। अभी तो जैसी प्रदर्शनी थी वैसे ही कम दर्शक पहुँचे। दिल्ली जैसे स्थान में एक सप्ताह में केवल चार हजार दर्शकों का पहुँचना साहित्यिक अभिरुचि का दिवालियापन तो है ही प्रदर्शनी की दरिद्रता का भी द्योतक है।

३—यह प्रदर्शनी केवल राजधानी ही में न होकर हर तीसरे महीने देश के भिन्न-भिन्न भागों में की जानी चाहिए जिससे समग्र देश के लोग उससे लाभ उठा सकें।

४—प्रदर्शनी में सभी भारतीय भाषाओं की पुस्तकें रक्खी जायँ और अलग-अलग विषयों को अलग-अलग कक्षों में बाँटा जाय।

५—जो पुस्तकें प्रदर्शित की जायँ उनकी एक सूची भी प्रकाशित की जाय।

प्रादेशिक भाषाओं के उपन्यास—

"राष्ट्रीय साहित्य अकादमी इस वर्ष के अन्त तक भारत की प्रादेशिक भाषाओं में से कुछ चुने हुए उपन्यास प्रकाशित करेगी।

"इन उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद होरहा है। सरदार के० एम० पणिकर के ऐतिहासिक उपन्यास 'केरलसिंह वर्मा' का मलयालम भाषा से हिन्दी में अनुवाद प्रायः तैयार हो चुका है।

"तेलुगु के एक सामाजिक उपन्यास 'मलपल्ली' का अनुवाद कराया जा रहा है जिसके लेखक श्री उन्नव लक्ष्मीनारायण है।

"उड़िया के सलाहकार बोर्ड ने 'माटीर मातु' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की सिफारिश की है जिसके लेखक हैं श्री कालेन्दुचरण पाणिग्रही और अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन।

"अकादमी इस वर्ष ११ उपन्यास प्रकाशित करना चाहती है।"

इस संवाद का हम हृदय से स्वागत करते हैं। ये ग्रन्थ राष्ट्रभाषा की सम्पन्नता ही नहीं बढ़ावेंगे वरन् राष्ट्र के अङ्ग स्वरूप उन-उन भाषा-भाषी प्रान्तों के जन-जीवन का परिचय कराकर पारस्परिक सौहार्द में वृद्धि करेंगे।

साहित्य एकादमी के इस कार्य का स्वागत करते हुए हम यह, विनम्र निवेदन करेंगे कि यह परिवर्तन एकाङ्गी न होना चाहिए। उसको चाहिए कि हिन्दी की गद्य और पद्य की चयनिकाएँ तैयार कराकर उनका विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद कराये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे कि हिन्दी न जानने वाले भी उसकी साहित्यिक निधि के कुछ नमूनों से परिचित हों और उनके हृदय में उनके मूल भाषा में पढ़ने की अभिलाषा जाग्रत हो। यह कार्य किसी अंश में देवनागर कर रहा था किन्तु उसके भी दर्शन अब दुर्लभ से हो रहे हैं।

रामचरित मानस का अँग्रेजी पद्यानुवाद—

यद्यपि यह ठीक है कि 'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।' तथापि जो ख्याति और सफलता रामचरित लिखने में तुलसी ने पाई वह वाल्मीकि को छोड़ कर और किसी को उपलब्ध नहीं हुई। अँग्रेजी पाठकों के लिए इसके दो अँग्रेजी अनुवाद हुए, एक ग्राउस साहब का जिससे बहुत से अँग्रेजी पढ़े भारतीयों के हृदय में रामचरित मानस के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई, दूसरा पादरी हिल साहब का। किन्तु ये दोनों ही गद्य में थे। वाल्मीकीय रामायण का तो पद्यानुवाद ग्रिफिथ द्वारा हुआ था किन्तु रामचरितमानस का ऐसा कोई अनुवाद नहीं हुआ था। गद्य में भाव व्यञ्जना हो सकती अवश्य है किन्तु उसमें वह सहज प्रवाह नहीं आता जो भावपूर्ण सामग्री के लिए अपेक्षित होता है।

पादरी ए० जी० एटकिन्स एम० ए०, बी० डी० ने, जो मैथोडिस्ट सम्प्रदाय के ईसाई हैं, दस वर्ष के निरन्तर उत्साह पूर्ण परिश्रम के साथ रामचरित का पद्यानुवाद श्री देवदास गान्धी को सौंप दिया था जो अब मूल हिन्दी सहित हिन्दुस्तान टाइम्स से प्रकाशित हो गया है। यह अनुवाद सोलह आने शाब्दिक तो नहीं है किन्तु व्याख्यात्मक है। जिसके द्वारा गोस्वामीजी के भावों की गहराई में प्रवेश करने का प्रयत्न किया गया है। एक भाषा का दूसरी भाषा में शाब्दिक अनुवाद, विशेषकर पद्य प्रायः अपना सौन्दर्य खो बैठता है। इसीलिए इस अनुवाद में यह बात नहीं होने पाई है। इसमें भाव सौन्दर्य के साथ मूल के वाद सौन्दर्य की भी रक्षा की गई है। पादरी एटकिन्स भक्त हृदय हैं। सच्चा भक्त साम्प्रदायिक नहीं होता। इस अनुवाद में ईसाइयत की गन्ध नहीं आने पाई है वरन् इसमें अनुवादक के हृदय का ओज झलकता है।

रामचरित मानस का बरान्कोफ द्वारा रूसी भाषा में भी अनुवाद हो चुका है। ये दोनों ही अनुवाद यूरोप वालों को भारत की आत्मा से परिचित कराने में सहायक होंगे। यदि कोई महानुभाव सूर के भी चुने हुए पदों का पद्यानुवाद निकालने का प्रयत्न करे तो बड़ा अच्छा हो। परिचय के बिना प्रीति नहीं होती। हिन्दी ग्रन्थों का अँग्रेजी अनुवाद हिन्दी के प्रति प्रेम बढ़ाने में सहायक होगा।

साहित्य-शिविर—

साहित्यकार संसद प्रयाग के मुख-पत्र 'साहित्यकार' के दूसरे अङ्क के दर्शन हुए हैं। वह भीतर-बाहर दोनों ही ओर से सुरुचिपूर्ण और कलामय है। वैसे तो इसके सभी लेख साहित्यिक महत्व रखते हैं किन्तु उसके सम्पादकीय में उल्लिखित साहित्य-शिविर का, जिसकी प्रेरक शक्ति श्रीमती महादेवी वर्मा हैं, विवरण जिसे श्री जितेन्द्रसिंह ने लिखा है विशेष महत्व का है। ऐसे शिविर विभिन्न प्रान्तों के साहित्यिकों की पार्थक्य भावनाओं और पूर्वाग्रहों को (यदि वे साहित्यकारों में भी होते हैं) दूर करने और एक दूसरे के प्रति सौहार्द और आदर भावना बढ़ाने में सहायक होंगे। यह शिविर नैनीताल के पास ताकुला में २० मई से पहली जुलाई तक रहा। इसमें जो विचार-विमर्श हुआ उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"मानवता की सच्ची परम्परा मूलतः गतिशील रही है। प्रयोग प्रक्रिया है, प्रगति परिणाम। सच्चा प्रयोग परम्परा को विकास देता है और विश्व मानव की प्रगति का पथ प्रशस्त करता है। प्रयोग के लिए प्रयोग या मात्र विलक्षणता के लिए प्रयोग नहीं होने चाहिए। आवृत्ति मात्र न तो प्रयोग है और न परम्परा। सच्चा प्रयोग स्वानुभूत सत्य के रूप में साहित्य में व्यक्त होना चाहिए—तभी वह जीवन्त परम्परा को गति दे सकता है।"

'नयी कविता' के सम्पादक डॉ० जगदीश गुप्त ने 'मानवता की सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया' के रूप में साहित्य की स्वतन्त्र सत्ता का उल्लेख करते हुए कहा :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"साहित्य में ही मानव को पूर्ण बनाने का सामर्थ्य है। धर्म, दर्शन और राजनीति को भी साहित्य के आगे झुकना पड़ता है।....साहित्य-सृजन में आत्माभिव्यक्ति के साथ आत्मोपलब्धि होती है। सम्प्रदायों या वर्गों से ऊपर उठकर सत्य की उपलब्धि साहित्यकार ही कर सकता है। पुराने मूल्यों को भी आज हमें नयी अनुभूति की कसौटी पर कसना है—तभी नया साहित्य आत्मोपलब्ध—सत्य को व्यक्त करेगा।" कवि एवं आलोचक श्री गङ्गाप्रसाद पाण्डेय ने कहा: "मेघ की भाँति सच्चे साहित्य का लक्ष्य 'सर्वोत्तम-समर्पण' है। ऐसे साहित्य में 'स्वचेतन' और 'परचेतन' के समन्वय के साथ 'परम चेतन' की अभिव्यक्ति होती है।"

रङ्गवाणी—

"सांस्कृतिक दृष्टि से ताकुला साहित्य-शिविर की सफलता सबसे अधिक इस बात में है कि शिविर ने हिन्दी रङ्गमञ्च के विकास के लिए उचित दिशा-निर्देश किया। वस्तुतः आँधी और तूफान में भी मुस्काने वाले ७३ वर्षीय तरुण नाटककार मामा वरेरकर पूरे साहित्य शिविर के प्रेरणा-केन्द्र थे। मामाजी ने नाट्य-लेखन और रङ्गमञ्च के निर्माण के सम्बन्ध में जो बहुमूल्य संस्मरण सुनाये और उनसे इस सम्बन्ध में अन्य साहित्यकारों की जो निरन्तर चर्चा हुआ करती थी, उससे यह स्पष्ट था कि मामाजी को पिछले ५० वर्षों में मराठी रङ्गमञ्च के अभिनय उत्थान के लिए अनेक सङ्घर्षों का सामना करना पड़ा, फिर भी वे अपनी साधना में अडिग रहे। उन्हें मराठी रङ्गमञ्च का महर्षि कहा जा सकता है। मामाजी की गरिमा से सभी हिन्दी साहित्यकार प्रभावित थे। उनकी सक्रिय प्रेरणा से 'रङ्गवाणी' नामक संस्था का निर्माण हिन्दी रङ्गमञ्च के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। साहित्यकार संसद प्रयाग के तत्त्वावधान में काम करने वाली इस संस्था की 'तदर्थ समिति' की अध्यक्षता मामाजी ने स्वयं स्वीकार की है। समिति को हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकारों—श्री सुमित्रानन्दन पन्त, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री दिनकर, श्री वृन्दावनलाल वर्मा, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, रायकृष्णदास, श्री अमृतलाल नागर, डा० धर्मवीर भारती (संयोजक) और डा० लक्ष्मीनारायणलाल आदि—का सहयोग प्राप्त है। हर्ष की बात है कि समिति में कर्णाटक के श्री आद्य रङ्गाचार्य, महाराष्ट्र के श्री रङ्गणेकर, गुजरात के श्री जयशङ्कर भोजक तथा बङ्गाल के श्री शम्भुमित्र को भी मनोनीत किया गया है। अहिन्दी प्रदेशों के ये मान्य कलाकार हिन्दी रङ्गमञ्च को राष्ट्रीय रङ्गमञ्च के स्तर पर पहुँचाने में हमारा साथ दे सकें, यह हमारे लिए गौरव की बात है। आगामी 'भारतेन्दु जयन्ती' के अवसर इस संस्था के उद्घाटन का निश्चय कर आयोजकों ने एक पवित्र कर्तव्य का पालन किया है। हिन्दी रङ्गमञ्च के पिता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पावन जन्म-तिथि से प्रेरणा ग्रहण कर हम अपने रङ्गमञ्च को सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय रङ्गमञ्च बनाने में समर्थ हो सकते हैं।

राष्ट्रीय नवजागरण और पुनर्निर्माण के इस युग में रङ्गमञ्च का कितना महत्त्व है, यह हम सब जानते हैं। परन्तु दुःख की बात है कि जहाँ चित्रपट के प्रभुत्व से रङ्गमञ्च की प्रगति अवरुद्ध हो रही है, वहाँ कतिपय व्यावसायिक संस्थाएँ राष्ट्रीय रङ्गमञ्च की विधायिका बनने का स्वाँग रचती हैं। ताकुला साहित्य-शिविर में सम्मिलित लेखकों और कलाकारों ने रङ्गमञ्च सम्बन्धी अपने प्रस्ताव में विकास का उचित दिशा-निर्देश किया, जब उन्होंने कहा—

"राष्ट्रीय रङ्गमञ्च के विषय में हम साहित्यकारों की स्पष्ट धारणा है कि वह किसी भी व्यक्ति, किसी भी शासन-सत्ता, किसी भी राजनीतिक दल या किसी भी व्यापारी की महत्वाकांक्षा मात्र या धनोपार्जन मात्र का साधन न होकर राष्ट्र की समस्त विकासोन्मुख सांस्कृतिक परम्पराओं को समन्वित करता हुआ उच्चतम साहित्यिक संवेदनाओं को साक्षर तथा निरक्षर जनता तक पहुँचाकर उदार मानवीय स्तर पर उनके कल्याण-विकास में सहायक होता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु कालीन नाटक तथा परवर्ती नाटकों पर उनका प्रभाव

प्रो० रामगोपालसिंह चौहान एम० ए०

हिन्दी गद्य-साहित्य के साथ ही हिन्दी नाटक-साहित्य का आरम्भ होता है। उस आरम्भ की सीमा को हम भारतेन्दु की नाटक-रचना से निर्धारित कर सकते हैं। भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी में नाटक कहे जाने योग्य न तो नाटक ही थे और न हिन्दी का अपना कोई रङ्गमञ्च ही था। नाटक रचना आरम्भ करते समय भारतेन्दु के सम्मुख विदेशी तथा प्रान्तीय भाषाओं का विशेषकर बँगला भाषा का नाटक-साहित्य एवं संस्कृत नाटक साहित्य प्रेरणा-स्रोत के रूप में विद्यमान था। अस्तु भारतेन्दु ने विषय तथा शैली दोनों ही दृष्टियों से नितान्त समीचीन परिस्थितियों के अनुकूल संस्कृत एवं विदेशी तथा विदेशों से प्रभावित प्रान्तीय भाषाओं के नाटकों से सङ्गत तत्त्वों को ग्रहण कर हिन्दी नाट्य-कला का रूप-सँवार किया। उनके द्वारा निर्धारित रूप ही उस काल के अन्य नाटककारों ने ग्रहण करली थी।

अर्से से नाटक की परम्परा लोप रहने के कारण पाठक जनता ही नहीं लेखकों के हृदय में भी नाटकों के प्रति एक अरुचि उत्पन्न होगई थी। जब भारतेन्दु का नाटक 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' खेला गया तो उस युग के प्रसिद्ध लेखक प्रतापनारायण मिश्र ने ही उसका विरोध किया था।

किन्तु शीघ्र ही भारतेन्दु के प्रभावशाली व्यक्तित्व और सशक्त लेखनी ने हिन्दी नाटककारों के एक मण्डल को जन्म दिया और शीघ्र ही न सिर्फ हिन्दी में नाटकों की रचना ही प्रचुर मात्रा में होने लगी वरन् हिन्दी का अपना एक रङ्गमञ्च भी निर्मित हो गया। जिन प्रतापनारायण मिश्र ने भारतेन्दु के नाटक का विरोध किया था वे स्वयं भारतेन्दु मण्डल के एक समर्थ और सशक्त नाटककार बन गए।

भारतेन्दु काल के प्रमुख नाटककारों में हम काशीनाथ, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', तोताराम, केशवराम भट्ट और राधाकृष्णदास आदि का नाम ले सकते हैं।

भारतेन्दु ने प्रायः १७ नाटक लिखे थे, जिनमें से छः—'रत्नावली' (अपूर्ण), 'पाखण्ड विडम्बन', 'धनञ्जय विजय', 'मुद्राराक्षस', 'कर्पूरमञ्जरी', 'दुर्लभ-बन्धु', अनुवादित एवं ग्यारह—'विद्यासुन्दर', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेम जोगिनी' (अपूर्ण), 'विषस्य विषमौषधम', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'श्री चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी', 'नील देवी', 'अन्धेर नगरी', 'सती प्रताप' (अपूर्ण) मौलिक नाटक लिखे थे। विषय की दृष्टि से इन सभी नाटकों को तीन वर्गों में—पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक में बाँट सकते हैं। सभी नाटकों में अन्धविश्वास, पाखण्ड एवं गतानुगत रूढ़िवादिता विरोधी सत्यवादिता, नव चेतना एवं देश भक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। देश की नयी प्रगति में बाधक पुरानी रूढ़ियों और अन्धविश्वासों पर भारतेन्दु ने करारे व्यंग्य किए हैं और इन सब से मुक्त नई चेतना के स्तर पर देश के विकास का पथ-संकेत दिया है।

शैली की दृष्टि से भारतेन्दु ने प्राचीन एवं नवीन दोनों का ही प्रयोग किया है। कुछ नाटकों में नितांत प्राचीन शैली का प्रयोग हुआ है, कुछ में नवीन का और कुछ में दोनों के समन्वित रूप का।

भारतेन्दु की इसी देश जागरण की नई चेतना से प्रेरित समाज के यथार्थ चित्रण तथा इतिहास एवं पुराण से ऐसे प्रसङ्गों को आधार बनाकर ही उस काल के अन्य लेखकों ने नाटक रचना की थी।

प्रतापनारायण मिश्र ने 'कलि कौतुक', 'सङ्गीत शाकुन्तल', 'भारत दुर्दशा', 'हठी हम्मीर', 'गोसङ्कट', 'कलि प्रभाव' और 'ज्वारी ख्वारी' नाटक और प्रहसन लिखे थे। मिश्रजी विषय एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से भारतेन्दु को आदर्श मानते थे। आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतेन्दु विरचित 'भारत दुर्दशा' के आधार पर 'भारत दुर्दशा' नाटक की रचना की थी। दोनों नाटकों के पात्रों में भी बहुत कुछ समानता है जैसे— एडिटर, बङ्गाली, आलस्य आदि जैसे प्रतीक पात्र उसमें भी हैं। मिश्रजी के नाटकों का कथानक भी तत्कालीन यथार्थ जीवन पर ही आधारित है। भाषा, हास्य व्यंग्यपूर्ण सरल एवं मुहावरेदार तथा पात्रोनुकूल है। 'कलि कौतुक' में मिश्रजी ने भारतेन्दु से एक पग आगे बढ़ कर कथा का यथार्थ जीवन से मूर्त रूप ग्रहण किया है। भारत दुर्दशा की तरह इसके पात्र भावात्मक और अमूर्त नहीं वरन् मूर्त और सत्य हैं। इसका गठन इस लाघव से हुआ है कि तत्कालीन जीवन की यथार्थ विकृतियाँ कथा के घात-प्रतिघात से स्वतः उभरती चलती हैं।

पं० बद्रीनरायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'भारत-सौभाग्य', 'प्रयाग समागमन', 'वीरांगना रहस्य', 'महानाटक' (अथवा वैश्य विनोद महानाटक, अपूर्ण) नाटक लिखे थे। आपके नाटकों की भाषा, शिल्प गठन एवं विषय-चयन पर भारतेन्दु का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। आपके नाटकों में भी तत्कालीन जीवन की विकृतियों पर बड़े तीखे व्यंग्य हुए हैं।

लाला श्रीनिवासदास ने 'प्रह्लाद-चरित्र', 'तप्ता संवरण', 'रणधीर प्रेममोहिनी', नाटक लिखे थे। आपके नाटक यद्यपि पौराणिक और ऐतिहासिक हैं किन्तु उन पर तत्कालीन जीवन की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। आपका सबसे उत्कृष्ट नाटक 'रणधीर प्रेम-मोहिनी' माना जाता है। उस नाटक के सूत्रधार एवं नटी आदि का संवाद स्वयं भारतेन्दु ने लिखा था। शुक्लजी के शब्दों में उस नाटक के नायक नायिका के नाम से मित्रों और जूलियट की ओर ध्यान ले जाते हैं। इस नाटक में भारतेन्दु की चेतना अधिक विकसित रूप से मुखरित हुई है। भारतेन्दु के नाटक में 'प्रेम-जोगिनी' के पात्र 'जनपारिया' की धर्म की रामनामी' में जनता के शोषण और दुराचार पर जिन्दा रहने वाले 'झपटिया' जैसे लोगों के प्रति चुनौती को हम 'रणधीर' और 'रिपुदमन' पात्रों में और भी मुखर पाते हैं। मानव मात्रा की समानता का पक्ष स्थापित करता हुआ रणधीर कहता है—"जैसे आपके ऊँचे-ऊँचे महलों पर सूर्य की धूप पड़ती है तैसे ही हमारी गरीब झोंपड़ी में भी सूर्य भगवान प्रकाश करते हैं, हमारा आपका सब संसारी हाल एक सा है और हम तुमको ये झूँठा झगड़ा छोड़कर एक दिन अवश्य यहाँ से जाना पड़ेगा।"

बाबू तोताराम ने केवल दो ही नाटक लिखे थे। 'कीर्तिकेतु' (मौलिक), 'केटोकृतान्त' (अँग्रेजी से अनुवादित)। आपके नाटक की भाषा, शैली, विषय सभी दृष्टि से भारतेन्दु परम्परा के ही नाटक हैं।

राधाचरण गोस्वामी द्वारा रचित मौलिक नाटक हैं—'सुदामा', 'सती चन्द्रावली', 'अमरसिंह राठौर', 'तन मन धन श्री गोसाईं जी के अर्पण', 'बूढ़े मुँह मुँहासे'। व्यङ्ग पूर्ण भाषा-शैली, यथार्थ चित्रण, सरल दृश्य विधान, नवीन समन्वित गठन-शैली, आदि आपके नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। मिश्रजी की ही भाँति आपने भी समाज की मूर्त सत्य कथाओं को नाटकों का कथानक बनाया है।

काशीनाथ खत्री ने 'ग्राम पाठशाला' और निकृष्ट नौकरी' 'सिन्ध देश की राजकुमारियाँ', 'बाल विधवा संताप', गुन्नौरी की रानी', 'लवजी का स्वप्न' नामक नाटकों की रचना की थी। भारतेन्दुकी ही भाँति आपने भी तत्कालीन जीवन से प्रभावित कथानक ही चुने थे और देश-सुधार की चेतना का संदेश दिया था। आपकी शैली व्यङ्गात्मक और भाषा सरल एवं मुहाविरेदार है।

इस प्रकार तत्कालीन सम्पूर्ण नाटककारों की रचनाओं को देखते हुए यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि वे सब भाषा-शैली एवं विषय चयन की दृष्टि से भारतेन्दु परम्परा के ही नाटककार थे और भारतेन्दु उनकी चेतना के स्रोत थे।

जब भारतेन्दु ने नाट्य कला को जन्म दिया था उस समय वे प्रायः अकेले ही नाटककार थे, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्र ही उनके चारों ओर नाटककारों का एक मण्डल निर्मित होगया था जिन्होंने नयी चेतना के पौराणिक, एतिहासिक एवं सामाजिक नाटकों की प्रचुर मात्रा में रचना की थी। सभी नाटकों में गतानुगत रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों, पाखण्डों आदि सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की जोंकों के विरुद्ध तीखे व्यङ्ग किए हैं जो जनता को सजग कर अपने जीवन में सुधार करने की चेतना देते हैं। वह काल था जब देश, समाज, धर्म तथा जीवन के नये मान-मूल्यों की स्थापना के लिए जूझ रहा था। उन नये मान-मूल्यों की स्थापना में जनता के दृष्टिकोण को स्पष्ट और प्रखर करने में उन नाटकों ने बड़ा कार्य किया था। भले ही साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की कला वे न उपस्थित कर पाए हों।

तथापि कला की दृष्टि से भी इन नाटककारों का प्रयास तथा कार्य अवहेलनीय नहीं है। उन्होंने भाषा, पात्र योजना, कथा विन्यास, दृश्य-विधान सभी दृष्टियों से नाट्य-कला को एक नया रूप प्रदान किया था जो न तो नितान्त प्राचीन संस्कृत परिपाटी थी और न विदेशी नाट्य-कला की ही नकल थी। भारतेन्दु ने प्राचीन भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य-कला के स्वरूप अपनी देशी परिस्थितियों के अनुकूल तथा जन-रुचि के अनुकूल तत्त्वों को ग्रहण कर दोनों के मिश्रण से नितान्त मौलिक एवं नवीन हिन्दी नाट्य-कला को जन्म दिया था। कला के उसी रूप को उस काल के सभी नाटककारों ने ग्रहण और विकसित किया था।

यही नहीं प्रसाद पर भी भारतेन्दु युगीन नाटकों का कला की दृष्टि से प्रभाव पड़ा था। वरन् यों कहना अधिक ठीक होगा कि प्रसाद-कालीन नाटक भारतेन्दु-कालीन नाटक साहित्य के विकास का अगला चरण थे। प्रसाद स्वयं एक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। उन्होंने नाट्य-कला को अपनी प्रतिभा से एक अभिनव रूप प्रदान किया था; किन्तु भारतेन्दु ने प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य नाट्य-शिल्प के जिस समन्वित रूप के हिन्दी नाट्य-काल को सँवारा था उसी परम्परा पर आगे चल कर प्रसाद ने अपने नाटकों में दोनों शैलियों के सुन्दर समन्वय का रूप विकास किया है।

भारतेन्दु का दृष्टिकोण नाटक के प्रति अभिनय पर था। वे खेले जाने के लिये ही नाटकों की रचना करने के पक्ष में थे और यही विशेषता उस काल के सभी नाटककारों की थी। प्रसाद कालीन नाटककारों में इस दृष्टि का अभाव था। जिस तेजी से नाट्य रचना का विकास हुआ उस तेजी से हिन्दी रङ्गमञ्च का विकास न हुआ; परिणामतः नाटक और रङ्गमञ्च में एक विभेद उत्पन्न होगया।

प्रसादोत्तर कालीन नाटककारों पर तो नाटक-साहित्य एवं रङ्गमञ्च दोनों ही दृष्टियों का प्रभाव पड़ा है। प्रसादोत्तर कालीन नाटककारों—रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगदीशचन्द्र माथुर, अश्क का नाटकों को रङ्गमञ्च के उपयुक्त बनाने उनके खेले जाने के प्रति उत्साह दिखाने आदि की प्रवृत्ति निःसन्देह भारतेन्दु युगीन विशेषता है। आधुनिक नाटककार भारतेन्दु की व्यङ्गात्मक यथार्थवादी शैली, नाटकों को अधिक से अधिक रङ्गमञ्चीय बनाने में तथा सरल रङ्गमञ्चीय विधान में, सरल मुहाविरेदार भाषा में, सामाजिक यथार्थ के चित्रण में भारतेन्दु परम्परा पर ही आगे बढ़ते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आज एकांकी नाटकों और सम्पूर्ण जीवन का चित्रण प्रस्तुत करने वाले लघु नाटकों (कैद और उड़ान) की जो टेकनीक विकसित होरही है उसके बीज हमें भारतेन्दु एवं उनके समकालीन नाटककारों के नाटकों में ही मिल जाते हैं। भारतेन्दु ने नाट्य-कला को जो सरल तथा जन रूप प्रदान कर उन्हें जनता में नयी चेतना का सन्देश वाहक बनाया था, वही उपयोगिता आज पुनः नाटककारों को आकर्षित कर रही है और आज पुनः नाटकों को रङ्गमञ्च के उपयुक्त बनाकर उन्हें जन चेतना का सबल सन्देश-वाहक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। भारतेन्दु युग में उनके प्रचार का स्वर अधिक था कला का निखार कम था, आज उनमें दोनों का ही समान रूप से विकास हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदीकालीन नाट्य-साहित्य

प्रो॰ तारकनाथ बाली एम॰ ए॰

हिन्दी साहित्य में नाटकों का विकास दिखाने के लिए उनके इतिहास को चार कालों में विभाजित किया जाता है—

१—भारतेन्दु काल ।

२—द्विवेदी काल ।

३—प्रसाद काल, और

४—प्रसादोत्तर काल ।

किसी भी एक काल के नाट्य-साहित्य का बँधा हुआ विवेचन करने का अभिप्राय होगा विकास के सत्य से इन्कार करना । इसलिए किसी विशिष्ट काल पर दृष्टि केन्द्रित रखते हुए भी विकास के सत्य के अनुरोध से काल के आगे और पीछे की ओर दृष्टिपात कर लेना अपेक्षित समझा जाएगा । इसके अतिरिक्त एक अन्य बात भी महत्त्व की है । नाटक ही नहीं, सम्पूर्ण गद्य-साहित्य के विकास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह सुतरां आवश्यक है कि खड़ी-बोली के विकास को ध्यान में रखा जाए । क्योंकि जब भी साहित्य-सृजन के लिए किसी नवीन भाषा को स्वीकार किया जाएगा, उसकी आरंभिक अवस्था में उसे साहित्यिक भाषा की सी अर्थोद्बोधन शक्ति प्राप्त नही हो सकती ।

भारतेन्दु काल में गद्य-भाषा के स्वरूप का निर्णय हो चुका था । भारतेन्दुजी ने स्वयं ही इस महान कार्य को किया था और इतना ही नहीं नाटकों और निबंधों में उसका प्रयोग कर उसकी शक्ति को प्रकाशित और विकसित करना भी आरम्भ कर दिया था । इस काल में नाटकों के विषय प्रायः ऐतिहासिक और पौराणिक ही रहते थे । किन्तु भारतेन्दु के सजग कलाकार ने सामयिक समस्याओं को भी नाटकों में मुखरित किया । गद्य की भाषा खड़ी बोली थी और पद्य की ब्रज भाषा । नाटकों की रचना-शैली संस्कृत-नाटकों की-सी थी । नाटकों के अनुवाद भी किए गए ।

द्विवेदी काल में महावीरप्रसाद द्विवेदी का ध्यान खड़ी बोली को व्याकरण-सम्मत बनाकर उसे व्यवस्थित करने की ओर ही रहा । भारतेन्दु युग के नायक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं एक प्रतिभा-सम्पन्न नाटककार थे और अपने युग के प्रति सचेष्ट थे । द्विवेदी काल के नायक आचार्य द्विवेदी युग-सचेष्ट महान साहित्य-प्रदर्शक थे । वे नाटककार न थे । फलतः इस काल के नाटकों को अपने काल के नायक की प्रतिमा से गौरवान्वित होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ । इसलिए नाटकों की दृष्टि से इस काल को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता ।

जयनाथ नलिन ने तो यहाँ तक कह डाला है कि "भारतेन्दु के बाद और प्रसाद के पूर्व तक हिन्दी नाटकों का संक्रान्ति काल रहा । इस युग में नाटकों की प्रगति तो हुई ही नहीं, दुर्गति अवश्य हुई ।" नलिन जी की यह बात तो ठीक है कि द्विवेदी काल नाटकों का संक्रान्ति काल है किन्तु उनकी यह बात मान्य नहीं है कि इस काल में नाटकों की दुर्गति हुई । उनके इस निष्कर्ष का कारण यह है कि वह द्विवेदी काल को एक इकाई के रूप में देख रहे हैं, चूँकि आगे के प्रभाव की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई । द्विवेदी-कालीन नाटकों के महत्त्व को आँकने के लिये पहले यह देखना चाहिये कि उनमें भारतेन्दु युग के नाटकों से क्या भेद है । प्रथम महत्त्वपूर्ण बात तो यह हुई कि इस काल में आकर पद्यों की भाषा भी खड़ी बोली हो गई । इसके साथ ही खड़ी बोली का स्वरूप भी अधिक निखर गया । केवल एक यही बात द्विवेदी-युगीन नाट्य साहित्य की प्रगति और महत्ता को भली भाँति प्रकट कर देती है । क्योंकि इस काल के साहित्य की अवस्था को देखते हुए हमें उसकी प्रगति को दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपों में देखना चाहिए। प्रथम प्रगति की कसौटी है प्रयुक्त भाषा का स्वरूप और द्वितीय गृहीत विषयों की युगानुरूप अनेकरूपता। भाषा के स्वरूप का निखार तो इन नाटकों में मिलता ही है। अब रही बात विषयों की अनेकरूपता की। यद्यपि अधिकांश नाटकों के कथानक ऐतिहासिक और पौराणिक थे फिर भी माखनलाल चतुर्वेदी के नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध' में "आधुनिक युग के राष्ट्रीय जागरण की भावना बड़ी सफलता के साथ व्यक्त हुई है।" इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों में भी राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना के यत्र-तत्र दर्शन हो जाना स्वाभाविक ही है।

भारतेन्दु काल के समान ही इस काल में भी हमें दो प्रकार के नाटक मिलते हैं:—

(१) अनुवादित नाटक और (२) मौलिक नाटक।

अनुवादित नाटकों को भी हम तीन धाराओं में बाँट सकते हैं:—

(क) संस्कृत के अनूदित नाटक,

(ख) बंगला के अनूदित नाटक और

(ग) अंग्रेजी से अनूदित नाटक।

(क) संस्कृत नाटकों के अनुवाद करने वालों में प्रमुख हैं—रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए०, श्री सत्यनारायण कविरत्न और पण्डित ज्वाला प्रसाद मिश्र। अनुवादित नाटक हैं—मृच्छकटिक, उत्तर राम-चरित, मालती माधव, मालविकाग्निमित्र, नागानन्द, अभिज्ञान शाकुन्तल और वेणी-संहार आदि।

(ख) बंगला नाटकों के अनुवाद करने वाले हैं—सर्व श्री रामकृष्ण वर्मा, गोपाल राम, रूपनारायण पाण्डेय आदि। अनूदित नाटक हैं—'बभ्रुवाहन', 'देश दशा', 'विद्याविनोद', 'चित्रांगदा', 'पतिव्रता' आदि। अब खड़ी बोली में इतनी शक्ति आ गई थी कि वह मूल भावों को अभीप्सित अभिव्यक्ति दे सके। बंगला के नाटकों का तीव्र भावावेश प्रायः सभी अनुवादों में लक्षित होता है।

(ग) अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद करने वाले हैं— सर्वश्री गोपीनाथ एम० ए०, मथुराप्रसाद चौधरी, प्रेमचन्द आदि। अनुवादित नाटक हैं—'मैकबेथ', 'हैमलेट', 'रोमियो जुलियट' आदि।

(२) मौलिक नाटककार हैं सर्वश्री देवीप्रसाद, बद्रीनाथ भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी। कुछ नाटकों के नाम हैं—'चन्द्रकला भानु कुमार', 'गोस्वामी तुलसीदास', विवाह-विज्ञापन', 'मिस अमेरिकन', 'चन्द्रहास' और 'कृष्णार्जुन युद्ध' आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीन प्रकार के नाटकों की धाराएँ अलग-अलग कहीं कुछ मिलती-मिलाती भी चलती हैं। एक भावुकता-प्रधान बङ्गला के नाटकों की धारा है, द्वितीय सङ्घर्ष-प्रधान अङ्गरेजी के नाटकों की धारा है और तृतीय आनन्द प्रधान संस्कृत के नाटकों की धारा है। तीनों धाराओं का हिन्दी खड़ी बोली में प्रस्तुत किये जाने से सचेष्ट नाटककारों को अपना मार्ग निर्धारण करने तथा सभी धाराओं से कुछ-न-कुछ ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हुआ। हमें अब एक ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो इन तीनों धाराओं को आत्मसात कर उनका समन्वित रूप प्रस्तुत करता। प्रसाद में हमें भावुकता, आनन्द और सङ्घर्ष तीनों का समन्वय मिलता है। यह सुरम्य समन्वय एक आकस्मिक घटना नहीं कही जा सकती। यह भी बहुत सम्भव है कि प्रसाद ने भावुकता का तत्त्व भारतेन्दु के 'चन्द्रावली नाटिका' आदि रचनाओं से ग्रहण किया हो।

अब एक प्रश्न रह जाता है, और वह है द्विवेदी युगीन नाटकों की कला का। 'कृष्णार्जुन युद्ध' को छोड़कर अन्य नाटकों की कला शिथिल और कहीं-कहीं दोषपूर्ण भी है। कला की दृष्टि से निस्संदेह यह युग नाटकों के लिए ह्रास का युग था किन्तु नाट्य-कला के तीनों रूपों आनन्द-प्रधान, भावुकता-प्रधान और सङ्घर्ष प्रधान को प्रस्तुत कर आने वाले साहित्यकारों के समन्वय कार्य को प्रेरित भी किया और उसे सुगम भी बनाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटककार प्रसाद और उनका युग

प्रो० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना एम० ए०

सरस्वती के अनन्य उपासक श्री जयशङ्करप्रसाद एक युग-प्रवर्तक एवं युग-स्रष्टा के रूप में हिन्दी जगत के अन्तर्गत अवतीर्ण हुए थे। आपकी बहुमुखी प्रतिभा ने सरस्वती के मन्दिर में नाटक, कविता, कहानी, उपन्यास, समालोचना आदि साहित्य की समस्त विधाओं के दिव्य सुगन्धिपूर्ण पुष्प चढ़ाये और आज उनकी अनन्त व्यापी सुरभि ने विश्व-साहित्य का कोना-कोना सुरभित बना दिया है।

प्रसाद की नाट्यकला का विकास—नाटककार के रूप में प्रसादजी का प्रवेश 'सज्जन' नाटक के द्वारा सं० १९६८ वि० में हुआ। उस समय आपकी अवस्था २२ वर्ष की थी और इससे पूर्व आप उर्वशी, चंपू तथा प्रेम-राज्य कविता की रचना कर चुके थे। प्रसादजी के इस नाटक को देखने पर पता चलता है कि वे हरिश्चन्द्र के नाटकों से प्रभावित होकर हिन्दी में नाटक लिखा करते थे। उस समय प्रसादजी पर प्राचीनता की पूरी-पूरी छाप विद्यमान थी, क्योंकि सज्जन नाटक में नान्दी, सूत्रधार, भरतवाक्य आदि के साथ-साथ कथोपकथन भी कविता में ही मिलते हैं। दूसरा नाटक 'कल्याणी परिणय' के नाम से सं० १९७० वि० में रचा गया। इसका संविधान भी अत्यन्त सरल और प्राचीनता को लिए हुए है, क्योंकि यहाँ पर भी नान्दीपाठ, भरतवाक्य आदि विद्यमान हैं। इससे एक वर्ष पूर्व प्रसादजी ने एक गीतिनाट्य 'करुणालय' का और निर्माण किया, जो एक अनुपम शैली में कविता के अन्तर्गत लिखा गया है तथा जिसके लिए 'अमित्राक्षर अरल्लछन्द' का प्रयोग हुआ है। यह नाटक सं० १९६९ वि० में लिखा गया था। इसका संविधान अत्यन्त सरल है यहाँ एक वैदिक गाथा को नाट्य रूप दिया गया है। इसके अनन्तर सं० १९७१ वि० में 'प्रायश्चित' नामक नाटक प्रकाशित हुआ, जिसका निर्माण शेक्सपीयर के 'मेक्बेथ' से प्रभावित होकर भारतीय इतिवृत्त को लेकर हुआ है। इसमें जयचन्द के प्रायश्चित का उल्लेख हुआ है। यहाँ पर हम प्रसादजी को प्राचीनता से दूर नयी दुनियाँ में प्रवेश करते हुए पाते हैं। परन्तु इसके उपरान्त राज्यश्री (१९७२ वि०) में पुनः प्राचीन परिपाटी के आधार पर रचना की गई है। इस नाटक के दो संस्करण निकले हैं। प्रथम संस्करण में तो नान्दीपाठ भरतवाक्य आदि विद्यमान थे, परन्तु द्वितीय संस्करण में ये सभी बातें निकाल दी गईं तथा दृश्य-विधान एवं अन्य त्रुटियों का भी सुधार कर दिया गया। प्रसादजी का यही सर्वप्रथम ऐतिहासिक नाटक है।

इसके अनन्तर ६ वर्ष तक प्रसादजी नाटकों की ओर से मौन रहे। परन्तु १९७८ वि० में आपने 'विशाख' का निर्माण किया, जिसमें काश्मीर के इतिहास से कथानक लेकर बौद्धों के पतन एवं नारी-जीवन के भव्य चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। यहाँ तक प्रसादजी की साधारण नाट्यकला के ही दर्शन होते हैं। इसके बाद सं० १९७९ वि० में प्रसादजी का उच्चकोटि का नाटक 'अजातशत्रु' प्रकाशित हुआ। यहाँ आकर प्रसादजी एक सफल नाटककार के रूप में दिखाई देते हैं। अभी तक प्रसादजी एक ही राज्य के कथानक को लेकर प्रायः नाटक लिखा करते थे, परन्तु यहाँ आकर कई राज्यों की घटनायें लेकर उनका सफल समन्वय किया गया है। साथ ही नाटक-संविधान भी अत्यन्त उन्नत एवं सफल दिखाई देता है। 'अजातशत्रु' के उपरान्त प्रसादजी ने 'जनमेजय का नागयज्ञ' (१९८३ वि०) लिखा। यहाँ पर पौराणिक युग की संस्कृति एवं सभ्यता का चित्रण करके प्रसादजी ने इतिहास की अपरिचित घटनाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पाठकों एवं दर्शकों के सम्मुख रखा है। यहाँ राज्यों की क्रान्ति का विकट घोष सुनाई देता है परन्तु कला की दृष्टि से इस में दृश्य-विधान अस्वाभाविक प्रतीत होता है। इसी वर्ष प्रसादजी ने एक प्रतीकात्मक नाटक 'कामना' (१९८३ वि०) की और सृष्टि की जिसमें विलास-प्रधान संस्कृति पर सरल-स्वाभाविक जीवन सम्परिपूर्ण भारतीय प्रकृति की विजय दिखाई गई है तथा जीवन में शान्ति प्राप्त करने का सुगम उपाय भी बतलाया है। इसके अनन्तर आपने सं० १९८५ वि० में 'स्कन्दगुप्त' नाटक का निर्माण किया, जो शास्त्रीय दृष्टि से नाटकों के सभी लक्षणों से परिपूर्ण है, परन्तु प्राचीन रूढ़िवादिता से सर्वथा परे है। यहाँ भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्यकला का सफल सामञ्जस्य हुआ है। सं० १९८६ वि० में प्रसादजी ने एक समस्यामूलक नाटक 'एक घूँट' का भी निर्माण किया, जिसमें राजनीति के साथ-साथ पारिवारिक जीवन की समस्या भी उठाई गई है। यहाँ प्रसादजी के यथार्थवादी रूप के दर्शन होते हैं किन्तु इस यथार्थवाद की पृष्ठभूमि में आदर्शवाद भी विद्यमान है। इसके अनन्तर सं० १९८८ वि० में प्रसादजी का 'चन्द्रगुप्त' नाटक प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व सं० १९६६में प्रसादजी का एक निबन्ध सम्राट् 'चन्द्रगुप्त' के ऊपर निकल चुका था। अतः इस नाटक की रूपरेखा बहुत पहले से ही बनाई जा चुकी थी। यह नाटक प्रसादजी की प्रौढ़तम कृति है, इसमें नाट्यकला का चरम उत्कर्ष तथा घटनाओं का सफल सामञ्जस्य दिखाई देता है। प्रसादजी का अन्तिम नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' के नाम से सं० १९९० वि० में प्रकाशित हुआ। यह नाटक स्त्री के पुनर्विवाह की समस्या के आधार पर ऐतिहासिक साक्षी प्रस्तुत करने के लिए लिखा गया है। इसका दृश्य-विधान अत्यन्त उन्नत एवं सफल है। इसमें प्रचुर मात्रा में नूतनता भी विद्यमान है तथा यह अभिनय की दृष्टि से भी अत्यन्त सफल रचना है। इतना ही नहीं इसमें इतिहास एवं कल्पना दोनों का बड़ा ही सुन्दर समन्वय किया गया है। इनके अतिरिक्त प्रसादजी ने वैदिक-कालीन 'इन्द्र' सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री सङ्कलित करली थी, परन्तु असमय में ही काल-कवलित हो जाने के कारण वह अपनी इन्द्र सम्बन्धी नाटकीय भेंट हिन्दी-जगत को न दे सके, फिर भी इसका कुछ आभास प्रसादजी के 'आर्यावर्त्त का प्रथम सम्राट' नामक लेख से मिल सकता है, जो 'कोशोत्सव स्मारक संग्रह' में संग्रहीत है।

नाटकों का वर्गीकरण—प्रसादजी ने इस प्रकार कुल १३ नाटकों का प्रणयन किया है, जो उनके अल्प-जीवन की महान् भेंट के रूप में विद्यमान हैं, क्योंकि इनमें प्रसादजी की प्रगल्भ प्रतिभा अभी अपना थोड़ा सा ही विकास प्रस्तुत कर पायी थी कि दुर्दैव ने उन्हें बीच में ही उठा लिया। ये समस्त नाटक कथा-वस्तु के आधार पर चार भागों में बाँटे जा सकते हैं—

(१) वैदिक—करुणालय।

(२) पौराणिक—सज्जन तथा जनमेजय का नागयज्ञ।

(३) ऐतिहासिक—कल्याणी परिणय, प्रायश्चित, राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी।

(४) प्रतीकात्मक समस्यामूलक—कामना और एक घूँट।

इसके साथ ही रूपक-रचना की दृष्टि से उपर्युक्त नाटकों का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है—

(१) नाटक—राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नाग यज्ञ, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, कामना तथा ध्रुवस्वामिनी।

(२) एकाङ्की नाटक—सज्जन, कल्याणी-परिणय, प्रायश्चित और एक घूँट।

(३) गीति-नाट्य—करुणालय।

प्रसाद के नाटकों की विशेषताएँ——प्रसादजी के उपर्युक्त नाटकों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि प्रसादजी ने अपने समस्त नाटकों का निर्माण जहाँ एक ओर हिन्दी साहित्य के अभाव की पूर्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए किया, वहाँ उनके हृदय में कुछ ऐसी समस्याएँ, धारणाएँ एवं घटनाएँ भी हिलोरें लेती रहती थीं जिनसे प्रेरणा लेकर उन्हें मूर्तरूप देने के लिए वे साहित्य की किसी न किसी विधा को अपनाते रहते थे। उक्त बातों के लिए नाटक सर्वथा उपयुक्त एवं समीचीन ज्ञात हुआ, इसी कारण प्रसादजी ने अपने हृदयगत कोष को नाटकों में ही सर्वाधिक सञ्चित करने का प्रयत्न किया। उनकी नाटक सम्बन्धी कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(क) भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश का दिग्दर्शन—प्रसादजी अपने देश के इतिहास का सच्चा रूप प्रदर्शित करने के लिए छटपटाया करते थे। कारण स्पष्ट ही है कि प्रसादजी के समय तक देश का सच्चा इतिहास अन्धकार के गर्त्त में ही पड़ा हुआ था, और विद्वान उसे प्रकाश में लाते हुए झिझकते थे। परन्तु प्रसादजी ने नाटकों के माध्यम से पहले अपने अतीत जीवन के उन अंशों को सामने लाने का प्रयत्न किया, जो सर्वथा उपेक्षित हो कर समाज की दृष्टि से बाहर थे। इसके बारे में आपने स्वयं विशाख की भूमिका में भी लिखा है—"मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है और जिन पर कि वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ती है।" इस प्रकार वैदिक युग से १२वीं शताब्दी तक का इतिहास आपने नाटकों में प्रस्तुत किया है।

(ख) भारतीय संस्कृति के स्वरूप की झाँकी—प्रसादजी को अपनी सांस्कृतिक परम्परा पर बड़ा गर्व था। विदेशी संस्कृति एवं सभ्यता की चकाचौंध में भारत का परिवर्तित होना प्रसादजी की मानसिक पीड़ा को अधिकाधिक बढ़ाया करता था। यही कारण है कि आपने जहाँ 'कामना' में विलासिता से भरे हुए जीवन का तिरस्कार कर के स्वच्छन्द प्रकृति की गोद में रह कर जीवन व्यतीत करने को श्रेयस्कर बतलाया है, वहाँ 'एक घूँट' में उच्छृङ्खल प्रेम को बाँधने का प्रयत्न किया है और ऐसे प्रेम को भारतीय समाज के लिए हानिप्रद बतलाया है। इसी तरह अजातशत्रु में मल्लिका एवं गौतम के द्वारा विश्वमैत्री, करुणा, शान्ति तथा मुदिता का सन्देश दिया है, जो अपनी सांस्कृतिक परम्परा के स्तम्भ हैं। अहिंसा एवं सत्य के आचरण की झाँकी स्कन्दगुप्त में अच्छी प्रकार मिलती है तथा प्रेम, त्याग, बलिदान आदि की अपनी उदात्त भावनाओं का समावेश 'चन्द्रगुप्त' नाटक में किया गया है। यहाँ पर विश्वप्रेम, राष्ट्रप्रेम, तथा जातिप्रेम की उदात्त भावनायें भी बड़े समुन्नत रूप में विद्यमान हैं। अपने धार्मिक पतन का रूप विशाख तथा स्कन्दगुप्त में देखने को मिल जाता है। इसके साथ ही तत्कालीन संस्कृति एवं सभ्यता का सफल रूप भी स्कन्दगुप्त में दिखाई देता है जहाँ पर राज-पुरुष परमभट्टारक, परमभागवत, परमवैष्णव आदि उपाधियों से भूषित किये जाते हैं, पर्णदत्त 'गरुड़ध्वज' लेकर आगे बढ़ता है जहाँ महाबलाधिकृत, नायक, महानायक, कुमारामात्य, महाप्रतिहार, महादण्ड-नायक आदि अधिकारियों के नाम दिये गये हैं। इस प्रकार प्रसादजी ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न किया है।

(ग) अतीत के सहारे वर्तमान को शिक्षा एवं उपदेश—प्रसादजी ने प्रायः ऐसी ही घटनायें अतीत के गर्भ से चुनी हैं, जिनके उद्धृत करने से वर्तमान जीवन में आई हुई बुराइयाँ दूर हो सकती हैं। उनके लगभग सभी नाटक ऐसी-ही घटनाओं को लेकर चले हैं, जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हमारे वर्तमान जीवन से भी सम्बन्ध है। 'सज्जन' के अन्तर्गत आई हुई युधिष्ठिर की सज्जनता विदेशी शासकों के दुर्जनतापूर्ण व्यवहार के लिए उपदेश रूप में आई है, क्योंकि युधिष्ठिर अपने शत्रु दुर्योधन को मुक्ति दे देते हैं। इतनी उदारता और सज्जनता देश के लिए अपेक्षित भी थी। इसी तरह 'प्रायश्चित' में जयचन्द का प्रायश्चित भारतवासियों को दुष्कर्म से विरत करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए लिखा गया एक उपदेशपूर्ण नाटक है। करुणालय में धर्म-भीरु, कपट-चातुरी करने वाले हरिश्चन्द्र का चित्रण किया है जो अपने पुत्र को बचाने के लिए कपट-जाल रचता है। 'राज्यश्री' में दया-दाक्षिण्य तथा प्रेम एवं घृणा-द्वेष का रूप प्रस्तुत किया है। ऐसे ही अजातशत्रु में राजनैतिक, सामाजिक समस्याओं का सुझाव, स्त्री-आन्दोलन में स्त्री का स्थान आदि वर्तमान समस्याओं के सुझाव रखे गये हैं। स्कन्दगुप्त में देश-प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न है तो चन्द्रगुप्त में विश्व प्रेम और राष्ट्र प्रेम के साथ-साथ राजनीति का भी भव्य रूप प्रदर्शित किया गया है। इस तरह सर्वत्र वर्तमान को समुन्नत बनाने का प्रयत्न आपके अतीत के कथानकों पर रचे हुए नाटकों में विद्यमान है।

(घ) दार्शनिकता का पुट—प्रसादजी के नाटकों में दर्शन का समावेश अत्यन्त मार्मिक वातावरण की सृष्टि करता है। जीवन के लिए दर्शन ने जो एक स्थायी चिन्तन की परम्परा दी है उसका समुचित उपयोग प्रसादजी ने किया है। वे दार्शनिक भित्ति पर जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन करते हुए पाठकों को सचेत एवं सावधान करते रहते हैं। अजातशत्रु के बिम्बसार के दार्शनिक विचार कितने मार्मिक एवं उपयुक्त हैं—"आह ! जीवन की क्षण-भंगुरता को देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे ये अदृष्ट के लेख जब धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं, तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है और जीवन-संग्राम में प्रवृत्त होकर अनेक अकाण्ड ताण्डव करता है।" इन शब्दों में कोरी दार्शनिकता ही नहीं है, अपितु आगामी कथा के बीज भी सन्निहित हैं। प्रसाद की ऐसी दार्शनिकता सभी उन्नत नाटकों में देखने को मिलेगी। जनमेजय के नागयज्ञ में कृष्ण तथा अर्जुन के संवाद के अवसर पर तथा 'चन्द्रगुप्त' में मालविका, अलका, चाणक्य, कार्नेलिया आदि के कथनों में दर्शन का पर्याप्त पुट दिया गया है। इसका मूल कारण प्रसादजी की भावुकता है जिसके परिणामस्वरूप उनके नाटकों में दार्शनिकता की गहरी छाप दिखाई देती है। 'कामना' नाटक में तो यह दार्शनिकता चरम सीमा पर पहुँच गई है। साथ ही इसके कारण एक ओर वे कर्मवाद का सन्देश पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं और दूसरी ओर 'नियति-वाद' की पुष्टि करते चलते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में एक ऐसी शक्ति समस्त विश्व का सञ्चालन करती रहती है, जो अज्ञात एवं अप्रत्यक्ष रहती है तथा जिसके नियम अटल हैं।

(ङ) भारतीय तथा पाश्चात्य कला का समन्वय—प्रसादजी अपने यहाँ की प्राचीन नाट्य-कला से पूर्ण परिचित थे। उन्होंने प्राचीन परम्परा के आधार पर ही अपने प्रथम ३, ४ नाटकों का प्रणयन किया, जिनमें नान्दी, सूत्रधार, भरत-वाक्य तथा पद्यात्मक कथोपकथन आदि रखे गये। किन्तु जैसे-जैसे वे इस क्षेत्र में बढ़ते गये, वैसे ही वैसे उनकी कला सम्बन्धी जानकारी भी विकसित हुई और राज्यश्री के उपरान्त उनकी प्रौढ़तम रचनाओं में वे प्राचीन बातें लुप्त होने लगीं। पाश्चात्य नाटकों में नृत्य, गीत, नान्दी, भरतवाक्य आदि नहीं होते। प्रसादजी ने भी प्राचीनता का निर्मोक छोड़ दिया, परन्तु भारतीयता का सर्वथा परित्याग नहीं किया अर्थात् नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि तो नहीं रखे, परन्तु गीत और नृत्य अन्त तक सभी नाटकों में विद्यमान रहे। इसके साथ ही पारसी थियेट्रीकल कम्पनियों के लिए रचे हुए नाटकों में जो हलके हास्य के दर्शन होते थे, उसके स्थान पर अपने यहाँ के प्राचीन उच्च हास्य को स्थान दिया, आदर्श के साथ-साथ यथार्थ चित्रण की ओर भी उन्मुख हुए, एक ही घटना न रखकर अनेक घटनाओं का समावेश किया और दृश्य-विधान में भी पर्याप्त सफलता प्राप्त की। प्रसादजी के समय तक हिन्दी रङ्गमञ्च का पूर्णतया अभाव था, अतः वे एक उन्नत रङ्गमञ्च की स्थापना के लिए लालायित रहते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसी कारण कुछ साधारण नाटकों से क्लिष्ट भाषा एवं गहन विचारों का समावेश आपने अपने नाटकों में किया। उनके नाटक कवित्व से अधिक आक्रान्त हो गये और दार्शनिकता भी अधिक मुखर हो गई। ये सभी बातें पाश्चात्य नाट्यमञ्च की भाँति भारतीय नाट्यमञ्च को भी समुन्नत बनाने की चेष्टा के कारण उत्पन्न हो गईं। दूसरी ओर अंग्रेजी की भाँति सुखान्त एवं दुःखान्त नाटकों की ओर भी प्रसादजी अग्रसर हुए, परन्तु भारतीय दृष्टिकोण ने उन्हें अन्त में नाटक को 'मधुरेण समापयेत' के लिए बाध्य किया और अजातशत्रु जैसे दुःखान्त नाटक को भी हम पूर्णतया दुःखान्त न कहकर 'ट्रैजो-कामेडी' कह सकते हैं। उनका ध्यान समस्या-नाटकों की ओर भी गया तथा इतिहास के साथ-साथ समस्या-नाटक का सृजन करने में भी आप सफल सिद्ध हुए। आपका 'ध्रुव-स्वामिनी' नाटक इसका प्रमाण है। चरित्र-चित्रण के लिए आपने पाश्चात्य कला की भाँति अपने यहाँ भी कलात्मक विकास दिखाने का प्रयत्न किया और अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी में आप पूर्ण सफल रहे। इन नाटकों में एक और विशेषता दिखाई देती है, वह है अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण। यह अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण की प्रणाली पाश्चात्य नाटकों से अधिक प्राप्त हुई और प्रसाद जी ने उसे अपनाकर नाटकों में सुन्दर अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित किये। आपने मृत्यु, विवाह, नौकासंतरण आदि भी रङ्गमञ्च पर दिखाने का प्रयत्न किया, जो पाश्चात्य नाटकों में बराबर दिखाये जाते हैं। इस प्रकार आप पाश्चात्य तथा भारतीय कला के समन्वय में पूर्ण सफल रहे। इतना अवश्य है कि रङ्गमञ्च का अभाव होने से आपके नाटकों की सफलता का पूरा-पूरा परिचय जनता को प्राप्त नहीं हुआ और चल-चित्रों ने भी इस कार्य में बड़ी बाधा उपस्थित की।

प्रसाद युग के नाटककार—प्रसादजी ने ऐतिहासिक नाटकों की जिस परम्परा को स्थापित किया उसमें हरिकृष्ण प्रेमी का स्थान सर्वोच्च है। शुक्लजी ने दोनों को समान स्थान दिया है। प्रेमीजी ने मुस्लिम काल को चुन कर अपने नाटक लिखे हैं। इनमें 'रक्षाबन्धन', 'शिव साधना', 'उद्धार' आदि श्रेष्ठ नाटक हैं। इनके अतिरिक्त इस युग के ऐतिहासिक नाटकों में जगन्नाथ मिलिन्द का प्रताप-प्रतिज्ञा (१९८५ वि०), चतुरसेन शास्त्री का उत्सर्ग (१९८६ वि०), उदयशङ्कर भट्ट का चन्द्रगुप्त मौर्य (१९८८ वि०) और दाहर (१९९१ वि०), गोविन्दवल्लभ पन्त का राजमुकुट (१९९२ वि०), परिपूर्णानन्द का रानी भवानी (१९९५ वि०), मिश्रबन्धु का शिवाजी (१९९५ वि०), रूपनारायण पाण्डे का पद्मिनी (१९९९ वि०) और मारवाड़ गौरव (१९९९ वि०) आदि प्रसिद्ध हैं।

दूसरे, प्रसादजी ने 'करुणालय' में जिस गीति-नाट्य शैली को अपनाया है, उसकी परम्परा में आगे मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ', सियारामशरण गुप्त का 'उन्मुक्त', हरिकृष्ण प्रेमी का 'स्वर्ण विहान' और उदयशङ्कर भट्ट के 'कालिदास', 'मत्स्यगन्धा', 'विश्वामित्र' और 'राधा' गीति-नाट्य में आते हैं।

तीसरे, प्रसादजी ने जिस सांस्कृतिक रूप का प्रदर्शन करने के लिए राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि नाटकों का प्रणयन किया उसकी भी परम्परा सजीव बनी रही। प्रेमीजी ने रक्षाबन्धन, शिवा-साधना, प्रतिशोध, स्वप्नभङ्ग तथा आहुत में, लक्ष्मीनारायण मिश्र ने वत्सराज, नारद की वीणा, गरुड़ध्वज, दशाश्वमेध, वितस्ता की लहरें तथा अशोक में उसका निर्वाह किया है। उदयशङ्कर भट्ट के मत्स्यगन्धा, विश्वामित्र, सगर विजय तथा वृन्दावनलाल वर्मा के हंसमयूर तथा पूर्व की ओर और उदयशङ्कर भट्ट के 'शकविजय' आदि नाटक भी इसी परम्परा में आते हैं।

चौथे, प्रसाद जी ने 'एक घूँट' एकाङ्की द्वारा जिस एकांकी नाटक की शैली का सफल रूप प्रस्तुत किया, उसकी परम्परा भी बड़ी समुन्नत दिखाई पड़ती

(शेष पृष्ठ × पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसादोत्तरीय युग के नाटकों की प्रवृत्तियाँ

प्रो० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए०

यद्यपि हिन्दी में नाटकों की परम्परा १३ वीं शताब्दी में लिखित 'संदेश-रासक'[1] से प्रारम्भ होती है तथापि प्रबोध चन्द्रोदय, हनुमन्नाटक, शकुन्तला नाटक (नेवाज) आदि को लेखक नाटक के आधुनिक अर्थों में ग्रहण नहीं करते और भारतेन्दु युग से आधुनिक नाटकों का प्रारम्भ मानते हैं। भारतेन्दु युग में आदर्शवादी, यथार्थवादी, स्वच्छन्दतावादी, समाज-सुधारवादी और राष्ट्रवादी नाटक लिखे गए। भारतेन्दु युग के अन्त में माइकेल मधुसूदनदत्त, गिरीशचन्द्र घोष, दीनबन्धु मित्र, द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का प्रचार होरहा था। रवीन्द्र प्रतीकात्मक नाटक लिख रहे थे। द्विजेन्द्रलाल राय पर शेक्सपियर की नाट्यकला का प्रभाव अधिक था, प्रसादजी पर इन दोनों का प्रभाव पड़ा। भावुकता, करुणा, अंतर्द्वन्द्व, दार्शनिक प्रवृत्ति तथा रोमाण्टिक दृष्टिकोण के साथ साथ अलंकृत शैली, विस्तृत संवाद, पात्रों व दृश्यों की अधिकता तथा कवित्वपूर्ण भाषा आदि प्रवृत्तियाँ प्रसाद के नाटकों में सर्वत्र दिखाई पड़ती हैं। प्रसादजी ने पाश्चात्य शैली पर ही चरित्र-चित्रण की पद्धति स्वीकार की। प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को विश्व के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया। इतिहास के अनुभवों को दुहराकर राष्ट्रीय मोर्चे को मजबूत किया और साथ ही रोमानी प्रवृत्ति तथा सौन्दर्य बोध को भी कवित्वपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया। प्रसाद के नाटकों में 'राष्ट्रीयता' व भारतीय संस्कृति को ही सर्वत्र वाणी मिली।

प्रसादजी के पश्चात् आज तक के नाटकों को डा० दशरथ ओझा ने निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है—

१—नृत्त नाट्य (Ballet) २—नृत्य नाट्य, ३—भाव नाट्य, ४—गीति नाट्य Lyric drama ५—ऐतिहासिक नाटक, ६—सामाजिक नाटक, ७—पौराणिक नाटक, ८—एकांकी, ९—स्वगत नाटक, १०—रेडियो रूपक।

गीति नाट्य में आंतरिक सङ्घर्ष को गेयता में बद्ध कर अभिनेय बनाया जाता है। मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ', सियारामशरण का 'उन्मुक्त', प्रेमी का 'स्वर्ण-विहान' तथा उदयशङ्कर भट्ट के नीति नाट्य इसी नाट्य शैली में रचे गए।[2]

एकांकी नाटकों का प्रसाद के बाद बहुत प्रचार हुआ। सेठ गोविन्ददास[3], डा० रामकुमार वर्मा[4], उपेन्द्रनाथ अश्क, चतुरसेन शास्त्री, विष्णुप्रभाकर के नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। बेनीपुरी का 'नेत्र-दान' तथा विष्णुप्रभाकर का 'क्या वह दोषी था' नवीनतम रचनाएँ हैं। पाश्चात्य कला को आत्मसात कर ये नाटक लिखे गए हैं।

स्वोक्तिपरक (Monodrama) नाटकों में, एक ही पात्र अपने विचारों को प्रकट करता है। सेठ गोविन्ददास के 'चतुष्पथ' नामक संग्रह में[5] प्रलय और सृष्टि, नामक नाटक स्वोक्तिपरक है। 'अलबेला' 'शाप व वर', तथा 'सच्चाजीवन' भी इसी श्रेणी में आते हैं।

---

१. हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास—
डा० दशरथ ओझा।

२. भट्टजी के गीति नाट्य—कालिदास, मत्स्यगंधा, विश्वामित्र, राधा। राधा को 'भावनाट्य' माना जाता है क्योंकि इसमें मधुर गीतों को माध्यम बनाया गया है।

३. सप्तरश्मि, पञ्चभूत।

४. पृथ्वीराज की आँखें, चारुमित्रा।

५. देखिए—हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास पृष्ठ ४९१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) बेनीपुरी का 'सीता की माँ' प्रसिद्ध स्वोक्तिपरक नाटक है।

रेडियो-रूपक रेडियो के लिए लिखे जाते हैं। इसमें विष्कम्भक व प्रवेशक का कार्य स्वयं लेखक करता चलता है और बीच-बीच में आकर्षक संवादों का विधान रहता है, इसमें 'समय की एकता' का ध्यान नहीं रखा जाता। यह प्रयोग अत्यधिक आकर्षक प्रमाणित हुआ है। रेडियो रूपकों में ही फीचर की गणना होती है, फीचर कला का आविष्कार क्लिर कॉच के द्वारा हुआ। इसमें प्रसिद्ध उपन्यासों को नाटक-रूप में उपस्थित किया गया था। हिन्दी में प्रेमचन्द के उपन्यासों पर कई फीचर प्रसारित किए गए। इसमें सूचना देने व प्रचार करने की प्रवृत्ति होती है। सुशील का 'पञ्चायत राज' इसका उदाहरण है। (डा० ओझा)

'भाव-नाट्य' (Fantacy) कला का विकास भी नवीनतम है। विष्णुप्रभाकर के अनुसार इसमें 'रोमानी चित्रण' रहता है। अनुभूति या घटना को भावात्मक रूप में चित्रित किया जाता है। विष्णु प्रभाकर के 'अर्द्धनारीश्वर' तथा 'शलभ और ज्योति'[१] इस विधा के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। परन्तु मञ्च पर जिसे 'भाव-नाट्य' कहा जाता है वह इस विधा से भिन्न है उसमें हाव-भावों की प्रधानता रहती है। उदयशङ्कर भट्ट का "विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य" इसका उदाहरण है।

'ध्वनि काव्य रूपक' भी एक नवीन शैली है इसमें आन्तरिक सङ्घर्ष की प्रधानता रहती है। सुमित्रानन्दन पन्त का 'शिल्पी', 'रजत शिखर', 'शुभ पुरुष' भगवतीचरण वर्मा का 'कर्ण' उदाहरण हैं। इनमें कविता में ही संवाद प्रस्तुत किए जाते हैं बीच-बीच में ध्वनियों के विशेष संकेत रहते हैं।

कुछ लेखक 'रिपोर्ताज' को भी रूपकों में ही रखना चाहते हैं जो गलत है क्योंकि इसमें संवादात्मकता के स्थान पर वस्तुस्थिति की आकर्षक रिपोर्ट मात्र रहती है जो कथा के अन्तर्गत आती है।

व्यंग्य-नाटक भी एक विशेष शैली है इसमें विचारों को जगाने की शक्ति रहती है, ये सर्वदा सोद्देश्य होते हैं, और प्रतिपक्षी को चिढ़ाने, बनाने तथा उसके कमजोर पक्ष पर कटाक्ष करने के लिये लिखे जाते हैं। अश्क का 'अधिकार रक्षक', भुवनेश्वर का 'स्ट्राइक', विष्णुप्रभाकर का 'कांग्रेसमैन बनो' तथा उदयशङ्कर भट्ट का 'दस हजार' इसके उदाहरण हैं।

प्रसाद व भारतेन्दु युग में रङ्गमञ्च के लिए नाटक लिखे गए परन्तु रङ्गमञ्च के लिए लिखे गए नाटक रेडियो पर सफल नहीं हो सकते, अतः उपर्युक्त नई विधाओं का रेडियो पर अधिक प्रयोग होता है।

जन-नाटकों में रास, स्वाँग, ढोलामारू, निहालदे, नौटङ्की आदि भी बराबर प्रसारित होते रहते हैं।

ऐतिहासिक, सामाजिक नाटकों में सेठ गोविन्द दास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उग्र, सियारामशरण, उदयशङ्कर भट्ट, वृन्दावनलाल वर्मा, मिलिन्द, प्रेमी आदि के नाटक प्रसिद्ध हैं।

शैली की दृष्टि से प्रसादोत्तरीय नाटकों का विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् विषय-वस्तु की दृष्टि से भी विचार करने की आवश्यकता है।

भारतेन्दु युग के नाटकों का स्वर सुधारवादी था। प्रसादजी का पुनरुत्थानवादी। सामाजिक सुधारों के प्रति भारतेन्दु युग का लेखक बहुत अधिक जागरूक था। 'प्रसाद' जी के युग में युग-चेतना अधिक गम्भीर हो गई थी अतः प्रसाद ने वर्तमान की समस्याओं को हल करने के लिए इतिहास के अज्ञात अध्याय से दृश्यों का उद्घाटन किया। राष्ट्रीय एकता का स्वर प्रबल हुआ और 'प्रेमीजी' ने मध्यकाल के इतिहास को अपना विषय बनाया। द्विजेन्द्रलाल राय ने भी हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार किया था। राष्ट्रीयता व कलह का अन्तर्द्वन्द्व राय महोदय के नाटकों में बराबर मिलता है।[१] हरिकृष्ण प्रेमी ने भी हिन्दू-

१—अप्रकाशित—डा० ओझा द्वारा सूचित।

१—मेवाड़ पतन में गजसिंह से महावत खाँ कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्लिम एकता का प्रचार किया। रक्षाबन्धन, शिवा-साधना, प्रतिशोध, स्वप्न भङ्ग, आहुति, उद्धार ऐसे ही नाटक हैं।

प्रसाद व प्रेमी के नाटकों के पश्चात् हिन्दी में 'समस्याप्रधान' नाटकों का अधिक महत्त्व माना जाता है। परन्तु समस्या प्रधान नाटकों की परम्परा अधिक चल न सकी जैसे वह भारतीय-मन के अनुकूल नहीं बन सकी। हिंदी में समस्या प्रधान नाटकों के प्रवर्तक हैं लक्ष्मीनारायण मिश्र। मिश्रजी मूलतः पुनरुत्थानवादी कलाकार हैं। हिन्दू संस्कृति के वर्तमान रूप को ही वे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और आधुनिक तर्क-जाल खड़ाकर विधवा-विवाह जैसी प्रथा का भी विरोध करते हैं।[1] वे प्रसादजी के घोर-विरोधी हैं क्योंकि प्रसादजी पर पाश्चात्य कला का प्रभाव था। वे शेक्सपियर की तरह पात्रों की आत्महत्या करा देते थे, उनके नाटकों में मिश्रजी के अनुसार भारतीय संस्कृति का कुत्सित रूप चित्रित हुआ है, रोमाँस, वेदना, करुणा, गलदश्रु, भावुकता व कवित्वपूर्ण प्रलाप ही नाटकों का पर्याय बन गया है। मिश्रजी में ये दोष नहीं हैं।

मिश्रजी बड़े गर्व से कहते हैं कि छायावाद पर पाश्चात्य प्रभाव था, अतः उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। नाटकों की जिस शैली पर डी० एल० राय व प्रसाद का प्रभाव था उसे भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए समस्या नाटक लिखे। उनके अनुसार उन पर इब्सन, शॉ आदि का कोई प्रभाव नहीं रहा। वे शुद्ध भारतीय लेखक हैं। परन्तु फिर भी हिन्दी के लेखक उनके नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव सिद्ध करते रहते हैं। इतने महान सांस्कृतिक लेखक होते हुए भी मिश्रजी ने 'प्रसाद' पर कठोरसे कठोर (और भद्दे भी, गलत भी) आक्षेप किए हैं। उनके अनुसार ऐसा लगता है कि 'प्रसाद' ने नाटक लिखकर हिन्दू संस्कृति के साथ घोर विश्वासघात किया है, जिसके एकमात्र रक्षक मिश्रजी हैं। उदाहरण के लिए 'प्रसाद' ने उदयन को लम्पट के रूप में चित्रित किया है, मिश्रजी ने वत्सराज में उसे कर्म-योगी के रूपमें चित्रित किया है। 'गरुड़ध्वज' में शुङ्ग सेनापति विक्रम-मित्र को भीष्म के समान महान चित्रित किया गया है जो बाल-ब्रह्मचारी है, न्यायी, वीर, सदाचारी, प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' की तरह अतृप्त आकांक्षा से पीड़ित नहीं। एक और महान सांस्कृतिक कार्य मिश्रजी ने 'नारद की वीणा' में यह किया है कि आर्यों को कच्चा माँस खाने वाला बताया है और अनार्यों को अधिक सभ्य बताया है क्योंकि उनके अनुसार विजेता सदा असभ्य रहे हैं और विजित सर्वदा सभ्य रहे हैं। भक्त प्रह्लाद ने ही षडयन्त्र कर अपने शैव पिता हिरण्यकश्यप का वध कराया था, यह भी महान् सांस्कृतिक खोज है। 'दशाश्वमेध' में 'अश्वमेध' यज्ञ की पुनर्स्थापना का इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

'वितस्ता की लहरों में' मनमानी कल्पनाओं से मिश्रजी ने सिकन्दर की जघन्यताओं तथा भारतीयों की महानताओं का चित्रण किया है जबकि 'प्रसाद' यह कार्य 'चन्द्रगुप्त' में नहीं कर सके (?)। इस प्रकार मिश्रजी की राय में भारतीय संस्कृति का जो रूप प्रसाद ने कलुषित कर दिया था उसका उद्धार उन्होंने अपने पवित्र नाटकों द्वारा कर दिया। यह उनकी ऐतिहासिक नाटकों की देन है। यह कार्य भी 'प्रसाद' से परेशान होकर ही उन्होंने किया यद्यपि वह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि "इतिहास के गढ़े मुर्दे उखाड़ने का काम इस युग के साहित्य में वांछनीय नहीं"।

महावत—मुझे इसलिये फख्र हो रहा है कि मुसलमान होने पर भी मैं राजपूत कौम का हूँ और इन्हीं अमरसिंह का भाई हूँ.......अपने मुल्क के लिए ऐसी बेखौफी और ऐसी हिम्मत का काम राजपूत ही कर सकते हैं और मैं भी इन्हीं राजपूतों में हूँ।"

१—मिश्रजी जिन प्रथाओं में मनोविज्ञान की दृष्टि से मानसिक उच्चता की रक्षा का अवसर खोजते हैं, वे प्रथायें प्राचीन युगों में इसी रूप में प्रचलित न थीं, क्या उस युग की अनेक प्रथाओं में मनोविज्ञान की दृष्टि से अच्छाइयाँ नहीं खोजी जा सकतीं?—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्या नाटकों में भी मिश्रजी ने भारतीय संस्कृति का पवित्र रूप प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार 'प्रसाद' कौमार्य को विवाह से श्रेष्ठ मानते थे, आत्म-हत्या करा देते थे, उनमें उन्माद, कोरी कल्पनायें, व्यर्थ की बकझक बहुत मिलती है। मिश्रजी ने 'कौमार्यभङ्ग' का अध्याय खोलकर संस्कृति का उद्धार किया है। 'संन्यासी' में राष्ट्रप्रेमी मुरलीधर किरणमयी का 'कौमार्यभङ्ग' करते हैं।

राक्षस के मन्दिर में पिता की वेश्या 'अस्गरी' से पुत्र प्रेम करने लगता है। 'मुक्ति के रहस्य' में कुमारी आशादेवी का कौमार्यभङ्ग प्रोफेसर उमाशङ्कर द्वारा कराया है। 'राजयोग' में बिहारीसिंह की स्त्री अपने नौकर गजराज से गुप्त प्रेम कर चम्पा नामक पुत्री उत्पन्न करती है। नरेन्द्र राजयोगी है जो बाद में कर्मयोगी बना दिया गया है। हिन्दू संस्कृति के रक्षक मिश्रजी के नाटकों में इन असांस्कृतिक बातों का वर्णन पढ़कर आश्चर्य होता है। इसलिए और भी कि आपने 'प्रसाद' को असांस्कृतिकता के लिए बदनाम करने के लिए कठोर से कठोर शब्दावली का प्रयोग किया।

'प्रसाद' जी की शैली, चरित्र-चित्रण, दृश्यविधान, संवाद आदि की भी मिश्रजी ने कटु आलोचना की है। मैं यह नहीं कहता कि 'प्रसाद' जी में सब कुछ अच्छा था, या उनके नाटकों में कोई दोष नहीं है। परन्तु केवल अवगुणों को बढ़ा-चढ़ा कर कहना, केवल इसलिए कि मिश्रजी को 'प्रसाद' जी से बड़ा नाटककार मान लिया जाय, अनुचित है। वास्तव में प्रसादजी कौमार्य के पक्षपाती थे, कौमार्यभङ्ग के नहीं।

यह ठीक है कि प्रसाद के नाटक बड़े हैं, पात्र अधिक हैं, भाषा कठिन है परन्तु सबसे बड़ी बात वहाँ यह है कि प्रसाद के पात्रों में जीवन है। वे वाद-विवाद में कुशलता दिखाकर कल्पित समस्याओं को मुख्य बनाकर पाठकों के सम्मुख नहीं प्रस्तुत करते बल्कि क्रिया द्वारा पात्रों के गुणों का समर्थन करते हैं। प्रसाद के पात्र लड़ते हैं, प्रेम करते हैं, परिस्थितियों के बीच में पड़कर अनुभव प्राप्त करते हैं, उनके चरित्र का विकास होता है, उनके खल-पात्रों में भी स्वाभाविकता व जीवन है, उनका व्यक्तित्व है, वे हमें याद रहते हैं। राष्ट्र-प्रेम अच्छे पात्रों के प्रेम में बाधक नहीं बनता, वीरता, शालीनता में, सज्जनता, शासन-कुशलता में बाधा नहीं बनती। नारियों में क्षमा, त्याग, विनय और प्रेम करने की शक्ति है—यह है भारतीय संस्कृति। मिश्रजी के नाटकों में पात्र लेखक के हाथ की कठपुतली मात्र हैं, उनके विचार क्रियाहीन हैं, उनमें व्यक्तित्व नहीं है। चाहे मिश्रजी स्वीकार न करें उन पर प्रभाव है बर्नार्डशॉ और इब्सन का। शॉ के पात्रों के समान ही उनके पात्र भी विचारक और बौद्धिक अधिक हैं, व्यावहारिक कम, वे जीवन से सीखते नहीं, जीवन को अपनी पूर्वनिश्चित विचारधारा के दान देने का प्रयत्न करते हैं। मिश्रजी ने जिन समस्याओं को लिया है, वे वर्तमान समय में प्रचलित हिन्दू धर्म के प्रकाश में हल की गई हैं, अतः उनके समाधान साम्प्रदायिक हैं, भारतीय संस्कृति के सामान्य तत्त्वों को 'प्रसाद' जी ने प्रस्तुत किया था, बौद्ध व ब्राह्मण धर्म दोनों की उन्होंने आलोचना की थी, मिश्रजी ने उस परम्परा को अधिक संकीर्ण बना दिया है। वस्तुतः उन्हें केवल शैली की दृष्टि से योरोप से प्रभावित मानना चाहिए। विचार के क्षेत्र में उन्हें 'हिन्दुत्ववादी' लेखक कहना अधिक सङ्गत होगा।

किन्तु मिश्रजी ने एक नूतन विधा का तो प्रचार किया ही, समस्या नाटकों की परम्परा उन्होंने ही प्रचलित की चाहे उसका रूप कितना भी असांस्कृतिक व प्रतिक्रियावादी क्यों न हो।

इस परम्परा में वृन्दावनलाल वर्मा के 'बाँस की फाँस', 'पीले हाथ', 'लो भाई पञ्चो लो' आदि नाटक आते हैं। वर्माजी समस्या का चुनाव ठीक करते हैं परन्तु मिश्रजी जैसी नाटकीय प्रतिभा उनमें नहीं है। अतः विचारोत्तेजकता जैसी मिश्रजी में मिलती है, वैसी वर्माजी में नहीं मिलती। अश्क ने 'छटा बेटा', 'कैद व उड़ान', 'विद्रोहिणी अम्बा' आदि नाटकों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक समस्याओं पर लिखा है। अश्क की सामाजिक चेतना वर्माजी व मिश्रजी दोनों से अधिक विकसित है।

सेठ गोविन्ददास ने समस्या नाटकों में गान्धीवादी चेतना का प्रचार किया है। हृदय-परिवर्तन, अहिंसा, सत्याग्रह, साम्यवाद की पराजय, गांधीवाद की विजय उनके विषय हैं। 'भूदान यज्ञ' में ये सभी बातें देखी जा सकती हैं। 'धीरे-धीरे' में काँग्रेस पर व्यंग्य किए गए हैं। गोविन्दवल्लभ पन्त की 'अंगूर की बेटी' में मद्यपान की समस्या है। उदयशङ्कर भट्ट ने 'पर्दे के पीछे' में आधुनिक नारी तथा आधुनिक व्यवस्था की कुरूपताओं पर सुन्दर एकांकी लिखे हैं जो बहुत ही सफल हुए हैं।

प्रेमी व मिश्रजी के ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त सेठजी के 'हर्ष' नाटक में हृदय-परिवर्तन दिखाया गया है। उग्र का 'ईसा' भी इसी कोटि में आता है। भट्टजी का 'शक-विजय' भी एक ऐतिहासिक नाटक है। वर्माजी के 'पूर्व की ओर', 'हंसमयूर', प्रेमी का 'शपथ', मिलिन्द का 'गौतम नन्द', रांगेयराघव का 'रामानन्द' अच्छे ऐतिहासिक नाटक हैं। पगध्वनि (चतुरसेन शास्त्री) व भूदान-यज्ञ (सेठ गोविन्ददास) में जीवित पात्रों का भी प्रयोग किया गया है।

प्रतीकात्मक नाटकों की परम्परा हमारे साहित्य में प्राचीन है—पुण्य-पर्व (सियारामशरण) मृत्यु की ओर (सन्तोष) ज्योत्सना (पन्तजी) आदि नाटक उल्लेखनीय हैं। प्रसादजी के 'कामना' के पश्चात् प्रतीकात्मक नाटक बहुत अच्छे नहीं लिखे गये।

विषय वस्तु की दृष्टि से 'प्रसाद' जी के बाद नाटकों में सामाजिक प्रश्नों—आधुनिक सभ्यता की कृत्रिमता, बेकारी, अशिक्षा, अन्धविश्वास, संयुक्त परिवार प्रथा का स्वरूप, प्रेम की समस्या, विवाह व तलाक, विवाहित जीवन, मध्यवर्ग की मानसिक दशा, वर्ग-सङ्घर्ष आदि विभिन्न विषयों पर नाटक लिखे गए हैं। प्रगतिवादी लेखकों ने व्यंग्य-प्रधान नाटक बहुत ही मार्मिक लिखे हैं यथा अमृतलाल नागर के नाटक। आजकल गीत, कविता, लम्बे संवाद, अनेक दृश्यों का विधान आदि तत्त्व त्याज्य माने जाते हैं। जनता के जीवन को चित्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। 'प्रसाद' के नाटकों की रोमानी भावना, मिश्रजी के नाटकों की कल्पित समस्याएँ अब ग्रहीत नहीं हैं।

हिन्दी में रङ्गमञ्च के अभाव के कारण अब भी अभिनय के योग्य नाटक नहीं लिखे जा सके। अतः मञ्च पर खेलते समय उपन्यासों को नाटक के रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है, या फिर उसी अवसर के लिए नाटक लिख लिए जाते हैं। डा० सत्येन्द्र ने ऐसे कई नाटक लिखे हैं जिनका अभिनय विभिन्न संस्थाओं में हुआ है। उदयशङ्कर भट्ट के नाटकों का भी अभिनय सफलतापूर्वक होता है। ऐतिहासिक नाटकों में प्रेमी व मिलिन्द के नाटक अभिनेय हैं अन्यथा अधिकतर नाटक पाठ्य हैं। हिन्दी में नाटक का भविष्य उज्ज्वल है परन्तु रङ्गमञ्च के अभाव में रेडियो रूपकों का विकास जिस द्रुतगति से हो रहा है उस गति से मञ्च के लिए नाटकों का विकास नहीं हो रहा है, यह चिन्तनीय है।

साहित्य-सन्देश के ग्राहक बढ़ा कर आप सत्साहित्य के प्रचार में सहायक होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में समस्या-नाटकों की परम्परा

श्री इन्द्रपालसिंह एम० ए०

हिन्दी में भारतेन्दु युग से प्रसाद युग तक यों अनेक सामाजिक राजनैतिक समस्याओं पर नाटक लिखे गए, तथापि योरोप के समस्या नाटकों (Problem Plays) के अनुकरण पर समस्या नाटकों का आरम्भ प्रसाद, प्रेमी आदि के नाटकों के पश्चात् हुआ। इन नाटकों का उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ रूप हमें लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में मिलता है। मिश्रजी हिन्दी में समस्या-नाटककार के नाम से ही प्रख्यात हैं। इन्होंने योरोप के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन और बर्नार्ड शॉ के नाटकों से प्रेरणा ग्रहण करके अपने नाटकों की रचना की है और हिन्दी-नाटक साहित्य को एक नूतन मोड़ दिया है। यद्यपि मिश्रजी से पूर्व प्रसादजी ही पाश्चात्य नाट्य-प्रणाली को अपना चुके थे। उन्होंने भारतीय नाट्य-शास्त्र की कितनी ही सैद्धान्तिक बातों को छोड़ दिया था। प्रस्तावना, नान्दी, प्रवेशक, विष्कम्भक, अङ्कावतार और भरत वाक्य आदि को नमस्कार कर दिया था, तथापि रस सिद्धान्त की पूर्ण रक्षा की थी। उनके नाटकों में काव्य और दर्शन का अपूर्व सामञ्जस्य था तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य शैलियाँ सन्धि स्थल पर खड़ी थीं। लेकिन मिश्रजी ने भारतीय नाट्य-शास्त्र के रस सिद्धान्त को भी छोड़ दिया। उन्होंने किसी भी समस्या को यथा तथ्य रूप में चित्रित करना अधिक उपयुक्त समझा और काव्य तत्त्व को अवहेलना की दृष्टि से देखा। मिश्रजी ने पाश्चात्य समस्या नाटकों से प्रभावित होकर जिस प्रकार के समस्या नाटक हिन्दी साहित्य के चरणों में अर्पित किए वे अपनी निजी विशेषताएँ रखते हैं। इन समस्या तथा स्वगत, अश्राव्य एवं नियतश्राव्य जैसे अस्वाभाविक कथोपकथनों का प्रयोग भी नहीं हुआ है। कथानक का विभाजन अनियन्त्रित और उसकी गति अनिश्चित सी है। गीतों का प्रयोग भी नहीं के बराबर हुआ है। भावावेश एवं रोमान्स की प्रतिक्रिया स्वरूप ये नाटक लिखे गए हैं। अतएव इनमें जीवन की बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या मिलती है, साथ ही सत्य का तीखापन भी कहीं-कहीं स्पष्ट झलकता है। पात्रों के कथोपकथन में मनोविश्लेषण पर अधिक ध्यान दिया गया है। अतः कथोपकथन छोटे, स्वाभाविक एवं अपूर्ण वाक्यों तक में मिलते हैं। नाटकों के दृश्य विधान के लिए अत्यन्त विस्तृत किन्तु सूक्ष्मता लिए हुए रङ्ग-संकेत दिए गये हैं। हाँ, रङ्ग-मञ्च का प्रत्यक्ष अनुभव न होने के कारण उनमें त्रुटियाँ अवश्य पाई जाती हैं। कहीं-कहीं ऐसे दृश्यों का विधान भी मिलता है, जिनको दिखाया जाना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। इन समस्या नाटकों का अन्त या तो दुख में होता है या अनिश्चय एवं निराशा के वातावरण में, क्योंकि समस्याओं का उपयुक्त समाधान नहीं हो पाता।

मिश्रजी के समस्या नाटकों में सन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, राजयोग, आधारित और सिन्दूर की होली प्रमुख हैं। इन सभी नाटकों की मूल समस्या यौन-समस्या है, जिसको उन्होंने चिरन्तन नारीत्व की समस्या कहा है। मिश्रजी ने अपने नाटकों में जिस समस्या को उपस्थित किया है, वह भारतीय जीवन की व्यावहारिक समस्या नहीं है अपितु ऐसे व्यक्तियों की समस्या है जो अपने जीवन व्यापार में स्वाभाविक गति की अपेक्षा बौद्धिक प्रवाह को अधिक महत्व देते हैं। यौन सम्बन्धी ये समस्याएं हिन्दू समाज की रुढ़िबद्ध विवाह संस्था से सम्बद्ध हैं, जहाँ यौन आवश्यकताओं को नीति-विधान के नाम पर अप्राकृतिक रूप से दमन किया जाता है। अतः उससे पीड़ित होकर व्यक्तित्व स्वतन्त्रता के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्फोट करना चाहता है। विदेशी प्रभाव उसे प्रेरणा देता है और नैतिक संस्कार उसे दबाने की चेष्टा करते हैं। फलतः यौन सम्बन्धी अनेकों जटिलतायें उपस्थित हो जाती हैं। इस प्रकार की घटनायें भारतीय समाज में सामान्यतः घटित नहीं होती। अतः इन नाटकों की ये समस्यायें व्यक्ति विशेष की ही समस्यायें हैं। मिश्रजी ने सर्वत्र चिरन्तन नारीत्व की और बुद्धि के द्वारा नारीजीवन की समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा की है। 'सन्यासी' में मालती और किरणमयी की अवस्थाओं से मिश्रजी ने नारी जीवन के इन पहलुओं पर प्रकाश डाला है—नारी को अपने व्यक्तिगत विवाह सम्बन्ध में, समाज में तथा संसार में अपना व्यक्तित्व बनाने के लिए क्या अधिकार प्राप्त होना चाहिए ? राजयोग में नारी जीवन की वर्तमान दशा का चित्र इन शब्दों में प्रकट किया गया है—"पुरुष का सबसे बड़ा पौरुष और गुण स्त्री का अविश्वास करना, उसे सदैव सन्देह की दृष्टि से देखना, उसके आचरण पर पहरा बैठाना और अन्त में अपमान और लांछन से उसके हृदय को चूर-चूर करदेना है।" लेकिन आज नारी इस परिस्थिति में नहीं रह सकती। वह विद्रोह करती है और वह ललकार उठती है—"सैकड़ों हजारों वर्षों वाद नारी की जीभ अब खुलना चाहती है। स्त्री शिक्षा और साथ-साथ उसके अधिकार पर्वत फोड़कर नदी बाहर निकली है—समतल भूमि में वह रोकी नहीं जा सकती। अब तो स्त्री तर्क करेगी, प्रतिवाद करेगी और जरूरत पड़ेगी तो युद्ध करेगी।" यह है नारी की भावना। किन्तु कोरी भावना से नारी की समस्या सुलझ नहीं सकती। नारी की समस्या को सुलझाने का उपाय 'राजयोग' में नरेन्द्र बताते हुए कहता है—"नारी समस्या व्याख्यानों और प्रस्तावों से तब तक नहीं सुलझाई जा सकती, जब तक कि स्त्री स्वयं अपना हृदय न बदले। अपनी आँखों का आँसू और हृदय का उद्वेग रोककर अपने से ऊँचे न पहुँच जाय।" दूसरे शब्दों में उसे भावना पर हृदय पर बुद्धि का अंकुश रखना होगा। मुक्ति का रहस्य और सिन्दूर की होली में नारी की चिरन्तन समस्या का अपेक्षाकृत अधिक सफल व्याख्यान है। 'सन्यासी' की किरणमयी, 'मुक्ति का रहस्य' की आशादेवी, 'राजयोग' की चम्पा आदि सभी इन्हीं समस्याओं में विकसित हुई हैं और असफल नारी जीवन की व्याख्या करती हैं तथा अन्त में प्रेम तथा विवाह में समझौता करके अपनी समस्या हल करती हैं। सभी नारी पात्रों में हृदय और बुद्धि का द्वन्द्व मिलता है, उनकी चिरन्तन नारीत्व की उद्बुद्ध भावना समान है। नाटकों में आदर्शवादी दृष्टि से लांछित नारी अपने हृदय को संयत कर बुद्धि और आत्मा के बल से अपने प्रेमियों पर विजय प्राप्त करती है। इसी प्रकार सभी नाटकों में एक भावुक व्यक्ति कवि की योजना की गई है जो बुद्धि का सम्यक उपयोग न करने के कारण अपने जीवन में विफलता प्राप्त करता है किन्तु उसी विफलता से शक्ति पाकर वह अपने को उठा लेता है। 'राक्षस का मन्दिर' का रघुनाथ, 'सन्यासी' का विश्वकान्त, 'सिन्दूर की होली' का मनोज शङ्कर, 'मुक्ति का रहस्य' का उमाशङ्कर बहुत कुछ समान हैं। यद्यपि अपने नाटकों में मिश्रजी ने सर्वत्र बुद्धिवाद को अपनाया है तथा अपने नाटकों के प्राक्कथनों में अपने को बुद्धिवादी घोषित भी किया है किन्तु भावना का वेग कहीं-कहीं बुद्धिवाद को दबाता सा दृष्टिगत होता है। वे अपने चेतन में तो बुद्धिवादी हैं, लेकिन उनका अवचेतन भावना से पूर्ण है। इसी कारण समस्याओं के अन्तर में बैठते हुए भी वे वर्नार्डशॉ की भाँति किसी परम्परा पर करारी चोट नहीं कर पाये हैं।

चिरन्तन नारीत्व की समस्या के अतिरिक्त उनके नाटकों में अन्य छोटी-मोटी समस्यायें भी अनमिल ढङ्ग से गुम्फित हैं। यथा—सन्यासी में जाति-रक्षा की समस्या के लिए एशियाई सङ्घ की समस्या, मुक्ति का रहस्य की चुनाव समस्या, तथा मातृ मन्दिर, खद्दर, सुधारवाद का दम्भ आदि। इन समस्याओं से प्रभाव ऐक्य में व्याघात उपस्थित हो जाता है। इस दोष के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त इनके किसी-किसी नाटक में दृश्यों का विभाग भी अनुपयुक्त प्रतीत होता है। यथा 'सन्यासी' में दृश्यों का परिवर्तन और 'आधीरात' में अति प्राकृतिक तत्त्व का समावेश। संवादों में कहीं कहीं स्वाभाविकता के मोह में कठिन अँग्रेजी तक का प्रयोग निरन्तर किया है, जिससे हिन्दी का साधारण पाठक उदासीनता का अनुभव करता है। इन छोटी मोटी त्रुटियों के होते हुए भी उनके नाटकों में उनकी प्रतिभा का स्फुरण और उसकी शक्तिमत्ता प्रतिभासित होती है। नाटक साहित्य को नवीन गति देने का श्रेय उन्हें प्राप्त है और प्रसाद के बाद वे ही सर्वोत्कृष्ट नाटककार माने जाते हैं।

मिश्रजी के अतिरिक्त पृथ्वीनाथ शर्मा ने भी 'दुविधा' और 'अपराधी' नामक दो समस्या नाटक लिखे हैं। 'दुविधा' में आधुनिक शिक्षित नारी की समस्या को प्रस्तुत किया है, जो अपने शिक्षा-काल में स्वतन्त्र जीवन की रंगीनियों में खेल चुकी है और विवाह के मर्यादित-बन्धन-युक्त जीवन के अभिशाप के सम्बन्ध में सुन चुकी है। साथ ही जिसे मातापिता के निश्चय पर विश्वास नहीं है और स्वयं कुछ निश्चय नहीं कर पाती। दुविधा के इन क्षणों में परिस्थिति वश गलत निश्चय कर बैठती है। 'सुधा' के चरित्र द्वारा लेखक ने इसी समस्या का अङ्कन किया है। 'अपराधी' की समस्या भिन्न प्रकार की है। जो न्याय और समाज की दृष्टि से अपराधी है किन्तु स्वभाव से नहीं। परिस्थितियाँ उसे अपराधी बना देती हैं। 'मातादीन' के चरित्र से लेखक ने अपराधी की समस्या को उपस्थित किया है। ये नाटक नाट्य-कला की दृष्टि से उत्तम हैं।

इनके अतिरिक्त श्री उदयशङ्कर भट्ट ने भी 'कमला' नामक समस्या नाटक लिखा है। यद्यपि भट्टजी अतीत वैभव के कुशल चितेरे हैं, फिर भी अपने पौराणिक नाटकों में वर्तमान समस्याओं को अवसर निकाल कर स्थान दिया है। उनमें 'चिरन्तन-नारीत्व' की समस्या झाँकती दृष्टिगत होती है। 'कमला' को उन्होंने इसी समस्या के आधार पर लिखा है। सामन्तीय संस्कृति के प्रतिनिधि देवनारायण नामक वृद्ध से कमला नामक सुशिक्षित युवती का विवाह कराया है, जो नारी को मात्र उपभोग्या समझता है। उसकी इस भावना के विरुद्ध नारीत्व का सङ्घर्ष होता है और नारी अपनी बलि देकर पुरुष को जीवन का पाठ पढ़ाती है। इस नाटक में जहाँ कवित्व है वहाँ भाषा की सरसता भी है और वे स्थल सुन्दर भी बन पड़े हैं। किन्तु समग्र नाटक उतना सफल नहीं हो पाया है।

मुस्लिम-युग का उद्घाटन करने वाले श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने भी 'छाया' और 'बन्धन' नामक समस्या नाटक लिखे हैं। छाया में लेखकों की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। किस प्रकार लेखक अपनी आत्मा का रक्त देकर साहित्य की सृष्टि करता है। लेकिन उसे मिलता क्या है प्रशंसा के दो शब्द। उसकी दशा ऐसी है कि वह अपनी पत्नी की लज्जा ढकने को वस्त्र भी नहीं जुटा पाता। एक ओर उसे मान-पत्र भेंट होता है और दूसरी ओर सिपाही समन लिए दृष्टिगत होता है। प्रेमी जी के नाटकों में भावात्मकता और आदर्शवादिता का पुट आगया है। इसी कारण वे अपने समस्या नाटकों में उतने सफल नहीं हो सके हैं, जितने ऐतिहासिक नाटकों में हुये हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने नवीन शिक्षा प्राप्त नवयुवक और नवयुवतियों की समस्या को लेकर 'स्वर्ग की झलक' नामक नाटक की सृष्टि की है। आज का नवयुवक विदेशी सभ्यता के रङ्ग में रँगी हुई तितली के समान आकर्षक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नारी की ओर आकृष्ट होकर स्वर्ग बसाना चाहता है। किन्तु उसके साहचर्य में आकर उसकी आशाओं पर तुषारापात हो जाता है। तथा आधुनिक नारी स्वाभिमान के दम्भ में मानसिक सन्तुलन को खो बैठती है और इसी को नारीत्व की सार्थकता समझती है। किन्तु जब वह जीवन में प्रविष्ट होती है, तब उसे कटु अनुभव प्राप्त होते हैं। इन्हीं युगों का उद्घाटन अश्कजी ने अपने नाटक में किया है। यद्यपि वे जीवन के वाहन स्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रवेश नहीं करते तथापि ऊपरी धरातल पर रह कर समस्या को भली भाँति सुलझाने में समर्थ हुये हैं। नाटक, कला की दृष्टि से सफल है। जीवन के ऐसे ही स्थूल धरातल पर लिखा हुआ गोविन्दबल्लभ पन्त का 'अंगूर की बेटी' नामक नाटक है। जिसमें मद्यपान के दोष दिखाये गये हैं। इसमें एक समस्या को प्रस्तुत किया गया है, इसी से भले ही इसे समस्या नाटकों की कोटि में गिन लिया जाय, वैसे इस नाटक में समस्या नाटकों जैसी टैकनिक नहीं है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के बाद समस्या नाटकों की परम्परा में सेठ गोविन्ददास का प्रमुख स्थान है। लेकिन उनकी समस्यायें सामाजिक नहीं राजनैतिक हैं। उनके नाटकों का आधार सैक्स नहीं राष्ट्रीयता है। उनके सभी नाटक स्वानुभूति के प्रतिबिम्ब है, जिनमें उनके वातावरण की प्रतिक्रिया है। वैभवपूर्ण वातावरण में उत्पन्न होकर भी उन्होंने राष्ट्रीयता का काँटों का ताज पहनना स्वीकार किया और महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व से अपने को बनाने की चेष्टा की। इसलिये इनके नाटकों में गान्धीवाद का व्यावहारिक पक्ष प्रबल है। वे उसके दर्शन और उसके चिन्तन क्षेत्र में नहीं गये अपितु बाह्य धरातल पर रहकर ही अपने नाटकों की सज्जा की। उन्होंने स्वयं असहयोग में भाग लेकर राष्ट्रीय जीवन के अनुभव प्राप्त किये और उनको अपनी तूलिका से अपने नाटकों में अङ्कित कर दिया। सेठ जी का 'सेवा-पथ' सेवा-पथ की समस्याओं को ही प्रस्तुत करता है। राजनीति के क्षेत्र में तीन प्रकार के व्यक्ति कार्य करते हैं। एक तो वे जो त्याग को सर्वश्रेष्ठ सेवा-पथ समझकर अपना उत्सर्ग करने को तत्पर रहते हैं और दूसरे वे मध्यम श्रेणी के व्यक्ति जो बौद्धिक साम्यवाद के समर्थक होते हैं। ऐसे लोग आनन्दोपयोग को न त्याग कर भी ईमानदार देश सेवी बनना चाहते हैं और तीसरे वे पूँजीपति जो नाम के लिए राजनीति में भाग लेते हैं। 'सेवापथ' के दीनानाथ, शक्तिपाल और श्रीनिवास ऐसे ही पात्र हैं। 'प्रकाश' नाटक में पूँजीपतियों के दम्भ, ईर्ष्या, द्वेष एवं असन्तोष का दिग्दर्शन कराया गया है। सेठ जी के नाटकों में यद्यपि जीवन की गहराई नहीं है लेकिन समस्या का सुलझाव अत्यन्त स्पष्ट है। सभी नाटकों की पृष्ठभूमि में वैभवपूर्ण वातावरण के यथातथ्य चित्र हैं, जिनको सेठजी ने प्रत्यक्ष देखा है। शैली में व्यंग्यात्मकता नहीं, व्याख्यात्मकता है। भाषा संयत परिष्कृत और प्रौढ़ है तथा दृश्य विधान अनुकूल है। सेठजी ने स्वदेश और विदेश की नाट्य शैलियों का गम्भीर अध्ययन किया है अतः टैकनिक के सफल प्रयोग किए हैं। वे हिन्दी के यशस्वी नाटककार हैं।

राजनैतिक समस्याओं को लेकर वृन्दावनलाल वर्मा ने भी 'धीरे-धीरे' नामक नाटक की रचना की है जो कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल की ढिल-मिल नीति पर व्यंग है। नाटककार यद्यपि कांग्रेस की नीति के प्रति सहानुभूति नहीं रखता, फिर भी कटुता कहीं भी लक्षित नहीं होती। उग्रजी का डिक्टेटर भी ऐसा ही नाटक है।

इन प्रमुख नाटकों के अतिरिक्त समस्या नाटकों में श्री प्रेमसहायसिंह का 'नवयुग', बेचनशर्मा उग्र के 'चुम्बन' तथा 'आवारा', भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'छलना', सूर्यनारायण शुक्ल का 'खेतिहर देश' और शारदादेवी का 'विवाह मण्डप' भी उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार समस्या नाटकों की यह परम्परा भारतेन्दु से आरम्भ होकर निरन्तर गतिशील रही है। किन्तु वर्तमान युग में छोटी कहानियों की भाँति एकाङ्की नाटकों की ओर लेखकों का ध्यान अधिक आकर्षित हो गया है तथा रेडियो की माँग के कारण प्रसिद्ध समस्या नाटककार श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', वृन्दावनलाल वर्मा आदि ध्वनि रूपक और ध्वनि नाटक की रचना करने लगे हैं। इस कारण समस्या नाटकों की गति रुक सी गई है। समस्यानाटकों में बौद्धिकता का प्राधान्य रहता है और भावात्मकता का अभाव पाया जाता है। उनमें हृदय को आन्दोलित करने की क्षमता नहीं होती। इस कारण भी समस्या नाटकों के भविष्य पर प्रश्न वाचक चिह्न लग गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में रेडियो नाटक

प्रो० त्रिलोचन पाण्डेय एम० ए०

आधुनिक हिंदी साहित्य में गद्य की अनेक विधाओं के साथ नाटक का विकास अत्यन्त द्रुत गति से हुआ है। विषय वस्तु, सिद्धांत प्रयोग के नवीन रूप सामने आए हैं। रेडियो नाटक इसी का सर्वाधिक विकसित रूप है जो दृश्य के स्थान पर श्रव्य-प्रधान हो गया है।

अन्य नाट्य-रूपों से रेडियो नाटक को पृथक् कर देने वाली प्रधान विभाजक रेखा है उसकी प्रेषणीयता का माध्यम। इसमें ध्वनि के द्वारा ही प्रत्येक प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है अतः रङ्गमञ्चीय उपकरण भी श्रव्य ही हो सकते हैं। ध्वनि विस्तारक यन्त्र व सङ्गीत से सुख-दुःख, हर्ष विषाद आदि मनोभावों की जाग्रति तथा अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न किए जाते हैं; इस कारण रेडियो नाटक में सूक्ष्मता अनिवार्य है। यह सूक्ष्मता विषय वस्तु, कथोपकथन, देशकाल, शैली, उद्देश्य आदि सभी तत्त्वों से सम्बद्ध है इसलिए विचार-प्रधान व वातावरण-प्रधान नाटक रेडियो से प्रसारित होने में अधिक उपयुक्त सिद्ध होते हैं। रङ्ग-मञ्च पर जो वस्तु दृश्य होती है उसका बोध संवादों या ध्वनि प्रभाव द्वारा कराया जाता है अतः अनुभूति कल्पना-प्रधान हो जाती है जो सूक्ष्म होती है।

सामान्य नाटकों में देशकाल का बन्धन अपेक्षाकृत कम होता है, अङ्कों में क्रमिक विभाजन द्वारा प्रतिपादन विषय का निर्वाह सुगमता पूर्वक होता है, दर्शक या पाठक नाटक के घटना-क्रम का सूत्र बनता चलता है किन्तु रेडियो नाटक में इतनी सरलता नहीं रहती। इसमें पाठक अधिक जागरूक होता है अतः पात्रों को बोलते समय एक-एक शब्द के उच्चारण में सतर्क रहना होता है अन्यथा माइक्रोफोन छोटे से छोटे दोष को भी विस्तृत कर देगा, एक हलका अवकाश, सारा प्रभाव नष्ट कर सकता है। अतः शिल्प विधान की कसावट आवश्यक है। पाँच अङ्क वाले या तीन अङ्क वाले नाटकों की अपेक्षा रेडियो नाटक को एकाङ्की के अधिक निकट समझना चाहिए।

रेडियो नाटक में सङ्गीत विधान, तद्जन्य अनुकूल भयावह या उल्लासपूर्ण वातावरण की सृष्टि प्रमुख होती है जब कि रङ्गमञ्चीय नाटकों में पद्य-गीत आदि का विधान क्रमशः घटता गया है। इसकी सजीव ध्वनियों के आरोह अवरोह से भावों की अभिव्यक्ति होती है। दृश्य परिवर्तन, घटना चित्रण, समय या स्थल की निकटता—दूरी का आभास संवादों की स्वर लहरी की तीव्रता, सूक्ष्मता द्वारा या सङ्गीत के व्यवधान से कराया जाता है। रेडियो नाटक अब प्रायः आधे घण्टे या पैंतालीस मिनट के होते हैं—बहुत हुआ तो एक घण्टा—अतः समय का बन्धन अधिक होता है। ऐतिहासिक या पौराणिक नाटकों में तो सूत्रधार (narrator) द्वारा कथन आवश्यक हो जाता है जिसको कला की दृष्टि से वस्तुतः त्रुटि मानना चाहिए अन्यथा दस वर्ष पूर्व या पाँच वर्ष उपरान्त की घटनाओं का तारतम्य वर्तमान कथा-वस्तु से नहीं मिलाया जा सकता। अभिनय करने वाले पात्रों की कलात्मकता भी तदनुरूप होनी चाहिए। जहाँ रेडियो विभाग शासन सत्ता द्वारा सञ्चालित हैं वहाँ कुछ सीमाएँ और आ जाती हैं—शासन नीति की आलोचना प्रसारित नहीं की जा सकती। सुविधा यही है कि ये नाटक कमरे में बैठ कर सुने जा सकते हैं। आनन्द प्राप्ति के लिए अन्य स्थान में जाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। भाषा व ध्वनि तत्त्वों की अधिक प्राधानता अब शब्द-प्रधान तथा संवाद-प्रधान रेडियो नाटकों के रूप में सामने आ रही है। जैसा कि श्री हरिश्चन्द्र खन्ना का कहना है—"रेडियो नाट्य का आधार यह सिद्धान्त था कि प्रत्येक ध्वनि व्यञ्जना से सम्पन्न है और प्रत्येक शब्द उच्चारण मात्र से श्रोता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विशेष भाव जाग्रत कर सकता है। ध्वनि और शब्द के उचित सामञ्जस्य से रेडियो शैली का जन्म हुआ। रङ्ग नाटक हृदय वस्तुओं का प्रयोग करता है—पारिपार्श्व, लिबास, हावभाव आदि। किन्तु रेडियो नाटक श्रव्य वस्तुओं का प्रयोग करेगा जैसे ध्वनि, सङ्गीत आदि। रङ्ग नाटक का आधार स्थायित्व है, रेडियो नाटक का गति। इसलिए रङ्ग नाटककार बड़े-बड़े दृश्यों का निर्माण करता है, उसे करना पड़ता है—रेडियो नाटककार छोटे-छोटे वेगवान गतिशील दृश्यों का—ठीक उसी तरह जैसे कि फिल्म निर्माता करता है। सारांशतः रेडियो नाटककार उस शिल्प का प्रयोग करता है जिसका माध्यम माइक्रोफोन है।" इस उद्धरण से अन्तर स्पष्ट हो जाएगा।

रेडियो के दिन पर दिन बढ़ते हुए प्रभाव के कारण रेडियो नाटक का प्रसारण भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। अधिकाधिक जनप्रिय होने के साथ-साथ उसके सिद्धान्त भी व्यापक होते गए हैं। अन्य देशों की तरह भारतवर्ष में भी इनके रूप विधान, शिल्प शैली आदि का विकास होता रहा है। हिन्दी के रेडियो-नाटकों में इधर, विस्तार व विविधता के स्थान पर एक सूत्र प्रभाव-ऐक्य पर अधिक जोर दिया जाने लगा है सम सामयिक कला सम्बन्धी विचारों, जैसे लक्षणावाद बिम्बवाद आदि ने भी इसके विकास में सहायता दी जिनका प्रतिफलन, रूप सम्बन्धी परिवर्तन के साथ विषय वस्तु पर भी लक्षित होता है। जीवन के वर्तमान सङ्घर्ष, समस्या, चरित्र-विश्लेषण, यथार्थ सत्य आदि का विवेचन करने वाले नाटकों की वृद्धि हुई है—अर्थात् रेडियो नाटक हिन्दी में भी अधिकाधिक सोद्देश्य, साभिप्राय होते जा रहे हैं। उनमें उत्तरोत्तर सर्जनात्मक प्रगतिशील दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिन्दी जगत में रङ्गमञ्च का अभाव रेडियो नाटक की प्रगति के लिए सहायक सिद्ध हुआ। यह कथन इसी रूप में सत्य माना जा सकता है कि राष्ट्रीय रङ्गमञ्च की अनुपस्थिति में रेडियो ही हिन्दी व अन्य प्रादेशिक भाषाओं का सामान्य मञ्च बनता गया। विषय विस्तार की दृष्टि से हिन्दी के रेडियो नाटकों को मुख्यतः ६ विभागों में रखा जा सकता है।

१—पौराणिक विषय—इस क्षेत्र में श्री उदयशङ्कर भट्ट (मदन दहन, विक्रमोर्वशी), लक्ष्मीनारायण मिश्र (अहिल्या, अशोक वन), गोविन्ददास (कर्ण), विपिनचन्द्र बन्धु (ऋष्य शृङ्ग) आदि लेखकों का विशेष योगदान रहा है।

२—ऐतिहासिक विषय—इस क्षेत्र में डॉ० रामकुमार वर्मा (चारुमित्रा, औरङ्गजेब की आखिरी रात, कौमुदी महोत्सव); जगदीशचन्द्र माथुर (भोर का तारा, विजय की वेला, कोणार्क); लक्ष्मीनारायण मिश्र (ताजमहल के आँसू, शाहजहाँ की आखिरी रात); देवेन्द्रनाथ शर्मा (आचार्य द्रोण, शेरशाह) देवराज दिनेश (रावण, तपोबल, मानव-प्रताप), आर० एन० नागर, रामवृक्ष बेनीपुरी, नरेन्द्र शर्मा आदि लेखकों की रचनायें विशेष उल्लेखनीय हैं।

३—सामाजिक विषय—इस क्षेत्र में श्री भगवतीचरण वर्मा (राख और चिनगारी); हंसकुमार तिवारी (पुकार, झूँठे सपने); राधाकृष्णप्रसाद (आवरण); विश्वम्भर मानव (जीवन साथी); सत्येन्द्र शरत् (आवारा, तार के खम्भे) और रेवती शरण शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। उपेन्द्रनाथ अश्क के सामाजिक रेडियो नाटकों में संवाद कुशलता, कथानक की गतिशीलता, चरित्र विविधता, हास्य व्यंग्य का मिश्रण द्रष्टव्य है। 'शिकारी', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'छठा बेटा', 'सुबह शाम', 'बतसिया', 'पर्दा उठाओ : परदा गिराओ' आदि नाटकों का इस दृष्टि से सफल प्रयोग रहा है।

४—मनोवैज्ञानिक विषय—यह क्षेत्र रेडियो नाटक के लिए अधिक उपयुक्त पाया गया है। क्योंकि यहाँ घटना-विशेष प्रधान न रहकर विचार अनुभूति प्रधान हो जाती है। जगदीशचन्द्र माथुर (खण्डहर); मुहम्मद हसन (महलसरा, फूल और परछाँई); नरेश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार मेहता (नील दिशाएँ, 'साँझ के स्वर, सनोवर के फूल), भारत भूषण अग्रवाल (महाभारत की साँझ) विष्णु प्रभाकर आदि लेखकों का इस क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है। विष्णुजी ने रेडियो नाटक के प्रायः सभी रूप अपनाए हैं लेकिन सामाजिक, मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में ही उन्हें अधिक सफलता मिली है। 'उपचेतना का छल', 'धरोहर', 'धुआँ', 'दरिन्दा', सर्वोदय, उनके प्रसिद्ध नाटक हैं जिनमें मौलिक वस्तु स्थिति और चुस्त संवादों के दर्शन होते हैं।

५—व्यंग्यात्मक विषय—हिंदी नाट्य साहित्य के इस क्षेत्र में अभी श्रेष्ठ कृतियाँ कम हैं और रेडियो नाटक भी इस तथ्य का अपवाद नहीं। अमृतलाल नागर (बाँकेलाल), प्रभाकर माचवे (बधू चाहिए, कवायदवाड़ी, रामभरोसे), जयनाथ नलिन (नवाबी सनक), कृष्णचन्द्र (सराय के बाहर, एक रुपया एक फूल), राजेन्द्रसिंह वेदी (कार की शादी, पाँव की मोच, कैदी), सआदत हसन मंटो (रन्धीर पहलवान, कमरा नम्बर नौ, हतक); आदि लेखकों की रचनाएँ विशेष प्रसिद्धि पा चुकी हैं।

६—रहस्य व अतिकल्पनामूलक विषय—जासूसी आदि नाटक इसी क्षेत्र में आते हैं जिनमें निरन्तर कुतूहल संवादों की सरलता प्रधान होती है। विषय वस्तु का क्षेत्र विस्तृत होने पर भी नाटक अपेक्षाकृत कम लिखे गए हैं जिसका कारण सम्भवतः इन नाटकों का घटना प्रधान रहना हो सकता है। इशरत रहमानी (भूतों वाला बँगला); चिरञ्जीत (महाश्वेता, नाटक का अन्त); एस० एन० चौबे (तीसरी चाल मात); सिद्धनाथ कुमार (लौह देवता, सृष्टि की साँझ) आदि दृष्टव्य हैं।

हिन्दी के उदीयमान नाटककारों में राजेन्द्र राजन, सुनील शर्मा, चन्द्रकान्त जाकिर, बालकराम नागर, सीम, स्वदेशकुमार, आदि नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी भाषा के अतिरिक्त पञ्जाबी, मराठी, बङ्गला, आसामी, उड़िया, गुजराती, कन्नड़, तेलगु, तमिल, मलयालम, आदि प्रादेशिक भाषाओं में भी सुन्दर, कलात्मक रेडियो नाटक प्रसारित किए गए हैं, जिनमें मौलिक तथा अनूदित दोनों प्रकार की रचनाएँ हैं। रेडियो नाटकों का क्रमबद्ध व शृङ्खलित प्रसारण सन् १९३६ के लगभग प्रारम्भ हुआ जब दिल्ली, पेशावर, लाहौर, लखनऊ, मद्रास आदि केन्द्रों में उत्तरोत्तर ब्राडकास्टिंग स्टेशन खुलते गए। दूसरे महायुद्ध के उपरांत नवीन आवश्यकताएँ आती गईं और नाना रूपों का विकास होता गया। इस तरह रेडियो नाटक पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों में अभूतपूर्व प्रगति कर गया है। इसके और रूप भी सामने आए हैं।

रेडियो के माध्यम से नाटक के अतिरिक्त रूपक के अन्य भेद-प्रभेदों में जो प्रयोग हुए हैं, उनमें पद्य-नाट्य, गीति नाट्य विशेष सफल रहे हैं। सुमित्रानन्दन पन्त (फूलों का देश, रजत शिखर, ध्वंसावशेष) उदयशङ्कर भट्ट (विश्वामित्र), भगवतीचरण वर्मा (कर्ण); गोविन्ददास (स्नेह और स्वर्ग); चिरंजीत (देव और मानव); एस० एन० चौबे (उद्धव संदेश, विद्यापति); नरेशकुमार मेहता (अग्निदेवता); सलाम मछली शहरी (अनारकली) आदि नाम इन क्षेत्रों में उल्लेखनीय हैं। इनमें काव्यात्मकता, गीतात्मकता के साथ नाट्य तत्व भी मिलता है। हिन्दी के कवि इस ओर प्रधानतः आकृष्ट हुए हैं।

'फीचर' तथा 'डाक्यूमेंटरी' प्रोग्राम भी इसी के अर्वाचीन विकसित रूप हैं जिनमें नाटकीय माध्यम से शिक्षण तथा प्रचार कार्य सुगमतापूर्वक होता है। बच्चों के लिए, स्त्रियों के लिए, ग्रामीणों, विद्यार्थियों आदि के लिए अलग अलग कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। इस प्रकार रेडियो नाटक कला के विकास से हिन्दी में जहाँ एक नूतनविधा का प्रारम्भ हुआ वहीं उसका सम्बन्ध भी जनता से हो गया। पाठ्य-नाटकों से जनता का एक उच्च वर्ग ही लाभ उठा सकता है किन्तु रेडियो नाटकों में लेखक को साधारणीकरण का ध्यान रहता है। हिन्दी में रेडियो-नाटकों का भविष्य उज्ज्वल है उनका निरन्तर विकास हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकाङ्की नाट्य कला

प्रो० महेन्द्र भटनागर एम० ए०

एकाङ्की-नाटक साहित्य का अत्याधुनिक; किन्तु लोकप्रिय तथा महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। नाटक की तरह एकाङ्की-नाटक भी दृश्य-काव्य के अन्तर्गत है। अतः टेकनीक की दृष्टि से एकाङ्की रङ्गमञ्च की रचना है। एकाङ्की में किसी 'एक घटना' का, पात्रों के पारस्परिक संवादों तथा कार्यों के द्वारा स्वाभाविक चित्रण किया जाता है।

केवल 'घटना' सम्बन्धी शर्त को छोड़कर उपर्युक्त शेष सभी बातें नाटक में भी पाई जाती हैं; क्योंकि नाटक भी दृश्य-काव्य है। अतः नाटक और एकाङ्की-नाटक की मूल-टेकनीक में मौलिक अन्तर नहीं है। दोनों की टेकनीक एक-दूसरे के विपरीत नहीं है। यहाँ यह समझने में भूल हो सकती है कि एकाङ्की-नाटक, नाटक का ही संक्षिप्त रूप है। वास्तव में एकाङ्की-नाटक अपने में एक पूर्ण तथा स्वतन्त्र रचना है। वह नाटक का लघु-संस्करण नहीं है। नाटक के एक अङ्क को एकाङ्की-नाटक समझने की कल्पना सम्भवतः कोई नहीं करेगा केवल 'एक घटना' सम्बन्धी शर्त ने नाटक और एकाङ्की-नाटक में अन्तर ला दिया है। इसी प्रमुख भेद के कारण नाटक तथा एकाङ्की नाटक अलग-अलग रास्तों पर चलने लगते हैं, यद्यपि उनकी दिशा एक होती है। जहाँ 'एक घटना' सम्बन्धी शर्त की विस्तृत व्याख्या अपेक्षित है वहाँ नाटक और एकाङ्की-नाटक के आकार-विस्तार सम्बन्धी भेदों को भी समझ लेना जरूरी है।

बड़े नाटक में सम्पूर्ण जीवन की क्रमबद्ध विवेचना न भी हो; फिर भी वह जीवन का विस्तृत भाग घेरे रहता है। जबकि एकाङ्की-नाटक जीवन के एक अङ्ग को ही अपना लक्ष्य बनाता है। लेकिन यह अङ्ग केवल एक झलक के रूप में व्यक्त नहीं होता; वह अपने सम्पूर्ण-वैभव के साथ, समग्र-जीवन की अनेक सबलताओं और दुर्बलताओं के साथ तथा पूर्व-संस्कारों व विश्वासों के साथ स्पष्ट रूप में हमारे सामने आता है। इस एक अङ्ग को लेकर एकाङ्कीकार जीवन के महासागर में बड़ी गहरी डुबकी लगाता है। तभी तो वह अनेक बहुमूल्य भाव-मोती समाज के सामने निकाल कर रख देता है। जीवन का यह एक अङ्ग या पहलू किसी महत्त्वपूर्ण घटना के माध्यम से पेश किया जाता है। यदि घटना महत्त्वपूर्ण नहीं हुई तो जीवन का वह अङ्ग, मात्र-झलक के रूप में सामने आयेगा। रङ्ग फीके-फीके लगेंगे। न तो लेखक का उद्देश्य ही पूरा हो पाएगा और न सामाजिकों को तृप्ति ही मिलेगी। इसलिए एकाङ्कीकार को घटना-चयन के सम्बन्ध में बड़ी सतर्कता से काम लेना पड़ता है। यह घटना जितने उद्दीप्त-क्षण की होगी उतनी ही तीव्र और प्रभावोत्पादक लगेगी।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने एकाङ्की का स्वरूप बड़े काव्यात्मक ढङ्ग से बताया है। वे कहते हैं—"मेरी कल्पना में नाटककार मञ्च पर खड़ा है। विनोद में मुट्ठी बाँधकर पूछता है—क्या है इसमें ? कोई कहता है, पैसा। कोई कहता है, खाली। आप कह दीजिये—दो आँसू, एक हँसी, आधा चुम्बन। नाटककार लज्जित होकर कहेगा—ठीक है।" यहाँ 'दो आँसू', 'एक हँसी' और 'आधा चुम्बन' क्रमशः बरसों की वेदना, जीवन भर के विनोद और विवशताओं के प्रतीक हैं। अतः एकाङ्की जीवन की किसी एक घटना की रिपोर्ट नहीं है—उसका सूत्र समग्र जीवन से जुड़ा रहता है। जो एकाङ्कीकार इस तथ्य को सामने नहीं रखता उसकी रचना एकाङ्की का आभास मात्र देती है; वास्तव में वह एकाङ्की-नाटक कहलाने की अधिकारिणी नहीं होती।

एकाङ्की नाटक के लिए यह जरूरी नहीं कि उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना हो ही। घटना के स्थान पर कोई चित्र हो सकता है। लेकिन यह चित्र भी क्षणिक स्थिति का नहीं होता; वह किसी विशिष्टता का परिचायक होता है। यह वैशिष्ट्य चाहे किसी व्यक्ति का हो; चाहे किसी वर्ग का।

हिन्दी के प्रसिद्ध एकाङ्कीकार श्री उदयशङ्कर भट्ट एकाङ्की-लेखक की लक्ष्य-दृष्टि के सम्बन्ध में एक स्थल पर लिखते हैं, "वह निशाना भरने के लिए दुर्योधन और युधिष्ठिर की तरह चिड़िया के सिर और पङ्ख नहीं देखता! वह तो अर्जुन की तरह केवल लक्ष्य की ओर आँख रखता है, स्पष्ट लक्ष्य की ओर।" इसीको प्रभाव और घटना की एक्यता कहा जा सकता है। एकाङ्कीकार केन्द्र-विन्दु पर सबसे अधिक ध्यान रखता है। यदि लक्ष्य-दृष्टि जरा भी भटकी तो एकाङ्की प्रभावहीन हो जाएगा। बड़े नाटक और एकाङ्की नाटक के अन्तर को उदयशङ्कर भट्ट निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "बड़ा नाटक-कार सम्राट अशोक को अहिंसावादी बनाने के लिए उसका पूर्व स्वभाव, उस समय की राजनीति, प्रजा की अवस्था, कलिङ्ग की लड़ाई, हिंसा की उग्रता, देशकाल की परिस्थिति आदि सभी बातें रखेगा; परन्तु एकाङ्की लेखक कलिङ्ग युद्ध के रणस्थल का दृश्य दिखाकर अशोक के स्वभाव परिवर्तन और प्रतिक्रिया रूप से अहिंसा प्रेम को जागरूक कर देगा।"

इस आन्तरिक भेद के अतिरिक्त अन्य अधो-लिखित आकार-विस्तार सम्बन्धी बाहरी भेद हैं जिनमें से अनेक की उत्पत्ति का कारण एकाङ्की की सीमित बहुमुँखी परिधि है—

१—बड़े नाटक में पाँच या तीन अङ्कों का विधान पाया जाता है। प्रत्येक अङ्क में तीन या चार दृश्य होते हैं। इस प्रकार यह नाटक ढाई-तीन घण्टे में खेला जाता है। इसके विपरीत एकाङ्की नाटक में केवल एक अङ्क होता है। तीन या चार या पाँच दृश्य भी रखे जाते हैं; परन्तु एक ही दृश्य का एकाङ्की श्रेष्ठ माना जाता है। यह एक बैठक में ही समाप्त हो जाता है। अभिनय की अवधि तीस मिनट से एक घण्टा हो सकती है।

२—बड़े नाटक में मुख्य कथावस्तु के साथ प्रासङ्गिक कथावस्तु भी गुँथी रहती है; लेकिन एकाङ्की में प्रासङ्गिक कथावस्तु को कोई स्थान नहीं है।

३—बड़े नाटक में वर्णनात्मकता रहती है। नाटककार कथा के प्रायः प्रत्येक पहलू पर दृष्टि डालता है। ऐसा करने में अनेक अप्रधान प्रसङ्ग सहज ही आ जाते हैं, एकांकीकार को इतनी आजादी नहीं है। Be quick, Be brief, and Be gone (शीघ्रता कीजिए, संक्षेप में कहिए, और पधारिये।) का सिद्धान्त लागू होता है। उदयशङ्कर भट्ट के शब्दों में—"मतलब की बात ही एकांकी-नाटक का मूल बीज है।"

४—बड़े नाटक में पात्रों की संख्या अधिक रहती है; लेकिन एकांकी में चार या पाँच पात्रों से अधिक नहीं होने चाहिए। बड़े नाटक में एक-रसता भङ्ग करने के लिए विदूषक आदि पात्रों का समावेश कर लिया जाता है; लेकिन एकांकी में पात्र-परिमिति के कारण इस प्रकार के पात्रों को स्थान नहीं दिया जा सकता।

५—एकांकी-नाटक की गति बड़ी तीव्र होती है। जैसे-जैसे अन्त निकट आता जाता है यह गति तीव्रतर होती जाती है। बड़े नाटकों में यह बात नहीं पाई जाती। आदि!

दुनिया के सभी उन्नत साहित्यों में एकांकी-नाटकों का प्रचलन तेजी से हो रहा है। जहाँ साहित्य के प्रमुख अङ्गों में वह महत्त्वपूर्ण स्थान बना रहा है वहाँ उसमें वैविध्य भी प्रकट हो रहा है। अतः उसका रूप और सीमा अभी निश्चित नहीं है। एकांकी टेक-नीक में नित नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। अतः उसके सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियाँ भी पैदा हो सकती हैं और हुई हैं। कुछ आलोचक एकांकी-नाटक और सम्भाषण में अन्तर नहीं कर पाते। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार लिखते हैं—"अपने चचा से भतीजा ५-६ कदम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरी पर खड़ा हो कर सवाल-जवाब करता है और चचा साहब आवश्यक भाव-भङ्गी से उत्तर देते जाते हैं। मेरी राय यह है कि एकांकी-नाटक भी लगभग इसी प्रकार की चीज है। आप पूछेंगे कि एकांकी-नाटक के लिए आवश्यक चीज क्या है ? मेरा उत्तर है कि सिर्फ मनोरञ्जक अथवा अर्थपूर्ण वार्तालाप। बस, इतना ही, इससे अधिक कुछ नहीं।" इस मन्तव्य से प्रकट है कि एकांकी-नाटक सम्भाषण के सिवा और कुछ नहीं है। संभाषण और एकांकी-नाटक में समय का ही अन्तर नहीं है वरन् कथावस्तु और रचना-कौशल का भी अन्तर है। एकांकी की वस्तु का अपना स्वतन्त्र विन्यास है। उसका क्रमिक विकास होता है। यह विकास मात्र सम्भाषणों के जरिए ही नहीं बताया जाता। पात्रों की क्रियाएँ भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती हैं। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का जो रूप एकांकी में मिलता है वह सम्भाषणों में कहाँ समा सकता है ? विस्मय का विधान एकांकी की स्वतन्त्र सत्ता की पुष्टि और करता है। रङ्गमञ्च-निर्देशों का भी एकांकी में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभिप्राय यह कि उसकी अपनी कला है। वह मात्र सम्भाषण नहीं है; यद्यपि एकांकी-कला के अन्तर्गत सम्भाषणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें सन्देह नहीं एकांकी में सम्भाषण के महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। उसे एकांकी का स्थूल आधार ही समझना चाहिए; लेकिन ऐसा मानना कि दोनों में कोई अन्तर नहीं है—नितान्त भ्रम पूर्ण है। यह भ्रान्ति किसी समय थी। जैसे-जैसे एकांकी का रूप विकसित हो रहा है वैसे-वैसे ये प्रारम्भिक भ्रान्तियाँ भी दूर होती जा रही हैं।

जिस प्रकार श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कारजी ने एकांकी और सम्भाषण को एक ही वस्तु माना उसी प्रकार एकांकी और कहानी में भी वे स्पष्ट भेद न कर सके। उन्होंने लिखा—"एकांकी कहानी का रङ्गमञ्च पर खेला जाने वाला संस्करण-मात्र है।" यहाँ टेकनीक के अतिरिक्त उद्देश्य का अन्तर भी अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया गया है। कहानी का उद्देश्य पढ़ने या सुनने से है और एकांकी का रङ्गमञ्च पर खेलने से। कहानीकार पाठक का ध्यान रखता है; जब कि एकांकीकार दर्शक का। उपरोक्त उद्देश्य सम्बन्धी अन्तर के साथ-साथ एकांकी और कहानी की टेकनीक में भी अन्तर पैदा हो जाता है। एकांकीकार सर्व प्रथम अभिनय-कला का ध्यान रखता है। अभिनय के कारण मञ्च सम्बन्धी अनेक बन्धनों को स्वीकार करने के बाद ही आगे बढ़ सकता है। यदि एकांकी में नाटकीयता का अभाव हुआ तो वह कहानी के रूप में ही पढ़ा जा सकेगा। अतः वह न कहानी होगा और न एकांकी। उसकी गणना असफल कृति के अन्तर्गत ही होगी या फिर उसे 'कहानीनुमा-एकांकी' कहा जायगा। फिर भी उद्देश्य और रङ्गमञ्च को लक्ष्य कर कहानी सफल एकांकी में रूपान्तरित की जा सकती है। सम्भवतः इसी कारण श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कारजी ने कहानी को रङ्गमञ्च पर खेला जाने वाला संस्करण मात्र कहा है। लेकिन प्रत्येक कहानी को रङ्गमञ्च के उपयुक्त नहीं बनाया जा सकता अतः एकांकी और कहानी दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है और रहेगा। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी कहानी और एकांकी का मञ्च सम्बन्धी सूक्ष्म भेद किया है। वे लिखते हैं—"कहानी लजाशीला नारी की भाँति मञ्च पर आने का साहस नहीं करती। वह पाठकों के मनोमञ्च पर ही अवगुण्ठन डाले हुए अपने पैर के नाखून से जीवन की भाव-भूमि कुरेदती रहती है।" कहानी और एकांकी में बहुत-कुछ एकता हो सकती है; लेकिन दोनों को एक ही कोटि में नहीं रखा जा सकता।

कला की दृष्टि से एकांकी के लिए सबसे पहली शर्त उसका अभिनय के योग्य होना है। अभिनय का मञ्च-व्यवस्था से ही नहीं; प्रत्युत सभी तत्त्वों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध है। एकांकी के अन्य तत्त्व वस्तु-विन्यास, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, संवाद आदि हैं। यहाँ उपर्युक्त तत्त्वों की सविस्तार व्याख्या अपेक्षित है।

कथावस्तु—एकाङ्की के लिए यह जरूरी है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका वस्तु-विन्यास कलापूर्ण हो। उसमें शैथिल्य न हो। स्पष्ट होने के साथ-साथ यदि कथा कौतूहलपूर्ण भी हो तो उससे एकाङ्की की सौन्दर्य-वृद्धि होती है। एकाङ्की की कथा में वर्णनात्मक तत्त्व प्रमुख नहीं होना चाहिए। अभिनय-तत्त्व के सम्मुख उसका स्थान गौण है। वास्तव में एकाङ्की की कथा का प्राण अन्तर्द्वन्द्व के सफल चित्रण में है। यदि लेखक संघर्ष अथवा अन्तर्द्वन्द्व की विवेचना में दुर्बल है तो आकर्षक घटना-चयन के होते हुए भी उसकी कृति प्रभाव-शून्य होगी। कथा के विकास में एकाङ्कीकार को विशेष सतर्क रहना पड़ता है; अतः एकाङ्की की वस्तु-विन्यास एकाङ्की-कला में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वस्तु-विन्यास के चार भाग हैं—निरूपण, अवरुंधन, उत्कर्ष और अपकर्ष। निरूपण-भाग एकाङ्की के प्रारम्भ और प्रारम्भिक बातों से संबंध रखता है। इस भाग में एकाङ्की की पृष्ठभूमि, संक्षिप्त और आकर्षक ढङ्ग से उपस्थित की जाती है। पृष्ठभूमि में एकाङ्की के प्रमुख-पात्रों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाता है। यह परिचय कुछ तो रङ्गमञ्च-निर्देशों को लिखते समय दे दिया जाता है और कुछ पात्रों की प्रारम्भिक बातचीत से। परिस्थिति, समस्या और उद्देश्य की ओर संकेत भी, एकाङ्की के इसी भाग में, कर देना चाहिए। एकाङ्की की कथा-वस्तु का यह भाग छोटा होना जरूरी है। अन्यथा रचना में नाटकीयता का अभाव दृष्टिगोचर होने लगता है। वस्तु-विन्यास का दूसरा भाग अवरुंधन है। इसे एकाङ्की का भव्य-भाग भी कहा जा सकता है। इसी भाग में लेखक कथा-निरूपण के लिए अवकाश पा सकता है; लेकिन यह कथा-निरूपण भी यदि द्वन्द्व के साथ किया गया हो तभी उसमें आकर्षण उत्पन्न हो सकता है। यह द्वन्द्व चाहे आन्तरिक हो, चाहे बाह्य, आन्तरिक-सङ्घर्ष से अभिप्राय पात्रों के मन में उठने वाले विरोधी भावों से है तथा बाह्य-सङ्घर्ष का सम्बन्ध दो विरोधी शक्तियों से। अवरुंधन भाव की यह योजना एकाङ्की को चरम-सीमा की ओर ले जाने के निमित्त होती है। अतः उसके विकास में उठान ही उठान होनी चाहिए उतार नहीं। वस्तु-विन्यास की तीसरी स्थिति उत्कर्ष की है। यह स्थिति सर्वाधिक विस्मय की होती है। इस स्थिति की प्रखरता अवरुंधन भाग पर ही आधारित है। एकाङ्की का यह चरमोत्कर्ष अत्यधिक संक्षिप्त होता है। इसके बाद एकाङ्कीकार अपने अन्तिम परिणाम पर पहुँचता है। एकाङ्की के वस्तु-विन्यास के अन्तिम भाग को अपकर्ष कहा जाता है। यह भाग वस्तु-विन्यास के अन्तर्गत विविधता लिए हुए है। सभी एकाङ्की एक ही ढङ्ग से समाप्त नहीं होते। सुखांत एकाङ्की का अन्त आकस्मिक होता है, पर दुखान्त का अन्त धीरे-धीरे करना अनिवार्य है; अन्यथा उससे रस-निष्पत्ति नहीं होगी। समस्यामूलक एकाङ्की का अन्त प्रायः अपूर्ण रहता है। एकाङ्कीकार उसे पाठकों की बुद्धि पर ही छोड़ देता है। चरित्र-परिवर्तन वाले एकाङ्की का अन्त भी चरम-सीमा के ठीक बाद हो जाता है। इस प्रकार अपकर्ष भाग की व्यवस्था एकाङ्की के उद्देश्य पर निर्भर करती है। एकाङ्की का अन्त चाहे किसी रूप में हो, पर उसे कला-पूर्ण होना चाहिए। यह कला पाठक अथवा दर्शक के मन को प्रभावित करेगी, उसे झकझोरेगी।

एकाङ्की की कथा-वस्तु की सफल सुगढ़ता के लिए संकलन-त्रय (Three Unities) की योजना की जाती है। इससे एकाङ्की की स्वाभाविकता को सहायता पहुँचती है। यह सङ्कलन—समय, कार्य और स्थान की इकाई का है। समय से अभिप्राय लगातार घटने वाली घटनाओं के अन्तर से है। यह अन्तर कम-से-कम होना चाहिए। यह नहीं कि किसी पात्र-विशेष की एक घटना बाल्यावस्था की हो और दूसरी घटना उसी एकाङ्की में उसी पात्र की वृद्धावस्था की। कार्य से अभिप्राय यह है कि पात्र एकाङ्की में एक ही कार्य करे। तथा स्थान की इकाई का अर्थ है कि एकाङ्की की घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित हों। विशुद्ध रङ्गमञ्चीय व्यवस्था के दृष्टिकोण से तो केवल इस बात का ध्यान अपेक्षित है कि स्थान-परिवर्तन की व्यवस्था कम-से-कम समय में की जा सके। बागीचे के दृश्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरन्त बाद ही पहाड़ी प्रदेश की व्यवस्था करने में समय लग सकता है। तो, सङ्कलन-त्रय का अभिप्राय यही है कि एक कार्य, एक स्थान पर और एक ही समय में हो। सङ्कलन-त्रय की आवश्यकता एकाङ्की में विशेष रूप से सामने आती है, क्योंकि वह एक संक्षिप्त रचना है। कुछ एकाङ्कीकार सङ्कलन-त्रय को महत्त्व नहीं देते। सङ्कलन-त्रय की उपेक्षा करके भी एकाङ्की लिखा जा सकता है, पर उसमें स्वाभाविकता इतनी प्रखर रूप में नहीं आ सकती; तथा यह अभाव उसके प्रभाव को भी कम कर देगा। पाठक अथवा दर्शक इस तथ्य को आवश्यकता से अधिक अनुभव करने लगेंगे कि वे नाटक पढ़ रहे है अथवा देख रहे हैं। वस्तु-तादात्म्य न होने से एकांकी का प्रभाव घट जाएगा। अतः सङ्कलन-त्रय की योजना एकांकी को कला-पूर्ण बनाने के निमित्त की जाती है।

एकाङ्की-शिल्प-विधान में दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व पात्र और चरित्राङ्कन का है। एकाङ्की में पात्रों की संख्या सीमित होती है। चार-पाँच पात्रों से अधिक का समावेश उसमें नहीं होना चाहिए। पात्रों के तीन विभाग किए गए हैं—नायक, प्रतिनायक और गौण-पात्र। यह कोई आवश्यक नहीं कि प्रत्येक एकाङ्की में नायक और प्रतिनायक दोनों हों अथवा नायक ही हो। वास्तव में देखा जाय तो एकांकी में मात्र दो प्रकार के पात्र पाए जाते हैं—प्रमुख-पात्र और गौण-पात्र। प्रमुख-पात्रों की संख्या अधिक-से-अधिक तीन हो सकती है; जिसमें नारी-पात्र भी सम्मिलित हैं। गौण-पात्र तो प्रमुख-पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और उनकी गतिविधियों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से रखे जाते हैं। कथा-विकास में भी गौण-पात्र महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित करते हैं। एकांकी के पात्रों का व्यक्तित्व बड़ा सबल होना चाहिए। उनकी प्रत्येक गतिविधि पर एकांकीकार को सूक्ष्म ध्यान रखना आवश्यक है; क्योंकि उनकी साधारण से साधारण बात उनके चरित्र का उद्घाटन करती है। एकांकी के सीमित समय में पात्रों के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण जानकारी देना एकांकीकार का कठिन कर्म है।

एकांकी-शिल्प का तीसरा तत्त्व संवाद अथवा कथोपकथन है। इसे एकांकी का प्राण माना गया है। संवादों की आयोजना दो बातों के हेतु की जाती है एक तो पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट करने के लिए और दूसरे कथा के विकास के लिए। ज़ाहिर है, यदि एकांकी के संवाद उपर्युक्त बातों में योग नहीं देते तो महत्त्वहीन ही नहीं वरन् असङ्गत कहे जायेंगे। अतः एकांकीकार को अनावश्यक संवादों से बचना चाहिए; यहाँ तक कि एक वाक्य, एक भी शब्द, निरर्थक न हो। संवाद सजीव होने चाहिए; तभी वे दर्शकों को प्रभावित कर सकेंगे। लम्बे-लम्बे वाक्यों वाले संवाद अथवा उपदेशात्मक संवाद एकांकी को नीरस, निर्जीव और आकर्षणहीन बना देते हैं। एकांकी में वाद-विवाद भी अपेक्षित नहीं। वाद-विवाद की अधिकता एकांकी को सम्भाषण के निकट ला देती है। इसके अतिरिक्त संवादों की स्वाभाविकता भी आवश्यक है। प्रत्येक पात्र की भाषा और शैली में अन्तर अपेक्षित है। सभी लोग एक ही तरह से नहीं बोलते; अतः एकांकीकार को भी प्रत्येक पात्र में भाषागत और शैलीगत सूक्ष्म अन्तर बताना चाहिए दूसरे पात्रों के बौद्धिक स्तर के अनुरूप ही संवाद रखे जाएँ। शिक्षित और साधारण पात्र के मुख से विशुद्ध भाषा और उच्च विचार व्यक्त कराना एकांकी-कला की हत्या करना है। प्रायः एकांकीकार इस बौद्धिक धरातल का ध्यान नहीं रखते और अपने पात्रों के मुख से स्वयं बोलने लगते हैं। डा० रामकुमार वर्मा इस सम्बन्ध में लिखते हैं, "केवल मनोरञ्जन के लिए या नाटककार द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए कथोप-कथन का विस्तार करना पात्रों के कण्ठों से उनकी स्वाभाविक ध्वनि छीन लेना है। फिर तो नाटक में पात्र नहीं बोलते नाटककार पात्रों के कण्ठ में कोयल या कौवा बनकर बोलता है।" संवाद स्वाभाविक होने के अतिरिक्त सरल और स्पष्ट भी होने चाहिए। अति-साहित्यिकता और असाहित्यिकता से भी एकांकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार को दूर रहना चाहिए। स्वगत-भाषण तो आधुनिक नाटकों में कोई स्थान नहीं रखते; किन्तु पात्र एकान्त में स्वयं अकेले बोल सकते हैं इसकी आवश्यकता किसी पात्र विशेष की मानसिक दशा चित्रित करने के उद्देश्य से आती है। पर यह जरूरी है कि इस प्रकार के संवाद लम्बे न हों। केवल संवाद एकांकी को बोझिल कर देते हैं; अतः उसमें गति और क्रिया-कलाप की यथास्थान व्यवस्था होनी चाहिए। सुन्दर और कलापूर्ण संवाद एकांकी में जान अवश्य डाल देते हैं; पर एकांकी मात्र सुन्दर और कलापूर्ण संवाद का पर्याय नहीं है; उसमें क्रिया-कलाप (Actions) के महत्त्व को नजर-अन्दाज नहीं करना चाहिए।

अन्त में रङ्गमञ्च-निर्देशों का प्रश्न आता है। प्रत्येक एकाङ्कीकार अथवा नाटककार को मात्र लेखक ही नहीं निर्देशक भी होना चाहिये, अन्यथा रङ्गमञ्च सम्बन्धी अनेक भूलें उससे हो सकती हैं। नाटककार अपनी कृति में व्यापक नाटकीय निर्देश देता है; इससे चाहे अनुभवी निर्देशकों को कोई सहायता न भी पहुँचे पर लेखक का मन्तव्य समझने में सुगमता होती है। दूसरे लेखक इन नाटकीय एवं रङ्गमञ्चीय निर्देशों को केवल अभिनय के निमित्त ही नहीं लिखता; उनका प्रयोजन कुछ और भी होता है। वह प्रयोजन कुछ ऐसी बातों को प्रकट करने का है जो संवादों द्वारा प्रकट नहीं की जा सकतीं। पात्रों के पूर्व-संस्कारों को सहज ही प्रतिविम्बित करने के किए भी रङ्गमञ्चीय-निर्देश बड़े सहायक होते हैं; उदाहरणार्थ किसी कक्ष की सजावट का ब्योरा एकांकीकार देता है—तो वह ब्योरा उस कक्ष में रहने वाले पात्र के अनेक संस्कारों-विश्वासों का परिचायक होगा। यदि एकांकीकार ने निर्देश के अन्तर्गत लिखा कि कक्ष में एक दीवार पर हिटलर का चित्र टँगा हुआ है तो दर्शक व पाठक उस कक्ष में रहने वाले पात्र के विचारादि से सहज ही परिचित हो जायँगे। एकांकी-नाटकों में रङ्गमञ्च-निर्देश इस कारण बड़े महत्त्व के होते हैं; क्योंकि वे उनकी संक्षिति को बनाए-रखने में योग देते हैं।

एकांकी-शिल्प के ये आधारभूत सिद्धान्त हैं। आधुनिक युग में एकांकी एक विकासमान रचना है। उसमें नित नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। रेडियो-टेकनीक वाले एकांकी-नाटकों के अस्तित्व को पृथक मान लेने पर भी, आधुनिक वैज्ञानिक-युग में रङ्गमञ्च-निर्माण की दिशा में बड़े महत्त्वपूर्ण सुधार हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में एकांकी-दृश्य-काव्य नहीं है—उसे ध्वनि-काव्य कहा जा सकता है। सुनने वाले दृश्य और पात्रों की कल्पना अपने-अपने ढङ्ग से करते हैं। रेडियो के व्यापक प्रचार व प्रसार के बावजूद रङ्गमञ्च पर खेले जाने वाले दृश्य-एकांकी-नाटकों की दिन-पर-दिन माँग बढ़ रही है। वे प्रत्येक देश में लोकप्रिय हो रहे हैं। इसका मुख्य कारण उनका दृश्य-काव्य होना है; जिससे दर्शकों और अभिनेताओं में एक सजीव सम्बन्ध-सूत्र सहज स्थापित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त समाज केवल एकांकी देखना या रेडियो पर सुनना ही नहीं चाहता; अनेक कला प्रिय मनुष्य स्वयं अभिनय भी करना चाहते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक नगर में और प्रत्येक मोहल्ले में साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर पूर्ण मनोयोग के साथ एकांकी खेले जाते हैं; जिनमें दर्शकों की अटूट भीड़ होती है। अतः एकांकी-नाटकों का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। एकांकी के माध्यम से समाज को बदलने और उसके स्तर को उठाने में बड़ी सहायता मिल सकती है। यह काम नाटक भी कर सकता है, पर वहाँ लम्बे समय की कठिनाई सामने आती है। आज के मनुष्य के पास समय की बड़ी कमी है। वह रोटी-रोजी के संघर्ष में बुरी तरह ग्रस्त है; अतः वह कम-से-कम समय में अच्छे-से-अच्छा मनोरञ्जन चाहता है। उसकी इस आवश्यकता की पूर्ति एकांकी करते हैं। दूसरे एकांकी खेलने में, नाटक की अपेक्षा, कम धन व्यय होता है एवं व्यवस्था-भार भी साधारण होता है। उपर्युक्त कारणों से, सिनेमा और रेडियो-रूपकों के होते हुए भी, एकांकी समाज और साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रक्खेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषाओं में विकसित नाट्य-कला पर विहङ्गावलोकन

प्रो० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए०

भारतीय-भाषाओं में नाट्य-कला के विकास का अध्ययन अत्यधिक रोचक और शिक्षाप्रद है। आज तक ऐसे विद्वान और विचारक हैं जो यह मानते हैं कि भारत एक देश नहीं है, वह एक महाद्वीप है, वह भिन्न-भिन्न जातियों, धर्मों, सामाजिक मान्यताओं, वर्गों, वर्णों, साहित्यों तथा भिन्न-भिन्न ही नहीं परस्पर विरोधी तत्त्वों से ओत-प्रोत अनेक देशों का एक समूह है। राजनैतिक दृष्टि से तो जिस प्रकार इस महाद्वीप में एक दो बार ही एकता दिखाई पड़ी, सामाजिक दृष्टि से भी इसमें एकता खोजना समुद्र-मन्थन करना है। यहाँ इस धारणा का खण्डन करने के लिए अनेक क्षेत्रों में प्रमाणों की खोज सम्भव नहीं है, केवल साहित्य और साहित्य के भी एक अङ्ग नाट्य-कला के विकास को ही देख कर कोई भी सिद्ध कर सकता है कि भारत की चिन्ताधारा की एकता सर्वदा अक्षुण्ण रही है। सांस्कृतिक एकता, प्राणों की एकता, आत्मा की एकता मानी जाती है और संस्कृति के क्षेत्र में साहित्य का स्थान मुख्य रहता है, क्योंकि चिन्तन, भावना व कल्पना तीनों का सामञ्जस्य साहित्य में होता है। हम यदि साहित्य के ही एक अङ्ग नाटक के विकास को विहङ्गम दृष्टि से देखें तो हमें अनेक तथ्य ऐसे मिलते हैं जिनसे न केवल 'राष्ट्रीय आत्मा' का पता चलता है अपितु इस महान देश की महान जनता के सङ्घर्ष की भी कहानी मिल जाती है। उसके सामान्य व विशिष्ट स्वरूप का ज्ञान हमें हो जाता है और इससे हम भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त समाज व व्यक्ति के, व्यक्ति के आन्तरिक व बाह्य अंशों के, समाज के उच्च तथा निम्न स्तरों के अनेक चित्रों से परिचित हो जाते हैं।

हमारे सम्मुख सर्व प्रथम संस्कृत भाषा व साहित्य की महत्ता तब उपस्थित होती है जब हम देखते हैं कि भाषाओं के रूप-निर्माण ही नहीं, नाट्य-कला के निर्माण में भी संस्कृत नाट्य-कला का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है परन्तु यह प्रभाव बाद की बात है, बहुत बाद की बात। स्वयं नाट्य-कला के आदि आचार्य भरत-मुनि के नाट्य-शास्त्र के काल निर्णय में तमिल नाटक-कला के अध्ययन से सहायता मिल सकती है। 'नाट्य-शास्त्र' का समय तीसरी शताब्दी माना जाता है परंतु वस्तुतः यह काल उसके वर्तमान रूप का है। शायद तीसरी शताब्दी के बाद भी नाट्यशास्त्र का विस्तार होता रहा। परन्तु तमिल नाटकों का विकास देख कर यह संकेत मिलता है कि नाट्य शास्त्र तीसरी शताब्दी से पूर्व ही निर्मित हो चुका था। तमिल के तीन रूप मिलते हैं इयल, इशै तथा नाटक। इयल में केवल भाव, इशै में भाव व सङ्गीत तथा नाटक में भाव, सङ्गीत व अभिनय तीनों मिलते हैं।+ इनमें भी इयल तमिल, तथा इशै तमिल का विकास पहले हुआ। अर्थात् भावात्मकता तथा सङ्गीतात्मकता पहले, और अभिनेयता बाद में, जब कि नाटक तमिल में भाव, सङ्गीत व अभिनय का सम्मिलित प्रयोग हुआ। ये तीनों रूप तीसरी शताब्दी के पूर्व ही हो चुके थे क्योंकि 'शिलप्पादिकारम' नामक नाटकीय-काव्य दूसरी शताब्दी में मिलता है जो नाट्य-कला विकास में आगे की श्रृङ्खला है। इस काव्य में रङ्गमञ्च का वर्णन, एवं नृत्य प्रदर्शन का विवरण मिलता है। इस मधुर काव्य के टीकाकार ने भरतम्, पञ्चभारतीयम्, भरतसेनापतीयम् आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है, जिससे भारत का नाम संकेतित है। अतः स्पष्ट है कि नाट्य-शास्त्र का द्वितीय शती के पूर्व अस्तित्व था, यह संकेत मिलता है, सम्भव है आगे खोज से यह सिद्ध

+ प्रो० टी० शेषाद्रि 'तमिल भाषा के नाटक'
—नाटकाङ्क साहित्य सन्देश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सके। भारतीय भाषाओं में तमिल साहित्य सबसे अधिक प्राचीन है अतः उसकी नाट्य कला के इतिहास से अब तक अनेक अज्ञात तथ्यों पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

यह तो सम्भावना की बात हुई अब प्राप्त तथ्य लीजिए। अभी तक नाट्यकला व नाटकों का अध्ययन केवल साहित्यिक नाटकों तथा विकसित रङ्गमञ्चों पर ही आधारित रहा है परन्तु भारत की प्रत्येक भाषा में जन-नाट्य-कला का विषय अभी अज्ञात है। विचारक समझते हैं कि योरोप के अनुकरण पर ही आधुनिक नाट्यकला का विकास सम्भव हुआ है, परन्तु रुचि-निर्माण पर जन-नाटकों का भी अद्‌भुत प्रभाव पड़ा है। हिन्दी में समस्या नाटक लिखे गए परन्तु सफल नहीं हो सके। उनमें बुद्धि को झकझोर देने की शक्ति तो आई परन्तु वे परम्परागत रुचि का परित्याग करते चले। परिणाम यह हुआ कि उन्हें उतनी सफलता नहीं मिल सकी। किन्तु जिन समस्या नाटकों में भावना का भी ध्यान रखा गया वे अपेक्षाकृत सफल हुए। 'जन-नाट्य-कला' जनता की कल्पना-भावना को लेकर विकसित हुई और समस्या नाटक कोरी बौद्धिकता को लेकर। हमें जन-नाट्य-कलाओं में कल्पना के स्वरूप पर भी विचार करना होगा, किस युग में कल्पना का किस दिशा में प्रयोग किया गया और कितना, यह भी देखना होगा। प्राचीन तमिल साहित्य में ३०० से १२ वीं शताब्दी तक धार्मिकों ने काव्य रचना की, नाटक नहीं लिखे, परन्तु जन-नाट्यकला का विकास तो अवश्य हुआ होगा। श्री शेषाद्रिजी ने लिखा है "साहित्य में नाटक का अभाव होते हुए भी दृश्य-काव्य कला के रूप में पुरातन काल से पाया जाता रहा है, इसमें सन्देह नहीं है। 'तेरुक्कूत्तु' उस प्रयास का प्राचीन रूप है जो आज-कल अपने पुराने रूप में भी यत्र-तत्र हो रहा है और जिसका मँजा सुधरा रूप आजकल के ड्रामा या नाटक में मिल जाता है।" तमिल में ३००—१२०० तक अनेक प्रकार की जन-नाट्य-कलाओं का विकास हुआ होगा। जन-नाट्य-कला ने सारे भारत में देवताओं के सम्बन्ध में कल्पना का प्रयोग किया। 'विचित्र' की अनुकृति अधिक मनोरञ्जक होती है और साथ ही जन-प्रिय कलाकारों को जनता की नैतिक शिक्षा का अवसर भी मिल जाता होगा। तमिल-देश की ही जनता 'तेरुक्कूत्तू' में सावित्री-सत्यवान, सीता विवाह, सती सुलोचना के अभिनय साहित्यिक नाटकों के आविर्भाव के पूर्व देखती रही है और अब भी देखती है। केरल प्रान्त में आदिकाल में देवी व असुरों का वेश धारणकर धार्मिक उत्सव होते थे। आन्ध्र प्रदेश में भी नाटक व नृत्यों का प्रचार था। इस देश में कोय या चेंचु नामधारी जातियों में नृत्य नाटकों का प्रचार बहुत था। जावा देश में नृत्य अभिनय के प्रमाण मिले हैं * 'तेलुगु में ५०० से १००० ई० तक का इतिहास अज्ञात है। इस बीच में भी वीथि नाटकम् व यक्षगान आदि का प्रयोग होता रहा, और अब भी होता है। गुजरात में 'भवाई', बिहार-बङ्गाल में यात्रा, हिन्दी प्रदेश में रासलीला आदि का भी यही इतिहास है। राजस्थानी में 'ख्याल' की प्राचीन परम्परा है इसके धार्मिक, पौराणिक प्रेममूलक, ऐतिहासिक आदि अनेक रूप मिलते हैं। राजस्थान का लोक हृदय इन्हीं गीत-नाटकों में मिलता है। मराठी में 'सङ्गीत-नाटकों' की परम्परा थी, पुरानी है और आज भी प्रचलित है। उड़िया में भी पौराणिक जन-नाटकों की परम्परा थी। असमिया में जनता में जन-नाट्यों का प्रचार देख कर ही शङ्करदेव ने 'अङ्किया नाटकों' का प्रचार किया। जन-नाट्य-कला पौराणिक देवताओं के चरित्र दिखाती थी, अन्य प्रान्तों में चरित्र पर जोर कम रहा। बङ्गाल व उत्कल में भाव व नृत्य के साथ 'यात्रा' में चरित्र-प्रदर्शन पर जोर अधिक दिया गया। नाटक चूँकि जीवन की अनुकृति है, अतः वह प्रचार का सबसे बड़ा साधन है। साथ ही अनुकर्त्ता व प्रेक्षक दोनों को ही इस कार्य में अधिक आनन्द आता है, अतः धार्मिकों ने नाटक को ही प्रचार का अस्त्र बनाया था।

* तेलुगु का नाटक साहित्य—श्री राजगोपालन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असमिया में तो शङ्करराव ने वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए अनेक एकांकी नाटक मध्यकाल में लिखे थे। परन्तु अर्द्ध-सभ्य जातियाँ अन्ध-विश्वास के कारण ही देवताओं की कल्पनाएँ करती थीं।

पौराणिक जन-नाट्य-कला ने प्रेक्षकों की रुचि पर शासन किया। चमत्कृति, आदर्शवाद, तथा नैतिकता का आग्रह आदि आज की वृत्तियों के नीचे जन-नाट्य-कला के प्रचार का बहुत बड़ा दायित्व रहा है। आधुनिक युग में पौराणिक तथा ऐतिहासिक पात्रों को भी सर्वथा काल्पनिक रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति पर भी भारत की इस प्रचीन जन-नाट्य-कला का अवश्य प्रभाव रहा है। जन-नाट्य-कला ने सुरुचि, सज्जा, दृश्य-विधान तथा साहित्यिकता की चिन्ता न कर जनता के मनोभावों को प्रत्यक्ष पद्धति पर व्यक्त किया गया जो कि नृत्य-नृत्त-गीत नाटकों में आज भी सुरक्षित मिलता है। भारतीय जनता की चित्त-वृत्ति की एकता देखनी हो तो जन-नाट्य-कला का अध्ययन करना चाहिए।

भारत में जन-नाट्यकला के अध्ययन के महत्त्व की ओर संकेत कर हम आधुनिक नाटक-कला पर आते हैं। यह एक विचित्र संयोग है कि सभी भाषाओं में अँगरेजों के आने के पश्चात् ही आधुनिक नाट्य-कला का विकास प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भिक युग में सभी भाषाओं के नाटकों पर संस्कृत व अँगरेजी के नाटकों का प्रभाव रहा, दोनों के अनुवाद हुए। देशी भाषाओं में बँगला के नाटकों का प्रभाव, मुख्यतः डी० एल० राय के नाटकों का प्रभाव कई भाषाओं पर पड़ा। सभी भाषाओं में प्रथम युग में समाज-सुधार व पुनरुत्थान का स्वर प्रबल रहा, यहाँ भी भारत देश की चिन्ता-धारा की एकता द्रष्टव्य है। साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि तमिल जैसी प्राचीन भाषा संस्कृत नाटकों से बहुत बाद में प्रभावित हुई। यद्यपि संस्कृत में कालिदास के बाद ७, ८, ९, १०वीं शताब्दी में ही नाटकों की संख्या अधिक बढ़ी। उच्चवर्ग के लिए लिखित संस्कृत नाटकों का दरबारों से सम्बन्ध अधिक रहा था। जनता ने चिन्ता नहीं की, वह देशी भाषाओं में पौराणिक, धार्मिक नाटकों व नृत्य, गीतों से मनोरञ्जन करती रही। १९वीं शताब्दी में तमिल में 'विलासम्' नामक नाट्य-कला में सामाजिक विषयों को लिया गया। यह रूप भी जनता के नाट्य-कला का ही था। इसी शताब्दी में सभी भाषाओं में संस्कृत, अँगरेजी के अनूदित नाटक आए। मौलिक नाटक प्रत्येक भाषा में इन दोनों नाट्य-कलाओं के मिश्रण का परिणाम था। भारतेन्दु-युग ही नहीं, प्रसाद तक के नाटकों में यह मिश्रण पाया जाता है, परन्तु इस कार्य में पारसी कम्पनियों ने प्रत्येक भाषा में बड़ी बाधा पहुँचाई। पर साथ ही अच्छे रङ्गमञ्च बनाने की प्रेरणा भी इन्हीं कम्पनियों की विकृत नाट्य कला से जगी—प्रतिक्रिया रूप में। भारतेन्दु की तरह मुदालियर तमिल में, किर्लोस्कर नाटक मण्डली ने मराठी में, कैलासम् ने कन्नड़ में, धर्मवरम् कृष्णमाचार्य ने तेलुगु में, साहित्यिक नाट्यकला के लिए नाटक-निर्माण व रङ्गमञ्च निर्माण में प्रमुख हाथ लिया। बङ्गला में गिरीशचन्द्र ने यही कार्य किया। गुजराती व मराठी में पारसी कम्पनियों के समानान्तर अनेक नाटक मण्डलियाँ स्थापित हुईं। इस प्रकार रङ्गमञ्च सम्बन्धी समस्या भी सारे देश में एक ही साथ आई, संस्कृति के आंतरिक तत्त्व लेकर। भारतीय वातावरण का ध्यान रखकर पाश्चात्य शैली में नए नाटक लिखे जाने लगे, सबके सम्मुख समाज-सुधार, प्राचीन संस्कृति का उद्धार, अङ्गरेजों की राज्य व्यवस्था की निन्दा, देश की दुर्दशा, आदि का चित्रण प्रारम्भिक युग में नाटकों का मुख्य विषय रहा। जैसे सारा देश एक साथ सांस्कृतिक व सामाजिक क्रान्ति कर विदेशी सत्ता से लड़ने के पूर्व अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता, देश की दुर्दशा तथा विदेशियों की जघन्यता दिखाने पर तुला हुआ था। यह पुनर्जागरण काल था।

परन्तु पुनर्जागरण काल के पश्चात् चलचित्रों के आरम्भ के पूर्व तक नाट्यकला का विकास जिस स्तर पर हुआ, जनता, मञ्च तथा लेखक में जो सहयोग रहा वह आगे सम्भव न हो सका। एक ओर रेडियो नाटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने लगे, दूसरी ओर कोरे पाठ्य-नाटक। मराठी व बङ्गला में अपेक्षाकृत संतुलन रहा। नाट्यकला की सबसे दरिद्रावस्था तमिल साहित्य में दिखाई पड़ती है, "तमिल जनता नाटक पढ़ने की अपेक्षा, उन्हें देखना अधिक पसन्द करती है" यह कहा गया। मराठी में 'नाट्य निकेतन' यद्यपि "किर्लोस्कर व महाराष्ट्र नाटक मण्डली" के सम्मुख छोटा प्रयत्न है परन्तु तमिल से मराठी में नाटकों का विकास अधिक हुआ। 'राम-गणेश गडकरी' जैसा लेखक मराठी ने दिया। कन्नड़ में 'श्रीरङ्ग' वहाँ के बर्नार्ड शा कहे जा सकते हैं। तेलुगु में 'गुरजाड अप्पाराव' ने क्लासीकल शैली (ग्रांथिक) से जन-प्रिय शैली को अलग किया। मलयालम नाट्य-कला पिछड़ी हुई है, परन्तु उसके नृत्य व नृत्तकला में कथकल, तुल्लल व चावयारकूत्त की बड़ी देन है। उड़िया के कालीचरन पटनाइक, सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते हैं। सारी भाषाओं में २० वीं शताब्दी के नाटकों में भी १६ वीं शताब्दी के नाटकों की तरह जन-जागरण का प्रयत्न किया गया है। लेखकों के मनोवैज्ञानिक शास्त्र से परिचित होने के कारण पात्रों के चरित्र-चित्रण में गहराई आगई है। मराठी, बङ्गला व गुजराती के अतिरिक्त रङ्गमञ्चों का प्रत्येक भाषा में ह्रास दिखाई पड़ता है। बङ्गला में भी "इस युग में नाट्य साहित्य की कुछ अधोगति हुई है, मौलिक मूल्यवान रचनाएँ वर्तमान नाट्य साहित्य में विरल हैं"[1]। प्रसाद व द्विजेन्द्रलालराय जैसी प्रतिभाएँ आज नहीं दीखतीं और इसका एक कारण है, प्रत्येक भाषा में आज का युग प्रयोगों का युग है। अतः विभिन्न विधाओं के आविष्कार के युग में श्रेष्ठ नाटक बहुत बाद में बनते हैं। विधान पर अधिक ध्यान रहने से विषय व विचार आकर्षक होने पर भी सामञ्जस्य नहीं बन पाता। रेडियो पर नूतन नाट्यकला के क्षेत्र में ऐसे प्रयोग अधिक हो रहे हैं। विषय व विचार की दृष्टि से सारी भाषाओं में आज भी एकता है। १६ वीं शताब्दी में समाज सुधार का स्वर प्रधान था, पुनः पुनरुत्थानवाद का। द्वितीययुग में इतिहास को राष्ट्रीय जागरण व स्थायी मानव मूल्यों का माध्यम बनाया गया। द्विजेन्द्रलालराय, प्रसाद ऐतिहासिक नाटककार हैं। संस्कृत की प्रतीकात्मक पद्धति का प्रयोग बहुत कम हुआ। जीवन के चित्रण द्वारा जीवन-मानों के उन्नयन का प्रयत्न किया गया। किन्तु स्थायी मूल्यों के परिवर्तन के प्रयत्न में प्रायः प्रत्येक भाषा में योरोप की चरित्र-चित्रण प्रणाली ने अद्भुत सहायता दी। प्राचीन संस्कृत नाटकों की भावुकता व कवित्वशक्ति के साथ-साथ योरोपीय पद्धति पर 'शील-वैचित्र्य' द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व को अधिक महानता दी गई। १६ वीं शताब्दी से ही प्रायः सारे भारत में पूँजीवाद का प्रसार हो गया था और इस व्यवस्था में वैयक्तिकता का स्वर तीव्र हो जाता है, अतः नए नाटकों में प्रत्येक भाषा में प्रत्येक पात्र को नया व्यक्तित्व दिया गया। भावनाओं की साधारणता तथा शील की असाधारणता द्वितीय उत्थान के नाटकों की विशेषता है, यह शील-वैचित्र्य समस्या नाटकों में भी बराबर मिलता है।

नवीनतम नाटकों में लेखक का ध्यान समाज की ओर अधिक है। आजादी के बाद जहाँ लेखक का स्वर रचनात्मक हुआ है जहाँ वह आज की स्थिति से आज की व्यवस्थाजन्य अभावों का नग्न चित्रण करता है। हिन्दी में उदयशङ्कर भट्ट, अश्क आदि ने; कन्नड़ में श्री रङ्ग,[1] शिवरामकारंत, कैलासम्; तेलुगू में 'अप्पाराव बेङ्कटेश्वरराव; उड़िया में कालीचन पटनाइक,[2] भञ्जकिशोर पटनाइक, रामचन्द्र मिश्र; मराठी में गडकरी,[3] भार्गवराय विट्ठल तथा गुजराती में उमरवाडिया, चन्द्रवदन मेहता आदि ने समाज के यथार्थ को पाठकों के सम्मुख रखा है। द्वितीय युग के नाटककारों में शील वैत्रिज्य आदर्शवादी धरातल पर दिखाई देता था परन्तु आज के युग में आदर्श नहीं, आधुनिक समाज व व्यवस्था

१—श्रीमती अपर्णलता राय।

१ 'सान्ध्य-काल' 'सम्पुष्ट रामायण' आदि नाटक।
२ 'भात' नाटक द्रष्टव्य।
३ 'पागलखाना', 'एकच प्याला'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आन्तरिक अन्तर्विरोध दिखाना एक मुख्य प्रवृत्ति बन गई है। हिन्दी में ही नहीं मलयालम में भी "आदर्शवादी कृतियों की ओर से जनता में एक अरुचि पैदा होती गई। संसार पुष्प शय्या नहीं, कण्टकाकीर्ण आस्तरण ही अधिक ठहरता है—इस तथ्य की अनुभूति करने वाले पाठकों और लेखकों ने कला द्वारा दरिद्र सहजीवियों के आक्रन्दन को भी सुविस्तृत संसार के कर्णों में प्रतिध्वनित करना आवश्यक समझा।"[1] अब हृदय की मधुर-वृत्तियों के रञ्जन का प्रयत्न न होकर, जीवन के कुत्सित पक्षों के चित्रण अधिक होते हैं और उसके कारणों की ओर समाज का ध्यान खींचा जाता है। उदयशङ्कर भट्ट का 'पर्दे के पीछे' एकांकी नाटकों का ऐसा ही संग्रह है। एकांकी नाटकों में सभी भाषाओं में व्यंग्य का रूप बहुत निखर कर आता है। अतः आज प्रत्येक भाषा में चतुरोक्ति (Wit) व व्यंग्य (Satire) का प्रयोग कर शोषक सेठों, दम्भी नेताओं, दुराचारियों, पाखण्डी धार्मिकों, भ्रष्ट कर्मचारियों तथा प्रदर्शन-पूर्ण परन्तु खोखले सरकारी कार्य-क्रमों का चित्र खींचकर समाज के बढ़ते हुए असन्तोष को बढ़ाया जाता है। इन नाटकों में पौराणिक, ऐतिहासिक नाटक भी लिखे जाते हैं परन्तु पौराणिक पात्रों के चित्रण द्वारा नवीन युग की समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न किया जाता है यथा गुजराती में के. एम. मुंशी के नाटकों में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है।[2] परन्तु आज के ऐतिहासिक नाटकों में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का चित्रण, वर्तमान के लिए प्राप्य सन्देश की ओर ध्यान रहता है, 'पुनरुत्थानवाद' का अब अच्छा नहीं माना जाता। उर्दू में सामाजिक यथार्थ की ओर लेखक बहुत अधिक जागरूक हैं। नाटक जीवन की अनुकृति है, आज वह सच्चे अर्थों में हमारे सम्मुख आ रही है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि आज मञ्च-नाटक व पाठ्य-नाटकों का द्वन्द्व प्रत्येक भाषा में पाया जाता है, यह समाप्त होना चाहिए। चल-चित्रों के प्रभाव से भारतीय देशी भाषाओं में नाट्यकला का ह्रास हो रहा है। संस्कृत व अंग्रेजी के प्रभाव से देशी भाषाओं में जो नाट्यकला विकसित हुई उसमें अब संस्कृत का प्रभाव कम हो रहा है, नई विधायें व नई समस्यायें नाटकों में आ रही हैं। पौराणिक नाटकों से आज के मनोविज्ञान की बारीकियों, समाज की यथार्थताओं तथा मूर्त-आदर्शों तक विकसित भारतीय नाट्यकला के सोपान, गति व गंतव्य एक से ही प्रतीत होते हैं। आज भी सारा भारत एक ही दिशा में सोच रहा है, सामाजिक व्यवस्थायें मनुष्य के अधिक से अधिक अनुकूल कैसे हो? उनकी बुराइयाँ क्या हैं? उनका नाश कैसे हों? यही आज के नाटकों की मुख्य चिन्ता है। जन-नाट्यों के अन्ध-विश्वास, अद्भुत, मात्र मनोरंजन, धर्म-प्रचार के स्तर से उठकर, संस्कृत नाटकों से प्रभावित नाटकों में चरित्रों के 'टाइप' गढ़ने, भावनाओं की कवित्वपूर्ण अभिव्यक्तियाँ करने तथा पाश्चात्य विधाओं के माध्यम से व्यक्त सामाजिक समस्याओं तक नाटक-कला की पहुँच वस्तुतः बड़ी ही आकर्षक है। साम्राज्यवादी कहते हैं कि अंग्रेजी की नकल ही देशी भाषाओं में मिलती है, उनके पास अपना कुछ नहीं है। देशी भाषाओं में केवल द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्र आदि का प्रभाव अन्यों पर पड़ा, परन्तु परस्पर आदान-प्रदान न हो सका। अँग्रेजी से विधाओं की नकल अवश्य हुई परन्तु लेखकों ने देश, काल व पात्रों के सम्बन्ध में भारतीय वातावरण का ही ध्यान रखा। प्रभावित होना बुरा नहीं, नकल करना बुरा है, जो किसी भी भाषा के नाटकों में नहीं दिखाई पड़ती।

आज प्रत्येक देशी भाषा में नाटक का क्षेत्र अपेक्षाकृत दुर्बल है। बँगला, मराठी, हिन्दी, सभी में नाटकों के क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता है और उससे भी बड़ी आवश्यकता है, परस्पर आदान प्रदान व 'अन्तर्प्रान्तीय समझ' के विकास करने की।

१—मलयालम नाटक साहित्य का विकास।
२—ध्रुवस्वामिनी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बङ्गीय नाट्य-साहित्य तथा रङ्गमञ्च

श्रीमती अपर्णलता राय एम० ए०

प्राचीन बँगला नाट्य-साहित्य का लिखित संस्करण आज तक नहीं मिला है। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिये कि प्राचीन बँगला समाज में नाटक या अभिनय का कोई स्थान नहीं था। प्राचीन ग्रन्थों से पुरातन युग के नाटकीय क्रीड़ा का सन्देश मिलता है। उस समय पूजा या उत्सव को केन्द्र मान कर नृत्यगीत के साथ नाटकीय भावयुक्त अनुष्ठान का वर्णन मिलता है। शिव पूजा या चड़क पूजा के अवसर पर शिव पार्वती का वेश धारण करके उनकी कहानियों का खेल प्रचलित था। लेकिन उसकी कोई लिपिबद्ध रचना नहीं मिली। गायक समयोपयोगी गीत रचना कर गाते थे तथा गम्भीर भावों की व्याख्या भी करते थे। यह नाटकीय अनुष्ठान वर्त्तमान नाटकों तथा रङ्गमञ्च की क्रीड़ा से भिन्न था, लेकिन दोनों का अन्तर्गत आवेग एक ही था। वह पौराणिक नाट्य-क्रीड़ा वर्तमान युग में भी सम्पूर्णतः लुप्त नहीं हुई है। बांगल में ग्राम्य अशिक्षित जनता आज भी उस प्रकार की नाटकीय अभिव्यक्ति से परिचित है और सम्भवतः भविष्य में भी रहेगी। इस प्रकार के सहज अनाडम्बर अभिनय तथा मौखिक गीत, व्याख्या आदि से आज भी जनता मनोरंजन करती है और ज्ञान, धर्म की शिक्षा लाभ करती है। यह प्राचीन अभिनय पद्धति हम 'यात्रागान', 'कथकता', 'ढप' इत्यादि विभिन्न रूप में पाते हैं। साधारणतः इनकी विषय वस्तु सर्वदा धार्मिक गुण सम्पन्न होती है; रामायण, महाभारत, पुराणादि की आख्यायिकाओं या कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य लीला से संग्रहीत कहानियों पर अवलम्बित होती है। वर्तमान युग में यात्रागान में कभी-कभी सामाजिक तथा राजनैतिक मतवाद का निदर्शन दृष्टिगोचर होता है। बँगला में नाटक के क्रम-विकास की पर्यालोचन से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन साहित्यों में जो गीति-काव्य मिलते थे कभी-कभी उनको नाटकीय रूप में परिवर्तित कर यात्रागान में अभिनय किया जाता था। ऐसे जिस गीतिकाव्य का प्राचीनतम लिखित ग्रन्थ मिला है वह दशम शताब्दी की रचना है। दशम शताब्दी के अन्त भाग में रामहि पण्डित रचित 'शून्य पुराण' ही प्राचीनतम बँगला गीति-काव्य है जो कि अभिनय के रूप में गाया जाता था। 'शून्य-पुराण' के साथ-साथ और भी कुछ प्राचीन गीतिका मिलती हैं जिसकी प्राचीनता का सम्यक निर्णय न होते हुये भी उनको बहु-प्राचीन रचनाओं में ही स्थान दिया गया है। 'सूर्य मङ्गल' एक ऐसी ही रचना है और इसका अभिनय तत्कालीन समाज में बहुत प्रचलित था। इस प्रकार और भी कई प्रसिद्ध गीति-काव्य मिलते हैं जिन्होंने बँगला साहित्य में नाट्य रस की सृष्टि की थी। जिनमें 'धर्ममङ्गल' तथा 'मयनामती' और 'गोपीचन्द्र का गान' का बहुत प्रचार हुआ था। राजा माणिकचन्द्र उनकी रानी मयनामती तथा पुत्र गोपी-चन्द्र का समय सम्भवतः एकादश शताब्दी का शेष भाग था। रानी मयनामती महायोगी गोरक्षनाथ की की शिष्या थी और सिद्धि प्राप्त कर अलौकिक शक्ति लाभ कर चुकी थी। उस कहानी के आधार पर जिस गीति-काव्य की रचना हुई थी वह है 'मयनामती का गान' है जिसने कि उस समय प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसके साथ और भी कुछ कहानियाँ मध्य युग के गीति-काव्य में मिलती हैं जिनमें नाटकीय घटना तथा चरित्र का बहुत समावेश है। किन्तु मध्य युग की इन रचनाओं में एक विशेषता तथा त्रुटि दिखाई देती है। यह सब रचनायें दैवी शक्ति के ही व्याख्यान थे। मानवीय प्रेमलीला का प्रचार परवर्ती युग में मुख्यतः कई मुसलमान कवि तथा नाट्यकारों की सहायता से हुआ था। उन लेखकों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्रहवीं शताव्दी के दौलत काजी तथा अलावल सम अधिक प्रसिद्ध हैं। बीच के वर्षों में किसी प्रसिद्ध गीत-काव्य का सन्धान नहीं मिल सका है।

इसके पश्चात् नाट्य-साहित्य में एक महान परिवर्तन का युग आया। पूर्व में ही कह चुकी हूँ कि प्राचीन बँगला में नाटकीय अभिव्यक्ति का प्रचलन था जिसका रूप वर्तमान मञ्च-अभिनय से कुछ भिन्न था। देश की सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्था तत्कालीन मनोरञ्जक व्यवस्था की नियन्त्रक थी और सर्वकाल में देश में प्रयोजन और सुयोग के अनुसार ही व्यवस्था की जाती है। पाश्चात्य सभ्यता का आलोक मिलने से पूर्व-हमारे देश का जीवन, प्रधानतः ग्रामीण जनता में ही था। ग्रामीण जीवन के बाहर नगर जीवन केवल राजन्य वर्ग या राज कर्मचारियों के उपयुक्त था। नगरवासियों का रहन-सहन उनका आमोद, उत्सव ग्रामीण जनता के लिए नहीं था। सहज तथा अनाडम्बर रीति के अनुसार साधारण जनगण अपना-अपना अनुष्ठान-उत्सव पालन करते थे। लोक शिक्षा तथा मनोरञ्जन के लिए नाटकीय अभिव्यक्ति के साथ धर्म सम्बन्धी गीत-अभिनय का प्रचलन था जिसका वर्णन पूर्व ही कर चुकी हूँ। इस अभिनय में न तो किसी मञ्च की आवश्यकता थी न अधिक वेश भूषा की। उन्मुक्त स्थान में गायक वर्ग विभिन्न चरित्रों के रूप को गान की सहायता से व्यक्त करते थे। श्रोतागण की केवल गान् की मधुरता तथा तत्त्व की गम्भीरता का रस पान करके तृप्त होते थे। यह ही प्राचीन यात्रा गान या कथकता का रूप है। जीवन में उच्चतर अवस्था थी, राज निर्देश से या धनाढ्य वर्ग के प्रयत्न से नगर में नाटकाभिनय का उच्चतर आयोजन होता था, किन्तु वह जनसाधारण के लिये नहीं था। किन्तु ब्रिटिश शासन आरम्भ होते ही, देश के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ साथ, नाट्य जगत में भी परिवर्तन दिखाई दिया। अँग्रेजी शिक्षा के साथ जैसा पाश्चात्य रीति-नीति ने देशीय समाज को प्रभावित किया वैसा पाश्चात्य साहित्य तथा नाट्य धारा ने भी हमारे देश के नाट्य साहित्य तथा नाट्याभिनय को नूतन रूप दिया। यद्यपि बङ्गला नाट्य साहित्य ने पाश्चात्य धारा का सम्पूर्ण अनुसरण नहीं किया, निज वैशिष्ट धर्म परायणता, चारित्रिक आदर्श इत्यादि का अनुकरण नहीं किया, तब भी पाश्चात्य प्रभाव नाट्य जगत् में बहुत संशोधन का कारण हुआ। अँग्रेजी शासन में कलकत्ता नगरी साम्राज्य की राजधानी निर्वाचित हुई। राजधानी और उसके उपकण्ठ में जनता की वृद्धि हुई। पाश्चात्य प्रभाव वश उनमें अँग्रेजी सभ्यता की धारा विविध श्रोत में प्रविष्ट हुई। उनकी एक धारा ने नाट्य-जगत में नूतन भाव तथा नूतन ढङ्ग दिया। कलकत्ते में पश्चिमी ढङ्ग से प्रथम रङ्गमञ्च की स्थापना हुई सन् १७८५ ई० में। जिसका प्रतिष्ठाता था हेरोसिन लेबेडेफ नामक एक रशियन। इस नाट्यशाला में प्रथम बँगला नाटक का अभिनय हुआ था। यद्यपि यह नाटक Disguise नामक एक अंग्रेजी नाटक का अनुवाद था। यह नाट्यशाला स्थायी नहीं हुई। क्योंकि प्रवेश शुल्क अत्यधिक होने के कारण साधारण जनता उसमें स्थान न पा सकी। इसके ४० वर्ष बाद बँगला नाटक 'विद्यासुन्दर' अभिनीत हुआ था। इस समय विभिन्न धनाढ्य नाट्य-प्रिय व्यक्तियों के प्रयत्नों से विभिन्न नाट्यशालाएँ प्रतिष्ठित होती चली गईं और साथ-साथ ही बङ्गीय साहित्यिक मण्डली उपयोगी नाट्य-रचना पर दृष्टिपात करती रही। सन् १८५७ से इस नये नाट्य-युग का प्रारम्भ हुआ, जिस समय से लेकर आज तक बँगला साहित्य में अगणित नाटक रचित हुए। प्रारम्भिक समय की कई प्रसिद्ध रचनाओं की सूची निम्नलिखित है—

'अभिज्ञान शाकुन्तल'—(नवकुमार राय)

'कुलीन सर्वस्व' तथा 'वेनी संहार'—(रामनारायण तर्करत्न)

'कीर्ति विलास'—(योगेन्द्र गुप्त)

'भद्रार्जुन'—(ताराचँद सिकदार)

'भानुमती चित्र विलास' (हरचन्द्र घोष)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अतिरिक्त विभिन्न रचयिताओं ने 'रामाभिषेक', 'सतीनाटक', 'हरिश्चन्द्र', 'महाश्वेता', 'जानकी विलाप', 'नलदमयन्ती', 'वत्स चिन्ता' आदि पौराणिक नाटकों की रचना तथा अभिनय किया। नाट्यशाला में अभिनीत यह नाटक प्राचीन यात्रागान से कई प्रकार से अधिक उन्नत थे। इनके रचयिता-गण शिक्षित थे और नाट्यशाला का आयोजन भी उन्नत था। तथा साहित्यिक लोग भी नाट्य साहित्य के प्रति आकृष्ट होने लगे जिसके कारण इसकी द्रुतगति से उन्नति हुई। और अंग्रेजी या संस्कृत से अनुवादित नाटकों के स्थान पर मौलिक बँगला नाटकों का आविर्भाव होने लगा जिसने साहित्य को नाना प्रकार से समृद्धिशाली बनाया। प्रसिद्ध बँगला काव्य रचयिता माईकेल मधुसूदनदत्त ने भी कई नाटकों की रचना की जिनमें से 'कृष्ण कुमारी' नामक नाटक ने बहुत ही प्रसिद्धि प्राप्त की। जन-साधारण के मनोरञ्जन के लिए नाट्यशालाओं का विकास हुआ। साहित्य सम्राट बङ्किमचन्द्र के अधिकतर उपन्यासों को नाटकों में परिवर्तित किया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में नाट्य-साहित्य में बहुत उन्नति हुई और इस युग के यशप्राप्त नाट्यरचयिताओं में दीनबन्धु मिश्र, अमृतलाल वसु, अर्घ्येन्दु शेखर मुस्तफी, गिरीशचन्द्र घोष आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दीनबन्धु मिश्र लिखित 'सधवा की एकादशी' और 'नील दर्पण' नाटक से देश में एक नव भावधारा का सञ्चार हुआ। पहले नाटक साधारणतः भक्ति-मूलक होते थे। इस भावधारा का परिवर्तन कर 'सधवा की एकादशी' समाज के संशोधक के रूप में प्रकाशित हुई। 'नील दर्पण' नाटक की विषय वस्तु था अंग्रेजी शासन से अत्याचार पीड़ित दरिद्र देशवासी का वर्णन, जिसने कि 'नीलकर' के विरुद्ध विद्रोह किया था। (Agitation against Taxation on Indigo plantation) उस समय के राजनैतिक इतिहास में बङ्गाल का 'नील कर' आन्दोलन एक प्रसिद्ध घटना थी। और ऊपर लिखित नाटक 'नील दर्पण' का अभिनय इसी कारण जनता में बहुत समादृत हुआ था। 'सधवा की एकादशी' ने समाज की विधवा नारियों पर जो अत्याचार प्रचलित था उसके प्रति विरोध प्रदर्शन किया। इस नाटक से तत्कालीन सामाजिक जीवन में बहुत चाञ्चल्य की सृष्टि हुई। उस युग में ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर लिखित कई जातीयता भावोद्दीपक नाट्यों की भी रचना हुई थी। जिनमें 'पुरुविक्रम' और 'सरोजिनी' उल्लेख योग्य हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के शेष अध्याय में दीनबन्धु मिश्र प्रभृति के पश्चात् नाट्य जगत में नूतनतर तथा श्रेष्ठतर अवदान मिला गिरीशचन्द्र से। उनकी नाट्य प्रतिभा से अभिनय कला, नाट्यशाला का संशोधन तथा नाटक रचना इस त्रिस्रोत से बङ्गला नाट्य क्षेत्र की उर्वरता वृद्धि हुई। अभिनयाचार्य उपयुक्त नाटक के अभाव का बोध होने से गिरीशचन्द्र, नाटक रचना में प्रवृत्त हुए और उनकी शक्तिशाली लेखनी से समयोपयोगी तथा मनोरञ्जक बहु संख्यक नाटकों की सृष्टि हुई। गिरीशचन्द्र लिखित नाटकों की संख्या पचास से अधिक रही। उनमें अधिकतर (१) पौराणिक तथा धार्मिक कहानियों के आधार पर लिखित नाटक (२) ऐतिहासिक घटना पर रचित तथा वीरत्वपूर्ण और स्वादेशिकता भावोद्दीपक। नाटक एवं (३) सामाजिक नाटक (जिनमें 'प्रफुल्ल' और 'बरानिधि' सुप्रसिद्ध हैं) हैं। प्रथम भाग के अन्दर राम का बनवास, सीता हरण, व्रज विहार, चैतन्य लीला, प्रभास यज्ञ, निमाइ सन्यास, बुद्धदेव चरित आदि हैं। द्वितीय श्रेणी के अन्दर सिराजुद्दौला, मीरकासिम, चंड, काला पहाड़, इत्यादि की गणना है।

गिरीशचन्द्र के समसामयिक नाट्यकारों में रसराज अमृतलाल बसु, क्षीरोदप्रसाद और द्विजेन्द्रलाल समाधिक प्रसिद्ध हैं। अमृतलाल रचित नाटकों में 'हीरक चूर्ण', 'तिलतर्पण', 'विवाह विभ्राट' प्रसिद्ध है।" शेषोक्ति नाटक हास्यरस प्रधान था। और इसकी सफलता से नाट्य समाज में अमृतलाल ने 'रसराज'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उपाधि प्राप्त की। क्षीरोदप्रसाद ने 'अलीबाबा' नाटक रचना कर बड़ी सफलता प्राप्त की और इसके पश्चात् ऐतिहासिक, पौराणिक प्रायः पचास नाटकों की रचना की। इनके ऐतिहासिक नाटकों में प्रतापादित्य नन्दकुमार, पलासी का प्रायश्चित, चाँदबीबी, आलमगीर आदि नाटक देश की समयोपयोगी भावधारा के अनुवर्ती थे। विंश शताब्दी के प्रारम्भ में बङ्गाल में स्वदेश सेवा तथा स्वाधीनता संग्राम का अंकुर दिखाई दिया। उस युग में 'प्रतापादित्य', 'नन्दकुमार', 'पलासी का प्रायश्चित' देश को अनुप्रेरित करने में सहायक हुआ। द्विजेन्द्रलाल भी प्रधानतः ऐतिहासिक नाट्यकार थे। उनका प्रसिद्ध नाटक समूह विभिन्न भाषाओं में अनुवादित हो चुका है। जिनमें से शाहजहाँ, राणा-प्रताप, दुर्गादास, नूरजहाँ, मेवाड़ पतन, चन्द्रगुप्त आदि ने समधिक ख्याति लाभ की। द्विजेन्द्रलाल की काव्यिक तथा ओजस्विनी गद्यभाषा से उनके नाटक को एक नूतन मूल्य प्राप्त हुआ, यद्यपि ऐतिहासिक सत्य से विच्युति और घटनाओं की असम्बद्धता ने कुछ कठोर समालोचनाओं का भी सुयोग दिया।

वर्तमान युग के उपर्युक्त विशिष्ट नाट्यकारों के नाम के साथ अन्य एक श्रेष्ठ साहित्यिक का नाम भी आ सकता है, परन्तु इनकी श्रेणी भिन्न थी। लोक सम्राट् रवीन्द्रनाथ ने भी नाटक तथा गीति नाट्य की रचना की। जिनमें से दो चार रंबमञ्च पर अभिनीत भी हो चुके हैं। किन्तु इनकी रचना अभिनय योग्य नहीं है। अभिनय उपयोगी नाटकों में जो परिवेश प्रयोजन था, जो गुण आवश्यक हैं, उनके नाटकों में उसका अभाव है। उनके नाटकों में भावधारा प्रचुर किन्तु अभिव्यक्ति का प्रयोजन कम है! रवीन्द्रनाथ कवि सम्राट थे, सम्भवतः इसी कारण उनकी सब रचनाओं में ही भावांश प्रधान है, क्रियांश या घटनांश गौण है। रवीन्द्रनाथ के जिन-जिन नाटकों ने नाट्यमञ्च पर सफलता प्राप्त की है उनमें 'चिर कुमार सभा' (प्रहसन), 'विसर्जन', 'राजरानी या तप' प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ का उपन्यास 'बौ० ठाकुरानी का हाट' और 'गोरा' भी नाट्य रूप में अभिनीत हो चुके हैं।

क्षीरोदप्रसाद, द्विजेन्द्रलाल के युग के पश्चात् उल्लेखनीय नाट्यकारों में योगेशचन्द्र चौधरी तथा अपरेशचन्द्र मुखर्जी का नाम है। ये दोनों नाट्य-रचयिता तथा नाट्याध्यक्ष थे। योगेशचन्द्रलिखित 'सीता' तथा 'विष्णुप्रिया' और अपरेश चन्द्र रचित 'कर्णार्जुन' तथा 'चण्डीदास' रचना ने तत्कालीन समाज को सविशेष मोहित किया था।

इन मौलिक नाटकों को छोड़कर बङ्ग-समाज औपन्यासिक कलाकारों की देन से भी उपकृत हुआ है। पूर्व में कहा गया है कि बङ्किमचन्द्र के उपन्यासों ने नाट्याभिनय को समृद्ध किया! इनके अतिरिक्त अन्यान्य उपन्यासकारों ने भी रङ्गालय को सम्पन्न करने में सहायता की। उनमें रमेशचन्द्र, शरतचन्द्र, अनुरूपा देवी तथा निरुपमा देवी का दान मूल्यवान है। रमेशचन्द्र लिखित 'बङ्ग विजेता', 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। शरतचन्द्र के उपन्यास मात्र ने नाटक रूप में परिवर्तित होकर रङ्गभूमि की शोभा बढ़ायी तथा जन साधारण का आनन्दवर्द्धन किया। बङ्गीय महिला उपन्यास लेखकों में अनूपी देवी तथा निरुपमा देवी का स्थान सर्वोच्च विवेचित होता है। अनुरूपा लिखित 'मां' 'मंत्रशक्ति' 'महानिशा' आदि तथा निरुपमादेवी प्रणीत 'श्यामली' तथा 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' ने अभिनय रूप में भी विशेष प्रशंसा अर्जन की।

इसके पश्चात् आधुनिक नाट्य साहित्य पर दृष्टिपात करने से यह प्रकट होता है कि इस युग में नाट्य-साहित्य की कुछ अधोगति हुई है। मौलिक मूल्यवान रचनायें वर्तमान नाट्य-साहित्य में विरल हैं। वर्तमान में जिन-जिन नाटकों ने आज भी रङ्गालय में श्रोताओं का हृदय आकृष्ट किया है वह या तो पूर्व नाट्यकारों लिखित रचनायें हैं या सुप्रसिद्ध उपन्यासों का नाटक संस्करण। इसका एक कारण है शक्तिशाली नाट्य रचयिता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव और दूसरा कारण है 'छायाचित्र का प्रसार'। प्रतियोगिता की दौड़ में छायाचित्र विजयी है। समय तथा व्यय संकोच के कारण और छायाचित्र से अधिकतर स्वाभाविक परिस्थिति वर्तमान रहने से उससे जनता अधिकतर आकृष्ट होगयी। नाट्यकारों ने भी सिनेमा-नाटक रचना में मनोनिवेश किया। सिनेमा नाटक मञ्च नाट्य से भिन्न होता है। पूर्वोक्ति में घटना तथा अभिव्यक्ति का प्राचुर्य प्रयोजन है, जब कि द्वितीयोक्ति में भाषा और भाव का प्रयोजन है। आज छायाचित्र जगत् वृहत्तर हो गया और नाटकीय रङ्गमञ्च का समादर सीमित रह गया है, नाट्य रचना की गति भी भिन्न मुखी है। वर्तमान में चित्र-नाट्य भी बहुलांश में उपन्यास से संगृहीत हो रहा है, और जिस-जिस को मौलिक रचना के रूप में हम पाते हैं उनका मूल्य भी पूर्वापेक्षा नाटक के समतुल्य नहीं है। वर्तमान नाटक की धारा, आधुनिक रुचि अनुयायी, प्रधानतः मनस्तत्व-मूलक है। जिसका रूप कभी-कभी सम्पूर्णतः भारतीय न हो कर पश्चिमी ढङ्ग का हो जाता है। बँगला नाट्य-साहित्य की यह परिणति सुखदायक या वांछित नहीं है परन्तु आशा है कि वर्तमान तथा भविष्य के साहित्यकार इस त्रुटि का निराकरण कर नाट्य-साहित्य में उच्चतर आदर्श की स्थापना करेंगे जो कि समाज तथा जाति के लिए वांछनीय है और जो बङ्ग साहित्य को पुनः गौरवमय स्थान पर प्रतिष्ठित करेगा।

———

(पृष्ठ ११८ का शेषांश)

है, परन्तु उस पर पाश्चात्य कला का अत्यधिक प्रभाव विद्यमान है। इन एकांकीकारों में सेठ गोविन्ददास, डा० रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, गणेशप्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा, सद्गुरुशरण अवस्थी, विष्णु प्रभाकर आदि प्रसिद्ध हैं।

पाँचवें, प्रसादजी के 'एक घूँट' को समस्यामूलक नाटक भी माना गया है। इस परम्परा में सर्वश्रेष्ठ नाटक लक्ष्मीनारायण मिश्र के मिलते हैं, जिनमें से सन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, राजयोग, सिंदूर की होली, आधीरात प्रसिद्ध हैं। पं० गोवि द बल्लभ पन्त का 'अंगूर की बेटी' भी एक समस्या-नाटक है, क्योंकि इसमें मद्यपान की समस्या विद्यमान है।

सारांश यह है कि प्रसादजी ने नाट्य-क्षेत्र में एक अद्भुत क्रान्ति प्रस्तुत की थी। उस क्रान्ति को आगे बढ़ाने का श्रेय उनके युगीन नाटककारों को है। वैसे बा० गुलाबराय जी ने तो प्रसादजी को ही स्वयं एक युग माना है क्योंकि वे स्वयं ही एक युग-स्रष्टा तथा एक युग की पूर्ण सामग्री लेकर अवतीर्ण हुए थे। परन्तु फिर भी उनके समसामयिक नाटककारों ने इस क्रान्ति-युग के सृजन में पर्याप्त सहयोग दिया है और प्रसादजी ने जिस नाट्य-कला का विकास हिन्दी-क्षेत्र में किया उसे सजीव बनाये रखने का प्रयत्न किया है। प्रसादजी के नाटकों में एक अभाव सदैव खटकता रहा है कि वे अभिनेय नहीं हैं परन्तु कुछ काट-छाँट के साथ उनका भी सफल अभिनय हुआ है। साथ ही उनका अन्तिम नाटक ध्रुवस्वामिनी तो पूर्णतया अभिनेय है। प्रसाद के नाटकों के अनभिनेय दिखाई देने का कारण हिन्दी रङ्गमञ्च का अभाव है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। परन्तु उनके युग के अन्य नाटककारों ने उस अभाव को भी दूर कर दिया है और अधिकांश ऐसे नाटक लिखे हैं जो सर्वथा अभिनेय हैं तथा जिनमें काँट-छाँट करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हरिकृष्ण प्रेमी तथा मिश्रजी के अधिकांश नाटक ऐसे ही हैं जिनका सफल अभिनय हो सकता है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

हिन्दी साहित्य का आदि काल—लेखक-आ० डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक–बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद, पटना। पृष्ठ १२३, बड़ा आकार, सजिल्द, मूल्य ३।)

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद वर्ष में एक दो बार अधिकारी विद्वानों द्वारा ऐसे भाषण कराती है जो लगातार पाँच दिन तक होते हैं और जिनको विशेष-रूप से तैयार किया जाता है। इन भाषणों पर परिषद व्याख्याता को एक हजार रुपया पुरस्कार रूप में देती है और उस व्याख्यानमाला को पुस्तक रूप में प्रकाशित कर देती है। इस प्रकार की प्रथम व्याख्यान-माला के रूप में लिखा गया यह ग्रन्थ परिषद ने प्रकाशित कर हिन्दी साहित्य का बड़ा हित किया है।

हिन्दी का आदिकाल ऐसा है जिस पर अन्धकार का पर्दा-सा पड़ा हुआ है। द्विवेदीजी ने उस पर्दे को थोड़ा हटा कर उस काल के साहित्य का दिग्दर्शन कराया है। इस आलोक से आपने ऐसे तथ्यों पर प्रकाश डाला है और ऐसी भ्रान्तियों को दूर किया है जिन्होंने अभी तक हिन्दी संसार को आच्छन्न कर रक्खा था। साहित्य के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ कितना उपयोगी है यह लिखा नहीं जा सकता। भावी लेखकों को और अन्वेषकों को यह ऐसी दिशा निर्देश करेगा जिसकी अभी कल्पना नहीं की जा सकती।

हर्ष चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन—लें०–डॉ० बासुदेवशरण अग्रवाल, प्रकाशक–बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद, पटना। पृष्ठ ३०३, बड़ा आकार, सजिल्द, मूल्य ६॥)

बाणभट्ट की प्रसिद्ध और अनुपम कृति 'हर्ष-चरित' पर डा० अग्रवाल ने यह एक अत्यन्त गवेषणा-पूर्ण ग्रन्थ तैयार किया है। इस ग्रन्थ में हर्ष-चरित के आधार पर तत्कालीन समाज, साहित्य और संस्कृति का बड़ा सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया है। कला की, समाज की और साहित्य की जैसी अवस्था हर्ष-चरित में दिखाई गई है—डॉ० अग्रवाल ने उस सबको एक स्थान पर अपने ढङ्ग से प्रस्तुत कर हिन्दी पाठकों को और रसिक समाज को बहुत ही उपकृत किया है। ऐसे सुन्दर और गवेषणापूर्ण ग्रन्थ के प्रणयन पर डॉ० अग्रवाल को जितनी भी बधाई दी जाय कम होगी।

जायसी साहित्य और सिद्धान्त—लेखक–श्री यज्ञदत्त शर्मा, प्रकाशक– आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ १२०, मूल्य २॥)

प्रेममार्गी कवियों में जायसी का प्रमुख स्थान है। वे सूफियों के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। जायसी को समझने के लिए सूफी सिद्धान्तों और सम्प्रदायों का जितना ज्ञान आवश्यक है वह संक्षेप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दिया गया है। इसमें जायसी के ग्रन्थों का संक्षिप्त वर्णन देकर सामूहिक रूप से जायसी की भाषा, अलंकार योजना चरित्र-चित्रण तथा विचार-धारा पर प्रकाश डाला गया है। इन विवेचनों की विशेषता यह है कि लेखक पहले से ही विवादग्रस्त बातों और विचारों की भूल-भुलैयों में नहीं पड़ा है और प्रत्येक अध्याय के अन्त में उसका सार दे दिया गया है। इस सार के कारण यह पुस्तक विद्यार्थियों और उन सारग्राही पाठकों के लिए जो थोड़े में ही सब कुछ जान लेना चाहते हैं विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

—गुलाबराय

यशोधरा : एक अध्ययन—लेखक—श्री लक्ष्मीनरायण टण्डन तथा श्री रामखेलावन चौधरी, प्रकाशक—विद्या मन्दिर, लखनऊ। पृष्ठ १५०, मूल्य १।।)

गुप्तजी की यशोधरा पर यह एक आलोचनात्मक पुस्तक है। विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

निबन्ध

श्री रामावतार शर्मा निबन्धावली—लेखक—महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा, प्रका०—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना। पृष्ठ ३१६, बड़ा आकार, सजिल्द, मू० ८।।)

शर्मा जी संस्कृत के अपूर्व और अपने समय के सर्वमान्य विद्वान थे। सन् १९२९ में ५२ वर्ष की अल्प आयु में ही आपका स्वर्गवास हो गया। संस्कृत और हिन्दी में अनेकों ग्रन्थ आपने लिखे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आपके चालीस लेखों का संग्रह है। लेख सभी विषयों पर हैं और इन लेखों से स्पष्ट विदित होता है कि शर्माजी कितने महान् विद्वान थे। ज्योतिर्विद्या भूगोल विद्या, भूगर्भ विद्या, भाषा विज्ञान, शिक्षा, पुराण, धर्म, दर्शन सभी विषयों पर शर्मा जी ने लिखा है। लेख गम्भीर हैं और पठनीय हैं। अन्तिम . विषय परिशिष्ट रूप में हैं जिनमें एक में शर्मा जी की जीवनी भी बहुत संक्षेप में दी गई है।

कविता

धूप के धान—लेखक—गिरिजाकुमार माथुर, प्रका०—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। पृष्ठ १४९, मूल्य ३)

४५ नवीन कविताओं का संग्रह है जिनको मुख्यतः तीन वर्गों में रखा जा सकता है। कुछ रूमानी गीत हैं कुछ में रूमानी प्रवृत्ति के साथ यथार्थ का समन्वय हुआ है और कुछ कविताएँ बहिर्मुख हैं। छन्दों की नवीन विधाओं का इनमें उपयोग हुआ है। 'शाम की धूप', 'चाँदनी गरवा' आदि के छन्द ऐसे प्रयोग हैं। 'न्यूयार्क में फाल' कविता आधुनिक प्रतीक प्रधान है। 'हेमन्ती पूनो' का शब्द शिल्प दृष्टव्य है। गीत की दृष्टि से 'पन्द्रह अगस्त' कविता श्रेष्ठ है। 'ढाकवनी' कविता वातावरण प्रधान है जिसमें समाज यथार्थ का पहली बार प्रयोग हुआ है। शब्द शिल्प में उर्दू अँग्रेजी के सामान्यतया प्रचलित शब्द प्रयुक्त हुए हैं इस कारण भाषा सरल है।

दयानन्दायन—लेखक—श्री गदाधरसिंह, प्रकाशक—डॉ० सूबाबहादुरसिंह, कैनिङ्ग कालेज डिसपैन्सरी, लखनऊ। पृष्ठ ३८१, मूल्य ४)

प्रस्तुत महाकाव्य में महर्षि दयानन्द की जीवन-गाथा वर्णित है। पाँच खण्डों में कथा विभाजित है। मङ्गलाचरण पृथक् रूप से गणेश आदि का न होकर आरम्भ से सम्बद्ध है। सर्गों के स्थान पर खण्ड हैं। छन्द में परिवर्तन नहीं है। भाषा अवधी है किन्तु खड़ी बोली के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। अँग्रेजी शब्द भी आए हैं जिनका अर्थ टिप्पणी में दिया गया है। छन्द दोहा-चौपाई हैं। प्रत्येक आठ, नौ या दस चौपाइयों के उपरान्त एक दोहा या सोरठा है।

महर्षि के जीवन का सम्पूर्ण वृत्त, उनके कार्य वर्णित हैं जो उनकी विशालता का चित्र प्रस्तुत करते हैं। कवि की भावुकता व श्रद्धा के स्थान-स्थान पर दर्शन होते हैं। छन्द-बन्धन में कहीं शब्दों का रूप बदलना भी पड़ता है। विषय की नवीनता, छन्द एवं भाषा की प्राचीनता इस महाकाव्य में दृष्टव्य है।

—त्रिलोचन पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविताएँ १९५४—सङ्कलन सम्पादक—अजित-कुमार तथा देवीशङ्कर अवस्थी, प्रकाशक—साहित्य निकेतन, कानपुर। पृष्ठ १४१, मूल्य २।।)

यह सङ्कलन उभय श्री गिरजाकुमार माथुर तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन के परामर्श से किया गया है। इस संग्रह में सभी श्रेणी और सभी धारणाओं के कवियों की १९५४ में प्रकाशित कविताओं में से चुनी हुई प्रायः एक ही कविता का सङ्कलन है। इसमें वे कविताएँ भी आगई हैं जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं और वे भी जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हुई हैं। यह बात नहीं कि इसमें केवल नवीनों की ही कविताओं को स्थान दिया गया वरन् मैथिलीशरण गुप्त और सुमित्रानन्दन पन्त भी उन लोगों से कन्धा मिलाये खड़े हुए हैं।

इसके सम्बन्ध में सम्पादकों का कथन है "इसी लिए हमने चाहा कि वह सङ्कलन तैयार हो जिसे भले ही कहा सन् '१९५४ की कविताएँ' जाए परन्तु खड़ी बोली की समग्र कविता का लघु और संक्षिप्त संस्करण जैसे दीखे तथा ऐसा दीखते हुए भी वह आधुनिक हो, नया हो।" प्रत्येक वर्ष की कविताएँ अपने समय की गति-विधि से प्रभावित होती हैं, इसी अंश में उपर्युक्त कथन की सार्थकता है।

कवि भारती—सम्पादक—सर्व श्री सुमित्रानन्द पन्त, बालकृष्णराव और डॉ० नगेन्द्र, प्रकाशक—साहित्य-सदन चिरगाँव (झाँसी)। पृष्ठ ७३५, मू० १५)

कविता कौमुदी के पश्चात् हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं का कोई ऐसा संग्रह नहीं निकला था जिसे प्रामाणिक और उच्च स्तर का कहा जा सके। प्रस्तुत पुस्तक उसी कमी की पूर्ति के लिए एक प्रशंसनीय प्रयास है। इस संग्रह की यह बड़ी विशेषता है कि इसमें सभी प्रमुख कवियों को स्थान दिया है और इसमें उनकी उत्कृष्टतम रचनाओं का सङ्कलन किया गया है। सम्पादन की सुरुचिता के लिए सम्पादकों के नाम ही पर्याप्त हैं। कुछ लोगों को आशा थी कि इस पुस्तक को सर्वश्रेष्ठ रचना होने का गौरव मिलेगा, परन्तु किसी एक लेखक की रचना न होने के कारण इसे छोड़ना पड़ा। हिन्दी के लिए यह गौरव की वस्तु है।

कहानी

पहला कहानीकार—लेखक—श्री रावी, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस। पृष्ठ १९८, मू० २।।)

रावीजी हिन्दी संसार के विख्यात कहानीकार हैं। लघुकथाओं के लिखने में तो आप सिद्धहस्त हैं। आपकी लघु कथाओं की शैली ही अलग है। इस पुस्तक में आपकी लघु कथाओं का ही सङ्कलन है। अच्छी पुस्तक है। छपाई सफाई के लिए भारतीय विद्यापीठ का नाम ही पर्याप्त है।

भ्रमण

पृथ्वी परिक्रमा—लेखक-सेठ गोविन्ददास, प्रका०-आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली। पृष्ठ ३४४, मूल्य १२)

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक सेठ गोविन्ददास जी, जो भारतीय पार्लियामेंट के सदस्य भी हैं, सन् १९५२ में अपने दोनों पुत्रों के साथ विश्व भ्रमण के लिये गये थे। उनकी यात्रा का प्रारम्भ कामनवेल्थ पार्लियामेंट्री कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिये हुआ था। यह कान्फ्रेंस ओटावा में हुई थी। इसमें भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल और उसके नेता के रूप में सेठजी गये थे। ओटावा सम्मेलन का सभापतित्व भारतीय संसद के अध्यक्ष माननीय मावलंकर जी ने किया था। इस पुस्तक के आदि में मावलंकर जी की भूमिका है जिससे विदित होता है कि इस यात्रा में मावलंकरजी भी सेठजी के साथ थे। पुस्तक में यात्रा का जो वर्णन किया गया है आपने उसे यथार्थ माना है।

इस पुस्तक में निम्न देशों का वर्णन है—काहिरा, यूनान, इटली, स्विटजरलैंड, फ्रांस, ब्रिटेन, कनाडा, अमरीका, जापान, चीन, स्याम, वर्मा आदि। सभी देशों के वर्णन में लेखक ने वहाँ की राजनैतिक स्थिति का दिग्दर्शन तो कराया ही है, सामाजिक और आर्थिक अवस्था का भी यथार्थ वर्णन है। पुस्तक ३७ अध्यायों में विभक्त है। १८० चित्र भी दिये गये हैं। इन चित्रों से भी विश्व का एक धुंधला चित्र सामने आ जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकांश चित्र इसी यात्रा में विशेष रूप से लिये गये हैं। जिनमें बहुतों में तो सेठजी स्वयं दिखाई देते हैं। कई दृष्टियों से यह भ्रमण की पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। इससे घर बैठे ही संसार का एक विहंगम चित्र आँखों के सामने आ जाता है।

वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा—लेखक–डा० सत्यप्रकाश, प्रकाशक–बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद, पटना। पृ. २७१, सजिल्द, बड़ा आकार, मू. ८)

जन साधारण में यह बातें साधारणतः प्रचलित हैं कि प्राचीन काल में भारत में विज्ञान की बड़ी उन्नति थी। परन्तु इन बातों को साधार कहने की क्षमता कम लोगों में थी। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान् लेखक ने जन साधारण की इस बात को साधार, सप्रमाण और विस्तार से वर्णन कर बड़ा ही उपकार किया है। इसमें विज्ञान के विभिन्न अङ्गों पर पृथक-पृथक अध्यायों में यह दिखाया गया है कि उस विषय में कौन कौन ग्रन्थ कब बने, किसने बनाए और कैसे उनका विकास या ह्रास हुआ। उदाहरण के लिए गणित विषय में जैन गणित की चर्चा करते हुए लेखक ने बीसियों ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिनमें गणित शास्त्र का विवेचन है। महावीर (भगवान महावीर नहीं) रचित 'गणित संग्रह' को तो आपने इतना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना है कि पुस्तक में जगह-जगह उसका उल्लेख है। इसी प्रकार 'त्रिलोक सार' ग्रन्थ उच्च गणित का वर्णन है।

आयुर्वेद अध्याय को तीन भागों में विभक्त कर आपने आयुर्वेद शास्त्र, रोगों की नामावली, विभिन्न तन्त्रों का वर्गीकरण और यूनानियों का आयुर्वेद पर प्रभाव बताया है। चरक से भी पूर्व भरद्वाज, आत्रेय पुनर्वसु, अग्निवेश का वर्णन कर आपने सिद्ध किया है कि बहुत प्राचीन काल से भारत में आयुर्वेद द्वारा सभी बीमारियों का इलाज होता था और उसका अपना विज्ञान था। इसी प्रकार आधुनिक 'सर्जरी' का विशद वर्णन सुश्रुत वागभट्ट आदि ने शताब्दियों पहले किया था। इसी अध्याय में पौधों का भी वर्णन है। ग्रन्थ का आरम्भ वैदिक-कालीन प्रेरणाओं से हुआ है। रसायन विज्ञान अध्याय में रसायन सम्बन्धी विविध कार्यों का विशद विवेचन प्रचीन ग्रन्थों से दिया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ हमारा प्राचीन गौरव सामने रखता है।

साहित्य-रत्न, एम० ए० और अन्य उच्च कक्षाओं के लिए हमारे

उपयोगी प्रकाशन

१—**भाषा-विज्ञान गाइड** (प्रश्नोत्तर रूप में)—प्रो० मनमोहन गौतम एम० ए०, साहित्य रत्न २॥)
इसमें पाँच यूनीवर्सिटियों के पाँच वर्षों के एम० ए० और साहित्य-रत्न के प्रश्नों के उत्तर भी दिए गए हैं। पुस्तक अपने आप में पूर्ण है।

२—**हिन्दी साहित्य का इतिहास**—(प्रश्नोत्तर रूप में)—प्रो० मनमोहन गौतम एम० ए० ३)
आधुनिक काल पर भी विशेष प्रश्न और उनके उत्तर हैं।

३—**हिन्दी के गौरव-ग्रन्थ**—प्रो० मनमोहन गौतम एम० ए०
हिन्दी के गद्य-साहित्य के १४ गौरवपूर्ण ग्रन्थों की आलोचना इसमें है। पुस्तक एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है।

४—**प्रवन्ध-प्रदीप**—प्रो० भारतभूषण 'सरोज' एम० ए०, साहित्यरत्न (श्रीधर स्वर्ण पदक प्राप्त) ४॥)
साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक निबन्धों की अनूठी पुस्तक।

५—**नाटक की रूपरेखा**—प्रो० दशरथ झा ३)
नाटक का इतिहास इसमें है।

वी० पी० भेजने का हमारे यहाँ सुन्दर प्रबन्ध है।

शुभाकांक्षी आपका—

हिन्दी साहित्य संसार, नई सड़क, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना प्रधान साहित्य-सन्देश

के

पिछले तीन विशेषांक

साहित्य-सन्देश के १७ वें वर्ष का अन्तः प्रान्तीय नाटक विशेषाङ्क हम १ अगस्त को निकाल चुके हैं। प्रत्येक वर्ष हम साहित्य सन्देश का एक विषय लेकर ऐसा विशेषाङ्क निकालते हैं जिसकी ख्याति सारे हिन्दी संसार में बनी रहती है। पिछले सभी विशेषाङ्कों में हिन्दी के विद्यार्थियों और साहित्य प्रेमियों की रुचि के अनुसार ठोस और उपादेय सामग्री रक्खी गई जिनकी बड़ी माँग रही और अभी तक बनी है। इस समय हमारे पास पिछले अनेक विशेषाङ्कों में से केवल तीन विशेषाङ्क 'भारतेन्दु अङ्क', 'आलोचनाङ्क' तथा 'कहानी अङ्क' की कुछ प्रतियाँ बची हैं जिनका प्रत्येक का मूल्य १ रुपया है। प्रसाद अङ्क के के लिये हमारे यहाँ से प्रकाशित 'प्रसाद जी की कला' नामक पुस्तक मँगायें। जो सज्जन इन विशेषाङ्कों की इच्छा रखते हैं, एक रुपया प्रति अङ्क मनीआर्डर द्वारा भेजकर अपनी इच्छित प्रति मँगालें, रजिस्ट्री से मँगाने के लिये ।=) अतिरिक्त भेजें।

❀ विद्वान सम्पादकों की सम्मतियाँ ❀

भारतेन्दु अङ्क—इस अङ्क में भारतेन्दु जी के जीवन, साहित्य, कला, भाव आदि विविध पक्षों पर जो प्रकाश विद्वान लेखकों द्वारा डाला गया है वह भारतेन्दु जी का अध्ययन करने वालों के लिये पठनीय ही नहीं है अपितु हिन्दी संसार के लिये एक अमूल्य वस्तु है।

—सम्पादक 'वीणा', इन्दौर।

आलोचनाङ्क—आलोचना-शास्त्र के नूतन और विकसित रूप की समीक्षा इस अङ्क में अनेकों साहित्य-मनीषियों ने की है। हिन्दी आलोचना के साथ ही साथ अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती और मराठी के आलोचना-शास्त्र पर भी अधिकारी लेखकों ने प्रकाश डाला है। सर्व श्री डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, एस० टी० नरसिंह चारी, डॉ० भोलाशङ्कर व्यास, प्रकाशचन्द्र गुप्त, गुलाबराय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नन्द दुलारे वाजपेयी आदि विद्वानों के लेख महत्वपूर्ण और गवेषणात्मक हैं।

छात्रों के लिये अङ्क अत्यन्त उपयोगी और संग्रहणीय है। —सम्पादक 'लोकसेवक'

कहानी अङ्क—इस विशेषाङ्क में 'कहानी' के उद्गम (भूत) से लेकर उसके भविष्यत् की चर्चा की है। गण्यमान्य विद्वानों द्वारा कहानी के शिल्प और कलात्मक विकास पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। अङ्क हिन्दी कहानी को भारतीय कहानी के परिपार्श्व में रख देखने का, उसके मूल्याङ्कन का व्यापक एवं अभिनव प्रयास है। कहानी-कला, हिन्दी कहानी और कहानीकार, उसमें विकास आदि के सम्बन्ध में इतनी सामग्री इस अङ्क में एकत्रित की गई है जो अनेक पुस्तकों में सरलता से प्राप्त नहीं है। अङ्क पठनीय तथा स्थायी महत्त्व से पूर्ण है।

—सम्पादक 'वीणा'।

पता—साहित्य सन्देश कार्यालय, साहित्य-कुञ्ज, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. A.263. SEPTEMBER 1955. LICENSE No. 16
Sahitya Sandesh, Agra. Licensed to post without Prepayment.

अधिक कमीशन के लोभ में न पड़कर

अच्छी पुस्तकें खरीदनी चाहिए

कुछ जानने योग्य बातें

१—अच्छे और ख्याति प्राप्त लेखकों की पुस्तकें खरीदी जायँ।

२—पुस्तकें वही खरीदी जायँ जिनमें कीमत अधिक न छपी हो।

३—स्कूल, कालिजों में उन विषयों की जनरल पुस्तकें अधिक रक्खी जायँ जिनसे वहाँ के विद्यार्थी भी अपनी योग्यता बढ़ा सकें।

यह सभी बातें आपको हमारे भण्डार में मिलेंगी। हमारे यहाँ सभी नई से नई हर विषय की प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें आपको मिलेंगी। इस वर्ष अभी से कालेजों में पुस्तकों की खरीद प्रारम्भ हो गई है। हमारे यहाँ अब तक कितने ही आर्डर आ चुके हैं और सबको हम एक सप्ताह के अन्दर ही सब पुस्तकें भेज देते हैं।

आप हिन्दी पुस्तकों का वृहद् सूची-पत्र हमसे मुफ्त मँगायें।

साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

हिन्दी अध्यक्षों तथा लाइब्रेरियनों से हमारा निवेदन

हम जब अपना विज्ञापन कालिजों के प्रिन्सीपलों के नाम भेजते हैं तो वह हिन्दी अध्यक्षों तथा लाइब्रेरियनों के पास नहीं पहुँच पाता। अतः हम चाहते हैं कि वे अपना निजी मकान का पता हमारे पास भेजने की कृपा करें जिससे हम उनके मकानों पर भी अपना विज्ञापन भेज सकें।

साहित्य-रत्न-भंडार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश

सम्पादक
गुलाबराय एम० ए०
सत्येन्द्र एम० ए०, पी-एच० डी०
महेन्द्र

प्रकाशक
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

मुद्रक
साहित्य-प्रेस, आगरा।

वर्ष १७ | अङ्क ६

[वार्षिक मूल्य ४)] आगरा—दिसम्बर १९५५ [विशेष संस्करण ५

इस अङ्क के लेख

हमारी विचार-धारा	सम्पादक
आचार्य शुक्ल और साधारणीकरण	श्री कुमार विमल एम० ए०
साहित्य का चिर-साध्य क्या ?	श्री शिवप्रसाद लोहानी
महाकवि सूरदास की सम्बन्ध-भावना	प्रो० पंकज एम० ए०, साहित्यालङ्कार
विद्यापति की भक्ति-भावना	श्री राधेश्याम 'बंका' एम० ए०
कवित्त-रत्नाकर में ऋतु-वर्णन	श्री राजेन्द्रमोहन 'नलिन' आचार्य, साहित्य-रत्न
हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास	श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन' एम० ए०, साहित्य-रत्न
इतिहासों से उपेक्षित—व्रजभाषा का गद्य-साहित्य	श्री गंगाप्रसाद कमठान
द्विवेदी युग में प्रसादजी की भूमिका	श्री सौमित्र एम० ए०, साहित्य-रत्न
मैं नाटक कैसे लिखता हूँ ?	श्री विष्णु-प्रभाकर
साहित्य-परिचय	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-सन्देश के नियम

१. साहित्य-सन्देश प्रत्येक माह की १ तारीख को निकलता है।
२. साहित्य-सन्देश के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं, पर जुलाई और जनवरी से ग्राहक बनना सुविधाजनक है। नया वर्ष जुलाई से प्रारम्भ होता है। किसी भी महीने से ग्राहक बनने पर पूरे १२ अङ्क मिलेंगे।
३. महीने की २० तारीख तक साहित्य-सन्देश न मिलने पर १५ दिन के अन्दर इसकी सूचना पोस्टआफिस के उत्तर सहित भेजनी चाहिये, अन्यथा दुबारा प्रति नहीं भेजी जा सकेगी।
४. किसी तरह का पत्र-व्यवहार जवाबी कार्ड पर मय अपने पूरे पते तथा ग्राहक संख्या के होना चाहिए। बिना ग्राहक संख्या के सन्तोषजनक उत्तर देना सम्भव नहीं है।
५. फुटकर अङ्क मँगाने पर चालू वर्ष की प्रति का मूल्य छः आना और इससे पहले का ।।) होगा।
६ साहित्य-सन्देश में कविता, कहानी आदि नहीं छपते। केवल आलोचना विषयक लेख ही छापे जाते हैं। अस्वीकृत लेख वापिस कर दिए जाते हैं।
७. साहित्य-सन्देश में प्रकाशित लेखों पर प्रकाशक का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दी का नया प्रकाशन नवम्बर १९५५

आलोचना

सन्त कबीर दर्शन—राजेन्द्रसिंह गौड़ २)
कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा—शिवप्रसादसिंह ५)
सुमित्रानन्दन पन्त और उत्तरा—
तारकनाथ बाली एम० ए० ३)
हिन्दी कवियों की काव्य भावना—
प्रो० सुरेशचन्द्र एम० ए० ३)
कला क्या है—अनु० इन्दुकान्त शुक्ल ।।।≡)।।
लोक-जीवन और साहित्य—
डा० रामविलास शर्मा ३।।)
प्रेमचन्द और कर्म भूमि—राम वशिष्ठ एम. ए. २।।)
कबीर—राजनाथ शर्मा एम० ए० २।।)

कविता

गीत गुञ्ज—निराला ।।।≡)।।

कहानी

जिन खोजा तिन पाइयाँ—गोपीनाथ ३।।)
चाँद और टूटे हुये लोग—धर्मेन्द्र भारती ३)
प्राणों की बाजी—प्रो० विराज २।।)
भारतीय संस्कृति की कहानी—
भगवतशरण उपाध्याय १।)
भारतीय मूर्तिकला की कहानी—,, ,, १।)
मानो न मानो—धर्मपाल शास्त्री १।)
बुन्देल खण्ड की लोक कथाएँ—श्रीकान्त व्यास १)

उपन्यास

सेवा और त्याग—गुलाबरत्न वाजपेयी ३)
काठ का उल्लू और कबूतर—केशवचन्द्र वर्मा ४)
छाभा—प्रभाकर माचवे २)
निर्यातन—भगवती प्रसाद वाजपेयी २)
विश्वमित्रा—धर्मेन्द्र २।।)
मादाम बोवैरी—गुस्ताव फ्लोवर ३)
अँधेरे की भूख—डा० रांगेय राघव ३)
जीवनदान—कुँवरानी तारादेवी ५)
जहाज का इलाचन्द्र जोशी ७)

नाटक

सृष्टि और सांझ—सिद्धनाथकुमार ४।।)

निबन्ध

मेरे निबन्ध-(जीवन और जगत)-गुलाबराय ५)
भावना और समीक्षा—ओमप्रकाश एम. ए. ४)

कोश

अवधी कोश—रामाज्ञ द्विवेदी ७।।)

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य सन्देश के ग्राहकों से नम्र निवेदन

साहित्य सन्देश के वर्ष के अनुसार जुलाई से जून तक ग्राहक बनते हैं लेकिन स्कूल कालेज आदि संस्थाएँ तथा अन्य कुछ ग्राहक अँग्रेजी वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक भी ग्राहक बनते हैं, अतः इस दिसम्बर के साहित्य सन्देश के अङ्क के साथ हमारे कई हजार ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है। उन सभी ग्राहकों से जिनको शुल्क समाप्ति की सूचना इस अङ्क में भेजी जा रही है, हमारा नम्र निवेदन है कि **वे अपना शुल्क अंक मिलते ही अपनी ग्राहक संख्या का विवरण देते हुए मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें।** जिससे अगला अङ्क यथासमय मिल जाये। यदि वे किसी कारणवश ग्राहक न रहना चाहें तो उसकी सूचना ग्राहक संख्या का विवरण देते हुए तुरन्त भेज दें। शुल्क या सूचना न मिलने पर अगला जनवरी सन् ५६ का अङ्क उनकी सेवा में वार्षिक शुल्क सहित ४।≡) की वी. पी. से भेजा जायगा।

इस वर्ष साहित्य सन्देश को प्रत्येक दृष्टि से उन्नत करने का प्रयत्न हमने किया है। अङ्क न मिलने की शिकायतों को हमने बहुत काफी अंशों में दूर कर दिया है भविष्य में इस ओर और भी ध्यान देने का प्रबन्ध हमने किया है और हम आशा करते हैं कि आगे ऐसी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी। हमारा विश्वास है कि हमारे पाठकों को भी इस विषय में सन्तोष होगा और वे प्रसन्नता पूर्वक हमें अपना पूर्ण सहयोग देते रहने की कृपा करेंगे।

मनीआर्डर भेजने में लाभ

हम चाहते हैं कि सभी ग्राहक अपना मूल्य मनीआर्डर से भेजें। शुल्क मनीआर्डर से भेजने में उन्हें दो लाभ होंगे। प्रथम तो उन्हें जनवरी का अङ्क प्रकाशित होते ही मिल जायगा, क्योंकि इस मास में अधिक संख्या में वी॰ पी॰ जाने के कारण कार्यालय में अधिक कार्य बढ़ जाता है। ऐसी दशा में अङ्क उस माह के अन्त में मिल पायेगा। दूसरे वी॰ पी॰ में रजिस्ट्री तथा वी॰ पी॰ फीस के ।≡) और अधिक देने होंगे। अतः **श्रेयस्कर यही होगा कि आप शुल्क मनीआर्डर द्वारा ग्राहक संख्या लिखते हुए भेजें।**

कागज में सुधार—साहित्य सन्देश अब तक न्यूज-प्रिन्ट पर छपता था। जब से कागज के दाम बढ़े तभी से हमारे कृपालु ग्राहकों ने हमसे बराबर यह आग्रह किया कि हम इसका वार्षिक शुल्क बढ़ायें, पर साहित्य सन्देश के पाठकों में गरीब विद्यार्थियों का ध्यान रखकर हमने अब तक इसके शुल्क में कोई वृद्धि नहीं की और जहाँ तक हो सकेगा हम उनके लिये कोई वृद्धि नहीं करेंगे। हाँ हमारे बहुत से ग्राहकों का यह आग्रह भी था कि अङ्क सफेद कागज पर बढ़िया निकले। उनके इस आग्रह पर हम साहित्य सन्देश का एक विशेष संस्करण बढ़िया सफेद कागज पर और निकालते हैं जिसका वार्षिक मूल्य केवल ५) रक्खा है। इसमें अङ्क ग्राहकों को सफेद व बढ़िया कागज पर छपा हुआ मिलेगा। सफेद कागज पर छपाई भी सुन्दर मालूम होगी। हमारा निवेदन है कि आप यदि ४) के स्थान पर विशेष संस्करण के लिये ५) का मनीआर्डर भेज दें तो आपको भविष्य में अङ्क बढ़िया कागज पर छपा हुआ मिलेगा। आपकी इस कृपा से हम आपके साहित्य सन्देश को और उन्नत बनाने में सफल हो सकेंगे।

आशा है कि हमारे प्रेमी ग्राहक हमारे निवेदन पर ध्यान देंगे और अङ्क मिलते ही विशेष संस्करण का शुल्क ५) अथवा साधारण संस्करण का शुल्क ४) मनीआर्डर से भेजने की कृपा करेंगे।

सञ्चालक—साहित्य सन्देश कार्यालय, साहित्य कुञ्ज, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना प्रधान साहित्य-सन्देश

के

पिछले तीन विशेषांक

साहित्य-सन्देश के १७ वें वर्ष का अन्तः प्रान्तीय नाटक विशेषाङ्क हम १ अगस्त को निकाल चुके हैं। प्रत्येक वर्ष हम साहित्य सन्देश का एक विषय लेकर ऐसा विशेषाङ्क निकालते हैं जिसकी ख्याति सारे हिन्दी संसार में बनी रहती है। पिछले सभी विशेषाङ्कों में हिन्दी के विद्यार्थियों और साहित्य प्रेमियों की रुचि के अनुसार ठोस और उपादेय सामग्री रक्खी गई जिनकी बड़ी माँग रही और अभी तक बनी है। इस समय हमारे पास पिछले अनेक विशेषाङ्कों में से केवल तीन विशेषाङ्क 'भारतेन्दु अङ्क', 'आलोचनाङ्क' तथा 'कहानी अङ्क' की कुछ प्रतियाँ बची हैं जिनका प्रत्येक का मूल्य १ रुपया है। प्रसाद अङ्क के के लिये हमारे यहाँ से प्रकाशित 'प्रसाद जी की कला' नामक पुस्तक मँगायें। जो सज्जन इन विशेषाङ्कों की इच्छा रखते हैं, एक रुपया प्रति अङ्क मनीआर्डर द्वारा भेजकर अपनी इच्छित प्रति मँगालें, रजिस्ट्री से मँगाने के लिये ।=) अतिरिक्त भेजें।

❀ विद्वान सम्पादकों की सम्मतियाँ ❀

भारतेन्दु अङ्क—इस अङ्क में भारतेन्दु जी के जीवन, साहित्य, कला, भाव आदि विविध पक्षों पर जो प्रकाश विद्वान लेखकों द्वारा डाला गया है वह भारतेन्दु जी का अध्ययन करने वालों के लिये पठनीय ही नहीं है अपितु हिन्दी संसार के लिये एक अमूल्य वस्तु है।

—सम्पादक 'वीणा', इन्दौर।

आलोचनाङ्क—आलोचना-शास्त्र के नूतन और विकसित रूप की समीक्षा इस अङ्क में अनेकों साहित्य-मनीषियों ने की है। हिन्दी आलोचना के साथ ही साथ अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती और मराठी के आलोचना-शास्त्र पर भी अधिकारी लेखकों ने प्रकाश डाला है। सर्व श्री डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, एस० टी० नरसिंह चारी, डॉ० भोलाशङ्कर व्यास, प्रकाशचन्द्र गुप्त, गुलाबराय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नन्द दुलारे वाजपेयी आदि विद्वानों के लेख महत्त्वपूर्ण और गवेषणात्मक हैं।

छात्रों के लिये अङ्क अत्यन्त उपयोगी और संग्रहणीय है। —सम्पादक 'लोकसेवक'

कहानी अङ्क—इस विशेषाङ्क में 'कहानी' के उद्गम (भूत) से लेकर उसके भविष्यत् की चर्चा की है। गण्यमान्य विद्वानों द्वारा कहानी के शिल्प और कलात्मक विकास पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। अङ्क हिन्दी कहानी को भारतीय कहानी के परिपार्श्व में रख देखने का, उसके मूल्याङ्कन का व्यापक एवं अभिनव प्रयास है। कहानी-कला, हिन्दी कहानी और कहानीकार, उसके विकास आदि के सम्बन्ध में इतनी सामग्री इस अङ्क में एकत्रित की गई है जो अनेक पुस्तको में सरलता से प्राप्त नहीं है। अङ्क पठनीय तथा स्थायी महत्त्व से पूर्ण है।

—सम्पादक 'वीणा'।

पता—**साहित्य सन्देश कार्यालय**, साहित्य-कुञ्ज, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १७] आगरा—दिसम्बर १९५५ [अङ्क ६

हमारी विचार-धारा

हिन्दी अध्यापक का उत्तरदायित्व—

अध्यापन का अर्थ केवल शब्दार्थ बतलाना या शब्दों में निहित विचार-धारा का उद्घाटन करना मात्र नहीं है । प्रत्येक लेखक या कवि के पीछे एक सांस्कृतिक परम्परा होती है, उसका समझ लेना और समझाना भी अध्यापक के लिए आवश्यक होता है । इस सांस्कृतिक परम्परा के ज्ञान के लिए केवल प्राचीन साहित्य और किंवदन्तियों और जनुश्रुतियों का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है वरन् राजनीति, इतिहास आदि का ज्ञान भी अपेक्षित है । प्रसादजी के नाटकों के समझने के लिए बौद्धकालीन भारत की राजनीति का ही ज्ञान नहीं वरन् भूगोल का ज्ञान भी वाञ्छनीय है । पात्रों का कार्य-कलाप उन राजनीतिक परिस्थितियों के सम्यक ज्ञान होने पर ही ठीक समझ में आ सकता है । इसी प्रकार वीर गाथा-काल के लिए राजपूत इतिहास और भूषण के लिए मुगल और मरहठा इतिहास के ज्ञान की आवश्यकता है । साहित्य के साथ भाषा का भी वैज्ञानिक ज्ञान वाञ्छनीय है । काव्य के रूपों और छन्दों के विधिवत ज्ञान के लिए प्राकृत और अपभ्रंश में उनके स्रोतों का ज्ञान आवश्यक होगा । काव्य-सौष्ठव का पूरा आस्वाद लेने के लिए साहित्य-शास्त्र का ज्ञान अनिवार्य है ।

प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए वन, पर्वत, नदियों आदि का ज्ञान और फूल और पौधों की पहचान आवश्यक है । पीली चम्पा कितने अध्यापकों ने देखी होगी ? लवङ्गलता और बन्धूक से कितने अध्यापक परिचित होंगे ? कर्णिकार कौन से वृक्ष का नाम है ? ऐसे ही पशु-पक्षियों का ज्ञान भी आवश्यक है । बहुत से लोगों ने शायद खञ्जन की चपलता को भी न देखा होगा । कवि समयों के वैज्ञानिक पहलू का भी अध्ययन होना स्पृहणीय है । ब्रज साहित्य पढ़ाने वाले कितने अध्यापक ब्रज की परम्पराओं, रीति रिवाजों, वैष्णव मान्यताओं और स्थानीय भूगोल से परिचित होंगे । (इस अज्ञान में इन पंक्तियों के लेखक भी शामिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।) भाषाओं के अध्ययन के पीछे-पीछे विज्ञान आदि का चलता ज्ञान जरूरी है।

हिन्दी का अध्यापन उतना सहज नहीं है जितना कि समझा जाता है। इसमें दूसरे ज्ञान-विज्ञानों की सहायता चाहिए। अर्थ बतला देना यद्यपि परम आवश्यक है तथापि उतने मात्र से अध्यापक के कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। हिन्दी का मान बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने विद्यार्थियों को ठोस और संश्लिष्ट ज्ञान दें।

वर्तमान हिन्दी साहित्य का पर्यवेक्षण—

हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा है। उसमें निहित ज्ञान-निधि सबको उपलब्ध हो सके और उसका समुचित उपयोग हो सके, इसके लिए यह परम आवश्यक है कि उसके वर्तमान साहित्य का एक पर्यवेक्षण कर लिया जाय। बहुत सा साहित्य प्रकाशित होता है किन्तु पढ़ने वालों के अभाव के कारण उसका प्रचार नहीं हो पाता। प्रयाग की विज्ञान परिषद की बहुत सी पुस्तकों का ऐसा ही हाल हुआ। अब जब देश में उन पुस्तकों की माँग हुई तब वे लोगों की निगाह से ओझल हो चुकी हैं। एक बार पर्यवेक्षण हो जाने से ठीक स्थिति ज्ञात हो जायगी कि हमको किस प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता है। फिर उसकी पूर्ति का योजनाबद्ध प्रयत्न हो सकता है।

सरकार की ओर से इस दिशा में दो प्रयत्न चल रहे हैं। एक तो साहित्य अकादमी ने एक विषय-सूची प्रकाशित की है और उनसे सम्बन्धित पुस्तकों की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है। कुछ विद्वानों के पास ऐसी सूची आई है। इसमें प्रायः सभी प्रमुख विषय आगये हैं। बिना इस बात के विचार किये कि किन-किन के पास यह सूची भेजी गई है और किन के पास नहीं, इस महान कार्य में जनता का सहयोग अपेक्षित है। जिस किसी को जिन-जिन विषयों की जिन पुस्तकों की जानकारी हो वह अपनी जानकारी से पुस्तकों की सूची बना कर साहित्य अकादमी दिल्ली के पास भेजें। यह राष्ट्रीय कार्य है।

शिक्षा-मन्त्रालय मार्च में वैज्ञानिक पुस्तकों की एक प्रदर्शिनी कर रहा है। उसको भी पुस्तकों की जानकारी की जरूरत है। जनता और विज्ञान-परिषद के अनुभवी सज्जन अयाचित होने पर भी इस शुभ कार्य में योग दें। प्रकाशक लोग पुस्तकें नहीं तो नाम और विवरण अवश्य भेजें जिससे यह प्रदर्शिनी सफल होसके।

हिन्दी के आधुनिक साहित्य के प्रति भ्रम--

हिन्दी भाषा के मध्यकालीन काव्य की प्रशंसा प्रायः सभी करते हैं और उसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। परन्तु हिन्दी के आधुनिक काव्य, कथा-साहित्य आदि के विषय में आज तक बहुत से विद्वानों तथा साधारण पाठकों में महत्त्व के भ्रम हैं। उस दिन एक बङ्गाली सज्जन ने चुनौती दी कि हिन्दी में इधर जो रचनात्मक साहित्य लिखा जा रहा है उससे हिन्दी साहित्य में वृद्धि तो अवश्य हुई है (वृद्धि भी उन्होंने शायद इसलिए स्वीकार करली क्योंकि उक्त महाशय साहित्य-रत्न-भण्डार में बैठे हुए थे और वहाँ हिन्दी पुस्तकों का विशाल संग्रह देखकर प्रभावित होगए थे) परन्तु मौलिक योगदान नहीं के बराबर हुआ है। उदाहरण के लिए कविता के क्षेत्र को लीजिए। तुलसी, सूर को छोड़कर हिन्दी में और किस कवि के पद लीजेण्ड (legend) बन सके हैं। व्याख्यानों, लेखों तथा सामान्य व्यवहार में प्राचीन कवियों की उक्तियाँ ही उद्धृत की जाती हैं, नवीन कवियों की उक्तियाँ सूक्तियाँ नहीं बन सकीं। बङ्गाली महाशय की बात सुनकर हम चकित रह गए। हमने उनकी चुनौती स्वीकार कर निवेदन किया कि हम प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, बच्चन, गुप्तजी आदि की कुछ उक्तियाँ आपके सम्मुख रखते हैं, शायद आप को पसन्द आजाएँ परन्तु वह महाशय सुनने तक को भी तैयार नहीं थे। प्रश्न उठता है कि अब भी ऐसे भ्रम क्यों चल रहे हैं। आत्म-निरीक्षण के पश्चात् हमने समझा कि ऐसे भ्रमों का प्रसार कभी-कभी तो जान-बूझ कर हिन्दी को बदनाम करने के लिए किया जाता है। ऐसे लोग पूर्वाग्रहों पर चलते हैं और आधुनिक काव्य तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-साहित्य का अध्ययन कर उसका मूल्याङ्कन करने का कष्ट नहीं उठाना चाहते। भ्रम के दो मुख्य कारण हैं अज्ञान व पक्षपात। दूसरी बात हिन्दी के मनीषी आलोचकों से सम्बन्ध रखती है। डा० देवराज जैसे विचारक, जो दर्शन व साहित्य दोनों क्षेत्रों के अनुशीलन कर्ता हैं, कामायनी कृति को बहुत महत्त्व नहीं देते। वह प्रायः 'आलोचना' में हिन्दी के आलोचकों को कामायनी के सम्बन्ध में अपना मत बदलने के लिये दावत देते रहते हैं। क्यों ? शायद सर्वसम्मत मत के विरुद्ध जाकर अपनी वैयक्तिक विशिष्टता की स्थापना के लिये वे ऐसा करते हैं और ऐसे ही विचारकों को हिन्दी विरोधी अपने पक्ष-समर्थन के लिये उद्धृत करते हैं।

हिन्दी में गतिरोध—

इसी प्रकार कुछ निराशावादी विचारकों को चारों ओर गतिरोध ही गतिरोध दृष्टिगोचर होता है। हमें अपनी अपूर्णताओं के प्रति जागरूक अवश्य होना चाहिये। हमें बताना चाहिये कि हिन्दी में किन-किन क्षेत्रों में अभी कार्य होना है। किस मात्रा में, किस गति से हम आगे बढ़े हैं या पीछे हटे हैं। परन्तु प्रेमचन्द के बाद कोई उपन्यासकार नहीं दिखाई पड़ता, सीनियर छायावादी कवियों के बाद के काव्य-क्षेत्र के प्रयत्न बचकाने हैं। नाटककार तो खैर कोई है ही नहीं, निबन्ध लिखे ही बहुत कम गये हैं, कथा-क्षेत्र में प्रयोग अधिक हो रहे हैं, उपलब्धि व परिपक्वता का पूर्ण अभाव है, आलोचना के क्षेत्र में कोरी धाँधली चल रही है; अतः चारों ओर गतिरोध दिखाई पड़ रहा है ......।

निराशावादियों के ऐसे विचारों के कारण भी आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध में भ्रमों का पोषण होता रहता है। प्रश्न यह है कि क्या हिन्दी में सचमुच गतिरोध है ? हमारा नम्र निवेदन है कि ऐसी बात नहीं है। कथा-साहित्य में प्रेमचन्द के बाद सामाजिक, मनोवैज्ञानिक व ऐतिहासिक उपन्यास-कला में उन्नति हुई है। सीनियर कवियों के बाद, प्रयोगवादियों को छोड़ दीजिये, नई पीढ़ी की नई कविता को पढ़कर निराशा का कोई कारण नहीं रह जाता। और डा० नगेन्द्र के अनुसार आलोचना के क्षेत्र में तो सबसे अधिक कार्य हुआ है। अतः गतिरोधवादियों की दृष्टि भ्रान्त है। तथ्य को अपनी कल्पना के अनुसार देखने से ऐसी भ्रान्तियाँ प्रायः होती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि हमें आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी देनी चाहिये। निराशावादी दृष्टिकोण की जगह रचनात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिये तथा अन्य लोगों को आधुनिक युग के विरुद्ध बोलने के पहले खूब सोचना समझना चाहिये।

तुलनात्मक अनुशीलन की आवश्यकता—

ऊपर जिस भ्रम के सम्बन्ध में कहा गया है उसके निवारण के लिए हिन्दी के कवियों तथा लेखकों का अन्य भाषाओं के कवियों व लेखकों के साथ तुलनात्मक अनुशीलन अति आवश्यक है। साहित्य सन्देश, देवनागर तथा दक्षिण की कुछ पत्रिकाओं ने कुछ ऐसा प्रयत्न किया है। अन्य पत्रिकाओं में अन्य भाषाओं की अनूदित रचनाएँ छपती रहती हैं परन्तु इस परिचयात्मक कार्य के साथ-साथ गम्भीर अनुशीलन की आवश्यकता है। साथ ही रचनात्मक साहित्य के साथ-साथ अन्य प्रकार के साहित्य का भी तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए। अन्य प्रान्तीय भाषाओं के कुछ विद्वान शोध के लिए तुलनात्मक विषय चुन रहे हैं, उन्हें इस बात की सुविधा है कि वे अपनी प्रान्तीय भाषा व हिन्दी दोनों से परिचित हैं, परन्तु हिन्दी के विद्वान् तमिल, तेलुगू, कन्नड़, आदि से अपरिचित हैं। अब समय आगया है कि न केवल भ्रम-निवारण के लिए अपितु अपने साहित्य के लिए भी हम प्रान्तीय भाषाओं में से किसी एक का अभ्यास करें और तुलनात्मक अनुशीलन को अपना ध्येय बनालें। आज समय की यही माँग है। इसके लिए जहाँ जहाँ हिन्दी की उत्तम शिक्षा दी जा रही है वहाँ एक प्रान्तीय भाषा का ज्ञान अनिवार्य विषय होना चाहिए। एम० ए० के लिए यह प्रबन्ध होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दिशा में आगरा विश्वविद्यालय ने 'हिन्दी-इन्स्टीट्यूट'' की स्थापना कर उचित पथ-प्रदर्शन किया है। इस प्रकार की संस्थाएँ सभी विश्वविद्यालयों में स्थापित होनी चाहिए। तभी देश की साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्नति हो सकेगी। तब न कोई हिन्दी के नेता यह कह सकेंगे कि हिन्दी में सर्व श्रेष्ठ साहित्य नहीं है और न कोई अन्य प्रान्त का व्यक्ति यह कह सकेगा कि हिन्दी में आधुनिक युग में ऐसा कोई कवि नहीं जिसकी उक्तियाँ कहावतें बन गई हों।

भ्रम और गतिरोध सम्बन्धी उक्त भावना को दूर करने और तुलनात्मक अनुशीलन करने वाले साहित्य की आज आवश्यकता है। हिन्दी के मासिक पत्रों को यह काम अपने हाथ में लेना चाहिए। साहित्य-सन्देश इसके लिए तैयार है। हमारे सुधी लेखक ऐसे लेख भेजेंगे तो हम उन्हें साहित्य-सन्देश में पहले स्थान देंगे। हम इसके लिए उनका सहर्ष स्वागत करते हैं।

हिन्दी की लिपि—

समाचार पत्रों से विदित हुआ है कि भारत सरकार ने हिन्दी टाइप राइटर का 'की बोर्ड' अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया है और उसका आधार वह निर्णय है जो लखनऊ में हुए लिपि सम्मेलन में हुआ था। सम्भवतः पाठकों को विदित होगा कि उस निर्णय के अनुसार ह्रस्व 'इ' का रूप दीर्घ 'ई' के रूप में ही थोड़ा अन्तर कर के होगा। दीर्घ 'ई' का रूप तो ऐसा (ी) ही रहेगा, ह्रस्व 'इ' का रूप (ि) हो जायगा। अन्तर इतना थोड़ा है और इतना अव्यवहारिक है कि समग्र हिन्दी जनता की ओर से उसका विरोध हो रहा है। ह्रस्व 'इ' को लिखकर पढ़ने में उतनी ही दिक्कतें होंगीं जितनी उर्दू लिपि में होती हैं। और सच बात तो यह है कि ठीक आधे पर हाथ का रुकना कठिन होगा। अतः उसके लिखने और पढ़ने दोनों में ही कठिनाई हो जायगी। सरकार का यह कर्तव्य था कि उस निर्णय के बाद उसकी प्रतिक्रिया को देख कर और जनमत को लेकर ही यह अन्तिम निर्णय करती। किन्तु ऐसा न करके निर्णय जल्दी में किया जायगा तो उसमें बड़ी हानि होगी। अब तक प्रकाशित जनमत से यह स्पष्ट विदित होता है कि अन्य संशोधनों को स्वीकार करते हुए भी 'इ' का संशोधित रूप अधिकांश जनता को स्वीकार नहीं है। ऐसी दशा में हम यह चाहते हैं कि सरकार एक बार फिर इस विषय पर विचार कर अपनी उदारता का परिचय दे।

राष्ट्र के एकीकरण का शक्ति-स्रोत—

केन्द्रीय सरकार के व्यापार मन्त्री माननीय श्री करमरकर ने अभी एक हिन्दी सभा का सभापतित्व करते हुये दिल्ली में यह भाषण दिया था कि भारतीय राष्ट्र को एक करने के लिए हिन्दी एक बड़ा भारी शक्ति-स्रोत है, और चूँकि अब उसे राष्ट्रभाषा भी मान लिया गया है—इसलिए प्रत्येक भारतवासी को हिन्दी जानना आवश्यक है।

श्री करमरकर के यह शब्द बड़े ही महत्त्व के हैं। हिन्दी भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतीक और राष्ट्र को एक करने के लिए एक बड़ी भारी शक्ति है—यह बात और भी अनेक विद्वानों और राष्ट्रीय नेताओं ने कही है और यदि देखा जाय तो यह बात बहुत ही ठीक है। सूर, तुलसी, कबीर और मीरा तथा अनेक और सन्तों ने हिन्दी में जो रचनाएँ की हैं विशेष रूप से जो पद रचे हैं उनका प्रचार ध्रुव दक्षिण तक तथा गुजरात से बंगाल तक फैला हुआ है। सौराष्ट्र, बंगाल और मदरास तक जहाँ हिन्दी को लोग ज्यादा नहीं जानते थे, हजारों ऐसे लोग मिलेंगे जो इन सन्तों के पदों को बड़ी रुचि से गाते हैं। इन पदों ने भारतीय संस्कृति की रक्षा की है, उसे एक कोने से दूसरे कोने तक फैलाया है और उसे एक राष्ट्र बनाने में सहायता दी है। भविष्य में भी हिन्दी राष्ट्र को बनाये रखने में बड़ी सहायक होगी—इसीलिए भारत के प्रतिनिधियों ने उसे राष्ट्रभाषा माना है। ऐसी दशा में प्रत्येक भारतीय का यह पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हिन्दी सीखने का प्रयत्न करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य शुक्ल और साधारणीकरण

श्री कुमार विमल एम० ए०

साधारणीकरण हमारे साहित्य-शास्त्र का, विशेष-कर रसवादी सम्प्रदाय का, प्रमुख और असमाख्येय विषय रहा है। नाट्य-शास्त्र के आदि-प्रणेता भरत मुनि की इस स्थापना—विभानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः—की अपने-अपने मत के अनुसार व्याख्या करने वाले लगभग ग्यारह आचार्य हो चुके हैं, जिनमें लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त विशेष गौरव के अधिकारी हैं। इन्हीं रसवादियों की आधुनिक परम्परा में शुक्लजी आते हैं, जिन्होंने ऐकमत्य से रहित इस अव्याख्येय तत्त्व को कुछ सरल ढङ्ग से उपस्थित किया है।

शुक्लजी की स्थापना के विश्लेषण के पूर्व यह समुचित होगा कि हम संक्षेप में उपर्युक्त चारों आचार्यों के मत को समझ लें, ताकि प्रस्तुत विषय का सतर्क विश्लेषण-मूल्याङ्कन हो सके।

भरत की 'रसनिष्पत्ति' के सर्वप्रथम व्याख्याता भट्ट लोल्लट थे। इन्होंने अपनी 'मीमांसा-निगडित दृष्टि' से 'निष्पत्ति' का अर्थ उत्पत्ति माना और कार्य-कारण-भाव के अनुसार रस की मूलस्थिति अनुकार्यों में मानी। अर्थात्, इसका वास्तविक आस्वादन नायक-नायिका करते हैं और उनकी वर्णिका में उपस्थित नट-नटी के माध्यम से, उनके रस की प्रतीति करने के बाद सामाजिकों के हृदय में उत्पन्न होता है। इस प्रकार सामाजिक नट-नटी में नायक-नायिका का आरोप कर नाटक का आनन्द लेता है। सारांश यह कि सामाजिक रसास्वादन प्रतीतिजन्य और अपरागत है, जबकि नायक-नायका की रस-दशा वास्तविक है। यदि लोल्लट की यह व्याख्या स्वीकार करली जाय कि रस की 'उत्पत्ति' होती है, तब सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि नायक-नायिका में 'उत्पन्न' होकर वह रस दर्शन में किस प्रकार संक्रमित होता है।

तदुपरान्त दूसरे व्याख्याता थे नैयायिक शंकुक, जिन्होंने गम्य-गम्यक-भाव से रस-निष्पत्ति मानकर अनुमितिवाद चलाया। इनके अनुसार त्रिभावाद के संयोग से स्थायी भाव का अनुमान किया जाता है। यद्यपि अनुमान का आधार कृत्रिम होता है, तथापि नट की कला के कौशल से पूर्वानुभव के संस्कारों से युक्त सामाजिकों के मन में वह स्थायी भाव का अनुमान ही रस बन जाता है। शंकुक की अनुकरण और अनुमान सम्बन्धी दोनों मान्यताएँ सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं हैं। अभिनेता के लिए अनुकार्य की वेश-भूषा, कार्य-कलाप और अनुभावों का यथाशक्य अनुकरण कर लेना सम्भव है, किन्तु, स्थायीभाव और सहचारी तो सर्वथा अनुकरणातीत हैं। दूसरी आपत्ति यह है कि मिथ्या आधार पर सत्य की प्रतीति नहीं हो सकती। अतः चित्र-तुरङ्ग-न्याय के व्यवहृत माध्यम से रस-दशा की अवितर्कावस्था की प्राप्ति को स्वीकार करना कुज्झटिका-वेग को चलायमान धौतस्तूप मानने से कम भ्रामक नहीं है।

इसके बाद भट्टनायक ने सांख्यवादी दृष्टि के अनुसार भोज्य-भोजक-भाव से भुक्तिवाद की स्थापना की। इन्होंने रस-निष्पत्ति की तीन प्रक्रियाएँ मानी हैं—अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व। अर्थात् (क्रमशः) शब्दार्थ ज्ञान के उपरान्त विभाव एवं रत्यादि स्थायीभाव 'अयं निजः परोवेति' की स्थिति को पारकर 'न ममेति न परस्येति' की निर्विशेषावस्था में पहुँचकर उपभोग-योग्य बन जाते हैं। हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि भट्टनायक ने ही सर्वप्रथम रस को विषयगत अथवा वस्तुगत नहीं मानकर, विषयीगत माना।

अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के इन दो नवीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारों—भावकत्व और भोजकत्व—को अशास्त्रीय मानते हुए रस-निष्पत्ति को चर्वणा अथवा व्यञ्जना के आश्रित माना। इन्होंने निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति और संयोग का अर्थ व्यंग्य-व्यञ्जक-भाव माना। इनके अनुसार रस की निष्पत्ति सामाजिक में होती है, क्योंकि सामाजिकों में ही स्थायीभाव वासना या संस्कार रूप से स्थिर रहते हैं और विभावादि द्वारा व्यंग्य-व्यंजक-भाव से उसी प्रकार अभिव्यक्त हो जाते हैं, जिस प्रकार शीकर-सिंचन से मिट्टी की पिहित गंध। सारांश यह कि अभिनव भट्टनायक के भावकत्व और भोजकत्व को न मान कर व्यञ्जना और ध्वनि की सत्ता को स्वीकार करते हैं और यह मानते हैं कि रस की स्थिति सहृदय की आत्मा में ही है, काव्य उसकी अभिव्यक्ति मात्र कराता है।

इन पूर्वाचार्यों की खण्डन-मण्डनपूर्ण स्थापनाओं के उपरान्त हमें शुक्लजी के साधारणीकरण सम्बन्धी विचारों पर दृष्टिपात करना है। सर्व प्रथम इस सम्बन्ध में हमें यह कहना है कि उल्लिखित पूर्वाचार्यों में प्रत्येक ने इस साहित्य शास्त्रीय प्रश्न पर किसी-न-किसी साहित्येतर दार्शनिक मतवाद का आग्रह लेकर प्रकाश डाला था। किन्तु, शुक्लजी ने साहित्य के मानों को अनाकुञ्चित रखते हुए अपनी वस्तुपरक दृष्टि से इस पर विचार किया। दूसरी बात यह कि यद्यपि इनके काल में साहित्य का गद्य-युग प्रारम्भ हो चुका था, तथापि इन्होंने काव्य को ही दृष्टिगत रखते हुए साधारणीकरण पर अपनी स्थापनाएँ उपस्थित की हैं, हालांकि इनका दृष्टि-विस्तार भरत के नाट्यधर्मी तत्वों एवं वाचिक अभिनय से बहुत आगे निकल चुका था। तीसरी बात यह कि शुक्लजी रस विवेचन में बहुधा प्रचलित 'रस का लोकोत्तरत्व या ब्रह्मानन्द सहोदरत्व' जैसे भ्रामक शब्दों से पूर्णतया सचेत थे। वे इन तथ्य-बोध शून्य, भावव्यञ्जक, स्तुतिपरक शब्दों को समीक्षा-क्षेत्र का अर्थशून्य वागाडम्बर मात्र मानते थे। उन्होंने इसीसे मिलते-जुलते शाब्दिक अपव्यय की भ्रामक प्रवृत्ति के लिए ब्रेडले और डा० मकेल जैसे पाश्चात्य विद्वानों पर भी अपना आक्रोश प्रकट किया है। इस तरह हमारे समक्ष शुक्लजी आडम्बरशून्य, निर्भ्रान्त और वस्तुपरक दृष्टिकोण लेकर समुपस्थित होते हैं। चौथी बात यह कि वे रसात्मकता की एक मध्यम कोटि भी मानते हैं, जो इनकी उपशान्त उद्भावना है और यहाँ की शास्त्र-परम्परा से उसका अव्यवहृत सम्बन्ध नहीं है, अतः उसकी विशेष चर्चा प्रसङ्गान्तर की बात होगी।

शुक्लजी लिखते हैं कि जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सब के उसी भाव का आलम्बन हो सके तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। ....इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ साधारणीकरण कहलाता है। शुक्लजी इसी सन्दर्भ में आगे लिखते हैं—"साधारणीकरण का अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्ति-विशेष या वस्तु-विशेष आती है वह जैसे काव्य में वर्णित आश्रय के भाव का आलम्बन होती है। वैसे ही सब सहृदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलम्बन हो जाती है।....इससे यह सिद्ध हुआ कि साधारणीकरण आलम्बन धर्म का होता है।....तात्पर्य यह कि आलम्बन रूप में प्रतिष्ठित व्यक्ति, समान प्रभाव वाले कुछ धर्मों की प्रतिष्ठा के कारण सबके भावों का आलम्बन हो जाता है।" इस मन्तव्य से स्पष्ट संकेत मिलता है कि शुक्लजी भट्ट नायक के समीप पड़ते हैं, क्योंकि दोनों ही आलम्बन पर बल देते हैं। अन्तर यह है कि आलम्बन के साधारणीकरण की प्रक्रिया में शुक्लजी रसोद्बोधन की शक्ति का ही उल्लेख कर रह जाते हैं और भट्टनायक भावकत्व और भोजकत्व का उल्लेख करते हैं। सो, ध्यानपूर्वक देखा जाय तो शुक्लजी भट्टनायक के भोजकत्व से बहुत दूर नहीं पड़ते। भोजकत्व में तमोगुण और रजोगुण का नाश होकर, जो दुःख और मोह के कारण होते हैं, शुद्ध सतोगुण का उद्रेक होने लगता है और चित्तवृत्तियों के शान्त हो जाने से वही आनन्द का कारण होता है। शुक्लजी भी रसात्मक बोध के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध रूपों का उल्लेख करते हुए कहते हैं—"रस-दशा में अपनी पृथक सत्ता की भावना का परिहार हो जाता है अर्थात् काव्य में प्रस्तुत विषय को हम अपने व्यक्तित्व से सम्बद्ध रूप में नहीं देखते। अपनी योग-क्षेम-वासना की उपाधि से ग्रस्त हृदय द्वारा ग्रहण करते हैं।" स्पष्टतया 'सतोगुण का उद्रेक और शान्त चित्तवृत्ति' (भट्टनायक) तथा 'निर्विशेष शुद्ध और मुक्त हृदय' (शुक्लजी) में कोई तात्त्विक भेद नहीं दीख पड़ता।

दूसरी दृष्टि से यह भी स्पष्ट प्रकट होता है कि शुक्लजी साधारणीकरण में विशेष महत्त्व कारयित्री प्रतिभा को देते हैं, नकि भावयित्री प्रतिभा को; क्योंकि आलम्बन खड़ा करना कवि-कर्म के अन्तर्भूत है। लेकिन शुक्लजी सामाजिक पक्ष की पूर्ण उपेक्षा नहीं करते। जिस प्रकार सामाजिकों में रस की स्थिति मानने वाले आचार्य अभिनवगुप्त काव्य की मिट्टी से रस रूपी गन्ध निकालने के लिए व्यञ्जना रूपी जल के छींटे की आवश्यकता समझते हैं, उसी प्रकार शुक्लजी भी साधारणीकरण के लिए रसोद्बोधन की आवश्यकता महसूस करते हैं। साथ ही सामाजिकों में रस की स्थिति को प्रकारान्तर से स्वीकृति देते हुए वे काव्य के आलम्बन में 'समान प्रभाव वाले कुछ धर्मों की प्रतिष्ठा का उल्लेख करते हैं। निस्सन्देह इस शब्दावली को लिखते समय उनकी दृष्टि में सामाजिकों का पक्ष है, उनकी अभिरुचि और संस्कार-संघात भी।

अब विश्लेषण का दूसरा कोण उपस्थित करते हुए डा० नगेन्द्र लिखते हैं "जिसे हम आलम्बन कहते हैं वह वास्तव में कवि की अनुभूति का संवेद्य रूप है। उसके साधारणीकरण का अर्थ है कवि की अनुभूति का साधारणीकरण, जो भट्टनायक और अभिनव का प्रतिपाद्य है। अतएव निष्कर्ष यह निकला कि साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है, अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति को इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है।"

यहाँ स्पष्टतः दो बातें हमारी दृष्टि में आती हैं। प्रथम यह कि आलम्बन कवि की अनुभूति का संवेद्य रूप है। इस मान्यता को स्वीकार करने के पूर्व हमें भट्टनायक और अभिनव से शुक्लजी तक सभी आचार्यों के प्रति आशा-भावना लेकर प्रस्तुत होना पड़ेगा, क्योंकि भारत की अव्यक्तिगत काव्य-परम्परा कवि की वैयक्तिक अनुभूति को इतना अधिक महत्त्व देने की अनुमति नहीं दे सकती। किन्तु आज का साहित्य-चिन्तक काव्य में छिपे हुए कवि के व्यक्तित्व को उचित स्वीकृति देने में ननु-नच नहीं करेगा। लेकिन डा० नगेन्द्र की दूसरी बात आधुनिकों के लिए भी खटकनेवाली है। वह यह कि उन्होंने कवि की अनुभूति को उचित से अधिक महत्त्व दिया है। डा० नगेन्द्र की बात को बिना किसी संशोधन के स्वीकृत करने के उपरान्त पाठक अथवा श्रोता के संस्कारों का कोई महत्त्व नहीं बच पाता। संभव है कि रुचि-संस्कार गत वैपरीत्य के कारण सामाजिक कवि की अनुभूति के साथ अपनी अनुभूति का संवादी स्वर नहीं मिला सके। सारांश यह कि कवि की अनुभूति सत्य और प्रौढ़ हो, अधिकन्तु, उसके पीछे कुन्तक की वैदग्ध्यभंगीभणिति अथवा शुक्ल जी की रमणीयता का बल ही क्यों न हो, पर उसके साधारणीकृत होने के लिए सामाजिकों की रुचि, संस्कार और अनुभूति के साथ उसका यथाकथंचित् समुद्भूत सादृश्य अनिवार्यरूपेण अपेक्षणीय है। दूसरी बात यह है कि डा० नगेन्द्र सामाजिक के हृदय में रस की सुप्त स्थिति मानते हुए भी यह कहते हैं कि कवि अपनी अनुभूति के साथ अपना रस भी सहृदय के पास भेजता है। अब फिर वही पुराना प्रश्न उठता है कि क्या रस प्रेषणीय है? कवि अपनी अनुभूतियों के माध्यम से पाठक में रसोद्बोधन करा सकता है, पर वह रस-प्रेषण नहीं कर सकता। रस-प्रेषण होने पर तो पाठक का सहृदय और दीक्षित होना आवश्यक नहीं, उसे मात्र ग्राहिका शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य का चिर-साध्य क्या ?

श्री शिवप्रसाद लोहानी

पिछले वर्षों में साहित्यिक क्षेत्र में ऐसी हवा आई जिसके अनुसार साहित्य को पूर्णतः वैयक्तिक अभिव्यक्ति समझा जाने लगा। परम्परा के प्रति विराग और वैयक्तिक रुचि के अनुरूप अभिव्यञ्जन प्रणाली के माध्यम से अभीप्सित भावना का प्रकाशन उस अभिव्यक्ति का स्वरूप समझा जाता रहा है। इस स्वरूप ने नये लोगों को इतना आकृष्ट किया कि सर्वत्र ऐसी रचनाएँ और इसकी चर्चा होती रही। इतना ही नहीं इस भावना ने पूर्ववर्ती परम्परा सापेक्ष रचनाओं को सत्साहित्य मानने से इन्कार करने में भी अपने को गौरवान्वित समझा। हिन्दी में इस वैयक्तिक भावना के आगमन के कई कारणों में सबसे मुख्य कारण अंग्रेजी का रोमाण्टिक साहित्य है। विचार पूर्वक देखने पर

सम्पन्न ही होना चाहिए। किन्तु, वस्तुस्थिति यह है कि रस-चर्वणा कवि अथवा पाठक पर निर्भर न रहकर दोनों की सहृदयता और संस्कार-संघातों के साथ सापेक्षिक सम्बन्ध रखती है और क्रमशः इनके न्यूनाधिक्य एवं विरोध-अविरोध से सानुपातिक सम्बन्ध भी।

सारांश यह है कि डा० नगेन्द्र की 'अनुभूति' शुक्ल जी के 'आलम्बन' से तत्त्वतः कोई अन्य वस्तु नहीं है। दूसरी बात यह है कि सामाजिक के संस्कारों की भूमिका में (गोवलीवर्द न्याय से ही सही, क्योंकि कवि भी सामाजिक की तरह मनुष्य है और उसके संस्कार सामाजिकों से औसतन सर्वथा भिन्न-विच्छिन्न नहीं हैं) कवि की अनुभूति का साधारणीकरण होता है—इस निष्कर्ष का पूर्व अंश (सामाजिक के संस्कार संघात) डा० नगेन्द्र की विवेचना में छूट जाता है, जिसकी रक्षा शुक्ल जी 'समान प्रभाववाले कुछ धर्मों की प्रतिष्ठा' के निर्देश द्वारा कर लेते हैं। अस्तु, शुक्ल जी की धारणा में संशोधन की कोई अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

ऐसा लगता है कि हिन्दी में वैयक्तिक भावना का प्रचलन कदापि नहीं होता यदि अंग्रेजी जीवन से यह देश निकट साम्य रखने से विरत होता। पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के अन्तर्गत के इस देश के लिए यह असम्भव था कि यह उसके प्रभाव से विरत होता।

उस वैयक्तिक भावना का ही प्रभाव है कि कविता के क्षेत्र में अराजकता की सी स्थिति उत्पन्न हो गयी। प्रत्येक कवि अपने को स्रष्टा समझने लगा। छन्द, पिङ्गल, अलङ्कार और रस के परम्परागत नियमों की पूर्ण अवहेलना कर के वैयक्तिक रुचि के अनुसार कविता की जाने लगी। इसमें सन्देह नहीं कि इस वैयक्तिक रुचि की तुष्टि में उच्च श्रेणी के कवियों ने नूतन छन्द-सृष्टि कर के साहित्य की श्री वृद्धि की है, किन्तु ऐसे कवि एवं कविता अत्यल्प हैं। अधिक सख्या वैसे ही कवियों की है जिन्होंने स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छृङ्खलता का आश्रय ग्रहण किया है जिनसे काव्य क्षेत्र की अपरिमित हानि हुई है। पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी रचनाएँ जो छपीं उनसे जन साधारण की साहित्यिक रुचि ह्रासोन्मुख तो हुई ही साहित्य-क्षेत्र में अव्यवस्था का साम्राज्य-सा हो गया। ऐसा कोई सामान्य आधार नहीं रह गया जिस पर आधारित हो कर कवि अपने कर्म में प्रेरित होता। कविगण कहने लगे कि उनका स्रष्टा उनसे अनजाने कुछ लिखा जाता है वह पूर्ण है क्योंकि वह अन्तस् की वस्तु है—पवित्र एवं अकलुषित। कभी-कभी वैसी रचनाओं के रचयिता भी उनके विवेचन एवं भाव स्पष्टीकरण में अपने को असमर्थ पाते रहे। निश्चय ही साधारणतः पाठकगण उन रचनाओं में गम्भीर भाव एवं धर्म की अवस्थिति समझ उन्हें दुर्बोध कहा करते थे किन्तु बात वैसी नहीं थी। दुर्बोधता का कारण गम्भीर भाव एवं अर्थ की अवस्थिति नहीं वरन् अव्यवस्था का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रय-ग्रहण था; आधार रहित शब्दाडम्बर एवं निरर्थक शब्दों के वाग्जाल के सिवाय उनमें कुछ नहीं था। हाँ, अव्यवस्था रूपी घन में सार्थक वस्तुपरक अभिव्यञ्जना बिजली के रूप में लोगों को कभी-कभी अपनी ओर आकृष्ट अवश्य करती थी।

कल्पना-लोक में विचरने वाले इन कवियों और इनकी रचनाओं के प्रति आधुनिक अंग्रेजी आलोचकों की एक बहुत बड़ी जमायत विपरीत भाव रखती है। यद्यपि हिन्दी में अंग्रेजी आलोचकों के उस दृष्टिकोण का प्रभाव अभी देखने को कम मिलता है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वैयक्तिक भावपरक रचनाओं की पूर्णिमा सी हो गयी है; उसे विकासोन्मुख कदापि नहीं कहा जा सकता।

आधुनिक अंग्रेजी आलोचकों की वह जमायत कविता में अनुभूति को आवश्यक मानती है और किसी कविता की आलोचना में परम्परा को नहीं छोड़ती। हृदय और मस्तिष्क दोनों का सामञ्जस्य वे इस रूप में चाहते हैं कि एक दूसरे पर कोई हावी न हो। यही कारण है कि मिल्टन ऐसे ख्याति प्राप्त कवि भी इन आलोचकों की दृष्टि में सत्कवि नहीं जिसमें शब्द भाव-धर्म को अभिव्यक्त करने में साधन नहीं साध्य के रूप में व्यवहृत हुए हैं। इसके विपरीत येडन जैसा साधारण मेटाफिजकल कवि में हृदय-मस्तिष्क-कल्पना और बुद्धि का अनुभूतिमय सामञ्जस्य पाते हैं। कवि को ये स्रष्टा नहीं कलाकार समझते हैं—कला को निर्माण नहीं अनुकृति समझते हैं। ग्रीक आलोचक अरिस्टोटल के विचारों से अधिकांश रूप में ये सहमत हैं, ऐसा प्रतीत होता है, जिसने कि अपनी जगतप्रसिद्ध आलोचना-पुस्तक पोएटिक्स में साहित्य को मूलतः कला की संज्ञा दी है और कला को अनुकृति माना है। इस मान्यता के अनुसार कोई साहित्यिक रचना अपना वैयक्तिक अस्तित्व नहीं रखती। किसी साहित्यिक रचना को सम्पूर्ण साहित्य की एक कड़ी के रूप में रखकर ही उसका मूल्यांकन करना ये आवश्यक समझते हैं। इन विचारों ने फिर से शास्त्रीय (classical) ढङ्ग से सोचने-विचारने की ओर लोगों को प्रेरित किया है। यह ढङ्ग एक प्रकार से सम्प्रति सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में ग्रहण किया जा रहा है। शास्त्रीय ढङ्ग से रचित साहित्य में भी वे चिरन्तनता की भावना पाते हैं। इस प्रकार रोमांटिक ढङ्ग से सोचने-विचारने वाले लोगों का यह कहना, कि इसमें चिरन्तनता की भावना है क्योंकि हृदय का आवेग है, का परिहार शास्त्रीय ढङ्ग से सोचने-विचारने वाले स्पष्ट शब्दों में करते से दृष्टिगत होते हैं।

उपर्युक्त बातों पर सम्यक् रूप से विचार करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि विज्ञान के प्रचलन और विस्तार तथा मानव-जीवन से अत्यधिक सान्निध्य ने साहित्य के क्षेत्र में भी वैज्ञानिक ढङ्ग से सोचने-विचारने को विवश किया है। और ऐसा समझना अनुचित नहीं प्रतीत होता कि इसी का यह प्रतिफल है कि साहित्य की भावना को बुद्धि के माध्यम से प्रदर्शित होने में ही साहित्य की सार्थकता वे समझते हैं। इस ढङ्ग में वे अत्यधिक बुद्धिवादी-से हो गये हैं और साहित्य विज्ञान की तरह बहुत जटिल और पेचीदा विषय हो गया है। जन-जीवन से अत्यधिक दूर और विलग। इसलिए साहित्य में वैसी स्थिति का होना अत्यन्त कल्याणकारी एवं कलापूर्ण समझना एक प्रकार से निरापद है जैसा कि शेक्सपियर और तुलसी के साहित्य में पाया जाता है। अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपियर अमर है और उसी प्रकार तुलसी हिन्दी-साहित्य में। क्यों ? इसलिए कि इनके साहित्य में भावना-बुद्धि का कलापूर्ण सामञ्जस्य और मेल है। न तो वे अत्यधिक बुद्धिवादी हैं और न भावुक अपितु वे स्वयं एक सिद्धान्त हैं—मूर्तिमान एवं अनुपम। उनकी अमरता का सूत्र यही है और है यही साहित्य का चिरसाध्य। शताब्दियों से इन दोनों महान् साहित्यकारों की रचनाएँ विविध दृष्टिकोण से विविध व्यक्तियों द्वारा जाँची गयी हैं और प्रायः सभी ने उनके साहित्य की सराहना की है। उनके साहित्य में सन्तुलन का जो रूप पाया जाता है वह अनुपम एवं अतुलनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि सूरदास की सम्बन्ध भावना

प्रो० 'पङ्कज' एम० ए०, साहित्यालङ्कार

मनुष्य के अनेक व्यापार सम्बन्ध भावना पर आश्रित मनोभावों के अनुकूल होते हैं। एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न अवसरों पर विभिन्न दृष्टि से देखते हैं। सौन्दर्य का प्रधान धर्म आह्लादकता होने के कारण जहाँ कहीं जिस वस्तु को सुन्दर माना गया है, वहाँ अनुरञ्जन ही मुख्य आधार रहा है, किन्तु अनुरञ्जन-बोधक वस्तुओं के स्वरूप में भी स्थान भिन्नता के कारण पार्थक्य होता है एवं कहीं-कहीं तो सम्पूर्ण विपरीतता देखी जाती है। उदाहरण के लिए एक हब्शी जिस वस्तु को सुन्दर मानता है, एक भारतीय की आँख उसमें कुरूपता के अतिरिक्त कुछ नहीं पातीं। इस प्रकार सौन्दर्य भी भाव सापेक्ष है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति किसी वस्तु में सुन्दरता या कुरूपता का आरोपण अपनी ही रुचि के अनुकूल है और इस रुचि का मूल है सम्बन्ध भावना।

व्यक्ति की विशेष रुचि जब सामान्य रुचि में परिणत हो जाती है तब उसमें काव्य के प्रधान गुण प्रभविष्णुता का संयोग हो जाता है। अतएव भाव-पक्ष का आश्रय लेने वाला कलाकार इसी सामान्य रुचि का आधार लेकर चलता है। यानी साहित्य में उन्हीं व्यक्तिगत भावनाओं को स्थान मिल सकता है जो व्यक्ति सापेक्ष रहने पर भी सर्वसाधारण की बनने की क्षमता रखती हैं।

चूँकि साहित्य की भित्ति जीवन पर अवलम्बित है, इसलिए चित्रित पात्रों के अनेक कार्य सम्बन्ध भावना पर अवलम्बित रहते हैं तथा जो कलाकार इसका जितना अधिक प्रसार कर सकता है, रस निष्पत्ति में उसे उतनी ही अधिक सफलता मिलती है।

हृदय-पारखी महाकवि सूरदास ने अपने 'सूर-सागर' में इसकी अत्यन्त स्वाभाविक व्यञ्जना की है।

गोपियाँ श्रीकृष्ण के हृदय-साम्राज्य की एक मात्र अधिकारिणी होना चाहती हैं। इसमें बाधा देने वाली वस्तु को वे फूटी आँखों देखना भी पसन्द नहीं करतीं। इससे उनके एकान्त प्रेम की ही झलक मिलती है, क्योंकि प्रेमी को प्रिय पात्र के अतिरिक्त अन्य का प्रेम साम्राज्य में प्रवेश स्वीकार नहीं होता।

भाव प्रवण कबीर ने इसी भावना से प्रेरित होकर-

"नैना अंतर आवतू, नैन झाँपि तोहि लेऊँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देऊँ॥"

का उद्‌गार प्रगट किया था।

'सूरदास' की गोपियाँ देखती हैं कि कृष्ण बाँसुरी बजाने की तल्लीनता में सब कुछ भूल जाते हैं। यह बेसुधी उन्हें पसन्द नहीं, क्योंकि वे तो इस अवसर का उपयोग हास-परिहास और मुक्त प्रणय-क्रीड़ा में करना चाहती हैं। अस्तु, परम सुख में बाधा देने वाली बाँसुरी के प्रति वे तीव्र असूया प्रगट करती हैं।

"मुरली अति गर्व काहू बदति नहिं आज।
हरि को मुख-कमल देखि पायो सुख राज॥"

तथा

"मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुनु री सखी जदपि नंद नंदहिं नाना भाँति नचावति।"

आदि से यह स्पष्ट है कि वे इस अवसर पर बाँसुरी की जड़ता को बिल्कुल भूलकर उसे सम्पूर्ण रूप से सौत मानी हुई हैं। अन्यथा बाँसुरी के भार से कृष्ण के झुक जाने तथा नाना प्रकार से तङ्ग आकर भी आज्ञा-वहन करते जाने की विलक्षण कल्पना वे न करतीं।

इस प्रकार संयोग-वर्णन में अनेक स्थलों पर सूरदास ने सम्बन्ध भावना का अद्‌भुत चमत्कार दिखला कर रस निष्पत्ति में सफलता प्राप्त की है।

वियोग-वर्णन में इस भावना का इतना अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसार हुआ है कि भावों के उद्‌बोधन का यह केन्द्र ही बन गई है।

विरह-विधुरा गोपियाँ उन सभी वस्तुओं को साधुवाद देती हैं, जो उनकी पीड़ा में सहानुभूति प्रगट करती नजर आती हैं। इसके विपरीत आचरण करने वाली वस्तुओं के लिए वे तीव्र घृणा व्यञ्जित करती हैं। यही कारण है कि कभी तो वे—

"मधुबन तुम कत रहत हरे।
विरह-वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे॥"

कहकर वृन्दावन को धिक्कारती दीखती हैं तो वे—

"बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारे।
बासर-रैन नाम लै बोलत, भयो विरह जुर कारे॥"

कह कर पपीहे को आशीर्वाद देती हुई नजर आती हैं। कहना न होगा कि वृन्दावन तथा पपीहे दोनों ही अपने स्थान पर निरपेक्ष हैं तथा गोपियों ने अपनी भावना के अनुकूल ही उनमें इन गुणों का आरोप किया है। इसी प्रकार जिस कालिंदी-कूल पर उन्होंने प्राणवल्लभ कृष्ण के साथ नाना प्रकार की प्रणय-लीलाएँ की थीं, वही स्थल प्रिय-विहीन होने पर यदि उन्हें करुणा का प्रतीक प्रतीत होता है तो हृदय की परिवर्तित अवस्था के कारण ही, न कि जड़ता में चैतन्य के सञ्चार होने के कारण।

"भरि भरि यमुना उमड़ि चलति है इन नैनन के नीर।"
तथा "देखियत कालिन्दी अतिकारी।
अहो पथिक कहियो उन हरि सों, भई विरह जुरजारी॥"

की अभिव्यञ्जना में यही सम्बन्ध भावना काम करती है।

प्रियतम कृष्ण के साथ रासलीलादि के अवसर पर चाँदनी रात में गोपियों को अनिर्वचनीय आनन्द का बोध होता था तथा उसमें मतवाली होकर सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण करती हुई वे अपने को कृष्ण-मयी बना देने के लिए व्यग्र हो उठती थीं, किन्तु प्रियतम के वियोग में अब काली रात उन्हें नागिन सी प्रतीत होती है तथा ज्योत्सना रात्रि तो सर्पिणी डँसकर उलट जाने के समान गरल-वर्धिनी एवं विनाशमयी ही बन जाती है। अतएव यदि वे आकुल होकर

"पिया बिनु नागिन कालो रात।
कबहुँ जामिनी होति जुन्हैया, डँसि उलटी ह्वै जात॥"

कहकर चाँदनी में सर्पिणी के उलट जाने के व्यापार का आरोपण करती हैं, तो सम्बन्ध भावना के ही कारण। अन्यथा रात्रि में संयोग एवं वियोग के कारण कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है।

इसी प्रकार जब उद्धव ज्ञान का सन्देश लेकर गोकुल पहुँचते हैं तब उन्हें देखकर गोपियाँ अपने को कृत कृत्य मानती हैं। प्रिय के सखा के साक्षात्कार का उनकी दृष्टि में बड़ा महत्त्व है। नीचे की पंक्तियों में इस आशय की सम्बन्ध भावना की अत्यन्त पवित्र योजना है?

ऊधो आज भईं बड़ भागी।
जिन अँखियन तुम स्याम विलोके, ते अँखियाँ हम लागीं

गोपियों को उद्धव के नयन इसलिए अत्यन्त पवित्र प्रतीत होते हैं, चूँकि उन्हें कृष्ण के दर्शन हुए हैं। ऐसी पवित्र सम्बन्ध भावना की व्यञ्जना बहुत कम कलाकारों द्वारा हो सकी है। उदाहरण के लिए कविवर बिहारी की :—

"पिय चूम्यो मुख चूनि," जिस पर कुछ सहृदय लट्टू हैं, इसकी छाया भी नहीं छू सकती।

प्रेम के पथ पर चलने वालों का यह स्वभाव होता है कि वह प्रिय की कठोरता का दोषारोपण भी अन्य पर ही करना चाहता है। क्योंकि उसे विश्वास नहीं होता कि उसका प्रिय पात्र भी उसके साथ ऐसा व्यवहार कर सकता है। उद्धव को गोकुल भेजने की बात कुब्जा को ज्ञात भी नहीं, किन्तु कृष्ण के भेजे हुए कठोर संदेश का मूल कारण गोपियों ने उसे ही समझा। इसका भी प्रधान कारण सम्बन्ध भावना ही है।

प्रेम में व्यवधान के लिए स्थान नहीं। वहाँ प्रेयसी और प्रियतम सर्वदा प्रेयसी और प्रियतम ही बने रहना चाहते हैं। यही कारण है कि कृष्ण के मथुरा के राजा बन जाने पर भी गोपियों को उनका

(शेष पृष्ठ XXX पर देखिये)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यापति की भक्ति-भावना

श्री राधेश्याम बंका एम० ए०

आस्तिकता भारत की निजी सम्पत्ति है। भारत का मानव समाज सदा से 'भीषणं भीषणानाम्', 'पावन पावनानाम्' के प्रति नतमस्तक हो उसकी उपासना करता आया है। उपासना का स्वरूप कभी उसे अरूप अनाम, अनन्त मानकर निराकार रहा है और कभी उसे सरूप, सनाम, सगुण मान कर साकार रहा है। निराकारोपासना कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए भले ही अनुकूल हो किन्तु साकार उपासना की पद्धति अपनी सरलता, सुगमता और स्पष्टता के कारण सर्व साधारण में सर्वदा और सर्वत्र प्रमुखता पाती रही है और युग-युग में भक्त-कवि अपने साकार भगवान से पति-पत्नी या माता-पुत्र या सखा-सखी या स्वामी-सेवक का सम्बन्ध स्थापित करते हुए अपने उपास्य के अनुपम सौन्दर्य, अनन्त गुण और असंख्य लीलाओं का गायन कर स्वयं भी और अपने साथ जन समाज को भी आनन्दित करते रहे। विद्यापति भी ऐसे ही भक्त कवि हैं।

आचार्य शुक्ल अपने इतिहास में विद्यापति को शैव बताते हैं। विद्यापति की भक्ति-भावना के स्वरूप को लेकर अनेक विद्वानों ने परस्पर में एक विवाद-सा खड़ा कर दिया है। डा० श्यामसुन्दरदास इनको वैष्णव कहते हैं। इसके अतिरिक्त कोई इनको शाक्त, कोई पञ्च-देवोपासक और एकेश्वरवादी मानते हैं। डा. रामकुमार वर्मा इनके राधाकृष्ण-पदों के आधार पर इन्हें पूर्णतः शृङ्गारी ठहराते हैं।

विद्यापति को शुद्ध शृङ्गार की श्रेणी में ढकेलना सत्य की हत्या करना है। भक्ति कोई 'कोट' नहीं जब चाहा पहन लिया और फिर उतार कर खूँटी पर टाँग दिया। एक ही व्यक्ति के शिवपरक पदों के आधार पर भक्त और कृष्णपरक पदों के आधार पर शृङ्गारी कह कर सत्य से बहुत दूर जा पड़ना है। यहाँ पर दो प्रश्न उठते हैं। क्या राधाकृष्ण के शृङ्गार परक पद भक्ति के अन्तर्गत आ सकते हैं और आने की स्थिति में शिव भक्ति-परक पदों से इनका क्या कोई अविरोध सम्बन्ध है?

शास्त्रानुमोदित अनेक उपासना पद्धतियों में से एक पद्धति—मधुर-भक्ति है जहाँ आराध्य पति तथा आराधक पत्नी होती है और जिसके अनुसार साधना करके अनेक सन्त महात्माओं ने अपने आराध्य से सान्निध्य का अनुभव किया है। यह भी कल्पना की गई है कि विश्व में एक मात्र 'वही' परम पुरुष है और, शेष सभी जीवात्माएँ प्रकृति रूप में उसकी पत्नी हैं। इस मधुर भक्ति में 'उसे' नित्य तरुण एवं स्वयं को नित्य तरुणी माना गया है और जहाँ का लोक अलौकिक है, शरीर चिन्मय है, यौवन नित्य है, सौन्दर्य अनन्त है तथा केलि-क्रीड़ाएँ अगणित हैं। साधनावस्था में साधक, शरीर से ऊपर उठकर उस भावलोक में रमण एवं विहार किया करता है। भौतिक लोक में उसका शरीर क्षयशील है परन्तु मानसिक लोक में वह उनकी नित्य सहचरी होने के कारण 'उनके' ही समान अमर और अजर है। मानसिक लोक की केलि क्रीड़ाएँ भौतिक लोक की केलि-क्रीड़ाओं के ही समान हैं परन्तु उस अतीन्द्रिय लोक में पाँच भौतिक शरीर का साथ छूट जाने से विकृति को कोई स्थान नहीं। विकृति स्थूल शरीर और स्थूल दृष्टि के साथ सम्बद्ध है। साधना की तन्मयावस्था में स्थिति यहाँ तक आती है कि वह अपने रूपकत्व—पति पत्नी के आरोपित रूप—को भूल कर उसे वास्तविक लीला समझने लगता है। इन लीलाओं का चिन्तन मनन गायन श्रवण ही उसका एक मात्र कार्य हो जाता है। वे केलि-क्रीड़ाएँ ऐसी ही होती हैं जैसी लौकिक मानव की, अन्तर केवल इतना ही है कि साधक साधना से अपनी रागात्मक भाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाओं का दमन नहीं, उन्नयन करके, निर्मूलीकरण नहीं, निर्मलीकरण करके अपने कल्याण पथ को प्रशस्त कर लेता है। इन्हीं लीलाओं के लिए वल्लभाचार्य जी ने कहा है कि लीलाओं का कोई अन्य प्रयोजन नहीं, वे स्वयं ही प्रयोजन हैं। स्वयं भागवत में आया है—"बाहुप्रसार परिरम्भकरालकोरूनीवीस्तनालभनर्मनखाग्र पातैः" (१०।२९।४६) व्रज सुन्दरियों में कामदेव को उद्दीप्त करते हुए श्री कृष्ण ने उनके साथ विहार किया। इसी 'मधुर भाव' की अभिव्यक्ति जयदेव में है जिसका अनुकरण विद्यापति द्वारा हुआ। अतः मधुर भाव की इस साधना पद्धति को न समझ कर किसी के ऊपर व्यर्थ के दोषारोपण से श्रेष्ठ यही है कि प्रथम अपने मन को सुसंस्कृत तथा दृष्टि को विस्तृत करें। यह बात दूसरी है कि बिरले ही उस उच्चावस्था को प्राप्त कर पाते हैं किन्तु उच्चावस्था प्राप्त भक्तों की वाणियों को अपनी संकीर्णता के कारण न समझते हुए दोषों का अन्वेषण और आरोपण उचित नहीं है।

जहाँ तक विद्यापति का प्रश्न है, वे रीति कालीन शृंगारी कवियों से बहुत अधिक ऊँचे हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि सूर और मीरा जैसी स्थिति को स्पर्श न कर पाये। मधुर कवि की भक्ति-पद्धति की दृष्टि से अपेक्षित सात्विकता की पर्याप्तांश तक स्थिति होने के कारण ही चैतन्य देव ने इनके पदों का आदर किया। इसी सात्त्विकता के कारण आज भी वैष्णव समाज में ये पद कीर्तन के विषय बने हुए हैं। दूसरी बात यह है कि "भलहर भल हरि भल तुअ कला" गाकर हर और हरि में, शंकर और कृष्ण में एकत्व की घोषणा करने वाले कवि के द्वारा यह कैसे सम्भव है कि शिव जीवन के इष्टदेव तथा श्रेय प्रेय के प्रदाता बने और कृष्ण तुच्छ शृङ्गारिक भावनाओं की तृप्ति के साधन बने। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का विभाजन किसी को भी योग्य न लगेगा। किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का शाब्दिक प्रकाशन ही साहित्य है। शिव पदों में पाई जाने वाली उत्कटता और सात्विकता का राधा-कृष्ण के पदों में न्यूनत्व होने से ही लोग दोषारोपण करते हैं, ठीक है, पर इस न्यूनत्व के अनेक कारण हैं। इनके समक्ष न पुष्टि मार्ग जैसा सम्प्रदाय था और न श्रीनाथजी जैसा मन्दिर था जहाँ सूर के समान भक्ति में आकंठ डूबकर प्रेम विभोर हो लीला पदों का गायन करते, अपितु इनके सामने ये राजा और उनके दरबारी जिन्हें प्रसन्न करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त संस्कृत प्राकृत कवियों से प्राप्त परम्परा के रूप में राधा कृष्ण सामान्य नायिका-नायक के रूप में थे और जो शृङ्गारी भावनाओं की अभिव्यक्ति के साधन थे। संस्कृत साहित्य का विशद अध्ययन होने के कारण शृङ्गारान्तर्गत नखशिख वर्णन, नायिका भेद का ज्ञान था। उपयुक्त वातावरण का अभाव, राजाश्रय की स्थिति, राधाकृष्ण की प्राप्त परम्परा; विशद अध्ययन आदि ही उस न्यूनत्व के कारण हैं जिससे कहीं-कहीं अप्रिय अश्लीलता का समावेश हो गया है। परन्तु इन कारण स्वरूप बाधाओं के होते हुए भी जितने अंश तक सात्विकता का प्रवेश कर सके, यह श्रेय इनकी पावन भक्ति भावना को है जिसमें योग दिया है जयदेव के आदर्श ने। वियोग के वर्णन में कहीं-कहीं अनुभूति इतनी गहन तथा रूपकत्व इतना स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ मुक्त होकर इन्हें भक्त घोषित करना पड़ता है।

यह भी कहा जा सकता है कि विद्यापति अपनी शृङ्गारी भक्ति भावना, गौरीशङ्कर की लीलाओं के माध्यम से प्रकट कर सकते थे परन्तु अभी तक कोई ऐसी पूर्वागत परम्परा न थी। कालिदास ने 'कुमार-सम्भव' में अवश्य शृङ्गारी लीलाओं का समावेश किया है किन्तु यह परम्परा पल्लवित और पुष्पित न हो सकी। चली आती हुई परम्परा राधाकृष्ण की ही थी। दूसरे इनकी भक्ति समन्वयात्मक होने के कारण ये हर और हरि में अभेद समझते थे इसी कारण विद्यापति ने अपने मधुर भावों की अभिव्यक्ति राधाकृष्ण के माध्यम से की। अतः इन राधाकृष्ण पदों के आधार पर घोर शृङ्गारी कहना पूर्णतः अनुचित तो है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही साथ ही वैष्णव कहना भी ठीक नहीं।

अधिकांश पदों में राधाकृष्ण की लीलाओं का गायन होने से इनका कवि-धर्म वैष्णव कहला सकता है परन्तु जीवन के कतिपय अन्य तथ्य इन्हें शैव ही घोषित करते हैं। इनका कुल धर्म शैव है। इनके आश्रयदाता शैव थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता एक राजा से शिवोपासना की प्रतिज्ञा कराई थी। इनके सम्बन्ध में प्रचलित अधिकांश किंवदन्तियाँ शिव सम्बन्धी हैं। इनकी चिता पर अब भी शिव मन्दिर बना हुआ है। इन्होंने अधिकांश रचना शिव और शिव परिवार को ले कर की हैं। यथा—'शैव सर्वस्व सार', 'गङ्गा वाक्यावली', 'दुर्गा भक्ति तरङ्गिणी' आदि। अधिक सात्विकता तथा उत्कटता के दर्शन शिव सम्बन्धी पदों में ही होते हैं। इनके शिव पदों का ही मिथिला में सर्वाधिक प्रचार है। अपने ग्राम के समीप स्थित 'वाणेश्वर महादेव' के लिए 'बान महेसर' कह कर अपनी भक्ति को प्रकट किया गया है। अतः विद्यापति पूर्णतः शैव हैं, हाँ, इतना अवश्य है कि हर और हरी में एकता, मधुर भावों की अभिव्यक्ति की अभिलाषा, राजकीय वातावरण, संस्कृत प्राकृत कवियों से प्राप्त परम्परा तथा जयदेव के आदर्श के कारण पदावली में वैष्णव से लगते हैं।

साथ ही इन्हें पञ्च देवोपासक, एकेश्वरवादी या शाक्त आदि भी कहना ठीक नहीं। विष्णु, सूर्य, शिव, दुर्गा और गणेश के उपासक पञ्च देवोपासक कहलाते हैं। ऐसा कहीं भी दिखलाई नहीं देता जहाँ विद्यापति ने सूर्य का उल्लेख किया हो। गणेश को अवश्य कहीं-कहीं काव्यारम्भ के समय स्मरण मात्र किया गया है, ऐसी दशा में उन्हें पञ्च देवोपासक कैसे कहा जा सकता है? एकेश्वरवादी भी कहना अनुचित होगा जब कि शिव दुर्गा गङ्गा के प्रति विद्यापति अपनी अगाध भक्ति के उद्गार प्रकट करते हैं। उन्हें शाक्त भी नहीं कहा जा सकता। यह ठीक है कि विद्यापति के समय बिहार में शाक्त मत की प्रधानता थी और उन्होंने 'हरि विरञ्चि महेश शेखर चुम्ब्यमान पदे' कह कर शक्ति को ही पूज्या एवं प्रणम्या कहा है परन्तु इस पूज्य भावना में तुलसीदास की सी भावना कार्य कर रही है। शक्ति की वन्दना की गई है कि वे शिव की आह्लादिनी शक्ति हैं, अर्द्धाङ्गिनी हैं। शक्ति के प्रसन्न होते ही शिव भी प्रसन्न हो जावेंगे। अतः विद्यापति पूर्णतः शैव हैं। इनकी भक्ति समन्वयात्मक है। शिव के अतिरिक्त शक्ति, गङ्गा, गणेश, राधाकृष्ण, जानकी-राम सभी को आदर की दृष्टि से देखते हैं। शिव और कृष्ण में पूर्ण एकता है। इतना होकर भी छल-छलाकर निकले हुए इनके उद्गार शिव के प्रति हैं, जहाँ कभी उनकी महिमा का गायन कभी अपनी दीनता का रोदन है। अभी तक विद्यापति का जीवन लौकिक कार्यों में व्यतीत हो गया। कभी भी एकाग्र मन से आराधना न हुई। तभी उनका आर्त हृदय पुकार उठता है—

"माधव हम परिनाम निरासा"

परन्तु एक मात्र भरोसा शिव का है। अपने आराध्य से वे गुहार करते हैं—

"हरि जनि बिसरब मो ममिता।
हम नर अधम परम पतिता॥"

कवि का विश्वास है कि शिव "सन अधम उधार न दोसर"। अतः शिवाराधन ही उनके जीवन का निश्चय है।

"लोढ़ब कुसुम तोरब बेल पात।
पुजब सदा सिव गौरिक सात।"

शिव की कीर्ति का गायन करते उनकी वाणी कभी विश्राम नहीं लेती जिसकी अविरल कूक है—

"जय जय शङ्कर जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरुष जयति अध नारि॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवित्त-रत्नाकर में ऋतु वर्णन

श्री राजेन्द्रमोहन भटनागर 'नलिन' आचार्य, साहित्यरत्न

अनादि काल से मानव प्रकृति की मनोरम सुषमा पर आकृष्ट होता चला आ रहा है क्योंकि प्रकृति मानव की चिरसङ्गिनी है और मानव की पालिका भी। अतः मानव ने भी समय पाकर प्रकृति की उन अनुभूतियों को काव्य-श्री में रखा है। इस तरह यह आपस में बहुत घुल-मिल गए हैं। अतः हमें किसी कवि के काव्य में प्रकृति-वर्णन देखना परम आवश्यक सा प्रतीत होता है। प्रकृति का अवयव ऋतु है और प्रकृति उसमें प्राण या उस अवयव का नाम भी हो सकती है। अतः हम सेनापति रचित 'कवित्त-रत्नाकर' में ऋतु-वर्णन देखेंगे जैसा कि लेख का शीर्षक संकेत करता है। सेनापति पर विचार करने से पहले प्रकृति पर कुछ विचार करते हैं।

रस सिद्धान्त के अन्तर्गत विभाव को एक महत्त्व-पूर्ण स्थान प्रदान किया है। विभाव के संयोग से ही रति आदि स्थायीभाव जोकि वासना के रूप में हृदय में निहित होते हैं। विभाव को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं: यथा १—आलम्बन, २—उद्दीपन विभाव। शृङ्गार रस के आलम्बन विभाव नायक हैं। उसके उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत कुछ तो पात्रगत बातें ही आती हैं: यथा नायक अथवा नायिका के अङ्ग प्रत्यङ्ग, उनकी मोहक चेष्टाएँ, उनकी वेश-भूषा इत्यादि; तथा कुछ ऐसी हैं जो पात्रों के बहिर्गत हैं। इसी बहिर्गत उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आचार्यों ने प्रकृति के विशाल सौन्दर्य में सेवन, उपवन, सरोवर, झरना, षटऋतु आदि प्रमुख रूपों को स्थान प्रदान किया है। इस संकुचित दृष्टिकोण से रस-निरूपण पद्धति में प्रकृति के उन स्वतन्त्र वर्णनों का समावेश न हो सका जिनसे वह स्वयं आलम्बन के रूप में दृष्टि-गोचर होती है। हिन्दी में संस्कृत के रीति ग्रन्थों को अपनी सम्पत्ति के रूप में पाया था। संस्कृत के ग्रंथों में भी प्रकृति का उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ही लिया जाता है। अतः हिन्दी ने भी इसी का अनुकरण किया।

उपर्युक्त बातें तो व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी थीं परन्तु काव्य में यह बात इतनी दूर तक नहीं जाती है। वैसे काव्य में भी इस बात का समावेश रहता है परन्तु एक हमारे दुःख और सुख के साथ सहानुभूति के रूप में ही। यह कभी नहीं होता कि संसृति हमारी भावनाओं से अपनी भावनाओं का तादात्म्य कर दे। अतएव काव्य में वर्णित विषय इस प्रकार का हो जिससे कि वह सर्वसाधारण के उपभोग या उपयोग की वस्तु बन जाए। इसी बात पर जोर देकर संस्कृत के विद्वानों ने साधारणीकरण पर अधिक जोर दिया है। कवि को अपने व्यक्तिगत संकुचित वातावरण से उठ कर सम्पूर्ण जगत को अवलोकना पड़ता है। ऐसा करने से उसकी कविता लोकप्रिय बन सकेगी तथा कवि की प्रतिमा भी जानी जा सकेगी, जिस कविता का साधारण व्यक्ति आनन्द उठा सके वही वास्तव में कवि का कविता चातुर्य है।

हिन्दी के भक्त कवियों में हम इस व्यापक और विशाल दृष्टिकोण को देखते हैं। इसी के साथ प्रकृति-चित्रण में भी इन लोगों ने व्यापकता को दिखाया है किन्तु तब भी धार्मिक प्रभावों के कारण प्रकृति कुछ दब सी गई है। तुलसीदास ने 'मानस' में चित्र-कूट का वर्णन कितना सुन्दर किया है। ऐसे ही सूर ने गोपियों की विरहावस्था को दिखाते हुए आदि। शृंगारिक कवियों में केवल नायक और नायिकाओं के क्रिया-कलापों पर दृष्टि रहने के कारण प्रकृति और भी संकुचित हो गई है। अतएव उनकी दृष्टि की पहुँच केलि-कुञ्ज, पुष्प-वाटिका, चन्द्रोदय, विद्युत, शीतल परिमल युक्त समीर, और ऋतुओं के विभिन्न स्थूल स्वरूप तक ही है। इतना नायिका या नायक के भावों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उद्दीप्त करने के विचार से। रीतिकालीन शृङ्गारिक कवि अगर शीतल पवन का वर्णन करते हैं तो विरही जनों के जलाने को, यदि पुष्प खिलाते हैं तो किसी नायिका के केश-पास को सजाने के लिए, यदि पपीहा बोलता है तो प्रीतम के स्मरण के लिए। यह कहना सत्य है कि अपने मतलब के लिए प्रकृति का सहारा लिया या वर्णन किया है। सेनापति का प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में सब स्थानों पर नहीं वरन् प्रचलित प्रभावों से प्रभावित होकर प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में ही है। उनके बारहमासे के कवित्त अधिकतर उद्दीपन रूप में ही लिखे हैं। किन्तु उनकी जो ऋतुओं से सम्बन्धित कविताएँ हैं वह सब उनके प्रकृति के प्रति जो असीम अनुराग था उसकी परिचायक हैं। यद्यपि परम्परा, सामाजिक एवं साहित्यिक प्रभावों के कारण वह भी बहुत संकुचित दिखाई पड़ता है। इनके प्रकृति-वर्णन में उद्दीपन की भावना अज्ञात रूप से परम्परा के प्रभाव के कारण आ ही जाती है यथा—

छिति न जरद, मानो रँगे हैं हरदि बनालि,
सोहत जरद को, मिलावै हरि पीय कौं।
मना है दुख, मिथ्यौ खंजन दरद, रितु
आई है सरद सुखदाय सब जीव कौं॥

ऊपर कवि ने शरद ऋतु के मनमोहक रूप को चित्रित किया है। वह मनमोहक दृश्यों से अति प्रभावित है।

'हरिपीय' का स्मरण तो परम्परा के अनुरोध से किया है और उसका ध्यान भी मुख्यतः शरदारम्भ की ओर है। सेनापति के बारहमासे में स्थान-स्थान पर प्रकृति उद्दीपन के रूप में ही आती हो ऐसी बात नहीं। ऐसे छन्द भी देखने में आते हैं जहाँ कवि प्रकृति का स्वतन्त्र निरीक्षण करते पाया गया है। नीचे के छन्द में काव्योचित भावुकता से ग्रीष्म का वर्णन है। यथा—

वृष को तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल विकराल बरसत हैं।
तचति धरनि, जन जरत, झरनि सारी,
छाँह कौं पकरि पंथी पंछी विरमत हैं॥
सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत, होत
धमका विषम, ज्यों न पात खरकत हैं।
मेरे जान पौनों सीरे ठौर कौ पकरि कौनो
घरी एक बैठि कहूँ घामैं बितवत हैं॥

ऐसा सुन्दर वर्णन शृङ्गारिक कवियों में बहुत कम मिलेगा। इसका कारण यह है कि वर्णनों में केवल वस्तुओं की सूची होती है। जैसे कि केशवदास ने 'कविप्रिया' में वस्तुओं के वर्णन के लिए सूत्र बताए हैं। यदि तालाब का वर्णन करना है तो इन चीजों के नाम गिना दिए हैं: यथा—

'ललित लहर, वग पुष्प, पशु सुरभि, समीर तमाल।
करम केलि पंथी प्रगट जल धार बसहुँ ताल॥

अगर वस्तुओं के गिनाने से किसी दृश्य का वर्णन हो जाए तो कविता करना बहुत सरल हो गया होता। किसी दृश्य के चित्रण करने के लिए अर्थ ग्रहण करा देने से भी कार्य नहीं चलता वरन् उसका 'बिम्ब ग्रहण' करना परम आवश्यक है। कवि को वर्ण्य वस्तुओं की संश्लिष्ट योजना करनी पड़ती है न कि वस्तुओं की अधिक गणना। कवि यदि मुख्य-मुख्य बातों के साथ अपना काम चलाना चाहे तो चला सकता है। बस वस्तुएँ इतनी ही हों जिनके द्वारा उस वर्णित दृश्य का स्पष्टीकरण हो जाये यथा क्वार की वर्षा का नीचे वर्णन है—

खण्ड खण्ड सब दिग् मण्डल सेत,
सेनापति मानों सृङ्ग फटिक पहार कै।
अम्बर अडम्बर सौ उमड़-घुमड़ छिन,
छिछके, छछारे छिति अधिक उछारकै।
सलिल सहल मानों सुधा के महलनभ,
तूल के पहल किधौं पवन आधार कै।
पूरब को भाजत है, रजत ते राजत हैं,
गग जका गाजत गगन घन क्वार कै।

इस प्रकार वर्णन में कवि ने मुख्य बातों का ही समावेश किया है, आँखों के सामने एक चित्र-सा खड़ा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। यदि श्रावण मास की वर्षा से इसकी तुलना करें तो भेद और भी स्पष्ट हो जायेगा। यथा—

गगन आँगन घनाघन तै सघन तम,
सेनापति नेक हूँ न नैन मटकत हैं।
दीप की दमक, जोगनान की झमक छाँड़ि,
चपला चमक ओर सौं न अटकत हैं।
रवि गयो दबि मानौं ससि सोऊ धसि गयौ,
तारे तोरि से न कहूँ फटकत हैं।
मानो महा तिमिर तै भूलि यह बाट तातै,
रवि ससि तारे कहूँ भूले भटकत हैं।

उपर्युक्त उदाहरण से हमें सेनापति का स्वतन्त्र एवं गम्भीर प्रकृति निरीक्षण का पता चलता है। ऐसा वर्णन हिन्दी साहित्य में इना-गिना सा है। काव्य ग्रन्थों में पाए जाने वाले ऋतु वर्णन से ही उन्होंने बारहमासा नहीं लिखा था बल्कि अपने स्वतन्त्र दृष्टिकोण द्वारा लिखा।

सेनापति के ऋतु वर्णन की यह विशेषता है कि वह सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित है। रीतिकाल के कवि महल में रहने के कारण, अपना दृष्टिकोण राजदरबार से ही रखते थे और समाज में यही दृश्य भौतिक सुख का आदर्श माने जाते थे। अतः साधारण जनता इन्हीं सुखोपलब्धि में रहती थी। इसी कारण सेनापति में महलों का वर्णन अधिक पाया जाता है। जेठ के माह में तहखानों की मरम्मत होने लगती है। यथा—

जेठ नजि काते सुधरत खसखाने, तल,
ताख तहखाने के सुधीर झरियत हैं।
होति है मरम्मत विविध जल जन्त्रन की,
ऊँचे-ऊँचे आरे ते, सुधा सुधारित हैं।
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा, साजि,
सार तार हार मोल लै लै धरियत हैं।
ग्रीषम के वासर कौं सीरे सब,
राज भोग काज साज यौं सम्हारियत हैं।

इसी प्रकार अगहन मास के वर्णन में प्रायः लोगों के उपयोग की सामग्री का वर्णन है। यथा—

प्रातः उठि आइये को गरम हमाम कौं,
मलि-मलि न्हाइवे को गरम हमाम हैं।
ओढ़िवे को साल, नै विसाल हैं अनेक रङ्ग,

× × ×

आये अगहन हिम पवन चलत लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत विस्त्रम है।

कवि दृष्टि राजदरबार तक ही सीमित नहीं रही वरन जिन पर रङ्गीन दुशाले तथा गरम हमाम नहीं हैं और जो अलाव जला कर तापने वाले हैं उन पर भी पड़ती है, यथा—

सीरा कौ प्रबल सेनापति कोपि चढ्यो दल,
निबल-अनल गयो सूर सियराइ कै।
हिम के समीर तेई बरसैं विषम तीर,
रही गरम मानै कोनन में जाइके।
धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिए सौं लगाई रहैं नैक सुलगाइ के। आदि

सच्ची भावुकता मानव जीवन के अङ्ग-प्रत्यंङ्ग को छूती है, इसी भावुकता का कवि को परिचय देना पड़ता है। बिना इसके काव्य में सर्वभौम रूप नहीं खड़ा हो सकता है। इसी में मानव मात्र के अभ्यन्तर को स्पर्श करने वाली शक्तियाँ सञ्चित हैं। साधारण व्यक्ति दुशाले, शाल को कहाँ से पावें। इन बातों के द्वारा हम कह सकते हैं कि सेनापति का ऋतु वर्णन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। वैसे वर्णन अलङ्कार प्रधान हो गए हैं पर इनकी भावुकता में कमी नहीं, इनका अधिकार निर्धनों की कुटिया और महल दोनों तक गया है। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इनका ऋतु वर्णन हिन्दी साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

प्रो० अम्बाप्रसाद 'सुमन' एम० ए०, सा० र०

विश्व की भाषाओं के कुल तथा उपकुलों को दृष्टि-पथ में रखते हुए हम हिन्दी की वंश-परम्परा एवं स्थान के विषय में सूक्ष्म रूपेण कुछ कहना चाहें तो इतना कह सकते हैं कि भारत-यूरोपीय कुल के भारत-ईरानी उपकुल में भारतीय आर्य शाखा की आधुनिक भाषाओं में हिन्दी एक प्रमुख भाषा है।

भारतीय आर्य भाषाओं के जन्म और विकास के सम्बन्ध में कहते हुए हिन्दी-भाषा तक आना लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों की अवधि का भाषा विषयक सूक्ष्म विवरण माना जा सकता है। समय की इतनी बड़ी अवधि को भाषा-शास्त्रियों ने तीन कालों में विभक्त कर लिया है—

(१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल (ई० पू० १५०० से ई० पू० ५०० तक)—इसे वैदिक भाषा तथा लौकिक संस्कृत का काल भी कहा जा सकता है।

(२) मध्य भारतीय आर्यभाषा-काल (ई० पू० ५०० से १००० ई० तक)—इसे प्राकृत तथा अपभ्रंशों का काल कह सकते हैं।

(३) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा-काल (१००० ई० से आज तक)—इसे हिन्दी तथा भारत की वर्तमान प्रादेशिक भाषाओं के काल से नामाङ्कित कर सकते हैं।

पाश्चात्य प्रमुख विद्वान् इस बात पर एक मत हैं कि आर्य भारत के मूल निवासी नहीं हैं। वे बाहर से आये थे। प्रसिद्ध विद्वान् ब्रान्देन्श्ताइन ने आर्यों के पूर्वजों का मूल निवास-स्थान सिद्ध करने के लिए जो प्रमाण दिये हैं उनसे सिद्ध होता है कि भारत-यूरोपीय जन अपनी आद्यावस्था में किसी ऐसे प्रदेश में निवास करते थे, जहाँ हरे-भरे जङ्गल नहीं थे; परन्तु थीं छोटी-छोटी बनालियाँ; जिनमें ओक, वेतस् और भूर्ज के वृक्ष थे। वहाँ फलदार वृक्ष न थे। जङ्गली पशुओं में बराह, भेड़िया, लोमड़ी, रीछ, खरगोश और ऊद-बिलाव वहाँ पाये जाते थे। पालतू पशुओं में गौ, बकरी, भेड़, घोड़ा, कुत्ता और सूअर मुख्य थे। मछली तथा कुछ जलचर जीवों को वे जानते थे।

उपरि कथित प्राकृतिक लक्षण बहुत अंशों में यूराल पर्वत के दक्षिण-पूर्व में स्थित किरघीज़ के मैदानों पर घटित होते हैं। अतएव यहाँ आद्य भारतीय आर्यों की मातृ-भूमि सिद्ध होती है। यहाँ का निवासी जनसमुदाय 'विरोस' नाम से पुकारा जाता था। विरोस् (Wiros) आद्य भारतीय यूरोपीय भाषा का 'मनुष्य' वाची शब्द है। संस्कृत का 'वीर', लैटिन का 'उईर', जर्मन का 'वेर' आदि शब्द 'विरोस' के ही विकसित रूप हैं। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक, प्राचीन फारसी, ग्रीक, जर्मन, लैटिन आदि भाषाओं के बोलने वाले मनुष्यों के आदि पूर्वज एक थे और उनकी भाषा भी एक ही थी। अँगरेजी, फारसी और संस्कृत के बहुत-से शब्द एक से पाये जाते हैं जो इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं—अङ्गरेजी भाषा का 'मदर', फारसी का 'मादर' और संस्कृत का 'मातृ' शब्द बताता है कि मूलतः वे किसी एक भाषा के एक ही शब्द के विभिन्न रूप हैं जो देश-काल के प्रभाव से 'मदर', 'मादर' और 'मातृ' हो गये हैं।

आर्य भारत में कब आये, इसे निश्चित रूपेण नहीं बताया जा सकता। हाँ, इतना अवश्य बताया जा सकता है कि ईसा से १५०० वर्ष पूर्व आर्य लोग सम्भवतः काकेशस पर्वत के मार्ग से उत्तरी मैसोपोटामिया तथा ईरान होते हुए भारत में आये और पञ्जाब में आकर बसे। आर्यों के भारत में आने से पहले यहाँ निषाद, द्रविड़ और किरात जातियाँ आचुकी थीं। इन अनार्य-जातियों की सभ्यता एवं संस्कृति का पता मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त मूर्तियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भवनों से लग जाता है। अतः आर्य-सभ्यता एवं आर्य-भाषाएँ वास्तव में आर्य-अनार्य सभ्यता एवं आर्य-अनार्य भाषाओं का समन्वित स्वरूप हैं। संस्कृत-साहित्य में पौराणिक गाथाएँ तथा दन्त कथाएँ अनार्य संस्कृति की देन हैं। अथर्ववेद के जादू-टोने आदि में अनार्य-उपादानों की ही सन्निहिति है। वैदिक काल में जो छान्दस भाषा का साहित्यिक स्वरूप था उसमें तत्कालीन प्रचलित लोक भाषाओं के शब्द भी यत्र-तत्र गृहीत हुए थे। इसका प्रमाण ऋग्वेद है। प्रत्येक काल में भाषा की दुहरी अवस्था रही है। साहित्यिक स्वरूपों के साथ-साथ लोक में जन-जीवन से सम्बद्ध भाषाओं के लोक-प्रचलित रूप भी चलते रहे हैं। ब्राह्मी लिपि की विकसित अवस्था नागरी लिपि में लिखे हुए ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों में हमें लोक-भाषा (प्राकृत भाषा) के शब्दों के प्रयोग मिल जाते हैं। निम्नांकित मन्त्र में 'दूलभ' शब्द का प्रयोग हुआ है जो वास्तव में 'दुर्लभ' का लोक-प्रचलित रूप ही है—

"परि ते दूलभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः।"

—ऋक् ४|९|८

(अर्थात् तेरा दुर्लभ रथ हमको सब तरफ से प्राप्त हो।)

तैत्तिरीय संहिता (२|३|१४) में भी सं० 'अप्रगल्भ' शब्द के स्थान पर 'अपगल्भ' शब्द का प्रयोग हुआ है। कालिदास के काल में भी लौकिक संस्कृत ने प्राकृत के शब्दों को उधार लेकर अपनी सम्पत्ति बनाया था। सं० 'मनोऽर्थ' शब्द का प्राकृत में 'मनोरथ' रूप स्वरभक्ति (Anaptyscis) के नियम के आधार पर बना है। परन्तु प्राकृत के इस 'मनोरथ' शब्द को लौकिक संस्कृत (पाणिनीय संस्कृत) ने अपना लिया। कालिदास के ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है—

"तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं
मनोरथानामगतिर्न विद्यते।"

—कुमारसम्भव, ५|६४

'मनोरथ' के अतिरिक्त भी वद्द, लांछन, पुत्तल, भट्टारक, भट आदि अनेक शब्द हैं जो स्वरूपतः प्राकृत के होते हुए भी संस्कृत में गृहीत हुए हैं, यद्यपि वे मूल में क्रमशः वृत, लक्षण, पुत्र, भर्ता और भृत थे (देखिए, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृष्ठ ६७)

इससे सिद्ध होता है कि लौकिक संस्कृत पर मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं (प्राकृतों) का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है। वास्तव में लोक भाषाओं (प्राकृतों) की शब्दावली को ग्रहण करने के कारण ही पाणिनीय संस्कृत लौकिक संस्कृत कहलाने की अधिकारिणी हुई है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि—"पाणिनि, कात्यायन, पतंजल, कालिदास आदि के युग में भाषा की दुहरी (साहित्यिक रूप तथा लोक-प्रचलित रूप) स्थिति थी। उससे पहले भी रही होगी। मध्यकाल में थी और आज भी है।"

वर्तमान हिन्दी भाषा में भी हम उसी प्रकार की दोहरी स्थिति के दर्शन कर रहे हैं। इसके साहित्यिक स्वरूप में हम जनपदीय शब्दों के भी दर्शन करते हैं। लौकिक संस्कृत की भाँति हिन्दी को समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने के लिए हमें इसके शब्द-भण्डार में लोक-प्रचलित-शब्दावली को प्रचुर मात्रा में सन्निहित करना पड़ेगा। वास्तव में हिन्दी-क्षेत्र के जनपदीय शब्द ही हिन्दी-भाषा की अपनी सम्पत्ति हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों को दुहराते हुए हम कह सकते हैं कि—"जनता की बोलियों में तद्भव शब्द बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। 'कृष्ण' की अपेक्षा 'कान्हा' या 'कन्हैया' हिन्दी का अधिक सच्चा शब्द है।"

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'हिन्दी' कौन-सी भाषा है और उसका जन्म किस भाषा से हुआ है?

हिन्दी वास्तव में उत्तरी भारत के मध्यदेश की साहित्यिक एवं जन भाषा है। उच्च हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी नाम से हिन्दी भाषा के तीन साहित्यिक स्वरूप हैं। जन-भाषा के रूप में इसके अन्तर्गत निम्ना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षित ग्रामीण बोलियाँ भी समाविष्ट हैं—(१) कौरवी या खड़ी बोली, (२) बाँगरू या जाटू या हरियानी, (३) व्रज-भाषा या व्रज-बोली, (४) कन्नौजी, (५) बुन्देली, (६) अवधी, (७) बघेली, (८) छत्तीसगढ़ी, (९) भोजपुरी।

मध्यदेश की हिन्दी के साहित्य और बोली की दृष्टि से हिन्दी के अन्तर्गत उपर्युक्त ग्रामीण बोलियाँ समाविष्ट की गई हैं किन्तु भाषा शास्त्री भोजपुरी को हिन्दी के अन्तर्गत नहीं मानते। वास्तव में भोजपुरी बिहारी की एक विभाषा है। कौरवी, बाँगरू, व्रज-भाषा, कन्नौजी और बुन्देली—ये पाँच बोलियाँ भाषा-शास्त्र की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी की विभाषाएँ हैं और अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी पूर्वी हिन्दी की विभाषाएँ हैं। पूर्वी हिन्दी कुछ बातों में पश्चिमी हिन्दी से मिलती है और कुछ बातों में बिहारी भाषा से। अतः भाषा शास्त्री भाषा-शास्त्र की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी को ही 'हिन्दी' नाम से पुकारते हैं क्योंकि इसी के एक कौरवी रूप से उच्च हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी की उत्पत्ति हुई है और यह मध्यदेश की वर्तमान भाषा भी कही जा सकती है। मध्यदेश की सीमाएँ इस प्रकार हैं—पूर्व में भागलपुर, पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर में शिमला तथा नैपाल और दक्षिण में खँडवा तथा रायपुर। इस सीमा के अन्तर्गत आने वाले भू-भाग को मध्यप्रदेश कहते हैं और इसमें प्रचलित भाषा तथा बोलियाँ साधारणतया हिन्दी के अन्तर्गत मानी जाती हैं।

ईसा पूर्व १५०० से लेकर ई० पू० ६०० तक वैदिक भाषा (छान्दस भाषा) का अधिपत्य रहा था। फिर उत्तर वैदिक काल के ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य में लौकिक संस्कृत का प्रचलन आरम्भ हो गया था। फिर ई० पू० ५०० वर्षों के लगभग पश्चिमोत्तर पञ्जाब में पाणिनि का जन्म हुआ। इस वैयाकरण ने लौकिक संस्कृत का अध्ययन किया और उसे नियमबद्ध करने के लिए सूत्रों की रचना की। जिन शब्दों को पाणिनि अपने सूत्रों से सिद्ध न कर सके, उन्हें 'आर्ष प्रयोग' कह दिया गया। वास्तव में आर्ष प्रयोग ब्राह्मण-ग्रन्थ-कालीन लोक-भाषाओं के ही शब्द हैं। लौकिक संस्कृत का अभ्युदय उसी प्रदेश में हुआ था जिसमें कि हिन्दी का। उत्तरी भारत के मध्यदेशीय भूमि-भाग को उस समय उदीच्य प्रदेश पुकारते थे। इस प्रदेश में आर्य भाषा विशुद्ध रूप (साहित्यिक संस्कृत रूप) में बोली जाती थी और प्राच्य प्रदेश में लोक-भाषा प्रचलित थी। यास्क ने निरुक्त में बताया है कि दराँत को उदीच्य प्रदेश में 'दात्र' और प्राच्य प्रदेश में 'दाति' कहते हैं—

"दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु।"

—यास्क, निरुक्त, नैगमकाण्ड २।१।२

उदीच्य प्रदेश का 'दात्र' शब्द ऋग्वेद में भी प्रयुक्त हुआ है—

"हस्ते दात्रं च नाददे।" —ऋक् ८।७८।१०

अतः सिद्ध होता है कि वैदिक काल छान्दस भाषा और लौकिक संस्कृत एक ही भाषा-परम्परा में हैं।

बुद्ध के काल (ई० पू० ५५० वर्ष) में ही प्राच्य बोली संस्कृत से इतनी पृथक् तथा भिन्न हो चुकी थी कि उसे एक स्वतन्त्र बोली ही माना जाने लगा था। बौद्ध और जैन वैदिक याग-यज्ञ तथा पशु-बलि समन्वित कर्म-काण्ड के विरुद्ध थे। अतः बौद्धों और जैनों ने वैदिक याग-यज्ञ का उपदेश देने वाली छान्दस एवं संस्कृत भाषा का प्रयत्न पूर्वक परित्याग किया और अपने उपदेशों का प्रचार तत्कालीन मध्य-युगीय भारतीय आर्य भाषा (प्राकृत) के एक पूर्वीय रूप में किया। इसी लोक प्रचलित भाषा के रूप का विकास आगे चलकर 'अर्द्ध मागधी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यदि महावीर तथा बुद्ध की भाषा मध्य कालीन आर्य भाषा (प्राकृत का पूर्वीय रूप) प्राकृत की आद्यावस्था है, तो अर्द्ध मागधी मध्यकालीन आर्य-भाषा की द्वितीय अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। बौद्ध धर्म ग्रन्थों का अनुवाद मूल पूर्वी बोली से अन्य कई प्रादेशिक बोलियों में हुआ था। उनमें से एक पाली (पालि) भी थी। पालि मध्यदेश (उज्जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मथुरा तक) की प्राचीन भाषा पर आधारित एक साहित्यिक भाषा थी। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का कथन है कि पालि को पश्चिमी हिन्दी का प्राचीन रूप कहना ही उचित होगा। मथुरा केन्द्र वाले प्रदेश में शौरसेनी प्राकृत सबसे अधिक ललित एवं सुष्ठ प्राकृत थी जो मध्य भारतीय आर्य भाषा-काल के उत्तरार्द्ध में प्रचलित थी। वस्तुतः यह ब्रजभाषा का ही एक प्राचीन रूप थी। संस्कृत नाटकों के कुलीन एवं अभिजात पात्र कहीं कहीं संस्कृत न बोलकर शौरसेनी प्राकृत में ही वार्तालाप करते हैं। महाराष्ट्र प्रदेश में महाराष्ट्री प्राकृत भी शौरसेनी प्राकृत के साथ ही साथ अपना विकास कर रही थी, जिससे आगे चलकर वर्तमान मराठी भाषा का जन्म हुआ। श्री मनोमोहन घोष का मत है कि महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी का पश्च रूप है। कालान्तर में शौरसेनी प्राकृत ही विकसित होते-होते शौरसेनी अपभ्रंश कहलाई। यदि श्री घोष का मत सत्य मान लिया जाय तो महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश के मध्य की एक कड़ी सिद्ध होती है (देखिए डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भारतीय आर्य-भाषा और हिन्दी, पृ० १७७)

अपभ्रंश भाषाओं में तीन बहुत प्रसिद्ध थीं—(१) नागर। (२) व्राचड़। (३) उपनागर। मार्कण्डेय ने प्राकृत सर्वस्व में लिखा भी है—"नागरो व्राचड-श्चोपनागरश्चेति ते त्रयः।" नागर अपभ्रंश को ही पश्चिमी अपभ्रंश अथवा शौरसेनी अपभ्रंश के नाम से पुकारते हैं। ईसा की १० वीं शती से १२ वीं शती तक संस्कृत तथा अन्य अपभ्रंशों के होने पर भी पश्चिमी अपभ्रंश सर्व साधारण की साहित्यिक तथा बोलचाल की भाषा रही। गुजरात के जैनाचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में पश्चिमी अपभ्रंश के प्रचलित साहित्य के अनेक उदाहरण दिये हैं (देखिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, संवत् १९९७, पृ० २२, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १७६)

पश्चिमी अपभ्रंश के संज्ञा शब्दों में और विशेषण शब्दों में प्रायः संयुक्त व्यञ्जनों वाले आकारन्त शब्दों का बाहुल्य मिलता है। क्रियापद भी आकारान्त मिलते हैं जैसे 'हुआ', 'मारिया' आदि। किसी भाषा का स्वरूप और प्रकृति उसमें प्रयुक्त क्रिया-पदों तथा परसर्गों से ही जानी जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि पश्चिमी अपभ्रंश से ही खड़ी बोली का विकास हुआ है। खड़ीबोली अपने क्रिया पदों में आकारान्त है और ब्रजभाषा औकारान्त या ओकारान्त। खड़ी बोली में हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी—समाविष्ट हैं। शौरसेनी अपभ्रंश से ही ब्रजभाषा विकसित हुई, उदा० शौ० प्रा० मारिदो, मरिओ, ब्र० भा० मार्यौ।

अतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी की जननी पश्चिमी अपभ्रंश और मातामही शौरसेनी प्राकृत है। वैसे हिन्दी में संस्कृत, अरबी, फारसी, तुर्की, अँगरेजी, तमिल आदि अनेक भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं। सभी प्रकार के शब्दों का वर्गीकरण करें तो उन्हें हम निम्नाङ्कित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—(१) तत्सम, (२) तद्भव, (३) अर्द्ध तत्सम, (४) तत्समाभास, (५) विदेशी, (६) देशज।

तत्सम—'तत्सम' शब्द का अर्थ है 'संस्कृत सम' हिन्दी में प्रयुक्त वे शब्द जो सीधे संस्कृत से अपने मूल रूप में आये हैं, तत्सम कहलाते हैं; जैसे हस्त, पद्म, शङ्ख आदि।

तद्भव—'तद्भव' शब्द का अर्थ है संस्कृत-भव'। संस्कृत के वे शब्द, जो प्राकृत भाषाओं के माध्यम से हिन्दी में आये हैं, तद्भव कहलाते हैं; जैसे सं० हस्त, प्रा० हत्थ, हिं० हाथ। सं० रक्तिका, प्रा० रत्तिआ, हिं० रत्ती। सं० आदर्शिका, प्रा० आदरसिका, आरसिआ, हिं० आरसी।

अर्द्ध तत्सम—जो शब्द संस्कृत से मध्यभारतीय आर्य-भाषा में कुछ विकसित हुए और फिर उसी रूप में हिन्दी में गृहीत होगये, वे अर्द्ध तत्सम कहलाये, जैसे सं० पद्म, प्रा० पदुम, हिं० पदुम—"पद पदुम

(शेष पृष्ठ XXX पर देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहासों से उपेक्षित—ब्रजभाषा का गद्य-साहित्य

श्री गङ्गाप्रसाद कमठान

हिन्दी के इतिहासों में सबसे अधिक उपेक्षित विषय रहा है—ब्रज भाषा का गद्य साहित्य। इस दिशा में प्रवर इतिहासकारों ने जो अनुसंधान किये वे वार्ता-साहित्य, कथा साहित्य तथा टीका ग्रन्थों पर भी अपने में पूर्ण न हो केवल नोटिस मात्र हैं। ब्रज-जनपद की भाषा 'शौरसेनी प्राकृत' कही जाती थी। इसी प्रदेश में 'कथा सरित्सागर' जैसे बृहद् ग्रन्थ कथा-साहित्य का सृजन हुआ। विभूतिमयी ब्रजभाषा का गद्य-साहित्य विशेषकर लोक कथा साहित्य सरस और सुरुचिपूर्ण होता हुआ भी पद्य-साहित्य की भाँति गौरवन्त हुआ है। फलतः ब्रज की लोक-कथाओं में बिखरा गद्य-साहित्य गाथाओं, अवदान और कहानियों को अन्तर्गत लिये हुए पौराणिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है।

भक्तिकाल में रूढ़िवादी प्राचीन परम्पराओं से गुम्फित लोक कथाएँ वल्लभकुल सम्प्रदाय में निजी वार्ता अथवा निजघरी कथा की रूप-रेखा पर आश्रित हो घरू वार्ता का भी आंशिक रूप ले गई हैं। वस्तुतः ये वार्ताएँ ब्रजभाषा के गद्य-साहित्य की एक युग-प्राचीन थाती हैं।

श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव का यह मत—"इतिहासकारों ने यह तो स्वीकार कर लिया है कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व गद्य का किसी भी रूप में विकास नहीं हुआ था और हृदय में उद्भूत प्रत्येक भाव की अभिव्यक्ति पद्य के माध्यम से ही हुआ करती थी।"* खेद है, खोजपूर्ण तथ्यों पर टिका हुआ नहीं है। क्योंकि धौलपुर नरेश के निजी पुस्तकालय से ई० पन्द्रहवीं से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के ब्रजभाषा के गद्य में मँजे पत्र तथा लघु कथाएँ अव्यवस्थित पत्रों में प्राप्त हुई थीं। पत्रों में 'श्रीमुख पत्रियों' की तथा लघु-कथाओं में भेड़िए—बन्दर की आपसी वार्ता और कुछ धार्मिक-कथाओं के लघु रूप अधिक देखने में आए हैं। साथ ही अक्षर सुन्दर, स्पष्ट और जड़े हुए से हैं।

पन्द्रहवीं शती के पत्र की प्रतिलिपि दे रहा हूँ। पत्र राम महाराज को लिखा गया है जिसमें घोर वर्षा की चर्चा चलाई गई है किन्तु पत्र लिखने वाले का नाम कहीं पर भी लिखित नहीं है।

"सिद्धि श्री रांम मंहांराज कौं पाइलागव बंचने। तुमारो धर्म करम हम कौ सिखावो ताते स्नेह सौं, हृदय भर आयो। पत्र न आयो सो बहुत दिन रैन भए हैं। मेह हमारे गाम पै बरसो हतो। जामें गाभिन गऊ बह गई हती। अतिबलवांना गोवर्द्धनजी की कृपा तै नारायण अबी आयौ है। बाइ तुम्हारो विश्वास नीको हतो। मिती जेठ सुदि भौनवार संवत १५७८।"

संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा गद्य के इस प्राचीन पत्र में अनुनासिक व्यंजनों के रूप उपलब्ध होते हैं, जैसे—रांम, मंहांराज आदि।

१६ वीं शती में श्री हितहरिवंशजी के द्वारा प्रिय शिष्य विट्ठलदासजी को लिखे गये पत्र में ब्रजभाषा का गद्य साहित्यिक, परिष्कृत तथा सुसंस्कृत होता चला गया है—

"श्री सकल गुण संपन्न रसरीति बढ़ावन चिरंजीव मेरे प्राणन के प्राण बीठलदास जोग्य लिखितं श्री वृन्दावन रजोपसेवी श्री हरिवंश सुमिरन बंचनौ। जोरी सुमिरन मत्त रहौ। जोरी जोहें सुख वरषत है। तुम कुशल स्वरूप हौं। तिहारे हस्ताक्षर बारम्बार आवत हैं। सुख अमृत स्वरूप हों। पत्री बांचत आनन्द उमड़ि चलै है। मेरी बुद्धि कौं इतनी शक्ति नहीं जो कहि सकौं पर तोहि जानत हैं। श्री स्वामिनी जू तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। हम कहा आशीर्वाद देंय हम यही

* 'साहित्य-सन्देश' मई १९५५—ब्रज भाषा गद्य का विकास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशीर्वाद देत हैं कि तिहारौ आयुष बढ़ौ। और तिहारी सकल सम्पति बढ़ौ। तिहारे मन को मनोरथ पूरण होहु हम नेत्रनि सुख देखैं। हमारी भेंट यही है। यहां की काहू बात चिन्ता मत करौ। तेरी पहचान तैं मोकूं श्री श्यामाजू बहुत सुख देत हैं। तुम लिखी हौ दिन दश में आवोंगे सोई आशा प्राण रहे हैं। श्री श्यामाजू वेगि लैं आवैं। चिरंजीव कृष्णदास कौ जोरी प्रसन्न है। श्यामबंदिनी विहार चन्दन लेनौं। गोबिंददास संतदास की दण्डौत गांगू मैदा को कृष्ण सुमिरन बांचनौ।"

इससे प्रतीत होता है कि समास शैली से युक्त, लम्बी चौड़ी भूमिका के चौखटे में जड़ी, बहु विशेषणों से जटित सम्प्रदाय के आचार्य द्वारा शिष्य को लिखी पत्री होती थी। पत्र लिखने की शैली संस्कृत की पत्र-लेखन शैली से प्रभावित होती थी। पत्र जिस हेतु लिखा जा रहा है उस धर्म तथ्य की ओर केवल नाममात्र आभास का दिग्दर्शन होता है। यही पत्र की विशेषता है तथा उक्त शती के ब्रजभाषी गद्य की सहिष्णुता है। उस काल के पत्रों में 'श्री वृषभानुनंदिनी जयति' लिख कर श्री राधा को अधिक मान्यता दी गई है। अतएव पुष्ट-सम्प्रदाय के अधिकांश पत्रों में प्रारम्भिक भाग संस्कृत-गर्भित और शेष में ब्रजभाषा का सुथरा-मँजा गद्य चलता है। किन्तु सर्वत्र पत्रों में धार्मिक भावना का पुट प्रधान अङ्ग बना हुआ है।

सोलहवीं और सत्रहवीं शती के सन्धिकाल में लिखे गए पत्र की प्रतिलिपि दे रहा हूँ :

"श्री वृषभानुनंदिनी जयति। श्री हरिवंश बीठलदास के कोटिकोटि अपराध मैं खेबी आगले पाछिले। बीठलदास मेरे प्राण हैं जो शास्त्र मर्यादा सत्य है और गुरूमहिमा ऐसे ही सत्य है तौ ब्रज-नव-तरणि कदम्ब चूड़ामणि श्री राधे तिहारे स्थाये। गुरुमार्ग विषै अविश्वास अज्ञानी कों होत है। ताते यह मर्यादा राखनो। तुम दोऊ सफल आनन्द बरसो। बीठलदास को अहो सींचनौ।"

भक्तिकाल के वार्ता साहित्य में भी ब्रजभाषा की प्रौढ़ एवं सुन्दर गद्य रचना के दर्शन होते हैं। हरिरायजी द्वारा सम्पादित 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में १०६ संख्यक वार्ता एक ब्रज जनपदीय (ब्रजवासी) ब्राह्मण की वार्ता है—

"तब अधिकारी ने श्री गुसाईंजी सुं बिनती कीनी जो महाराज अमूको ब्रजवासी सूरत पठायो हुतो सो पत्र तथा हुंडी तीसरे दिन ले आयो है। तब श्री गुसाईंजी पत्र बांचिके देखें तो तामे वैष्णवन के समाचार लिखे हुते सो सब जाने।"

निस्संदेह, मध्यकाल ब्रजभाषा के गद्य की उन्नति का विकसित काल कहा जा सकता है, जिसमें भाषा का रूप गद्य के ढाँचे में ढला हुआ परिष्कृत दीखता है।

'कृष्णार्जुन संवाद ग्यान माला' पुस्तक सं० १८८३ की लिखी हुई है। यह ब्रजभाषा गद्य में है। मूल लेखक का नाम पुस्तक के आदि और अन्त के पुष्प में नहीं दिया है। मूल लेखक की यह महान कृति उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से कहीं अधिक पूर्व की लिखी प्रतीत होती है। क्योंकि पुस्तक के अन्तिम भाग का पाठ करने पर ज्ञात होता है कि लाला रामनाथ, जो सम्भवतः कायस्थ था, ने इसकी दूसरी प्रति सम्पादित की है 'इति श्री कृष्न-अर्जुन संवादे ग्यानमाला संपूरन समापता ॥ मिति जेठ सुदी ४ संवत् १८८३ मुकाम दलीप नग्र लिषत लाला रामनाथ की जु कोउ बाँचे सुनै ताकों श्री राम-राम ब्रह्मन को दण्डवत।"

उक्त पुस्तक की भाषा का स्वरूप इस प्रकार है :—
"येक समयौ श्री सुषदेव जु श्री व्यास जु के पुत्र राजा परीछत कैं आवत भये ॥ तिनकौ महा आदर सौं आगे देकैं लेत भये ॥ अरु सिंघासन बैठक देत भये तब राजा पारीछत पुछत हैं ॥ कै अहो सुषदेव जु आप हम पर महा कृपा करो ॥ जु हम कौं दरसन दये ॥ हम कौ सनाथ करौ।"

सत्यतः इस पुस्तक में आद्योपान्त ब्रजभाषा का सफल प्रयोग बन पड़ा है। आचार्य शिवनाथ की लिखी हुई 'सपनै परिछा' पुस्तक में प्राचीन ब्रजभाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उभरे रूप में दर्शन होते हैं। पुस्तक पर पूर्ण विराम संवत् १८८३ में लगा है। हास्यरस से रँगी हुई शिवनाथजी की रचना स्वप्न के फलाफल से पूर्ण है—

"सपनै में नूगै पावै तौ दुषन तै छूटै अनुफिकिर छुटै अनु परमेसुर नीकै राषै। सपनै में तामौ देषै तौ रोगु होइ। सपने में बड़ो मुतिया देषै तौ वेटा होइ छोटौ मुतिया देषै तौ बिटिया होइ।

पन्द्रहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं तथा अठारहवीं और उन्नीसवीं शती के ब्रजभाषा गद्य का तुलनात्मक अध्ययन हेतु विस्तार से समस्त सामग्री को न रख कुछ थोड़े उदाहरण व्याकरण के आधार पर अवश्य रखना चाहूँगा। उदाहरणार्थ कारक चिह्नों को ही लीजिए :—

	१६ वीं से ले १६ वीं	पन्द्रहवीं शताब्दी
कर्म—संप्रदान	कुं, कूं	कौं, को
करण—अपादान	सुं, सूं	सौं, सो सौ

क्रियाओं के नीचे लिखे रूप भी देखने योग्य है:—

वर्तमान	हु हूँ हैं	हौं हौं है
भूतकाल	हुतो हुते हुती	हतो हते हती

उदाहरणार्थ १५ वीं शती तथा अन्य शतियों (१६ वीं, १७ वीं, १८ वीं और १६ वीं शती) के ब्रजभाषा की गद्य के कुछ एक वाक्य नीचे दिये जाते हैं:—

पन्द्रहवीं शताब्दी:—

करौ—रीति-प्रीति हृदय में धारण करके कलेऊ करौ

हैं—पत्र न आयो सो बहुत दिन रैन भए हैं

कौं—ईगुर कौं तिलक दै

सौं—सौं कथा अन्त होवे कौ नहिं आवे

१६ वीं, १७ वीं, १८ वीं और १६ वीं शती :—

हौं—जो कहि सकै पर तोहि जानत हौं

सुं—तब अधिकारी ने श्री गुसाईंजी सुं विनती कीनी

हुतो—जो महाराज अमू को ब्रजवासी सूरत पठायो हुतो

बरसो—तुम दोऊ सफल आनन्द बरसो

खड़ी बोली हिन्दी में वर्तमान निश्चयार्थ नहीं पाया जाता है किन्तु पुरानी साहित्यिक ब्रजभाषा में यह काल मिलता है, 'तिहारे हस्ताक्षर बारम्बार आवत हैं।' यह वर्तमान कालिक कृदन्त है।

पन्द्रहवीं शती के गद्य में लिखी कथा का कुछ भाग देखने योग्य है—"सो एक दिन सियार मन्त्री और बन्दर महाराज वार्ता करत रसमग्न होइ गये। सो कछु फल पदारथ की सुधि नाहीं रही। सो अर्ध-रात्रि होइ गई। कथा अन्त होइवै को नहिं आवै। तब बंदरिया बन्दर सौं बोली महाराजाधिराज! कथा को सगरो फल जानियो ता उपरान्त मेरे सङ्ग मन लगाय रीति-प्रीति हृदय में धारण करके कलेऊ करौ। ददाजू के अच्छर बारम्बार आवत हैं।"

श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव ने लल्लूलालजी के बारे में जो आपत्ति उठाई है, "लल्लूलालजी तथा सदल मिश्र ने गद्य में पुस्तकें लिखने का कार्य फोर्ट विलियम कालेज तथा डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से किया था। उसके अतिरिक्त उनके पूर्व भी हिन्दी गद्य में बहुत सी रचनाएँ लिखी जा चुकी थीं किन्तु जो लोग किसी परिश्रम को प्रस्तुत न होकर लल्लूलाल जी को ही आधुनिक हिन्दी गद्य का जन्मदाता कह देते हैं निश्चय ही वे उन मौन तपस्वियों के प्रति महान् अन्याय करते हैं जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से साहित्य का भण्डार भरा है और जिनके पूर्व योग के आधार पर लल्लूलालजी को श्रेय प्राप्त हो सका है।"* वह वास्तव में निराधार तथ्यों पर टिकी हुई है। क्योंकि डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार, "खड़ी बोली का सबसे प्रथम प्रयोग लल्लूलालजी ने 'प्रेम-सागर' की भूमिका में किया है। लल्लूलालजी के ये वाक्य खड़ी बोली शब्द के व्यवहार पर बहुत कुछ प्रकाश डालते हैं, अतः ज्यों के त्यों नीचे उद्धृत किये जाते हैं। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी के आदि रूप का भी यह उद्धरण अच्छा नमूना है।" लल्लूलाल लिखते हैं—"एक समय व्यासदेव कृत श्रीमद भागवत के दशम स्कन्ध की कथा को चतुर्भुज मिश्र

* साहित्य-सन्देश मई ५५, ब्रजभाषा गद्य का विकास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने दोहे चौपाई में ब्रजभाषा किया। सो पाठशाला के लिए श्री महाराजधिराज, पुण्यवान, महाज्ञान मारकुइस विलजलि गवरनर जनरल प्रतापी के राज में श्रीयुत गुनगाहक गुनियन सुखदायक जान गिलक्रिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० ई० में श्री लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने विसका सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में यह नाम प्रेमसागर धरा।"+ डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत की पुष्टि श्री एफ. ई. के. की इस विचारधारा से हो जाती है, "The first work in this new dialect, and one which is regarded as a standard was Lallujilal's Prem sagar which is a Version of the tenth chapter of the Bhagavata Purana."×

यदि नभाआ भाषाओं में सरस, सरल और सुबोध शक्तिशाली गद्य-शैली का आविर्भाव शीघ्र से शीघ्र होगया होता, तो विना किसी अवरोध के भारतीय चिन्तन के पुनर्निर्माण में महान् योग मिलता, जिसके सहारे भारतीय मानसिक जागृति के विकास की मङ्गलमय बेला का उदय कितने ही समय की माँग से पूर्व होगया होता। और ब्रजभाषा कविता की जगह तर्क को अपनाकर अपना एक अलग ही रूप स्थिर कर लेती, उसकी सहोदरा बोलियाँ उसके साहित्यिक सौन्दर्य को बचाने में पीछे न रहतीं। फिर भी पन्द्रहवीं शती के ब्रजभाषा के गद्य में दार्शनिकता का पुट दीखता है। बात लोकाचार तथा मानव को मानव बनाने की भावना से भरी होती है। अधिक सूक्ष्म विचारों को वहन नहीं किए होती केवल कथात्मक रूप को ही—"मेरौ बेटौ रांम नांम कालिह घरै आयौ॥ वानैं मेरौ कह्यौ न मान्यौ। चाम की जीन घोड़ा पै कसवाइ, ईगुर कौ तिलक दै अँगरखा लै गयौ साँच, बाकौ सोच मोइ अधिक भयौ॥ बेटा कान्ह बा द्वार सौं कबहुँ न जइहैं अइसी डगर तै मानुष्य कौ पानी धूल जइसी हो जाइ॥"

लेखक के इस मत का प्रतिपादन अक्षरशः डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के विचारों से हो जाता है, "नभाआ भाषाओं में जहाँ भी कहीं गद्य का उपयोग हुआ है, वहाँ वह वैज्ञानिक या दार्शनिक या विचारात्मक रूप में न होकर, सीधे-सादे कथात्मक रूप में हुआ। यह बात प्राचीन गुजराती, आद्य पञ्जाबी, ब्रजभाषा, आद्य मैथिली और आद्य आसामी में उपलब्ध गद्य के उदाहरणों का अध्ययन करने मात्र से प्रमाणित होती है।"*

श्री अम्बाप्रसादजी का दृष्टिकोण गोरख-पंथी ग्रन्थों के विषय में, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल × के मत पर आधारित है, "हिन्दी साहित्य में गोरख-पन्थी ग्रंथ ही प्राचीन गद्य में लिखे मिलते हैं। यह ग्रंथ सं० १४०० वि० के मिलते हैं।" वास्तव में गोरख-बानी अर्थात् गोरख-पंथी ग्रंथों के पण्डित शिरोमणि डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के शोधानुसार, "मैं अधिक सम्भव यह समझता हूँ कि गोरखनाथ विक्रम की ग्यारहवीं शती में हुए। ये रचनाएँ जैसी हमें उपलब्ध हो रही हैं, ठीक वैसी ही उस समय की हैं, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसमें भी प्राचीन के प्रमाण विद्यमान हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः इनका मूलोद्भव ग्यारहवीं शती ही में हुआ हो।"+ फलतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गोरख पंथी ग्रंथों का गद्य १४ वीं शती से भी पूर्व ११ वीं शती के अन्त में जन्म ले विकास की ओर बढ़ उठा था।

हमारे इस मत का पुष्टीकरण डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के उल्लेख से भी हो जाता है, "मत्स्येन्द्रनाथ दसवीं शताब्दी से पूर्व अवतरित हुए थे.......गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे, इसलिए उनका समय

+ हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ ६३।

× A History of Hindi literature, Page 89.

* भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी पृष्ठ ११०

× हिन्दी साहित्य का इतिहास

+ गोरख-बानी (जोगेसुरी बानी, भाग १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इसी के आस-पास होगा। ....हिन्दी में भी गोरखनाथ की कई पुस्तकें पाई जाती हैं।"* निस्सन्देह गोरखपन्थी ग्रन्थों का कमल ११ वीं शती के अन्त में विकसित हो उठा था, जिसके पराग में भींजा हिन्दी का गद्य-साहित्य भी रूप-रेखा को लिए दिए एन-केन प्रकरणों सहित सुगन्धित हो उठा था। साथ ही ११ वीं-१२ वीं शती के सन्धिकाल में साफ-सुथरे गोरखपन्थी गद्य के लगभग तीन शताब्दी बाद ब्रज-भाषा के गद्य के नमूने दीख उठते हैं।

ब्रजभाषा के गद्य को मौखिक रूप देने वाले प्रभु गोकुलनाथजी की 'दो सौ बावन वार्ता' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एक साथ, एक साँस में उनकी नहीं कही जा सकतीं। गो० गोकुलनाथजी के मौलिक प्रवचन रूप वचनामृत जो उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध कर लिए गए तथा सुसम्पादित किए गए 'चौरासी वार्ता' के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'दो सौ बावन वार्ता' व्याकरण की दृष्टि से १७ वीं शती की रचना प्रतीत होती है इससे प्रतीत होता है कि श्री प्रभूदयालजी मीतल द्वारा किए गए अनुसन्धान अपने में पूर्ण नहीं हैं, "गोकुलनाथजी ने स्वयं उनको कभी नहीं लिखा था, किन्तु उनके गोकुलनाथजी कृत होने का इतना ही अभिप्राय है कि उन रचनाओं के मूल वचन स्वयं उनके मुख से निकले थे। इस प्रकार की मौखिक रचनाओं में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मुख्य हैं।"† 'क्या दो सौ बावन वार्ता' गोकुलनाथजी कृत हैं ? इस सम्बन्ध में लिखा डा० धीरेन्द्र वर्मा का लेख× पढ़ने योग्य है।

आशा है, आज के इतिहासकार पूर्व इतिहासकारों की परम्परागत प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ इतिहासों से उपेक्षित ब्रजभाषा गद्य की समस्त सामग्री को जुटा एक क्रमबद्ध इतिहास लिखने का सतत प्रयत्न करेंगे। इससे इतिहासकारों की व्यापक दृष्टि का तथा उनकी विशाल हृदयता का एवं साहित्य के विस्तृत क्षेत्र का योग कविता-कहानी से आगे बढ़ नष्ट होती सदियों के ऋषियों के कार्य को सुरक्षित कर सकेगा।

* हिन्दी-साहित्य (उसका उद्भव और विकास) पृष्ठ ३२-३३।

† अष्टछाप-परिचय पृष्ठ ७८।

× विचारधारा पृष्ठ १३६-१४५।

(पृष्ठ २३६ का शेषांश)

गोपाल रूप ही सर्वदा दृष्टि-गोचर होता है तथा वे 'अहीर' कृष्ण को ही अपना समझती हैं—

"जदपि अहीर जसोदा नन्दन तदपि न जात छड़े।
वहाँ बने जदुवंश महाकुल हमहिं न लगत बड़े॥"

कह कर वे इसी स्वाभाविक हृद्गत भावना का परिचय देती हैं।

इसी प्रकार राधा को अत्यन्त मैला वस्त्र पहनना स्वीकार है, किंतु वह उसे धुलवाना नहीं चाहती, क्योंकि उसमें कृष्ण कुछ ऐसी वस्तु दे गए हैं, जो धुल जाने के बाद मिल नहीं सकती। निम्नलिखित पंक्तियों से इसी की व्यञ्जना होती है।

"अति मलीन वृष भानु-कुमारी।
हरि स्रम जल अन्तर तनु भीजे,
ता लालच न धुवावति सारी॥"

अतः समस्त सूर-सागर सम्बन्ध भावना के चमत्कार पूर्ण प्रदर्शन से भरा पड़ा है, जहाँ कला मर्मज्ञ सूर की विलक्षण प्रतिभा पर विदग्ध हृदय को दङ्ग रह जाना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी युग में प्रसादजी की भूमिका

श्री सौमित्र एम० ए०, सा० र०

प्रसादजी की काव्य साधना का समय हिन्दी काव्य-विकास के दो युगों द्विवेदी एवं छायावाद युग के बीच फैला हुआ है। इन दोनों ही युगों में उनकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसका कारण यह है कि वे केवल काव्य की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के प्रयोक्ता ही नहीं वरन् नयी काव्य परम्परा के निर्माता भी रहे हैं। उनमें एक अनुयायी कलाकार की प्रतिभा न थी बल्कि एक अग्रणी रचनाकार की प्रतिभा थी। एक ओर उन्होंने कविता में रोमाण्टिक प्रवृत्तियों का विकास कर द्विवेदी-युग में ही काव्य के क्षितिज का विस्तार किया दूसरी ओर छायावाद के प्रधान कवि के रूप में उसकी कलात्मक शक्तियों को epic excellence पर पहुँचाया।

इस दृष्टि से स्पष्टतः उनके काव्य विकास की दो मंजिलें थीं। पहली मञ्जिल द्विवेदी-युग में समाप्त हुई, दूसरी छायावादी युग में। ये दोनों मञ्जिलें हिन्दी रोमाण्टिक काव्य विकास की भी मञ्जिलें हैं। इनमें से पहली प्रसादजी की आरम्भिक काव्य साधना की मञ्जिल थी जो उनके ऐतिहासिक महत्त्व की ओर संकेत करती है; दूसरी प्रौढ़ रचनाओं की, जो उनकी प्रतिभा की कलात्मक ऊँचाइयों को बताती है।

छायावादी कविता मूलतः द्विवेदी युग की रोमाण्टिक काव्य प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप है। अपनी काव्य-साधना की पहली मञ्जिल में प्रसादजी ने इन प्रवृत्तियों का आभास ही नहीं दिया वरन् उनके विकास की दिशा भी निर्धारित की। इसलिए ऐतिहासिक मूल्याङ्कन की दृष्टि से उनकी प्रारम्भिक रचनाओं का काफी महत्त्व है। वास्तव में ये रचनायें छायावादी काव्य परम्परा की आधार भूमि बनाती हैं जिसमें उसके विकास के बीज निहित थे। उनकी ये रचनायें एक ऐसे युग में लिखी गयीं जब कविता भाव की सरस भूमि से उतर कर यथार्थ के सुधारमूलक चिन्तन पर विकसित हो रही थीं; जिसमें न आन्तरिक प्रेरणा दिखाई देती थी, न भावना की तीव्रता। इस कविता की प्रेरणा प्रधानतः सामाजिक सुधार, रूढ़ि रीतियों से मुक्ति, राष्ट्रीय सङ्घर्ष की भावना अथवा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की आकांक्षा थी। इस चौमुखी दायरे से बाहर न जा सकने का परिणाम यह हुआ कि कविता ने कला का माधुर्य खो दिया और उसकी विषय भूमि का विस्तार जीवन की स्थूल माँगों की ओर हो गया। जीवन की स्थूल माँगों के प्रति काव्य का झुकाव वास्तव में कला का ह्रास नहीं बल्कि एक रचनात्मक दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया ही है। द्विवेदी-युग की कविता इसलिये आलोच्य नहीं कि उसमें जीवन की स्थूल माँगों के प्रति झुकाव था किन्तु इसलिए है कि उसमें जीवन की वास्तविकता को अक्सर उपयोगिता की स्थूल दृष्टि से देखा गया; जिसके कारण कविता में एक ऐसी सुधारवादी भावना प्रबल हो गयी जिसमें न भावनाओं का रस था, न स्वरों का सङ्गीत, न कल्पना का वैभव था न यथार्थ का मार्मिक चित्रण।

आवश्कता यह थी कि काव्य की इस परम्परा से एक सक्रिय दिशान्तर बनाकर नयी कविता के विकास का रास्ता बनाना; कविता को स्थूल विचार दृष्टि से मुक्त कर पुनः भावनाओं की भूमि पर प्रतिष्ठित करना; ताकि वह अपनी भावनाओं के सङ्गीतमय उल्लास से हृदय के सूक्ष्म तारों को छू सके। यह एक असाधारण काम था, जिसे प्रसादजी की असाधारण प्रतिभा ने पूरा किया। वे मूलतः रोमाण्टिक प्रकृति के कवि थे। इसलिए स्वभावतः ही कविता में जीवन की स्थूल वास्तविकता उन्हें आकृष्ट न कर सकी। उन्होंने एक नई भावभूमि पर ऐसी कविताओं की रचना आरम्भ की जिनमें भावनाओं की उन्मुक्त अभिव्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा कल्पना की नयी उड़ान दिखाई देती थी।

इस प्रकार द्विवेदीयुग में दो काव्य परम्पराओं का विकास हो रहा था। एक के प्रेरक आचार्य द्विवेदी थे दूसरी के प्रसादजी। द्विवेदीजी की काव्य दृष्टि अपेक्षाकृत सीमित, नैतिकता के भार से दबी हुई सुधारमूलक प्रकृति की थी; अतः उनके प्रभाव में निर्मित काव्य जैसा कि ऊपर संकेत किया, जीवन वास्तविकता की स्थूल अभिव्यक्ति से ऊपर न उठ सका। इसके विपरीत प्रसादजी की काव्य-दृष्टि अधिक विशद थी, जिसका प्रधान झुकाव सौन्दर्य भावना की ओर था, अतः उनकी कविता में जीवन के रमणीय रूपों के प्रति अनुरक्ति एवं प्रकृति के प्रति रोमाण्टिक आसक्ति नजर आती है, जिसमें आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ ही साथ कल्पना और सङ्गीत का अपूर्व सामञ्जस्य दिखाई देता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि जहाँ द्विवेदीजी के अनुयायियों की संख्या बहुत थी, वहाँ प्रसादजी के अनुयायी शायद गिनने को भी न थे। वे अकेले ही एक चतुर शिल्पी की तरह नये काव्य की मूर्ति बना रहे थे।

भारतेन्दु युग की कविता के अन्तिम दिनों में पं० श्रीधर पाठक ने रहस्यानुभूतिपरक एवं प्रकृति के प्रति रागात्मक भावना व्यक्त करने वाली रचनाओं का सृजन किया, जिनमें कल्पना के सौन्दर्य के साथ ही साथ भावनाओं की तीव्रता एवं एक नया रचना शिल्प दिखाई दिया। कविता में ये 'स्वच्छन्द विकास के चिह्न' थे। प्रसादजी ने इसी 'स्वच्छन्द विकास' के सूत्रों को अपनाया और द्विवेदीजी के प्रभावान्तर्गत निकसित हो रही कविता से सक्रिय दिशान्तर दिखाते हुए भावानुभूति एवं कल्पना वैभव से परिपूर्ण कविताओं की रचना आरम्भ की। और इस तरह द्विवेदी कविता के समानान्तर कविता के नये विकास की आधार शिला रखी। उनकी पहली रचना सन् १९०६ में लिखी गयी। इसके बाद वे निरन्तर लिखते रहे। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ मुख्यतः 'इन्दु' में निकलीं। हिन्दी कविता के इतिहास में इस पत्र का भी लगभग वही महत्त्व है जो 'सरस्वती' का है। 'इन्दु' नयी कविता का 'मञ्च' ही न था वरन् नये सौन्दर्यात्मक मूल्यों का विचारक भी था। उसके द्वारा प्रसादजी अपनी भाव-परक कविताओं से नयी कविता के विकास की दिशा निर्धारित कर रहे थे, साथ ही कला के नये मान मूल्य भी स्थिर कर रहे थे।

द्विवेदी युग के काव्य की दृष्टि नैतिक एवं सुधारमूलक थी, जो काव्य के स्वच्छन्द विकास के लिए बाधक थी, पं० श्रीधर पाठक ने जिन दिशाओं की ओर संकेत किया कविता उनकी ओर भी न बढ़ सकी। इसलिए यह आवश्यकता थी—इस दृष्टि के सम्मुख आई हुई नैतिक तथा सुधारमूलक कुण्ठा को हटा कर भावानुभूति की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करने की। यह काम केवल नयें ढङ्ग की रचना करने से ही पूरा न होगा—प्रसादजी यह समझते थे, अतः उन्होंने काव्य प्रयोजन का विवेचन करते हुए रचना सम्बन्धी नयी धारणाओं को भी निर्भीकता से लोगों के सम्मुख रखा। 'इन्दु' की पहली संख्या की प्रस्तावना में ही उन्होंने लिखा—

"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं, उसके लिए कोई विधि का निबन्ध नहीं—क्योंकि साहित्य स्वतंत्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है—संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है वही साहित्य का विषय है।"

हो सकता है प्रसादजी का यह वाक्य विवादास्पद हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं युग की सुधारमूलक साहित्यिक धारणा की प्रतिक्रिया में साहित्य के प्रयोजन की यह मीमांसा रोमाण्टिक कविता के विकास का आदर्श थी जो कविता को यथार्थ के सुधारमूलक चिन्तन से ऊपर उठा भावनाओं की व्यापक भूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहती थी। एक दूसरे अङ्क में उन्होंने "भावमयी उत्तेजनामयी, अपने आपको भुला देने वाली कविताओं" की आवश्यकता पर जोर देते हुये अपने युग के कवियों को "जातीय सङ्गीतमयी वृत्ति स्फुरण कारिणी, आलस्य को भङ्ग करने वाली, आनन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरसाने वाली, धीर गम्भीर पद-विक्षेपकारिणी, शान्तिमयी कविता की ओर" अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया। क्योंकि उनके मतानुसार "सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण कर के जो समाज के भाव बदल रहे हैं; उनके अनुकूल कविता नहीं मिलती।"

द्विवेदी युग के यौवनकाल में कविता की स्वतन्त्र सत्ता पर जोर दे कर भावमूलक काव्य परम्परा की रचना के लिए जमीन तैयार करना प्रसादजी का एक ऐतिहासिक कार्य था जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक पूरा किया।

अपने युग की सामान्य कविता की चर्चा करते हुए उन्होंने एक स्थान पर कहा है—"पुरानी कविता को पढ़ना तो मानो महाद्वेष सा प्रतीत होता है क्योंकि इस ढङ्ग की कविता बहुतायत से हो गयी है ···।" प्रसादजी की समस्त काव्य साधना इस पुरानी कविता की प्रतिक्रिया में आत्मा के सङ्गीत का समारोह है जिसमें पहली बार रोमाण्टिक प्रवृत्तियों का पूरा-पूरा आभास मिलता है। विशेष विस्तार में न जाते हुए यहाँ प्रसादजी की पहली मञ्जिल की रचनाओं की सामान्य विशेषताओं पर विचार कर लेना ही अलम् होगा।

(१) प्रकृति के प्रति अनुरक्ति—अभी तक हिन्दी कविता में प्रकृति उपेक्षणीय ही रही। प्रसादजी ने पहली बार उसको उसकी स्वतन्त्र एवं निजी सत्ता में देखा। प्रिय-प्रवास में अवश्य ही प्रकृति के कई रूपों का चित्रण हुआ किन्तु वह मुख्यतः कथा की पृष्ठभूमि के रूप में ही है अतः उसमें हृदय की उन्मुक्त अनुभूतियों का आभास अपेक्षाकृत कम मिलता है। प्रसादजी ने प्रकृति के प्रति एक नयी भावात्मक दृष्टि व्यक्त की तथा उसके भिन्न-भिन्न रूपों की मन पर जो प्रतिक्रिया हुई उसे वाणी प्रदान की।

मनोवृत्तियाँ खग कुल सी थी सो रहीं
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में
नील गगन सा शान्त हृदय था हो रहा
बाह्य आन्तरिक प्रकृति सभी सोती रही

प्रकृति के साथ मानव हृदय का यह रागात्मक सम्बन्ध सर्व प्रथम प्रसादजी की रचनाओं में व्यक्त हुआ। मन की भिन्न-भिन्न भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से उपादान चुन कर भावाभिव्यक्ति को तीव्र करने की यह प्रणाली हिन्दी कविता के नये विकास की सूचक थी।

(२) प्रकृति का मानवीकरण—छायावाद की एक मुख्य विशेषता प्रकृति का मानवीकरण करना थी। प्रकृति को मूर्त रूप देने के लिए उसके भिन्न-भिन्न रूपों का मानवीकरण करने की प्रवृत्ति प्रसादजी में आरम्भ से ही दृष्टिगोचर होती है। 'पावस प्रभात' नामक इस कविता में मानवीकरण कितना सजीव हुआ है यह द्रष्टव्य है:—

क्लान्त तारकागण की मद्यप मण्डली
नेत्र-निमीलन करती है, फिर खोलती
रिक्त चषक-सा चन्द्र लुढ़क कर है गिरा
रजनी के आपानक का अब अन्त है
रजनी के रञ्जक उपकरण बिखर गये
घूँघट खोल उषा ने झाँका और फिर—
अरुण अपाङ्गों से देखा, कुछ हँस पड़ी
लगी टहलने प्राची प्राङ्गण में तभी।

(३) प्रेमानुभूति की निर्बन्ध अभिव्यक्ति—द्विवेदी कालीन काव्य में प्रेमानुभूति की निर्बन्ध अभिव्यक्ति का सर्वथा अभाव था। सुधार मूलक मनोदृष्टि एवं स्थूल नैतिक मूल्यों के कारण इस कविता में प्रेम की अभिव्यक्ति न हो सकी। प्रसादजी जो साहित्य को सर्वतोगामी प्रतिभा का प्रकाशन समझते थे—जीवन एवं जगत के समस्त रमणीय रूपों की ओर आकृष्ट हुये। इन रमणीय रूपों में प्रेम का कोई गौण स्थान नहीं। अतः प्रसादजी की कविताओं में प्रेमानुभूति परक रचनाओं की संख्या कम नहीं।

(४) आध्यात्मिक भावों की व्यञ्जना—द्विवेदी युग के दूसरे दशक की भाव-चेतना गीतांजलि के प्रभाव से मुक्त न रही। गीतांजलि का काव्य-चेतना पर गहरा प्रभाव पड़ा। अन्य कवियों की तरह प्रसाद जी भी उससे अछूते न रह सके। किन्तु इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि प्रसादजी की रचनाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं नाटक कैसे लिखता हूँ ?

श्री विष्णु प्रभाकर

[यह लेख हमारे नाटक अङ्क के लिए लिखा गया था, किन्तु कुछ विलम्ब से आने के कारण उस अङ्क में नहीं छप सका था।]

—सम्पादक

'मैं नाटक कैसे लिखता हूँ' समझ में नहीं आता कि इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ। सच पूछिये तो मुझे अपने लिखने में कोई भी बताने योग्य बात दिखाई नहीं देती। न मुझे लेट कर लिखने का शौक है और न खड़े होकर। मेज पर, खाट पर, जमीन पर, घर में, जङ्गल में सब कहीं मैं लिख लेता हूँ और अगर कोई सीधे मुझी पर प्रहार न करे आस-पास शोर, तोड़-फोड़ और दूसरा कैसा भी उत्पात क्यों न हो मुझ पर उसका कोई विशेष असर नहीं होता। अधिकतर अपने हाथ से लिखता हूँ पर बोल कर भी लिखा सकता हूँ········ ।

लेकिन प्रश्न केवल यही नहीं है कि मैं कैसे लिखता हूँ ? बल्कि यह है कि मैं नाटक कैसे लिखता हूँ ?

उसे वार्तालाप के रूप में लिखना पड़ता है। कहानी में तो लेखक भी बहुत कुछ कह सकता है पर नाटक में सब कुछ पात्रों को कहना पड़ता है, फिर कोष्ठक, निर्देशक, अङ्क, दृश्य इन सब का भी झमेला रहता है। ध्यान रखना पड़ता है कि नाटक पढ़ा नहीं जायेगा देखा या सुना जायेगा। तो भाषा कुछ सरल होनी चाहिये और भावों में तीव्रता रहनी चाहिये।''''

तब मैंने स्कूल के दिनों में बच्चों की एक पत्रिका के सम्पादक को एक पत्र लिखकर लेखक होने की दीक्षा ली थी पर फिर कविता से शुरू करके गद्य काव्य और लेखों का क्षेत्र पार करता हुआ शीघ्र ही कहानी के क्षेत्र में आगया। यहाँ आकर लगा कि जैसे इस यात्रा का अन्त आ पहुँचा है लेकिन अक्सर जिसे हम अन्त समझ लेते हैं वही आरम्भ बन जाता है, कम से कम मेरे नाटक लिखने की बात कहानी में ही आरम्भ होती है, वह आरम्भ कथा की तरह रोचक और नाटक की तरह नाटकीय है। वह दिन मुझे बहुत अच्छी तरह याद है उस दिन मेरा विवाह हुआ था, ऐसा रोमाञ्चक दिन किसे याद न रहेगा।''''

उस दिन की बात है। बारात खाने पर बैठी थी, उसमें कई साहित्यिक बन्धु भी थे। जैनेन्द्रकुमार,

---

आरम्भ से ही एक आध्यात्मिक भावना दिखायी देती है। गीताञ्जलि के प्रभाव ने उसे और भी अधिक प्राञ्जल रूप में व्यक्त होने की प्रेरणा दी। यह अध्यात्म भावना अधिकतर भक्त कवियों की तरह ईश्वरीय सत्ता के महिमा वर्णन में ही व्यक्त हुई है; रहस्यानुभूति के रूप में कम। जैसे···············

जिस मन्दिर के दीप इन्दु दिनकर औ तारा
उस मन्दिर के नाथ को
निरुपम निर्मम स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा
पूरे विश्व गृहस्थ को।

इन प्रवृत्तिगत विशेषताओं के अतिरिक्त प्रसादजी की इस समय की रचनाओं में शैलीगत विशेषताओं की भी प्रचुरता दिखाई देती है जो छायावादी काव्य के नये शैलीविन्यास की पूर्व सूचना देती हैं।

इस प्रकार प्रसादजी की द्विवेदीकालीन काव्य-साधना कविता के इतिहास में एक उल्लेखनीय स्थान रखती है। इसका महत्त्व इसी से प्रगट होता है कि इसने एक व्यापक भावभूमि तैयार कर हिन्दी कविता के उस विकास को प्रशस्त किया जिसमें 'परिवर्तन' 'आँसू' 'कामायनी' 'राम की शक्तिपूजा' 'तुलसीदास' आदि श्रेष्ठतम कृतियों की रचना सम्भव हो सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाकर माचवे, नेमीचन्द्र जैन तथा यशपाल जैन आदि। न जाने किस रास्ते से होकर बात मेरे लिखने तक पहुँच गई तब एकाएक माचवेजी ने कहा—"विष्णुजी, आप नाटक क्यों नहीं लिखते। आपकी कहानियों में नाटकीय तत्त्व अधिक रहता है। आप यदि नाटक लिखें तो अवश्य सफल होंगे।"

यह बात मेरे मन में खुबकर रह गई पर मैं शीघ्र ही कोई नाटक न लिख सका। उन्हीं दिनों एक प्रसिद्ध मासिक 'हंस' का 'एकाङ्की नाटक अङ्क' प्रकाशित हुआ, हिन्दी में शायद वह पहला प्रयास था। नाटक लिखने वाले तब उँगलियों पर गिनने लायक थे, एकाङ्की तो और भी कम लोग लिखते थे। कहना नहीं होगा उस अङ्क ने मित्र के सुझाव को बल दिया और मेरे मन में नाटक लिखने की बात रूप ग्रहण करने लगी।

आखिर कुछ दिन बाद मैंने एक नाटक (हत्या के बाद) लिखा और छपने के लिए एक पत्रिका में भेज दिया, उत्तर के लिये उत्सुक होना स्वाभाविक ही था। लेकिन बहुत दिन तक कोई उत्तर नहीं आया। इसी तरह कई महीने बीत गये तब एक दिन क्या देखा, वह नाटक लौट आया है, बड़ा धक्का लगा क्योंकि पत्रिका बहुत प्रसिद्ध थी और उसके सम्पादक तो उससे भी प्रसिद्ध साहित्यिक थे (सौभाग्य से आज भी हैं।) तब वे बन्धु गलत कहते थे, मैं नाटक नहीं लिख सकता। उन दिनों साधारणतया कहीं से लौटी रचना को निकम्मी समझ कर मैं फाड़ कर फैंक देता था, लेकिन उस बार न जाने क्या हुआ, मैंने उस नाटक को कुछ संशोधन करने के बाद (असल में कुछ संक्षिप्त करने के बाद) एक दूसरी पत्रिका (हंस) में भेज दिया, अगले मास वह उसमें छपा और यही नहीं आलोचना साहित्य की प्रसिद्ध पत्रिका 'साहित्य सन्देश' ने उस मास में प्रकाशित नाटकों में उसे पठनीय भी माना।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मेरी कहानियों में जो नाटकीय तत्त्व रहता है उसकी ओर जब मेरा ध्यान दिलाया गया तभी मुझ में नाटककार होने की वृत्ति जागी। यूँ तो नाटककार मैं आज भी नहीं हूँ पर इस कला से मेरा सम्बन्ध बचपन से ही रहा है। जैसा कि सब गाँवों में होता है मेरे गाँव में भी स्वाँग आदि बहुत होते थे। रामलीला हमारे गाँव की दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। नाटक की तरह पूरे दस दिन तक उसका अभिनय होता था और मेरे चचा लोग उसमें भाग लेते थे। हमारा भी मन ललचाता था पर राम की सेना के बन्दर बनने के अलावा हम कुछ और आगे नहीं बढ़ पाये। हाँ लालच को पूरा करने के लिए घर पर हम सब बच्चे अपनी अलग रामलीला खेल कर बड़ों की नकल अवश्य कर लिया करते थे।

आगे चल कर जब पञ्जाब में रहना हुआ तब हिन्दी का शुद्ध उच्चारण होने के कारण अनायास ही मुझे तत्कालीन पारसी थियेटर स्टेज पर स्थान मिल गया। फिर तो मैं अभिनेता, निर्देशक, मन्त्री यहाँ तक कि एक नाटक मण्डल का संस्थापक भी बन गया। सर्व श्री आगा हश्र, बेताब, राधेश्याम कथावाचक आदि तत्कालीन नाटककारों के कितने ही नाटक हमने खेले। कृष्ण और दशरथ से लेकर 'एक वेद, वेदनी बेटा बेटी साथ' इस मन्त्र के बल पर शास्त्रार्थ जीतने वाले विदूषक तक का अभिनय मैंने किया। आज तो मुझे देख कर किसी को विश्वास नहीं आयगा पर तब नाटकों के सैकड़ों शेर मुझे याद थे। उस उछल कूद, उस अस्वाभाविक वार्तालाप का भी अपना एक मजा था। असल में उन दिनों नाटकों की एक धूम थी, एक नशा था लेकिन जैसे बुझने से पहिले दीया एक बार तेजी से जलता है वैसी ही दशा पारसी थियेटर स्टेज की थी। बहुत शीघ्र सिनेमा भारत में आ पहुँचा और एक सवेरे उठने पर हमें पता लगा कि लोगों की रुचि नाटकों में बिल्कुल नहीं रही है। हमारा नशा भी सैलाब के पानी की तरह एक थकान छोड़ कर उतर गया। सब शेर भूल गये, लेकिन नाटककार होने की भावना किसी कोने में दबी रह गई और जब मैं कहानी लिखने लगा तब वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दबी हुई भावना फिर जाग उठी, अभिनय न सही कहानियों के वार्तालाप के रूप में ही वह अपने को प्रकट करने लगी।

इस प्रकार पारसी थियेटर रङ्ग-मञ्च से सम्बन्ध, कहानियों में नाटकीय तत्त्व का रहना, मित्र का सुझाव और 'हंस' के एकाङ्की अङ्क का प्रकाशन, ये सब मिल कर मेरे नाटककार होने के कारण बने। लेकिन इन बाहिरी प्रेरणाओं के अतिरिक्त एक और प्रेरणा होती है जिसका स्रोत खोजना असम्भव जैसा ही है। वह प्रेरणा ऐसी ही है जैसे कोयल में गाने की और बये में घोंसला बनाने की प्रेरणा।

मैं नाटक लिखता हूँ और जब लिखता हूँ तो मेरे सामने कई बातें रहती हैं क्योंकि नाटक कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं कि कमरे में बैठ कर उसका रस लिया जासके। बेशक बहुत से नाटक ऐसे ही हैं और आज भी बहुत से लेखक इसी दृष्टि से लिखते हैं, शुरू में मैंने भी इसी प्रकार के नाटक लिखे। लेकिन केवल वार्तालाप रहने से ही कोई रचना-नाटक नहीं बन जातीं, नाटक दृश्य और श्रव्य काव्य है, उसमें नेत्रों और कानों का व्यापार प्रमुख रहता है, इसलिए केवल पढ़ने के लिए नाटक लिखने का कोई मूल्य नहीं है। नाटक का उपयोग आज तीन स्थानों पर है— सिनेमा, रङ्ग-मञ्च और रेडियो पर। सिनेमा के लिये मैंने कभी कुछ नहीं लिखा। जो लिखा है वह केवल अमेचर रङ्गमञ्च और रेडियो के लिये। हिन्दी रङ्गमञ्च अभी निर्माण की स्थिति में है। पारसी थियेटर रङ्ग-मञ्च की अस्वाभाविकता के लिये अब कोई स्थान नहीं रह गया है। प्राचीन काल के रङ्गमञ्च की जटिलता और भाव-प्रदर्शन के लिए अस्वाभाविक उत्तेजना भी अब नहीं रही है। देवता और राजा रानी आदि पात्रों का स्थान जैसे साधारण मानव ने ले लिया है उसी तरह रङ्गमञ्च और अभिनय में भी यथार्थवाद और सरलता का समावेश हो गया है। चूँकि नाटक सब से बड़ी सामाजिक कला है उसका अधिक से अधिक जनता से सम्बन्ध है, इसलिये सफल नाटक की भाषा भी वही हो सकती है जो अधिक से अधिक लोगों की समझ में आ सके। नाटक लिखते समय इन बातों का और इन जैसी दूसरी बातों का ध्यान रहता ही है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है हिन्दी रङ्गमञ्च अभी निर्माण की अवस्था में है, पूरी तरह विकसित नहीं हो पाया पर हो रहा है। जहाँ तक सम्भव हो सकता है मैं उससे सम्बन्ध बनाये रखता हूँ। नाटक देखता हूँ, नये-नये प्रयोगों का अध्ययन करता हूँ बल्कि मैं कहूँगा अभी लिखने से अधिक अध्ययन की ओर मेरी रुचि है, कई नाटक इसी कारण अधूरे पड़े हैं। सच तो यह है कि अभी तक मैंने रेडियो के लिए ही लिखा है। उनमें से कई एकाङ्की रङ्गमञ्च पर आये हैं और उन्होंने मेरे इस विश्वास को दृढ़ किया है कि रङ्गमञ्च और रेडियो कला की दृष्टि से बिल्कुल दो चीजें हैं।

रेडियो नाटक केवल-श्रव्य काव्य है। नाद और शब्द ही उसका आधार है। रङ्गमञ्च पर अभिनेता अद्भुत हाव-भाव से जनता को हँसा सकता है पर रेडियो पर वह सारा काम शब्द और उनके उच्चारण पर ही निर्भर है। रेडियो चूँकि शब्दों की भाषा है इसलिए वहाँ घटनाओं का बहुत अधिक महत्त्व नहीं है, भावना का महत्त्व है। इसलिए रेडियो पर सङ्गीत-रूपक, मॉनोलाग और मनोवैज्ञानिक नाटकों का पुनर्जीवन हुआ है। इसके अतिरिक्त वहाँ कुछ ऐसी पाबन्दियाँ हैं जिनका सम्बन्ध उसके सरकारी होने से है। रेडियो उसी कला का प्रचार व प्रसार करता है जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त है।

यूँ सुभीते भी वहाँ बहुत हैं, पृष्ठभूमि का सङ्गीत है, पुरानी स्मृति को आसानी से रूपान्तरित किया जा सकता है। हवा, आँधी-पानी, समुद्र का गर्जन-तर्जन, नदी की लहरों का सङ्गीत, सब कुछ बड़ी सरलता से नाद के द्वारा सुनने वालों के मस्तिष्क पर अङ्कित कर दिया जा सकता है। कथा पर काल और समय का कोई बन्धन नहीं है। क्षण भर में दिल्ली से लैपलैण्ड पहुँचा जा सकता है और बच्चे को बूढ़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया जा सकता है। अभिनेताओं के लिये वेशभूषा रुपये की कोई शर्त नहीं है, शर्त बस आवाज की है। वहाँ भीम का पार्ट कोई भी दुबला-पतला पर भारी आवाज का व्यक्ति कर सकता है।

सो इन बातों का ध्यान न रखूँ तो नाटक नाटक कैसे बने ? जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है मुझे ऐतिहासिक नाटक लिखने में सब से कम रुचि है। जो एक दो लिखे हैं वे असल में लिखाये गये हैं। मैंने दो बड़े ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं 'समाधि' व 'नवप्रभात'। समाधि बड़ा है अभिनेय नहीं है। वह मञ्च पर आवे इससे पूर्व मुझे उसे आधा कर देना होगा। 'नवप्रभात' इस दृष्टि से सफल है। कुछ संशोधनों के बाद वह रङ्गमञ्च पर लाया जा सकता है। ये संशोधन इसलिये आवश्यक हैं कि मूलतः मैंने उसे रेडियो के लिये लिखा था।

सबसे अधिक रुचि मुझे मनोवैज्ञानिक नाटक लिखने में है। सामाजिक, घरेलू या राजनीतिक कैसा भी कथानक हो मैं उसका ताना-बाना मनोवैज्ञानिक आधार पर ही बुनता हूँ। मेरे लिये मनोवैज्ञानिक अध्ययन का अर्थ है कि मनुष्य जो कुछ दिखाई देता है केवल वही नहीं है, उसके अतिरिक्त वह कुछ और भी है, बल्कि वह और कुछ ही अधिक है। आदर्श और यथार्थ का समन्वय मुझे प्रिय है, मानवता मेरा लक्ष्य है। हाँ, हिन्दी रङ्गमञ्च अभी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से घबराता है, वहाँ व्यंग सर्वप्रिय है।

मैं एक ही बार में कोई नाटक नहीं लिख पाता। बड़े नाटकों में महीने ही नहीं, वर्ष लगे हैं छोटे नाटकों में भी कई दिन लग जाते हैं। अक्सर विचार महीनों मस्तिष्क में घूमते रहते हैं, कभी कोई विशेष विचार सूझता है तो उसे कहीं लिख कर डाल देता हूँ घटनाओं की, आँखें खुली रक्खें तो जीवन में कोई कमी नहीं है। मैं विचारों के माध्यम से कम, घटनाओं के माध्यम से अधिक लिखता हूँ, यानी विचार लेकर घटनाओं का निर्माण नहीं करता बल्कि अधिकतर जीवन को देख कर उस पर से विचार लेता हूँ।

जो मैंने नहीं देखा जिसका मैंने अध्ययन नहीं किया, जो मेरे अनुभव में नहीं आया उसको लेकर मैं बहुत कम लिखना पसन्द करता हूँ।

किसी के आदेश पर या प्रार्थना पर भी लिखना कठिन पड़ जाता है। यूँ कभी-कभी लिखना पड़ता ही है। पेट और परिवार का उत्तरदायित्व कुछ न कुछ लिखवाता ही रहता है पर फिर भी सच यही है कि जो किसी भी प्रकार के दबाव से लिखा गया है उसमें रस नहीं है, है तो कम है। स्कूल, कालेज, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सभी प्रकार की ओर से बराबर माँग आती रहती हैं, पर याद नहीं पड़ता कि कभी किसी की इच्छा पूरी कर सका हूँ। यूँ इन माँगों का असर होता अवश्य है। और मन भी जिस प्रेरणा के सहारे चलता है उसमें भी सामाजिक तत्त्व कम नहीं रहते। आखिरकार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी ही तो है।

मेरे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटकों में जो बहुत लोकप्रिय हुए हैं उनमें से कुछ ये हैं:—

(१) उपचेतना का छल।
(२) दोराहा।
(३) और वह जा न सकी।
(४) जहाँ दया छाप है।
(५) जज का फैसला।
(६) लिपस्टिक की मुस्कान (व्यङ्ग प्रधान)।
(७) ममता का विष।
(८) दूर और पास।

इनमें से कुछ तो मराठी, कन्नड़ तथा आसामी आदि भाषाओं में अनूदित होकर प्रसारित हो चुके हैं।

मैंने कुछ मॉनोलोग भी लिखे हैं। रेडियो को दृष्टि में रखते हुए मैंने उस टैकनीक में कुछ परिवर्तन किया है यानी उसमें कथा-सूत्र को बनाये रखा है। धुआँ, 'सड़क' तथा 'नहीं, नहीं, नहीं' पूर्ण रूप से सफल हैं यह तो नहीं माना जा सकता पर उस दिशा में एक बढ़ा हुआ कदम अवश्य है। संक्षेप में मेरे नाटक लिखने की कहानी यही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना

लोक जीवन और साहित्य—लेखक-डॉक्टर रामविलास शर्मा, प्रकाशक-विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। पृष्ठ १६६, मूल्य ३॥)

प्रस्तुत पुस्तक में डॉक्टर रामविलास शर्मा के आठ साहित्यिक निबन्ध संग्रहीत हैं। इन सभी निबन्धों को एक कोटि में बाँधना तो कठिन होगा किन्तु इनके सम्बन्ध में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सिवाय 'फ़िराकजी और हिन्दी' वाले लेख के और सभी गम्भीर सैद्धान्तिक चिन्तन का परिचय देते हैं। सभी निबन्ध साहित्यिक हैं और सरस साहित्यिक शैली में, जिसके पीछे एक विस्तृत अध्ययन की परम्परा है, लिखे गये हैं। शर्माजी के विचारों से चाहे कोई सहमत न हो किन्तु उनका हास्य-विनोद और उनके दिये हुए साहित्यिक उद्धरण प्रत्येक विनोद प्रिय लेखक को प्रसन्नता देंगे।

शर्माजी मार्क्सवादी विचार धारा के हैं और उन्होंने प्रसादजी जैसे छायावादी कवि में भी वर्ग-सङ्घर्ष और वर्गहीन समाज के मार्क्सवादी तत्त्व खोजने का प्रयत्न किया है। असली बात तो यह है कि हम किसी को चाहे जितना एकाङ्गी कहें कोई विशुद्ध एकाङ्गी नहीं होता। फिर महाकवियों में तो सभी तत्त्व रहते हैं किन्तु वे किसी एक के नहीं हो जाते। प्राचीन काल में जैसे तुलसीदासजी नहीं छोड़े जा सकते वैसे वर्तमान युग में प्रसादजी को सभी अपनाना चाहते हैं। 'जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।' प्रसादजी संसार को मिथ्या नहीं मानते, प्रसादजी जड़ और चेतन को एक मानते हैं। यहाँ तक कि प्रसादजी भौतिकवादियों के साथ हैं किन्तु जहाँ वे चित्तशक्ति की व्यापकता मानते हैं वहाँ वे भौतिकवाद से पृथक हैं। शर्माजी के हिसाब से परिवर्तनशील के साथ शाश्वत का मेल चाहे असङ्गत हो किन्तु उस अलौकिक सत्ता की यही विशेषता है कि वह असङ्गतियों में भी सङ्गति स्थापित कर देती है। जिस प्रकार हेगिल द्वन्द्वात्मक गतिशीलता को मानते हुए भी मार्क्सवादी नहीं हैं और न मार्क्स इस कारण हेगिलवादी है उसी प्रकार प्रसादजी भी भौतिकवादी नहीं। कामायनी में सङ्घर्ष की आंशिक विजय है। पूर्ण विजय श्रद्धा की ही है। कामायनी में जहाँ सङ्घर्ष है वहाँ यन्त्रों की बुराई एवं सरल जीवन और अहिंसा के गांधीवादी तत्त्वों की बड़ाई भी है। फिर भी यह लेख प्रसादजी के प्रभाव विस्तार और मूल्याङ्कन में विशेष रूप से सहायक होगा।

सौन्दर्य की उपयोगिता शीर्षक लेख विशेष रूप से विचारोत्तेजक है। भौतिकवादी होने के कारण शर्माजी वस्तुगत सौन्दर्य को अधिक महत्ता देते हैं। उन्होंने विषयीगत (Subjective) सौन्दर्य की व्याख्या विषयी के ज्ञान की श्रेणी से और उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँच से की है। यह बड़ी सुन्दर व्याख्या है किन्तु विषयी की रुचि बहुत कुछ हेर-फेर ला सकती है। यह मानना ही पड़ेगा। यद्यपि फिराकजी के हिन्दी विरोध की हँसी उड़ाई जाने में मुझे भी प्रसन्नता होती है तथापि यह मेरी कमजोरी है। उनको तो यह सोच कर क्षमा कर देना चाहिए था कि वे उर्दू के उस वातावरण में पले हैं कि जहाँ समुद्र का समुन्दर हो जाता है और प्रसाद परसाद। वहाँ कोयल कमल की अपेक्षा कंवल को अधिक पसन्द करना स्वाभाविक ही है। रहा कृति को 'कीर्ति' कर देना वह एक कदम आगे की बात है। फिराकजी वस्तु की अपेक्षा उसके लक्ष्य को अधिक महत्त्व देते हैं। कृतियाँ कीर्ति के लिए ही लिखी जाती हैं फिर इसका विरोध क्यों ? यह तो रही विनोद की बात, किन्तु पुस्तक चाहे विनोद मन्दिर का प्रकाशन हो उसमें गाम्भीर्य है जो चिन्तन और विवेचन की अपेक्षा रखता है। —गुलाबराय

भारत-दुर्दशा—लेखक–श्री रामप्रकाश अग्रवाल, एम० ए०, प्रकाशक–सरस्वती प्रेस बुक डिपो, मेरठ। पृष्ठ १६६, मूल्य १।)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित नाटिका 'भारत-दुर्दशा' इधर कुछ परीक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक हो गई है। अतएव परीक्षार्थियों की सहायता के लिए इस कर कई सहायक पुस्तकें पिछले एक-दो वर्ष में निकल गई हैं। इनमें प्रस्तुत पुस्तक सबसे सुन्दर, छात्रों के लिए उपयोगी और त्रुटि-रहित निकली है। छपाई कागज की सुन्दरता के रहते हुए भी मूल्य बहुत कम रक्खा गया है।

कविता

'उद्‌जन' (काव्य संग्रह)—लेखक–शशिभोगलेकर, प्रकाशक–सूर्यप्रभा साहित्य सदन, रतलाम। पृष्ठ ४०, मूल्य ॥)

'उद्‌जन' शशिजी की दस कविताओं का प्रथम संग्रह है। प्रथम कविता 'उद्‌जन' बम पर है, इसमें 'नीरज' की इसी विषय पर कविता का-सा कल्पना-वैभव तथा प्रवाह तो नहीं है परन्तु इसमें मर्मस्पर्शिता और कुछ नये प्रयोग अवश्य हैं। अन्य कविताओं की प्रथम पंक्तियाँ पाठक को गुनगुनाने के लिए विवश कर देती हैं यथा "तुम गये, मगर गीतों की गुन गुन गई नहीं।" भाषा चलती हुई है और लोक गीतों का मिठास लिए हुए है। हम इस उदीयमान कवि का स्वागत करते हैं।

अभियान (काव्य-संग्रह)—लेखक–महेन्द्र भटनागर, प्रकाशक–आदर्श-विद्या-मन्दिर प्रकाशन, गौराकुण्ड, इन्दौर। पृष्ठ ८७, मूल्य डेढ़ रुपया।

महेन्द्र भटनागर के कवि रूप से पाठक परिचित हैं। उनमें बौद्धिक जागरूकता भी है और हार्दिक उद्वेगशीलता भी। वे अपनी भावना को सरलता के साथ प्रेषणीय बनाना भी जानते हैं। उनका जोश, विद्रोह, कोलाहल व चीत्कार सब तूफानी है परन्तु कोलाहल के इस युग में विद्रोह में आन्तरिकता लाने की आवश्यकता है, इसीलिए कोलाहल व विद्रोह में अन्तर माना जाता है और इसीलिए जब आक्रोश व्यञ्जित नहीं होता, वह जब प्रचार का रूप पकड़ता है तब कविता में आन्तरिकता का अभाव हो जाता है। 'अभियान' काव्य संग्रह की रचनाओं में इसी आन्तरिकता का अभाव मुझे सबसे अधिक खटकता है, परन्तु जनता को जगाने के लिए सभी प्रकार के स्वरों की आवश्यकता है और चूँकि कवि प्रगति के प्रवाह को पहचानता है अतः उसकी ललकार, उसका चीत्कार, उसकी पुकार सामयिक है और सामयिकता में मर्मस्पर्शिता आती ही है, यदि कवि हृदय से उसके प्रति सच्चा है। प्रसन्नता की बात है कि अभियान के आक्रोश में वह सचाई प्रत्येक शब्द से व्यक्त हो रही है।

मधुहाला—लेखक और प्रकाशक–रावत हिम्मतसिंहजी, भैंसरोडगढ़, वाया नीमच (जोधपुर)। पृष्ठ ६४, मूल्य ॥।)

उमर खय्याम की प्रसिद्ध रुबाइयों के अनुवाद हिन्दी में कई महानुभावों ने किए हैं। प्रस्तुत पुस्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लेखक का भी इस क्षेत्र में यह एक सफल प्रयास है। रावत साहब ने अनुवाद पद्य और गद्य दोनों में किया है। पृष्ठ के एक ओर पद्यानुवाद है और उसके सामने ही उसका गद्यानुवाद है। दोनों में मूल के भावों को सुन्दर रूप देने की चेष्टा की गई है। चार-पाँच चित्रों ने पुस्तक का मूल्य और भी बढ़ा दिया है।

दोहा मणिमाला—लेखक व प्रकाशक—मातादीन चतुर्वेदी, औरैया, इटावा। पृष्ठ ५५, मूल्य ≡)

दोहा मणिमाला में नीति व सुधार सम्बन्धी दोहे हैं, चेतावनी देना उनका उद्देश्य है। 'वृन्द' की परम्परा में चतुर्वेदीजी के दोहों को रख कर उनका स्थान निर्धारित किया जा सकता है। आज की समाज-व्यवस्था को कवि ने पैनी दृष्टि से देखा है। कई दोहे बड़े मार्मिक बन पड़े हैं।

रागारुण (काव्य-संग्रह)—लेखक व प्रकाशक—श्री दीपनारायणसिंह एडवोकेट, फतहपुर। पृष्ठ ७२, मूल्य १)

'रागारुण' की कविताओं में क्रान्ति का आवाहन है। कवि 'दीप' पूँजीवाद के घोर शत्रु हैं और उसके विनाश के लिए जनभावना को जगाना ही अपनी कविता का उद्देश्य मानते हैं, न उनके पास भाषा के परिष्कार को समय है, न अभिव्यञ्जना की धार को तेज करने को। उन्हें प्रहार में आनन्द आता है और प्रहार के लिए साहस की आवश्यकता है। हथियार चाहे जैसा हो, कवि 'दीप' के पास ऐसा साहस है, अतुलित मात्रा में है। कविताओं के अनुरूप संग्रह का नाम 'रक्तारुण' होता तो शायद अधिक उपयुक्त होता।

—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

नाटक

भारत माता—ले०—रघुवीरशरण मित्र, प्रका०—भारतीय साहित्य प्रकाशन २३२, स्वराज्य पथ सदर, मेरठ। पृष्ठ १०४, मूल्य २)

मित्रजी ने अभिनय के अनुकूल कई नाटक लिखे हैं, उनके 'धरती माता' नाटक की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। इस नाटक में चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, सुखदेव आदि क्रान्तिकारियों की कार्यवाहियों को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसे नाटकों में सबसे बड़ा भय यह रहता है कि लेखक पात्रों के मुख लम्बे-लम्बे कथोपकथन कराते चलते हैं, पात्रों की मानसिक स्थिति तथा बाह्य परिस्थिति का द्वन्द्व चित्रित नहीं हो पाता, परन्तु इस नाटक में एक सीमा तक इस दोष से बचने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण कम है। प्रचारात्मकता कम से कम नाटक के लिए खतरनाक है। यह नाटक क्रान्ति के चित्रों को जीवित रूप में प्रस्तुत करता है।

कहानी

अँखियाँ निहार के! पग धूरि झार के!!—लेखक—श्री बरुआ, प्रकाशक—रामपुरिया प्रकाशन, कलकत्ता। पृष्ठ २२८, सचित्र मूल्य ४)

हमारा आज का दाम्पत्य-जीवन कितना करुणापूर्ण, आह्लादरहित और जर्जर है यह कौन नहीं जानता। घर-घर में कोई न कोई झगड़ा, कहीं न कहीं विषाद की एक रेखा दिखाई देगी। बरुआजी ने इसी जीवन को भीतर से झाँक कर उसका चित्र इस पुस्तक में अङ्कित किया है। चित्र वास्तविकता लिए हुए हैं, अतः सबल हैं और पाठक को विवश करते हैं उसके आगे क्या करें—यह सोचने के लिए। परन्तु इन चित्रों के देखने से लाभ तो तभी होगा जब उन परिस्थितियों से निकलने का कोई मार्ग दर्शन भी दिया जाए। जिसका इस पुस्तक में अभाव है।

मिट्टी का सत्य—लेखक—योगेन्द्र, प्रका०—नालन्दा प्रेस, बिहार शरीफ, पटना। पृष्ठ ७३, मूल्य १)

इस कहानी संग्रह में ६ कहानियाँ संग्रहीत हैं। कहानियाँ सामान्यतः मनोरञ्जक हैं। लेखक की कहानी-कला में अभी परिपक्वता का अभाव है। फिर भी लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है।

जिन खोजा तिन पाइयाँ—ले०—श्री गोयलीय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक—मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस। पृष्ठ २१६, मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने देखने, सुनने, पढ़ने और समझने से जो तथ्य प्राप्त किये हैं उनका एक अपूर्व संग्रह है। इसमें जो घटनाएँ दी गई हैं वे प्रायः सची हैं और उनमें कुछ काल्पनिक कथाओं से कहीं अधिक आश्चर्यजनक हैं। सची होने के कारण ये घटनाएँ अधिक प्रभावोत्पादक हैं। इस पुस्तक में कहानी के से कौतूहल के साथ छोटी कहानी की सी शिक्षाप्रदता भी है। भाषा अधिकांश में उर्दू से प्रभावित है किन्तु उसकी प्रकृति और ढाँचा हिन्दी का ही है। पुस्तक एक साथ शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक है।

उपन्यास

अर्हत का शाप—लेखक-श्री जान ओ' हिन्द, प्रकाशक—दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली। पृष्ठ १६४, मूल्य लिखा नहीं।

यह एक बौद्धकालीन उपन्यास है जिसमें सम्राट् हर्ष के समय का राजनीतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक वर्णन बड़े ही सजीव ढङ्ग से किया गया है। कूटनीतिज्ञ भिक्षु भैरव, नीतिकुशल राजा शशांक, प्रेम दीवानी राजकुमारी रमादेवी, राजनीतिक सम्राट् हर्ष, रूप पुजारी जयवर्मा, अल्हड़वाला शीलमती आदि इस उपन्यास की प्रमुख पात्र-पात्राएँ हैं, जिनका चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है। उपन्यास की विशेषता यह है कि इसका नायक कोई एक व्यक्ति नहीं है। उपन्यास पठनीय और अपने ढङ्ग का नया है। कुछ चित्रों ने इसे और भी सजीव बना दिया है।

अपराधी कौन—लेखक-श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली। पृष्ठ २८८, मूल्य ५)

हिन्दी के पुराने प्रौढ़ लेखक श्री इन्द्रजी ने इस उपन्यास में भारतीय समाज के कई विकृत अङ्गों का चित्रण कर समाज के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया है कि विषम परिस्थितियों में किए गये गर्हित कार्यों की जिम्मेदारी किस पर है और वास्तव में अपराधी समाज है या व्यक्ति विशेष। इस दृष्टि से यह पुस्तक बड़ी सफल है। इसके पढ़ने पर उपन्यास का मौलिक आनन्द तो मिलता ही है, अपने देश और समाज की कुछ समस्याओं को समझने और उनको सुलझाने का भी अवसर मिलता है। इन्द्रजी इसके लिए बधाई के पात्र हैं।

यात्रा

कलकत्ता से पीकिंग—लेखक-श्री भगवतशरण उपाध्याय, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली। पृष्ठ १७३, मूल्य ३॥)

श्री भगवतशरण उपाध्याय हिन्दी के यशस्वी लेखक हैं। १९५२ में आप भारतीय प्रतिनिधि के रूप में शान्ति सम्मेलन में भाग लेने चीन गए थे। उसी यात्रा के पत्रों के रूप में लिखे हुए आपके यह संस्मरण चीन की वर्तमान प्रगति और स्थिति का बड़ा ही यथार्थ रूप प्रस्तुत करते हैं। यह पुस्तक मनोरञ्जन का ही काम नहीं करेगी—वहाँ की राजनैतिक और सामाजिक अवस्था का भी दिग्दर्शन कराएगी।

स्फुट

चरित्र-निर्माण (प्रथम भाग)—सम्पादक-श्री उग्रसेन जैन एम० ए०, प्रकाशक—भा० दि० जैन परिषद प० हाउस, दिल्ली। पृष्ठ १३१, मूल्य ।॥)

यह पुस्तक विद्यार्थियों को चरित्र सम्बन्धी शिक्षा देने और उन्हें आदर्श युवक बनाने की नीयत से छापी गई है। इसमें कई महापुरुषों के जीवन, कई तीर्थों के वर्णन, कई सुन्दर कहानियाँ और कई अच्छी कविताएँ हैं। जैन स्कूलों के लिए तो बनाई ही गई है और लोग भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

विश्व और व्यक्ति—लेखक-श्री जगतनारायण, प्रकाशक—नारायण प्रकाशन मन्दिर, कमच्छा—बनारस। पृष्ठ १३५, मूल्य ॥=)

प्रस्तुत पुस्तक में यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि संसार की वर्तमान प्रमुख समस्याएँ क्या-क्या हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उन्हें कैसे सुलझाया जा सकता है। साथ ही यह भी दिखाने की चेष्टा की गई है कि कैसे-कैसे प्रत्येक व्यक्ति इन जटिल समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सकता है।

स्त्री-उपयोगी

नारी का रूप शृङ्गार—ले०—श्रीमती सावित्री-देवी वर्मा, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ २५६, सचित्र, मूल्य ६)

नारी के रूप सौन्दर्य पर हिन्दी में बहुत कम पुस्तकें लिखी गई हैं। जो थोड़ी सी छपी हैं वे भी सर्वत्र सुलभ नहीं हैं। प्रस्तुत पुस्तक में नारी के सौन्दर्य सम्बन्धी अनेक विषयों की चर्चा है। उदाहरण के लिए स्नान से सम्बन्ध रखने वाली जितनी बातें हैं—उबटन, तैल-मर्दन, स्नान के भेद-प्रभेद सभी के गुण और प्रक्रिया हैं। इसी प्रकार केशों की सार-सँभाल और केश-विन्यास, वेश-भूषा, आभूषण आदि का देशी और विदेशी वर्णन दिया गया है। सौन्दर्य के उपर्युक्त बाह्य प्रसाधनों के अतिरिक्त अन्तरङ्ग सौन्दर्य की भी बातें लिखी गई हैं। व्यक्तित्व का आकर्षण कैसे बढ़ाया जाय, बातचीत और आचरण से कैसे अपने को ऊँचा उठाया जाय—यह सब बातें इस पुस्तक में दी गई हैं। इस प्रकार यह पुस्तक महिलाओं और कन्याओं के लिए बहुत उपयोगी बन गई है। स्थान-स्थान पर जो सैकड़ों चित्र दिए गए हैं उनसे पुस्तक की उपयोगिता और सुन्दरता दोनों बढ़ गई हैं।

बालोपयोगी

(१) भगवान कृष्ण का सन्देश, (२) भगवान राम का सन्देश, (३) भगवान बुद्ध का सन्देश, (४) महात्मा गान्धी का सन्देश—चारों के लेखक—सेवकराम बाल सेवक, प्रकाशक—भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ। पृष्ठ ३२—३२, मूल्य प्रत्येक का ॥)

इन छोटी सुन्दर पुस्तकों में सम्बन्धित महात्माओं के उपदेशों का सङ्कलन किया गया है। नवयुवकों के लिए बहुत उपयोगी हैं।

सोने का नीबू—लेखिका—श्रीमती किरण, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ ६०, मूल्य १)

देश में प्रचलित लोक कहानियों की इस छोटी पुस्तक में अनेक आकर्षक कहानियों का संग्रह किया गया है। अनेकों चित्रों ने कहानियों को और सुन्दर बना दिया है। पुस्तक बाल, वृद्ध सबके लिए अच्छी है।

(पृष्ठ २४६ का शेषांश)

धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहों"—तुलसीदास, रा० च० मा० अयोध्याकांड। "बन्दउँ गुरु पद पदुम परागा"—तुलसीदास, रामचरित मानस, गीताप्रेस, बालकाण्ड, १|१

तत्समाभास—अज्ञान या भ्रम से कुछ शब्द शुद्ध संस्कृत के समझ लिये जाते हैं और प्रयुक्त होते रहते हैं, उन्हें तत्समाभास कहते हैं; जैसे जागृति, उपरोक्त, मनोकामना, बनोवास आदि। इनके तत्सम शब्द क्रमशः जागर्ति, उपर्युक्त, मनःकामना और बनवास हैं।

विदेशी—हिन्दी भारतीय आर्य-भाषा-परिवार की एक भाषा है। भारत से बाहर की अथवा अनार्य भाषा की शब्दावली में से लिया हुआ शब्द जब हिन्दी में प्रयुक्त होगा तो वह विदेशी कहलायगा; जैसे बटन, तोप, पिल्ला, टोसा आदि।

देशज—वे शब्द, जो भारतीय आदि वासियों की भाषाओं तथा बोलियों से वैदिक भाषा, लौकिक संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक आर्य भाषाओं में समय-समय पर आये हैं और जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत से सिद्ध नहीं की जा सकती, देशज कहलाते हैं; जैसे गोड़, फीका, गैल, लोटना आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज

'साहित्य-सन्देश' के अक्टूबर और नवम्बर के अङ्कों में हमने हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज पर कुछ लिखा था। उसे पढ़ कर हमारे पचासों प्रेमी पाठकों ने हमें पत्र भेजे हैं और इस काम में मदद करने का वचन दिया है। हम चाहते हैं कि खोज का यह काम और भी जोरों से चले। इसके लिए हमने एक फार्म छपवा लिया है जिसका नमूना गताङ्क की विचार-धारा के साथ छपा था। जो सज्जन इस काम में मदद देना चाहें वे इन फार्मों को नवम्बर के अङ्क से देख कर या फाड़ कर अथवा हमसे मँगा कर खोज का काम कर सकते हैं। हम उनका सभी प्रकार से स्वागत करेंगे।

विगत मास में जो परिचय हमें मिले हैं उनमें से दो अज्ञात ग्रन्थों का परिचय हम नीचे दे रहे हैं—

भगवद्दास रचित शृङ्गार-सिन्धु

प्रिय महेन्द्रजी,

आपने हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों के परिचय प्राप्त करने का अनुरोध किया है। मुझे करीब चालीस, पचास रचनायें ऐसी ज्ञात हुई हैं जो सर्वथा अज्ञात हैं जहाँ-जहाँ भी खोज की जाती हैं नित्य नये अज्ञात ग्रन्थों की जानकारी मिलती है। सचमुच इस विषय पर और भी अनुसन्धान होना चाहिए। इस समय एक अज्ञात ग्रन्थ का विवरण आपकी सेवामें भेज रहा हूँ जिसकी प्रति कच्छ से प्राप्त पाटण के हेमचन्द्र सूरि ज्ञान मन्दिर में है। मुनि पुण्य विजयजी की कृपा से मैंने उसे मँगाकर यह विवरण लिया है। ग्रन्थ का नाम है 'शृङ्गार सिन्धु'। इसके रचयिता भगवद्दास, कृष्णदास के वंशज थे। संवत् १७७० बैसाख सुदी ३ गुरुवार को इसकी रचना हुई। ग्रन्थ बारह कल्लोलों में विभक्त है। कवि कृष्ण भक्त है अतः उनके पूर्वज कृष्णदास अष्टछाप के कवि कृष्णदास ही हैं—इस विषय में बल्लभ सम्प्रदाय के साहित्यिक विद्वान श्री द्वारकादास पारीक और श्री कण्ठमणी शास्त्री आदि से विशेष जानकारी अपेक्षित है।

आदि कवित्त—

अंकुर है भाव प्रेम कंदलय प्रनय शाखा,
पल्लव है राग सोई नीके कैं जानियैं।
अनुराग कलिका सौं झुकि रह्यौ चहुँ ओर,
विसन कुसुम नित्त प्रफुलित मांनियैं॥
स्नेह फल नूतन अखंड है विराजमान,
कहै रिझवार। भाव पूरन प्रमानियैं।
लपटि रही है व्रज सुंदरी लतानि जहाँ,
ऐसो रसरुप सुरतरु उर आनियैं॥१॥

दोहा—

रसिक राइ नव रसमई, पूरन आनन्द कंद।
प्रतिछिन रस अनुभव करत, प्रगटत परमानन्द॥२॥
नव रस मैं शृंगार रस, सरस रसनि सिरमौर।
विप्रलंभ संयोग मिलि, एकैं युगल किसोर॥३॥
नव रस मैं शृंगार रस, सब रस को है भूप।
विप्रलंभ संयोग मिलि, आनन्द युगल सरूप॥४॥
चरन चारु चित राखिकैं, नमन करौं रस रीति।
सदा रहौ रति इन विषैं, छिन छिन वाढ़ौं प्रीति॥५॥
जे ए रस के अनभवी, जानौं कृपा सहाय।
मन बंछित फल देत है, परसत उनके पाय॥६॥
विप्रलंभ विनु वाहिनें, होत पुष्ट संभोग।
अतिरंग वाढ़त वस्त्र कौं, कियें कशा विनयोग॥७॥
उदाहरन जे सरस अति, रस ग्रंथनि में सार।
उपयोगी या ग्रन्थ के, ते नीकैं उद्धार॥८॥
पहिलैं कारन होयकैं, कारिज पाछैं होय।
रस के कारन भाव है, कहत रसिक सब कोय॥९॥

अथ भाव लछनं—

होत और को और मन, मन विकार यहै जानि।
मन विकार अनुकूल रस, ताकौं भाव बखानि॥१०॥

अन्त—

इति द्वादश मास वर्णन

चैत्र चांदिनी कौ सुख, माधौ में फुहारे बाग।
जेठ नल केलि औ असाढ़ मेह भीजियैं।
सावन बिहार वन भादौं भर पूर घन,
क्वार पेलिजू चादेव पूजि सुप लीजियैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कातिकदै दीपमाल अगहन सेइ वाल।
पूष रति माह में बसंत केलि कीजियें।
फागुन में खेलि फागु, संक तजि अंक भरौं।
कहै रिझवार प्यारे देखि मुख जीजियें ॥३९॥

दोहा—

करे कवित्त भाषा अवे, जे सिंगार रस अंग।
करयौं सिंधु सिंगार तिन, लहि रसिकन कौ संग ॥४०॥
पंडित जग मंडित लख्यौ, जागे सुर इहिनाम।
रच्यौ सिंधु सिंगार लै, ता संमत सुखधाम ॥४१॥
करता रस भगवान के, भई जु कछु इहिंबार।
नवरस मधि बहु प्यार करि, बरनन कियौ सिंगार ॥४२॥
हौं सबकौ रस रीति कै, पद रज हू निरधार।
बरनत भूल परी कछू, सो छमियौ इहिं बार ॥४३॥
संवत् सत्रहसें सुभग, सत्तरि बरष बषानि।
माधव सित तृतीया गुरौ, धाता सोभन मानि ॥४४॥

इति श्री कृष्णदास वंश संभव भगवद्दास प्रकाशिते श्रृंगार सिंधौ द्वादश मास वर्णनं नाम द्वादश कल्लोल सं० १८५७ ना वर्षे श्रावण मासे शुक्ल पक्षेम्येकादशी तिथौ शुक्रवासरे लिपिकृता ॥

सकल भट्टारक पुरंदर भट्टारक श्री श्री श्री श्री १०८ श्री श्री १ कनक कुशल सूरीश्वर तत्छिष्य सकल पंडित शिरोमणि पंडित श्री श्री श्री १०८ श्री श्री कल्याण कुशल जीतत्शिष्य पंडितोत्तम पंडित श्री १०८ श्री ज्ञान कुशल जीतत्छिष्य पं० कीर्ति कुशलेन लिखिता श्री शुपार्श्व जिन प्रसादात श्रीमान कुआ मध्ये इदं पुस्तकं स्वार्थे लिखिता लेखक पाठकयो शुभं भवतु।

—अगरचन्द नाहटा

बोधीदास कृत झूलना

श्रीमान् सम्पादक महोदय,

आपने हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज पर बहुत जोर दिया है। मेरे नानाजी के पास एक प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ है जिसकी चर्चा मैंने किसी इतिहास ग्रन्थ में नहीं देखी। आपकी जानकारी के लिए मैं इस ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय आपकी सेवा में भेज रहा हूँ।

पुस्तक का नाम है "बोधीदास कृत झूलना"। यह पुस्तक मुक्तककाव्य के रूप में झूलना छन्दों में लिखी गई है। इसमें कुल ६८ छन्द और ३६ पृष्ठ हैं। पुस्तक के अक्षर बहुत सुन्दर हैं। हिन्दी के प्रत्येक अक्षरों से दो या एक छन्द प्रारम्भ हुए हैं। पढ़ने से लेखक निर्गुण पन्थ ज्ञानाश्रयी शाखा का अनुयायी ज्ञात होता है। पुस्तक के अन्त में यह लिखा है:—

इदं पुस्तकं पीरपैंती ग्राम निवासी श्री बैष्णव सन्त जन सेवी नदियाचान्द साहु अवलेखितम् कृतम्—१—शुभमस्तु।

पिरपैंती शुभ ठाम इक ॥ गङ्गा केर किनार ॥ तहँ सुरसरि परतापते भा पुस्तक तय्यार ॥ सौ बारह सन पंचानवे ॥ दिवस शुक्र शुभ जान ॥ श्रावण में सुदि चौथ को ॥ उल्था किया सुजान ॥

पुस्तक मिलने का इतिहास इस प्रकार है :—

मेरे स्वर्गीय नाना साहब भागलपुर में पीरपैंती ग्राम में रहते थे। वे एक साधु विचार के मनुष्य थे, वहीं से इसे लाये थे और इसका पाठ भी किया करते थे। उदाहरणार्थ दो छन्द नीचे दिये जा रहे हैं—

घाम औ सीत जहाँ सूर्य औ चन्द हैं,
तहाँ निर्वाण का असल डेरा।
बिना करताल मृदङ्ग जहाँ बाजता,
बिना मुख बासुरी वेनु टेरा।
बिना दृग ज्योति परकाश तहँ देखिये,
बिना जल चले तहँ ऊर्ध बेरा।
कह दास बोधी तहँ सन्त कोई मगन है,
बिना पगु जाय नित करे फेरा।
गगन के शिखर में जिकर लागा रहे,
सुने कोइ संत सु अमिय बानी।
शब्द के सिन्धु में गोत जिन मारिया,
तहाँ एक रतन अनमोल ठानी।
मोहे जो देखते शेष औ शारदा,
शंकर विरंचि औ शूल बानी।
कह दास बोधी सो वस्तु है संग में,
खोजते जाहि सुर मुनिन्ह ज्ञानी ॥२॥

—वासुदेवसिंह शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज, स्कूल, पुस्तकालय और विद्यार्थियों के लिए

हिन्दी के विविध शब्द कोश

आजकल जितने भी अच्छे कोश प्राप्य हैं उनकी सूची हम नीचे दे रहे हैं। आप जिस प्रकार का कोश चाहें हमें लिखिए, हम उसे आपकी सेवा में भेज देंगे ।।

१—ज्ञान शब्द कोश—मुकुन्दीलाल १२)
२—हिन्दी शब्द सागर—रामचन्द्र वर्मा कुल ८ भाग हैं जिसमें ४ भाग प्राप्य हैं। ४५)
३—संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर—रामचन्द्र वर्मा १५)
४—प्रामाणिक हिन्दी कोश— ,, १२॥)
५—कोश कला— ,, १॥)
६—हिन्दी मुहावरा कोश—भोलानाथ तिवारी ७॥)
७—हिन्दी पर्यायवाची कोश— " ७॥)
८—संक्षिप्त हिन्दी कोश— " ३)
९—हिन्दी मुहावरा कोश— ३)
१०—हिन्दी पर्यायवाची कोश— ४॥)
११—बृहद हिन्दी कोश—मुकन्दलाल श्रीवास्तव २०)
१२—अवधी कोश—रामयज्ञ द्विवेदी ७॥)
१३—हिन्दुस्तानी कोश—हरिशङ्कर शर्मा ६)
१४—भू-तत्त्व विज्ञान कोश—एस.-सी० सैन गुप्ता २॥)
१५—राष्ट्र भाषा शब्द कोश—इण्डियन प्रेस १४)
१६—भाषा शब्द कोश—रसाल १२)
१७—नालन्दा विशाल सागर— १५)
१८—अभिनव हिन्दी कोश—हरिशङ्कर शर्मा ८)
१९—नारायण हिन्दी शब्द सागर— श्यामसुन्दर दीक्षित ५।)
२०—शब्दार्थ पारिजात कोश-द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी ६)
२१—अग्रवाल हिन्दी कोश— ५)
२२—आधुनिक शब्द कोश—केदारनाथ भट्ट ४॥)
२३—आदर्श हिन्दी शब्द कोश—पाठक १२)
२४—आदर्श हिन्दी शब्द कोश—पाठक ६)
२५—बाल हिन्दी कोश—पाठक ३)
२६—प्रचारक हिन्दी कोश—लालधर त्रिपाठी १२)
२७—प्रचारक हिन्दी कोश—लालधर त्रिपाठी ८)
२८—प्रचारक हिन्दी कोश—संक्षिप्त ,, २॥≥)
२९—पारिभाषिक शब्द कोश—मुकंदलाल श्रीवास्तव ४)
३०—टुएन्टीयथ सेन्चुअरी—६ भाग अंग्रेजी से हिन्दी ७९॥)
३१—भार्गव डिक्सनरी अंग्रेजी से हिन्दी— ९)
३२—भार्गव डिक्सनरी अंग्रेजी से हिन्दी— ४)
३३—भार्गव डिक्सनरी हिन्दी से अंग्रेजी— ९)
३४—भार्गव डिक्सनरी हिन्दी से अंग्रेजी— ४)
३५—अभिनव अंग्रेजी हिन्दी कोश—केदारनाथ भट्ट ७।)
३६—शासन शब्द कोश—राहुल १५)
३७—विधि शब्द सागर—जी० पी० चतुर्वेदी २०)
३८—शासन शब्द संग्रह—हरिहर निवास द्विवेदी ४॥)
३९—राजनीति शब्दावली—केला २॥)
४०—न्यायालय शब्द कोश— २)
४१—समाचार पत्र शब्द कोश—डा० सत्यप्रकाश १॥)
४२—राजकीय कोश—गोरखनाथ चौबे— १॥)
४३—अर्थशास्त्र शब्दावली—केला २)
४४—भूगोल शब्द कोश—रामनारायण मिश्र २)
४५—वाणिज्य शब्द कोश— १॥)
४६—उर्दू हिन्दी कोश—रामचन्द्र वर्मा— ४॥)
४७—रामायण कोश—केदारनाथ भट्ट ४)
४८—तुलसी शब्द सागर— १२)
४९—ब्रजभाषा सूरकोश ४ भाग-डा. दीनदयालु गुप्त १२)
५०—कृषि शब्दावली— ।)
५१—ज्योतिष विज्ञान— ॥≥)
५२—विविध ज्ञान शब्द कोश— २)
५३—शब्द सुधाकर—सुधाकर शुक्ल १॥)।

सभी प्रकार की पुस्तकों के मिलने का स्थान—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

113022

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल भारती

नन्हें मुन्नों की सचित्र मासिका जिसमें सरल भाषा में प्रेरणादायक कहानियां, मीठी मीठी कविताएं, उपयोगी लेख और रेखा-चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। वार्षिक मूल्य ४); एक प्रति ।=)

आजकल

हिन्दी की इस सर्वप्रिय सचित्र मासिका में विचारपूर्ण लेख तथा विख्यात कथाकारों और कवियों की कृतियां पढ़िए। 'आजकल' से संयुक्त 'विश्वदर्शन' में अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर निष्पक्ष लेख प्रस्तुत किए जाते हैं। वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति ।।)

प्रसारिका

(सचित्र त्रैमासिक)

'प्रसारिका' (रेडियो संग्रह) आकाशवाणी के हिन्दी केंद्रों से प्रसारित उच्च कोटि की चुनी हुई वार्ताओं, कविताओं तथा कहानियों आदि का त्रैमासिक संग्रह है। सुन्दर गेट-अप की इस सचित्र पत्रिका का मूल्य ८ आना है। वार्षिक मूल्य २)

AC 55/185

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८

अपने विद्यालय की पत्रिका हमसे

छपवाएँ !

❀ कागज, छपाई, बँधाई के साथ ❀

पेज का नाप १०'' × ७''

दर ५०० प्रतियों के लिए......प्रति पेज ४)

दर १००० प्रतियों के लिए........प्रति पेज ५)

समय—३२ पेज के लिए केवल ४ दिन, आर्डर भेजकर समय निश्चित करा लें।

सस्ते में शुद्ध और आकर्षक छपाई देना हमारा ध्येय है।

प्रश्न-पत्र १।।) पेज (गोपनीय की गारण्टी है।)

हम समय के पूरे पाबन्द हैं।

विशेष जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें

साहित्य-प्रेस, ५ गांधी मार्ग, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक कमीशन के लोभ में न पड़कर

अच्छी पुस्तकें खरीदनी चाहिए

कुछ जानने योग्य बातें

१—अच्छे और ख्याति प्राप्त लेखकों की पुस्तकें खरीदी जायँ।

२—पुस्तकें वही खरीदी जायँ जिनमें कीमत अधिक न छपी हो।

३—स्कूल, कालिजों में उन विषयों की जनरल पुस्तकें अधिक रक्खी जायँ जिनसे वहाँ के विद्यार्थी भी अपनी योग्यता बढ़ा सकें।

यह सभी बातें आपको हमारे भण्डार में मिलेंगी। हमारे यहाँ सभी नई से नई हर विषय की प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें आपको मिलेंगी। इस वर्ष अभी से कालेजों में पुस्तकों की खरीद प्रारम्भ हो गई है। हमारे यहाँ अब तक कितने ही आर्डर आ चुके हैं और सबको हम एक सप्ताह के अन्दर ही सब पुस्तकें भेज देते हैं।

आप हिन्दी पुस्तकों का वृहद् सूची-पत्र हमसे मुफ्त मँगायें

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा।

हमारे यहाँ सोल एजेन्सियाँ हैं

हमारे यहाँ कितने ही बड़े-बड़े प्रकाशकों की सोल एजेन्सी उनका माल हम उन्हीं के कमीशन पर विक्रेताओं को देते हैं अतः ऐसे विक्रेता जो हिन्दी की एक-एक पुस्तक मँगा कर अपना हिन्दी पुस्तकों का व्यापार बढ़ाना चाहें वे हमारा व्यापारिक सूची-पत्र मुफ्त मँगा कर लाभ उठावें।

साहित्य-रत्न-भंडार, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REGD. No. A. 263 DECEMBER 1955. LICENSE No. 16.
Sahitya Sandesh, Agra. Licensed to post without Prepayment.

कालेजों में पुस्तकों की—

खरीद प्रारम्भ होगई

सरकारी स्कूल, कालेजों में प्रायः फरवरी-मार्च में हिन्दी पुस्तकों की खरीद शुरू होती थी, और चूँकि वर्ष का अन्त होने के कारण उन्हें उसी महीने बजट का पूरा रुपया खर्च करना पड़ता था, अतः जल्दी में उन्हें अच्छी पुस्तकें नहीं मिल पाती थीं।

हमने गत वर्ष सभी स्कूल कालेजों से प्रार्थना की थी कि यदि वे अच्छी पुस्तकें चाहते हैं तो कुछ पहले वे पुस्तकों की खरीद का कार्य प्रारम्भ किया करें। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अधिकांश स्कूल, कालेजों को हमारा सुझाव पसन्द आया और इस वर्ष अभी से उन्होंने पुस्तकों की खरीद शुरू करदी है और हमारे पास बराबर—

आर्डर आ रहे हैं !

इस प्रकार उन्हें अपनी लायब्रेरी में अच्छी पुस्तकें मिल जायेंगी। आप भी जल्दी ही आर्डर भेजिये अथवा हमसे पूछताछ कीजिये।

सञ्चालक—

साहित्य-रत्न-भण्डार,

साहित्य-कुञ्ज, आगरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri